भास की ाषा सम्बन्धी

तथा

नाटकीय िशेषताएँ

डॉ० ीश दत्त दीक्षित

प्रकाशक

आर्य बुक डिपो,

३० नाईवाला, करौल बाग, नई दिल्ली-५

दिवंगत
भगवतीस्वरूपा पूज्य माता जी
की
पावन स्मृति
को
सादर समर्पित

उपोद्घात

जीवन और जगत् के भावात्मक प्रत्ययों की कला एवं कल्पनामयी अभिव्यक्ति को काव्य कहते हैं। जब यह अभिव्यक्ति चाक्षुष प्रत्यक्ष कर दी जाती है तब उसे रूपक की पारिभाषिक संज्ञा से अभिहित करते हैं। रूपक को ही सामान्य रूप से नाटक भी कहते है। "काव्येषु नाटकं श्रेष्ठम्" वाली प्रसिद्ध उक्ति में नाटक शब्द इसी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। साहित्य की श्रेष्ठ विधा होने के कारण संस्कृत कवियों ने नाटकों की रचना मे विशेष रुचि दिखाई। परिणामस्वरूप संस्कृत में विशाल नाट्य साहित्य का सृजन हुआ। किन्तु मध्ययुग की विषम परिस्थितियों के प्रभाव से संस्कृत का बहुत-सा नाट्यसाहित्य कराल काल के गर्भ में लुप्त और गुप्त हो गया। आज उसके अनुसधान और अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही कुछ विद्वानों की दृष्टि इस दिशा में गई थी और उन्होंने कुछ स्तुत्य कार्य भी किए। ऐसे विद्वानों में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होने १९१० ई० में संस्कृत नाट्यसाहित्य के महान् नाटककार भास के नाटकों की खोज की। उनकी इस खोज ने संस्कृत-नाट्यसाहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है। इनके प्रकाश में आने से संस्कृत-साहित्य की एक अभिनव नाट्य-परम्परा भी हमारे समक्ष आई है जिससे नाट्यसाहित्य के इतिहास की रूपरेखा ही बदल गई है।

जब से भास और उनके नाटक प्रकाश में आए हैं तभी से उनके विशेष अध्ययन की अपेक्षा बनी हुई थी। डॉ० पुशाल्कर आदि कुछ विद्वानों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य भी किया किन्तु फिर भी उनके कुछ विशेष पक्षों के अध्ययन की बड़ी आवश्यकता अनुभूत होती रही। उसी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर मैंने अपने प्रतिभाशाली शिष्य प्रोफेसर जगदीश दत्त दीक्षित को "भास की भाषा सम्बन्धी तथा नाटकीय विशेषताएँ" शीर्षक विषय पर कार्य करने के लिये प्रेरित किया। मुझ से विषय और उसके अध्ययन की प्रेरणा पाकर वे भी साधना मे संलग्न हो गए। उनकी वह साधना ही आज प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के रूप में विद्वानों के समक्ष मूर्तिमान् है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की संस्तुति वा प्रशस्ति के रूप में मेरा कुछ कहना ठीक वैसा ही होगा जैसे कि कोई वास्तुशास्त्री अपनी देख-रेख में बनवाए हुए प्रासाद की प्रशंसा करे। ग्रन्थ का गौरव इसी बात से प्रगट है कि आगरा विश्वविद्यालय ने उसे पी-एच० डी० उपाधि से पुरस्कृत कर प्रतिष्ठित किया है। मुझे यह कहने में

कोई संकोच नहीं है कि लेखक ने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध तैयार करने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा है। इस प्रबन्ध की रचना में उनके गम्भीर अध्ययन, तात्त्विक चिन्तन एवं निर्भीकतापूर्वक स्वमत-स्थापन आदि गुणों की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे संस्कृत-आलोचना-क्षेत्र में स्वतन्त्र चिन्तक और निष्पक्ष समीक्षक के रूप में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेंगे। संस्कृत-साहित्य को इतनी प्रौढ़ और उपयोगी रचना भेंट करने के लिए मैं डॉ० दीक्षित को हार्दिक बधाई देता हूँ और उनकी इस अमर कृति का अभिनन्दन करता हूँ। ईश्वर करे उनकी यह सुन्दर कृति उन्हें अक्षय कीर्ति प्रदान करे और वे इस प्रकार की अन्य अमर कृतियों से माँ भारती का आँचल भरते रहें।

गोविन्द त्रिगुणायत

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश—

(क) संस्कृत साहित्य में भास का स्थान तथा महत्व।

(ख) भास का काल।

(ग) भास की रचनाएँ और उनकी प्रामाणिकता।

(घ) प्रामाणिकता के स्थिरीकरण में भास की अपनी विशेषताएँ।

(ङ) प्राचीन संस्कृत विद्वानों की प्रशस्तियो के आधार पर निर्धारित भास की विशेषताएँ।

(च) भास के साहित्य का अध्ययन और उसका अधूरापन।

(छ) अपने अध्ययन का दृष्टिकोण।

द्वितीय अध्याय

व्याकरण सम्बन्धी दृष्टिकोण—

(क) भास के युग की भाषा (प्राकृत) और उसकी विशेषताएँ।

(ख) भास के नाटकों में प्रयुक्त अपाणिनीय प्रयोगों का अध्ययन।

(ग) भास की शैली।

तृतीय अध्याय

नाट्य सम्बन्धी विशेषताएँ—

(क) नाट्यशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त।

(ख) बाण द्वारा निर्दिष्ट भास की नाटकीय विशेषताएं।

(ग) भास की नाटकीय विशेषताओं का अपना अध्ययन (वस्तु, नेता, रस, वृत्ति तथा अभिनय सम्बन्धी)।

चतुर्थ य

पौराणिक कथाओं के विवरण का रूप—

(क) पौराणिक कथाओं को किस प्रकार का रूप दिया गया ?

(ख) धार्मिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ (पंचरात्र का प्रभाव)

(ग) सामाजिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ।

(घ) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ।

पंचम अध्याय

उपसंहार—

(क) भास की नाट्य कला पर विहंगम दृष्टि ।

(ख) भास का सामान्य अध्ययन ।

(ग) भास पर पौराणिक महाकाव्यों का प्रभाव ।

(घ) भास का परवर्ती साहित्यकारों पर प्रभाव ।

(ङ) भास के प्रमुख प्रयोग ।

(च) भास की देन ।

सुभाषितानि ।

प्रबन्ध में प्रयुक्त पुस्तकों की सूची ।

भास ी भाषा सम्बन्धी
तथा
ा कीय विशेषताएँ

आगरा विश्वविद्यालय की
पी०-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध

डॉ० जगदीश दत्त दीक्षित,
साहित्याचार्य, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०,
प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अध्यक्ष,
संस्कृत-विभाग, हस्तिनापुर कालेज,
मोतीबाग, नई दिल्ली

प्रस्तावना

वीणावादिनी की अनुपम अनुकम्पा से जिज्ञासुओं की साहित्यिक श
मे अभिवृद्धि होती है। अनेक तपः पूत मनस्वियों, तपस्वियों ने वरदा श
आशीर्वाद फलस्वरूप स्थायी एव लोकोपकारी साहित्य का सृजन किया जो लं
तथा लोकरक्षण के भावो से आभरित है। इस संस्कृत साहित्य के सुधास्रोत
प्रवाहिनी पावना जन्मभूमि भारतभूमि में चिरन्तन काल से अविरल
प्रवाहित है।

काव्य के यश रूपी शरीर लाभ की भी जिन भारतीय तपस्वियों को
न रही और जो विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर केवल स्वा
सुखाय काव्य रचना मे प्रवृत्त हुए उन भारतीय प्राचीन कवियों का स्व
किंचिन्मात्र भी लिखना भारतीय परम्परा के विपरीत ही रहा है। इसी का
हमारे कवियों के जीवन सम्बन्धी विवरण के साथ-साथ उनके समय के वि
ऐतिहासिकों तथा काव्य-जिज्ञासुओ को परम कठिनाइयों का सामना करन
है। तिस पर भी वे काल का निर्णय करने में पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध महान् नाटककार 'भास' के सम्बन्ध में ज्ञानवर्द्धन वे
लिखा जा रहा है। यदि मैं इन महापुरुष के काव्य रस तथा विभिन्न विवा
विषयों में अपनी सामान्य बुद्धि से अल्पमात्र भी योग दे सका तो अपना श्रम
समझूंगा। विषय-मर्मज्ञ ही इसका समुचित अंकन करेंगे। ऐसे महान् नाटकव
विषय में बिना गवेषणा किए किंचिन्मात्र भी कहना कठिन है, जिनके गुर
गान महाकवि कालिदास ने किया हो तथा जिनकी काव्यकला के प्रथित य
पश्चात् वे स्वय अपनी रचनाओं की प्रसिद्धि में उतना मूल्यांकन न करते हो
उनकी प्रतिभा से प्रभावित हुए हों।

चार वर्ष के अश्रान्त श्रम के उपरान्त यह मनोज्ञ वेला समुपस्थित हु
मै अपनी अदम्य लालसा को गुरुवृन्द की वर्णनातीत अनुकम्पा के फलस्वरूप स
कर सका। मैंने १९५३ में डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट्०, अ
संस्कृत विभाग, मेरठ कालेज, मेरठ की कृपा से एम० ए० संस्कृत में उ
किया। उनके आदेशानुसार अनुसन्धान कार्य की ओर मेरी रुचि जागृत हुई।
वर्ष उपरान्त ही मै वाराणसेय सस्कृत कालेज में, जो कि सम्प्रति विश्वविद्याल
परिणत हो चुका है, प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुआ। उस समय डा० धर्मेन्
की संस्तुति के बल पर डा० सूर्यकान्त एम० ए० डी० लिट्०, मयूर भुंज प्रो
तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने अपनी अध्यक्षत

मुझे कार्य करने की अनुमति प्रदान की। किन्तु भगवत्कृपा से मैं राजकीय से आयोग द्वारा राजकीय विद्यालय के लिए संस्कृत प्राध्यापक पद हेतु निर्वाचित हो वाराणसी से बाहर जाने के कारण इस सुयोग से वंचित रहा। राजसेवा काल हीं मुरादाबाद आने पर परम श्रद्धेय गुरुवर डा० गोविन्दशरण त्रिगुणायत के सम में आया किन्तु आपके निर्देशन में स्थान रिक्त न होने के कारण मुझे प्रतीक्षा क पड़ी। इस प्रबन्ध की रूपरेखा आपने ही तैयार करायी थी। तदुपरान्त मैंने दिवं प्रो० भोलानाथ शर्मा के निर्देशन में कार्य करने हेतु प्रार्थना-पत्र आगरा विश्वविद्या को भेजा किन्तु अनुसन्धान समिति की बैठक ने उनके संरक्षण में स्थान रिक्त न ह के कारण अन्य निर्देशक की स्वीकृति प्राप्त करने की सूचना दी। इस समय का प्रयास के पश्चात् अपने निकट सम्बन्धी डा० नित्यानन्द शर्मा के मित्र प्रो० रमान सहाय, एम० ए०, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डी० ए० वी० कालेज, देहरादून ने म सहायता की और मुझे स्वीकृति मिल गई। प्रो० रमानाथ सहाय देहरादून से हि विद्या संस्थान आगरा में जाने के कारण तथा डा० गोविन्दशरण त्रिगुणायत संरक्षण में स्थान रिक्त होने के कारण मैंने स्थानीय सुविधा तथा अन्य वैशिष्ट्य ध्यान से उन्हें निर्देशक परिवर्तन हेतु मना लिया। उदारचेता श्री सहाय जी ने मुझे स्वीकृति दे दी। डा० त्रिगुणायत जी ने अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी नियमि रूप से मेरा पथ-प्रदर्शन, कार्य में यत्र-तत्र संशोधन, संवर्द्धन करने की कृपा की, जि ऋण में से आजन्म उऋण न हो सकूंगा। अनुसन्धान कार्य में मुझे डा० धर्मेन्द्रन शास्त्री, डा० सूर्यकान्त, प्रो० बलदेव उपाध्याय, दिवंगत प्रो० भोलानाथ शर्मा, प्र रमानाथ सहाय, प्रो० आद्या प्रसाद मिश्र, आचार्य देवदत्त शर्मा तथा श्रद्धेय गुरु श्री दुर्गादत्त जी शास्त्री से जो यदा-कदा पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता रहा है, उसके लि मैं अत्यन्त आभारी हूँ। साथ ही में सरस्वती भवन पुस्तकालय के सहायक कार्यक श्री बलराम भारद्वाज, प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री चतुर्वेदी त के० जी० के० कालेज, मुरादाबाद के पुस्तकालयाध्यक्ष का मैं अत्यन्त आभारी जिन्होंने मुझे पुस्तकों के अध्ययन की सुविधा प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबन्ध में पाँच अध्यायों में विवरण दिया गया है।

प्रथम अध्याय में भास के काल निर्णय में वर्तमान समय तक के आलोचकों मतों का संक्षिप्त विवेचन करने के उपरान्त इनका समय चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भि काल निश्चित किया है जिसके समर्थन में मैंने दो तथ्यों को आधार रूप में मा है। प्रथम आधार प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में वर्णित यौगन्धरायण तथा भरतरोहक वार्तालाप है जिसमें भरतरोहक के यह पूछने पर कि 'किमाह शास्त्रम्' के उत्तर यौगन्धरायण का 'वधः' कहकर वार्ता को समाप्त करना है। यह ऐतिहासिक घट सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने तथा राजा पुरु के पराजित होने पर सिकन्द

और पुरु के वार्तालाप की प्रतिच्छाया प्रतीत होती है। इसी का भास ने उदाहरण लेकर अपनी रचना में वर्णन किया है। द्वितीय आधार सिकन्दर के आक्रमण के समय के पूर्व भारत के राजनैतिक मानचित्र को प्रस्तुत किया है जिसमें राज्य की सीमायें भास की रचनाओं में वर्णित 'हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्' की समानता दर्शाती है। भास की रचनाओं की प्रामाणिकता मे मैंने अब तक के आलोचकों के उद्धरणों को देकर विषय का पिष्टपेषण नहीं किया, अपितु भास की रचनाओं में समानता का अपना मौलिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है जो कि रचनाओं की प्रामाणिकता में 'भास की अपनी विशेषताओं' नामक शीर्षक मे उपनिबद्ध किया गया है। प्रशस्तियों के वर्गीकरण तथा विवेचन मे मूलग्रन्थो के सन्दर्भो पर विचार व्यक्त किए हैं।

द्वितीय अध्याय में भास के समय में भाषा के रूप तथा उनकी प्राकृत का विभिन्न विद्वानों द्वारा विवेचनात्मक विवरण सक्षेप में दिया है। आलोचकों में प्रो० विलियम प्रिट्ज, लेस्नी, सुकथन्कर, बैनर्जी शास्त्री तथा डा० देवधर द्वारा किये गये प्राकृत विवेचन को संक्षिप्त रूप में आलोचनात्मक दृष्टि से रखकर भास की भाषा का पालि, महाराष्ट्री, मागधी तथा शौरसेनी से तुलनात्मक विवेचन किया है। भास में प्रयुक्त अपाणिनीय प्रयोगो के पूर्व व्याकरण से प्रमाणित करने में मैंने कतिपय प्रयोगो को विवेचनात्मक रूप से रखा है। इस विषय के अध्ययन में मैंने फ्रेंकलिन एजर्टन के 'बुद्धिस्ट हाईब्रिड ग्रामर तथा डिक्शनरी' में वर्णित प्रयोगों से सहायता लेने का प्रयास किया है। युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित संस्कृत व्याकरण के इतिहास में भी इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोगो को व्याकरण सम्मत दर्शाया गया है। इससे भी मैंने कतिपय शब्दों की विवेचना में सहायता ली है।

तृतीय अध्याय में नाट्यशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों का संक्षेप में विवेचन करने के उपरान्त रस की परिभाषा पर संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत किया है। भास के सभी नाटकों के नाट्य शास्त्रीय विवेचन में मैंने अपना मौलिक प्रयास उनके प्रत्येक नाटक में सन्धियो तथा सन्ध्यंगों का विवेचन करने में प्रयुक्त किया है और भरत के नाट्यशास्त्र तथा विशेष रूप से दशरूपक की परिभाषाओं का आधार लिया है। सन्ध्यंगों के विवेचन का क्रम शास्त्रीय ही है। यद्यपि कतिपय स्थलों पर नाटकों में सन्ध्यंगों, रस, वृत्ति आदि के विवेचन में विवाद भी रहा है तथापि गुरुवृन्द के आदेशानुसार ही वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भास के नाटकों में पौराणिक कथाओं के परिवर्तित रूप में नाटककार की मौलिकता का अंकन किया है। नाटकों में प्राप्त धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी तथ्यो का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक दृष्टिकोण में पाचरात्र धर्म का प्रभाव भास पर दिखाया गया है तथा इनकी कथाओं की आध्यात्मिक पृष्ठिभूमि के साथ-साथ बौद्धों के त्रिरत्न के सिद्धान्त का प्रभाव दिखाने का प्रयास किया है। सामाजिक दृष्टिकोण में समाज में व्याप्त

-तात्कालीन परम्पराओं, सामाजिक व्यवस्थाओं, तथा प्रशासनिक प्रयोगों का भी उल्लेख किया गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में नाटककार की निपुणता-प्रदर्शन हेतु इनके प्रयोगों को उद्धरण रूप में देकर समर्थन किया गया है।

पंचम अध्याय में भास की नाट्यकला पर विहगम दृष्टिपात किया गया है जिसमें वस्तु, नेता तथा रस के चयन सम्बन्धी वैशिष्ट्य के आधार पर भास के नाटकों की बृहद् आलोचना की गई है। इन नाटकों में प्रयुक्त स्वानुभूत सन्देश के विवरण के उपरान्त भास पर पौराणिक महाकाव्यों का प्रभाव समान उद्धरण देकर सिद्ध किया है तथा परवर्ती नाटककारों पर भी प्रभाव दर्शाया है। भास के उत्तरं-कुरु तथा मन्दराचल के प्रिय प्रयोगों के विवेचन के उपरान्त भास की देन में कतिपय शब्द कहकर सूक्तियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है।

अन्त मे मैं, इस अध्ययन में मुझे जिन भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थो से सहायता मिली है, उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ, वीणावादिनी तथा वरेण्य विद्वान् एवं गुरुवृन्द के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी कृपा से इन वाक्यों का सुगुम्फन कर सका हूँ। उत्तराखण्ड का नवनिर्मित जिला पिथौरागढ़ जहाँ की हिममण्डित शिखरावलियो के शुभ्रदर्शन से अमित आह्लाद एव प्रेरणा का अविरल स्रोत मिला उसी प्रान्त की रम्य स्थली थल केदार तथा जयन्तीदेवी के मध्य की देवभूमि चन्द्रभागा के तट के ऐंचोली ग्राम के आवास का ही यह फल है, जो यह कार्यपूर्ण हो सका।

मै श्रद्धेय गुरुवर डा० गोविन्दशरण त्रिगुणायत की कृपा के लिए सदैव ऋणी रहूँगा जिन्होंने भूमिका के लिए अपना आशीर्वाद प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मैं अपने मित्र एवं विद्वान् सहयोगी डा० महेन्द्र कुमार एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् का अत्यन्त आभारी हूँ जिनके प्रयास से यह शीघ्र प्रकाशित हो सका। अपने अभिन्न एव वरिष्ठ सहयोगी डा० शकर देव 'अवतरे' एम. ए., पी. एच. डी., साहित्याचार्य के प्रति भी मुझे आभार प्रकट करना है कि जिन्होंने समय निकालकर इसके सशोधन में मेरी सहायता की। पूज्य पितृ चरणों का स्मरण करता हूँ तथा अपनी पत्नी के सहयोग को भी नही भुला सकता जिन्होने अपने आभूषण उपकरण में से इसे संजोया।

आर्य बुक डिपो के संचालक-बन्धुओं श्री मानसिह तथा श्री सुखपाल सिह ने इसके प्रकाशन में जो तत्परता दिखाई उसके लिए वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में मैं मंगला एवं मोदमूर्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा का सम्बल पाकर सुधी पाठकों के समक्ष अपनी अपूर्णता के साथ प्रबन्ध प्रस्तुत करता है।

यावत: स्खलनं क्वापि भवेदेव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधव:॥

विदुषां विनयावनत:

जगदीश दत्त दीक्षित

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

(क) सस्कृत साहित्य में भास का स्थान तथा महत्व ।
(ख) भास का काल ।
(ग) भास की रचनाएँ और उनकी प्रामाणिकता ।
(घ) प्रामाणिकता के स्थिरीकरण में भास की अपनी विशेषताएँ ।
(ङ) प्राचीन संस्कृत विद्वानों की प्रशस्तियों के आधार पर निर्धारित भास की विशेषताएँ ।
(च) भास के साहित्य का अध्ययन और उसका अधूरापन ।
(छ) अपने अध्ययन का दृष्टिकोण ।

जिस प्रकार मालती की माला अपने सुभग सौरभ को दर्शाये बिना ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। सुबन्धु ने अपनी वासवदत्ता के श्लोक ११ मे इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये है। काव्य प्रकाशकार मम्मट ने 'शक्तिर्निपुणता इति हेतुस्तदुद्भवे त्रय. समुदितः' का ग्रहण किया है और उन्होंने लोकोत्तर वर्जना को निपुण कवि कर्म कहा है। भट्ट तौत भी वर्णननिपुण को ही कवि कहते है। केवल तुकात कविता 'यदृच्छादाकृष्टाना कतिपयपदाना रचयिता' कवि की पदवी से अलकृत किये वाक्य और 'निरकुशा. कवयः' के समर्थन करने वाले मिल भी जाएँ, तब भी कवि को 'क्रान्तदर्शी' कहकर उसे अन्तस्तल की गम्भीर स्थितियो का परिज्ञाता अवश्य मानना होगा। इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत के केवल आध्यात्मिक साहित्य में ही काव्य के अध्यात्मपरक स्वरूप की प्रतिष्ठा नही की गई है, वरन् उसके लौकिक साहित्य मे भी उसके स्वरूप की पूरी मान्यता है।

सस्कृत में साहित्य और काव्य शब्द पर्यायवाची माने जाते रहे है। उसमे साहित्य या काव्य के विविध स्वरूपों और प्रकारो का विकास बहुत प्राचीन काल मे ही हो चुका है। उन सभी रूपो और प्रकारो में नाटक को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्' वाली उक्ति लोक-प्रसिद्ध है ही, इसके अतिरिक्त भी बहुत से आचार्यो ने नाटक को साहित्य का श्रेष्ठतम रूप व्यंजित किया है। सभवत. यही कारण है कि सस्कृत-साहित्य की समृद्धतम धारा नाटक की है। सस्कृत में सहस्रों नाटककार हो चुके हैं, किन्तु इस समय हमें बहुतो की रचनाएँ और अनेको के तो नाम तक भी नही ज्ञात है। १९१० से पूर्व ऐसे ही अनेक अज्ञात नाटककारों में महान् नाटककार भास की गणना की जाती थी। किन्तु गणपति शास्त्री के महान् अनुसधानात्मक प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् १९१२ मे विश्व के विद्वानों के सामने संस्कृत के महान् नाटककार के रूप में भास और उनकी कुछ रचनाओ का रहस्योद्घाटन हुआ। इससे पूर्व संस्कृत के प्राचीन साहित्य में कहीं प्रशस्तियो के रूप में हमें भास और उनके दो-चार नाटकों की चर्चा मिल जाती थी। प्राचीन साहित्य में पाई जाने वाली प्रशस्तियों का यहाँ पर हम थोड़ा-सा उल्लेख कर देना चाहते है। क्योंकि ये प्रशस्तियाँ उनके महान् नाटककार होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसका विस्तृत विवेचन इसी अध्याय के अग्रिम भाग में होगा।

प्रशस्तियों में पश्चाद्वर्ती ग्यारहवीं शती के प्रसन्न राघवकार जयदेव ने भास की रचनाओ के विषय में अपनी विशेष उक्ति प्रस्तुत की है। वे महान् नाटककार भास की रचनाओं में वाणी का हास (हास्य) ही देख पाये और इसी की प्रशसा की। इतना ही नही, उन्होने कालिदास को कविकुल गुरु विशेषण देते हुए उनके काव्य में विलास और वैदग्ध्य दर्शाया। अतः इनकी प्रशस्ति से भास की रचनाओं का विस्तृत अध्ययन लक्षित होता है। वसन्तक की हास्यास्पद उक्तियाँ ही उन्हें विशेष रुचिकर प्रतीत हुई है। इन्होने भास को कविताकामिनी का हास माना है। हास्यरस वर्णन की विदग्धता मे हम भास की रचना वासवदत्तम् के विदूषक के औदरिक वर्णन में सुकुमार हास्य तथा प्रतिज्ञा के विदूषक की श्लिष्ट भाषा में उद्धत हास्य के दर्शन करते हैं। हास्य मे प्रसाद गण की प्रधानता

रही है। वस्तुतः भास की भाषा के सरलतम रूप को वाणी का हास कहना समीचीन ही है।

जयदेव ने प्रसन्न राघव की प्रस्तावना में निम्न उक्ति प्रस्तुत की है :

'भासो हास. कविकुलगुरु कालिदासो विलास.'

नवी शती मे सूक्ति मुक्तावली के रचयिता राजशेखर[1] ने भासरचित स्वप्नवासवदत्तम् नाटक को सर्वोत्कृष्ट रचना सिद्ध किया है। उनकी उक्ति मे भास नाटकचक्रम् मे भास की अनेक रचनाओ की पुष्टि तो होती है, साथ ही भास के नाटको की अग्निपरीक्षा तथा स्वप्नवासवदत्ता के ही अवशेष रहने का वर्णन भी मिलता है। दशम शती के आरम्भ मे भास नाटकचक्र कहने का अभिप्राय यही है कि भास का एक विशाल नाटक चक्र था जिनमें स्वप्नवासवदत्तम् प्रमुख था। इससे यह प्रतीत होता है कि भास के अनेक नाटक जनमनोरंजन की वस्तु समझी जाती रही है।

आठवी शती मे वाक्पतिराज[2] ने अपने प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' मे महान् नाटककार भास को (ज्वनमित्र) अग्नि का मित्र पद से सम्बोधित किया है। यह सर्वमान्य है कि वाक्पतिराज ने भास की अन्य रचनाओ तथा स्वप्नवासवदतम् का सम्यक्तया अध्ययन किया होगा, क्योंकि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक मे वासवदता के अग्नि मे जलने का मिथ्या समाचार प्रसारित करके ही नाटक के नायक की लक्ष्यपूर्ति सम्भव हो सकी है। इसी आभास पर नाटकीय वस्तु के पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त हो सका है।

दण्डी ने सातवी शती मे अपनी पुस्तक अवन्तिसुन्दरी कथा[3] की भूमिका के ग्यारहवें श्लोक मे भास के विषय मे प्रशस्ति लिखी है। भास के लिए नाटको रूपी शरीर के द्वारा अमर होने की यह उक्ति नाटक तथा शरीर दोनो के समुचित विशेषणों से सुसज्जित है। जिस प्रकार मुख आदि इन्द्रियो तथा सुलक्षणो से शरीर का बोध स्पष्ट होता है, उसी प्रकार मुख प्रतिमुख सन्धियो, अको तथा वृत्तियो से सुगुम्फित नाटको की रचना से भास अमर हैं।

सातवीं शती के महान् गद्यकार बाण[4] द्वारा भास के नाटको की प्रशस्ति ने ही वास्तव मे इनके नाटको की इतनी ख्याति तथा मौलिकता का प्रदर्शन किया, जिसके द्वारा विद्वानों की कौतूहल वृत्ति की तृप्ति भास नाटकचक्रम् की प्राप्ति के पश्चात् ही हो सकी। इन्होने अपनी रचना हर्ष चरित के प्रथमोच्छ्वास में साम्बशिव की स्तुति के उपरान्त महाभारत

---

१. भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते: परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥—सूक्ति मु०

२. भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्यरघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्दे च आनन्दः ॥—गउडवहो

३. सुविभक्त-मुखाद्यंकैः व्यक्त लक्षण वृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥—अवन्ति सुन्दर कथा, ११वां श्लोक

४. सूत्रधारकृतारम्भै र्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्ष चरित प्र० उ०

के प्रणेता वेदव्यास आदि महाकवियो को प्रणामांजलि प्रस्तुत की, तदनन्तर भास विषयक प्रशस्ति का अकंन किया। इन्होंने भास के नाटको को सूत्रधार द्वारा आरम्भ किये गये, अनेक भूमिकाओ से युक्त, पताकादि प्रासंगिक कथाओ मे विभूषित बतलाकर अन्य नाटककारो की अपेक्षा विशेपता दर्शाई है. ध्वजाओ से मडित देव-मदिरो के निर्माण मे जैसे कोई व्यक्ति प्रसिद्धि की प्राप्ति करता है, उसी प्रकार भास ने अपने नाटको से यश प्राप्त किया। प्रस्तुत उक्ति मे सूत्रधार (नाटक का मैनेजर तथा मदिर निर्माणकर्ता कारीगर) से आरम्भ किये गये, भूमिका (पार्ट और आँगन) वाले तथा पताका (नाटक की मुख्य अवान्तर घटना तथा ध्वजा) से विभूपित मदिरो के सदृश रचनाओं मे कलित कीर्ति की प्राप्ति की। बाणभट्ट की यह-प्रशस्ति भास के रूपको के विपय मे उचित ही ठहरती है। नाटकैः शब्द से यह स्पष्ट है कि सातवी शती में भास के नाम से अनेक नाटक लोकप्रिय हो चुके थे।

प्रशस्तियों मे कविकुलगुरु महाकवि कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र[1] मे सूत्रधार के मुख से कहलाया है कि प्रख्यात कीर्तिवाले भास, सौमिल्ल और कविपुत्र आदि कवियो के प्रबन्धो को छोड़कर कालिदास की कृति का इतना अधिक आदर क्यो हो रहा है? कालिदास द्वारा भास, सौमिल्ल तथा कविपुत्र आदि कवियों के लिए प्रथितयशसा विशेषण देने से यह स्पष्ट है कि उनके समय मे भास की नाट्य कला जनप्रिय हो चुकी थी, इसी कारण ये स्पर्धात्मक भाव से नाटकीय कला को परिमार्जित तथा परिष्कृत रूप प्रदान कर सके। ऐसे मेधावी महाकवि द्वारा भास की सर्वप्रथम नाटककार के रूप मे स्वीकृति उनके लब्धप्रतिष्ठ होने का प्रबल प्रमाण है।

चिरतन काल से मानव-हृदय मे हास, विलास, क्रोध एवं करुणा की कमनीय अनुभूति सतत होती आई है। कवि की बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियो का प्रकाश उसे व्यक्तिगत सकीर्णता की परिधि से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर आसीन कर देता है। वहा सौंदर्य में मनोविकारों का परिष्कार और जगत् के साथ अपने रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह उसका लक्ष्य बन जाता है।

लौकिक संस्कृत में आदिकवि वाल्मीकि की रचना रामायण आदिकाव्य है। क्रौच मिथुन में से विरह-व्यथा से व्यथित करुणाराव को सुनकर वाल्मीकि की करुणरसाप्लुत वैखरी स्खलित हुई और रसिक हृदय में शोकः श्लोकत्वमागत. के अनुसार (मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम) के रूप में काव्य पयस्विनी की धारा प्रवाहित हो चली। यह आदि-काव्य रामायण सस्कृत भारती का भव्य भवन है। सरसता, सरलता तथा स्वाभाविकता के साथ विभिन्न रसो का मनभावन सम्मेलन आर्या छन्दो में काव्य रसिकों को आकृष्ट करता है। ऐसे सत्काव्यों की भाषा अनन्त के मूक सन्देशो की वाहिका होती है, जो सृष्टि के परिवर्तनशील पृष्ठों पर पावन प्रतिमा की भाँति अकित रहती है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की ओजस्विनी पयस्विनी के प्रवाह में हम उनकी ओर से आँखे नही मूँद सकते,

[1] प्रथितयशसा भाससौमिल्ल कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।—माल० मित्र

मानो हमें सम्बोधित करते हुए वे हठात् कह उठते हैं, देखो यह हम हैं और हमारा मस्तिष्क बिना यह प्रश्न किये हुए कि यहाँ तुम क्यो हो, उनके अस्तित्व के सम्मुख झुक जाता है। यही हम आदि नाटककार भास के प्रति अनुभव करते है। महान् नाटककार भास रामायण तथा महाभारत से पूर्णतया प्रभावित है। वाल्मीकीय शैली का उदात्त उत्कर्ष हम भास में पाते है।

भास का युग निसर्ग भावना का युग था। सारल्य एव रसीली सदुक्तियाँ जनमन-रंजन का आधार थीं। उस समय अलकारों की भरमार तथा कविता पाण्डित्य प्रदर्शन एव न्यायगर्भित वैयाकरणों की वस्तु न थी। पाठकों का हृदयावर्जन वर्ण्य विषय की ओर अधिक था। अलकार सौन्दर्य, 'ग्रामं गच्छन् तृण स्पृशति' की भाँति गौण रूपेण रहा होगा। भास की शैली से परवर्ती कवि कालिदास आदि अवश्य प्रभावित हुए। वस्तुतः मार्ग-निर्माता की दृष्टि से भास को नाटकीय क्षेत्र में स्वय पथ प्रशस्त करना पड़ा, जबकि कालिदास आदि को मार्ग मे स्निग्धता तथा लावण्य के सुमनसों की मालाओं के सुगुम्फन का सुअवसर सुलभ हुआ। इस समय तक संस्कृत काव्य तथा नाटकों का लक्ष्य जनसाधारण का अनुरंजन था। अत युगानुकूल कविसामान्य जन हृदयस्पर्शी कविता के निर्माण में रत रहे। भास तथा इनके पश्चात् कालिदास तक यही सुबोधता तथा सरसता का साम्राज्य रहा है।

भाषा तथा शैली के सम्बन्ध में भास ने अपनी रचनाओं मे सीधी-सादी चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। उनकी कविता प्रसादगुण युक्त है। न उसमें क्लिष्ट कल्पना को ही अवकाश है और न अलकारो की अनावश्यक भरमार ही है। कविता में बल-पूर्वक अलकार प्रयुक्त नही किये गए और न क्लिष्टता की झलक ही हमें कहीं मिलती है। कविता दैनिक तथा व्यावहारिक जीवन के इतने निकट है कि उसके समझने मे तनिक भी कठिनाई नही होती, अपितु जितना उसमे डूबते है, सौष्ठव मे उतनी ही वृद्धि पाते हैं।

भास की शैली की विशेषता है कि वे नाटको का आरम्भ मुद्रालकार से करते है। पात्रो के नाम तथा अभीष्ट देवता की स्तुति दोनों कार्य की निष्पत्ति में दर्शको की उत्सुकता को बनाये रखते है। नाट्यकला की सुन्दरता, अभिनेयता की उपयुक्तता, अवसरानुकूल पात्र सुयोजन, परिस्थिति अनुकूल भाषा एवं भावो के मजुल सगठन के कारण इनकी प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। इनकी कविता गीर्वाण वाणी का मनोरम शृंगार है। प्रसाद की हृदय-हारी एव कोमल छटा, सुन्दर पदो की सरस शय्या की विविधता के साथ सामयिकता का अकन इनके काव्य का लक्ष्य रहा है।

ये वैष्णव थे; इन्होने भगवान् राम तथा कृष्ण को अवतार के रूप में अकित किया हैं। प्रतिमा तथा अभिषेक मे राम, दूतवाक्य तथा बालचरित में कृष्ण के स्वरूप के अध्ययन से यह पुष्ट हो जाता है। इनके नाटको में ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा का पुन. सस्थापन लक्षित होता है। कवि मे देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी है। इसी कारण विदेशी राजा के विनाश तथा एकच्छत्र राज्य की कामना करता है; गो तथा ब्राह्मणों के हितार्थ सदैव सचेत रहता है। नाटको का अन्तरग परीक्षण राष्ट्र-प्रेम के अपार सन्देश के साथ-साथ अनुपम चरित्रों को प्रस्तुत करता है। स्वप्नवासवदत्तम् में महिषी वासवदत्ता का राज्य-प्राप्ति हेतु आपदाओं

से अभिभूत होकर सपत्नी भार को वहन करना नाटकीय सफलता के साथ-साथ राष्ट्र की वीरांगनाओं के हेतु स्पृहणीय चरित्र अर्पित करता है। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के कर्मठ तथा सफल मंत्री को अपने स्वामी हेतु प्रतिज्ञा करना और उस कठोर व्रत का तत्परता एवं बुद्धिमत्ता से पालन करना मंत्रियों के लिए आदर्श की वस्तु है। मंत्रित्व के इतने सफल अकन मे भास के किसी राजा के यहाँ मंत्री होने की भी झलक मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये परम राजभक्त मत्री थे और किन्ही कारणों से इन्हे देशनिकाला दिया गया हो अथवा स्वय शत्रु या विदेशी राजा के यहाँ जाकर इन्हें रहना पड़ा हो और दक्षिण में उन्होंने शरण ली हो। किन्तु रहने वाले ये उत्तर के अवश्य थे, क्योकि प्राय: ये उत्तर कुरु देश को निवास योग्य तथा सुख-सुविधा से आपूरित समझते है। वासवदत्ता में 'उत्तर कुरुवास: मयानुभूयते' उत्तर कुरु से बद्रीनाथ के समीप की भूमि के लिए ही निश्चित बोध होता है।

अभिनेयता की दृष्टि में इनके नाटको के समान अद्यावधि नाटकों का अभाव ही है। वासवदत्ता के घटनाचक्र में कार्यान्विति का विशेष ध्यान रक्खा है। उदयन गंभीर तथा दक्षिण है, हर्ष का उदयन शठ तथा धूर्त है। पद्मावती के समीप वासवदत्ता का न्यास रूप मे रहना और उसके परिज्ञान हेतु उसकी धाय का प्राचीन चित्र लेकर वहाँ उपस्थित होना तथा प्रवास काल मे उसके चरित्र की साक्षिणी स्वयं उदयन की भावी पत्नी पद्मावती इत्यादि सुव्यवस्थित संयोजन नाटक की उच्चतम कला का बोध कराते है।

इनके वर्णन प्रकार तथा वर्ण्य विषय में मंजुल सामंजस्य है। संक्षेप में ये जितनी गूढ तथा वृहद् वार्ता को कह जाते है, वैसा अन्य कवियों में प्राप्त होना दुर्लभ है। इन्होंने लोक-कथाओं पर आधारित लोकनायक उदयन की कथा को भी अपनाया है। वासवदत्ता, प्रतिज्ञा में उदयन तथा दरिद्र चारुदत्त में चारुदत्त कथा द्वारा जन-जागरण हेतु संदेश भी दिया है। संदेश प्रसार हेतु नाटको की भाषा भी अत्यन्त सरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के युग मे जनभाषा संस्कृत रही होगी।

इन्हे साहित्यिक नाटककार न कहकर यदि लोकनाटककार कहा जाये तो अनुचित न होगा। इन्होंने अपने नाटकों मे भारतीय दर्शन की आशावादिता का पूर्णतया निर्वाह किया है। जीवन का पर्यवसान सदैव आनन्द का निकेतन रहा है; अत: पाश्चात्यों द्वारा भारतीय नाटकों के केवल सुखान्त होने की आलोचना निराधार ही है। इसमें विषम परिस्थितियों का अकन अवश्य रहता है। परिणाम सुखावह ही होना समुचित अवगत किया गया है। इन सभी दृष्टियों से भास का स्थान सर्वोपरि है। आदि नाटककार होने से इनके महत्त्व को सभी नतमस्तक होकर स्वीकार करते है। इनकी सम्पूर्ण रचनाओं की समुपलब्धि हेतु प्रयास किया जाना चाहिए। कथा तत्त्व की मौलिकता इनकी विशेषता है, जो दैवी सरलता की प्रतिच्छाया मे शतधा आकर्षक हो जाती है। प्रतिमा नाटक में वृक्षों को सींचते हुए सीता की कोमलता का अंकन इस प्रकार है :

योऽस्या: कर: श्राम्यति दर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्या:।

वर वनं स्त्रीजनसौकुमार्य
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥—प्रतिमा ५।३

जिस सीता का हाथ दर्पण में खड़ा हुआ भी थक जाता है, वह कलश द्वारा जल लाने मे भी कष्ट का अनुभव नही करता है।

औचित्य की मर्मज्ञता का पोषण इनकी कलात्मकता से हो जाता है। जिन भावों का जिन शब्दों द्वारा प्रकटन कलात्मक तथा मनोरम होगा, तदनुकूल शब्द-व्यजना इनकी विशेषता है। इन्होंने अपनी रचना में मानव वृत्तियों का सुन्दर एवं गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। मानवोचित हृदय दौर्बल्य को तिरोहित करके वर्णन मे अस्वाभाविकता को कहीं भी स्थान नही दिया है। इनमें हृदय पक्ष का प्राधान्य है, तथा मानवीय वृत्तियों के परिवर्तन की परिस्थितियों का अंकन मार्मिक एव हृदयस्पर्शी ढग से किया गया है। इन्होंने हृदय परिवर्तन हेतु विभिन्न सामयिक परिस्थितियो का चित्रण सुचारु रूप से किया है।

प्रसन्नराघवकार जयदेव की भासो हासः की उक्ति समुचित ही है। हास के उद्धत तथा सुकुमार स्वरूपो के दर्शन इनकी रचनाओं में सुलभ हैं। संविधान की नवीनता, नाटकों की विविधता, बहुमुखता, अभिनेयता, पात्रों की सजीवता, नाना रसों के संमिश्रण तथा शृंगार की प्रधानता के कारण भास का स्थान नाटकीय क्षेत्र में सर्वोपरि है। कालिदास, अश्वघोष आदि परवर्ती नाटककारों ने इनके नाटकों से प्रेरणा ही नही ली, अपितु अनेक स्थलों, प्रसंगों के वर्णन में भास की छाया स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। विशद विवरण सम्बन्धित अध्याय में किया गया है।

भास का काल

१. (ख)

"सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।"

वाली महाकवि कालिदास की उक्ति से यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रणेता को अपनी रचनाओं की उत्कृष्टता मे पूर्ण विश्वास था। अतः विद्वान् वर्ग को भी भास की रचनाओं के अन्तरंग तथा बहिरंग परीक्षण के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। संशयालु व्यक्ति तो प्रतिक्षण सन्दिग्ध मन से ही भारतीय साहित्य की मीमासा करते है। भारतीय साहित्य की प्राचीनता आलोच्य वस्तु रही है। पाश्चात्य विद्वानों ने ईसा के पश्चात् की तिथियों को ही महत्ता प्रदान की है। इस लोभ का संवरण वे नही कर सके। और कतिपय विद्वानों ने कालिदास को भी तृतीय-चतुर्थ ए० डी० के आस-पास रखने का प्रयास किया है। अन्य प्रथम शती ए० डी० को ही कालिदास का समय निर्धारित करते है।

भारतीय विद्वान् डी० वी० केटकर[1] ने ज्योतिष गणित के आकडों के आधार पर

---

१. डेट आफ कालिदास (डी० वी० केटकर) पूना संस्करण १९६०, पृ० १३६

कालिदास का काल २००-३०० ए० डी० निश्चित करने का प्रयत्न किया है। इन्होंने अपने मत को ज्योतिष-सिद्धान्त के तर्कों पर आधारित किया है।

अश्वघोष के कनिष्क के समय में विद्यमान रहने का प्रमाण विभिन्न तथ्यों द्वारा प्राप्त हो चुका है और कनिष्क का समय ७८ ई० से १२० ई० तक ऐतिहासिकों ने निश्चित किया है। इन दोनो प्राचीन नाटककारों के ग्रन्थों का अध्ययन अपने पूर्ववर्ती नाटककार भास के प्रभाव को दर्शाता है। कालिदास ने रामिल्ल तथा सौमिल्ल से पूर्व भास को एक प्रसिद्ध प्रबन्धकार के रूप में स्वीकृत किया है। भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं तथा इनकी रचनाएँ कालिदास के समय जनप्रिय हो चुकी थी। इस जनप्रियता की उपलब्धि हेतु पचास सौ वर्ष तक का समय भी अवश्य व्यतीत हुआ होगा। अतः भास प्रत्येक दृष्टि से प्रथम शती पूर्वकालीन ठहरते है। प्रस्तुत प्रबन्ध में अनेक विद्वानों के तर्कों तथा निजी तथ्यों पर भास के समय निर्धारण का सामान्य प्रयास किया गया है। भास के समय विवेचन में मैंने अपना क्रम उनके नाटककार के रूप में आरम्भ किया है। अन्तरंग तथा वहिरंग परीक्षण के तथ्यों का चयन ऐतिहासिको के विवरण आदि से प्रमाणित किया है।

संस्कृत वाङ्मय के आदि नाटककार भास सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत किये गए है। अतः नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत मुनि के समय से सर्वप्रथम तुलना करना उचित होगा कि किस सीमा तक ये भरत के अनुयायी है अथवा भिन्न है। भरत को भी व्यक्ति विशेष भरत न कहा जाकर नाट्य परम्परा की एक शाखा को भरत के नाम पर स्वीकार किया गया है। जैसा भी रूप हो, नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी विस्तृत विवेचन में यह ग्रन्थ उपलब्ध साहित्य में अप्रतिम है; यद्यपि भरत नाट्यशास्त्र का समय भी अभी तक अनिश्चित ही है।

भास के काल-निर्णय में निम्नांकित रूप में विवेचना प्रस्तुत की गई है—

१. नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत,
२. कामसूत्रकार वात्स्यायन,
३. स्मृतिकार मनु,
४. अर्थशास्त्र प्रणेता कौटिल्य,
५. महाभारत प्रणेता व्यास,
६. पाणिनि,
७. कात्यायन,
८. पतञ्जलि,
९. जातक कथाएँ,
१०. अशोक के शिलालेख,
११. छन्द शास्त्र,
१२. अलंकार साहित्य,
१३. कालिदास तथा अश्वघोष,

१४. ऐतिहासिकों के मत पर विहंगम दृष्टिपात,
१५. भास के प्रधान आलोचकों के मत की समीक्षा,
१६. अपना मत।

१. भास तथा भरत

भरत नाट्यशास्त्र के नियमों का विरोध इस भास की रचनाओ मे प्राप्त करते है, जिससे कतिपय विद्वानों की भास के नाटकों की आलोचना उपयुक्त ही ठहरती है। भास ने स्वयं भी नाट्यशास्त्र की रचना की होगी, जो अभी अनुपलब्ध है और इसी परम्परा के अनुसार रचनाओं को प्रस्तुत किया होगा। मुद्राराक्षस भी इसी परम्परा का नाटक है।

भरत विरोधी नियमों के भास की रचनाओं में उदाहरण

भरत ने प्रस्तावना मे नान्दी[१] पाठ के अनन्तर काव्य के नाम-निर्देश का वर्णन किया है, किन्तु भास की रचनाओं में यह नहीं मिलता है। भरत के द्वारा वर्णित रूपक भेद के लक्षणानुसार भासरचित नाटक प्रतिज्ञा यौगन्धरायण चार अको तथा दिव्य स्त्री कारणोपगत युद्ध होने से ईहामृग[२] होना चाहिए, किन्तु भास प्रतिज्ञा[३] नाटक के आरम्भ मे ही प्रकरण का निर्देश करते है। भास ने अपनी रचना दूतघटोत्कच[४] को रूपक भेद मे (उत्सृष्टांक) नाम दिया है। किन्तु भरत[५] के अनुसार उत्सृष्टाक में स्त्री पात्रो का बाहुल्य होना अपेक्षित है। भरत[६] ने अपने नाट्यशास्त्र में विभिन्न पात्रों द्वारा सम्बोधन के वर्णन में आर्य पुत्र का सम्बोधन सभी स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त होने का विधान किया है। किन्तु भास ने स्वप्नवासवदत्ता के छठे अंक में वासवदत्ता[७] के पिता के कंचुकी द्वारा उदयन के लिए भी आर्यपुत्र शब्द का सम्बोधन रूप मे प्रयोग किया है तथा बालचरित[८] नाटक के पंचम अक में उग्रसेन के भृत्य भट द्वारा वसुदेव के लिए आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

भरत ने नाट्यशास्त्र मे युद्ध बध, आक्रमण तथा मंच पर रुदन का निषेध किया है, किन्तु भास ने अपनी रचनाओं मे इसका स्वच्छन्दता के साथ प्रयोग किया है। बाल-

नोट—पृष्ठ संख्या (भासनाटकचक्रम् द्वितीय संस्करण पूना १९५१) में देखिए।
१. नान्दी पदानां मध्ये··· ··प्रस्तावनां कृतः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम्। —भरत ना० शा०, ५।१५८-१६१
२. दिव्य पुरुषाश्रय······ईहामृगस्तु कार्यश्चतुरंकविभूषितश्च। —भरत ना० शा०, १८।१३०।१३२
३. सूत्रधारः आर्ये··· ··ततस्तव गीतप्रसादिते रंगे वयमपि प्रकरणमारभामहे।—प्रतिज्ञा, पृ० १
४. दूतघटोत्कच नामोत्सृष्टांकं समाप्तम्। —दू० घ० अन्तिम पंक्ति
५. प्रख्यात······स्त्रीपरिदेवितबहुलो ह्युत्सृष्टाकस्तु। —ना० शा० १८।१४६-१४८
६. सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्य आर्यपुत्रेति यौवने।—ना० शा०, १७।८१
७. कांचु०—धारयत्वार्यपुत्रः ·····आर्यपुत्रेण।—स्वप्न, पृ० ५०
८. भटः—जयत्वार्यपुत्रः यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः।—बाल०, पृ० ५५५

चरित[१] नाटक में दामोदर द्वारा अरिष्टर्षभ मुष्टिक का वध, उरु भंग मे दुर्योधन भीम युद्ध, अभिषेक में राम-रावण यद्ध वर्णित है। प्रतिमा[२] में दशरथ की मृत्यु, अभिषेक[३] में बालि की मृत्यु तथा विभिन्न स्थलो पर शयन आदि का वर्णन भरत नाट्यशास्त्र के नियम के विरुद्ध है।

भरत[४] ने नाट्यशास्त्र मे तीन प्रकार के अश्रुओं का वर्णन किया है तथा आँसुओं को पीड़ाकारी बतलाया है। भरत के इस नियम का उल्लंघन भास में ही नहीं, अपितु भवभूति के उत्तर रामचरित मे राम के रोने से भी पुष्ट हो जाता है। अतः ऐसा प्रमाणित होता है कि भरत नाट्यशास्त्र से पूर्व भी कोई नाट्य परम्परा अवश्य थी। कालिदास तथा शूद्रक में भी इस प्रकार दुःख के अवसरो पर हृदयस्पर्शी वर्णन प्राप्त होते हैं।

इन उपर्युक्त उदाहरणों से भास का प्रस्तुत नाट्यशास्त्र से अपरिचित होना प्रमाणित हो जाता है। अत. भास भरत के पश्चाद्वर्ती नही हो सकते। भरत का समय तृतीय शती ए० डी० तथा प्रथम शती ईस्वी पूर्व विद्वानो ने लिखा है।

२. भास तथा वात्स्यायन

वात्स्यायन से भास अपरिचित है, क्योकि प्रतिमा नाटक में ब्राह्मण-वेषी रावण के द्वारा राम से अपने अध्ययन की चर्चा में वात्स्यायन के कामसूत्र का वर्णन प्राप्त नही होता।[५] किन्तु भास ने मानव धर्मशास्त्र तथा बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है, जबकि धर्म, अर्थ तथा काम त्रिवर्ग का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों मे भी लभ्य है। कामसूत्र के प्रसग का अभाव भास के समय में वात्स्यायन की अविद्यमानता का पोषण करता है।

भरत[६] ने नाट्यशास्त्र में स्त्रियों के प्रयोग में पाँच प्रकार के पुरुषों में कामतन्त्र का वर्णन प्रसंगवश दिया है। अतः भरत के समय कामशास्त्र पर वात्स्यायन की रचना अवश्य होगी।

प्रेम वर्णन प्रसग में भास की उपलब्ध रचनाओं में से केवल चार नाटकों (स्वप्न,

---

१. अरि०—तेन हि ··प्रवर्ततां युद्धम्।
दामोदर०—एष एष···विस्तृत ··दानवेन्द्रः।—बाल०, ३।१५

२. राजा—अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि।
अयममरपतेः·· ·····समयो "ममापि" तत्र ॥—प्रतिमा, २।२१

३. सुग्रीवः—हा धिक्। करिकर···चित्तम्।—अभि०, १।२२

४ रुदितमत्र त्रिविधम्—आनन्दजमार्तिजमीर्ष्यासमुद्भवं चेति। —ना० शा०, ७।११ से पूर्व गद्यांश
यथा स्थान रसोपेतं रोमांचास्रादिभिर्गुणैः।—ना० शा०, २२।३
दीर्घं चैव निःश्वस्य नयनाम्बु निपातयेत्।—ना० शा०, २२।२४

५. भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। सांगोपागम् वेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्।—प्रतिमा, पृ० २६६

६. एकान्तदृढता हीनो निर्लज्जः कामतन्त्रेषु।—ना० शा०, २३।५६

प्रतिज्ञा, अवि० तथा चारुदत्त) मे प्रेमवार्ता वर्णित है।

गेमसूत्र ग्रथन प्रसग स्थलों में हम बाभ्रव्य तथा वात्स्यायन द्वारा वर्णित एवं भास द्वारा प्रयुक्त रूप से किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करते हैं। बाभ्रव्य ने मन्दिर गमन, भ्रमण, उद्यानविहार, जलक्रीड़ा, विवाह, उत्सव, दुर्घटना, पर्व, अग्निकाण्ड, चोरी, दृश्य दर्शन हेतु गमन द्वारा प्रेमोद्भव का वर्णन किया है। वात्स्यायन ने कामसूत्र मे नायिका के घर जाकर प्रेम प्राप्ति का सरल मार्ग निर्दिष्ट किया है।

भास ने अपनी रचनाओ मे बाभ्रव्य का ही अनुकरण किया है। भास की रचनाओं में हम प्रेमोत्पत्ति का निम्न रूपों मे दर्शन पाते है। चारुदत्त[1] में बसन्त सेना का झुकाव चारुदत्त के प्रति, तथा अविमारक नाटक मे कुरंगी का मन अविमारक[2] की ओर विहार समय में दुर्घटना मे सहायता करने से आकृष्ट हो जाता है। प्रतिज्ञा[3] मे भी उदकस्नान हेतु वासवदत्ता के गमन से ही उदयन के साथ निर्गमन की पुष्टि होती है। स्वप्नवासवदत्ता[4] में भी अग्निदाह की दुर्घटना के प्रसग मे दग्ध पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उसके गुणों के स्मरण के कारण पद्मावती का हृदय राजा की ओर आकृष्ट हो जाता है।

भास की भाषा बाभ्रव्य की समीपता दर्शाती है। वात्स्यायन[5] के वर्णन में मौलिकता न होकर अन्य का प्रभाव प्रतीत होता है। भास वात्स्यायन के पूर्ववर्ती को अवश्य जानते होंगे, क्योंकि वात्स्यायन ने भास की रचनाओं की प्रसिद्धि को स्वीकार किया है। वात्स्यायन[6] के वर्णन पर अविमारक कथा के अध्ययन की छाया स्पष्ट है। प्रथम समय कन्या को आकृष्ट करने में वात्स्यायन ने अविमारक का वर्णन किया है। अत. भास वात्स्यायन से पूर्ववर्ती है। पश्चाद्वर्ती साहित्यकार कालिदास आदि पर वात्स्यायन का प्रभाव स्पष्ट है, क्योंकि दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला[7] की आँख में पराग न पड़ने देने का अनुमोदन वात्स्यायन ने किया है। अविमारक[8] में कुरंगी और अविमारक के प्रथम मिलन में

१. चारु०—शकार—आ कामदेवयानात् प्रभृति चारुदत्तवटुकं कामयते।—चारु०, पृ० २०३

२. कौञ्जायन—ततः स्वाभिदारिकायाः यानमेव प्राप्तः स हस्ती।—अवि०, पृ० ११२

विदूषकः—कथं भोः—यदाहस्तिसम्भ्रम दिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरंगी दृष्टा।—अवि०, पृ० ११८

३. भटः—कः कालो हं वासवदत्तायाः उदके कीडितुकामायाः⋯प्रेक्षे।—प्रतिज्ञा, पृ० ६५

४. तापसी—स खलु गुणवान् नामराजा।

भटी—किं तु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति।

पद्मावती—आत्मगतम्। मम हृदयेनैव सह मंत्रितम्।—स्वप्न, पृ० ११

धात्री—अन्यप्रयोजनेनेहागतस्य⋯ ⋯दत्ता।—स्वप्न, पृ० १६

५. वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० २७१

६. वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० २००-२०५।

७. शाकुन्तलम् तृतीयाङ्के।

८. धात्री—नलिनिके। अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। भर्तृदारिकां भर्तृदारकं च तत्रैव प्रवेशय।
—अवि०, १४५

हीं धात्री के द्वारा शयनागार मे प्रवेश का सकेत करा दिया है। वात्स्यायन से भास की प्राचीनता मे और भी सहयोग प्राप्त होने का प्रमाण यह है कि कामसूत्र में अहिल्या, शकुन्तला तथा अविमारक की कथाओ का सकेत मिलता है तथा वात्स्यायन के समय इन्हीं कथाओ की लोकप्रियता का आभास भी प्राप्त होता है। पश्चात् मे अश्वघोष ने अहिल्या को बुद्धचरित ४।७२ तथा शकुन्तला को बुद्धचरित ४।२० में तथा कालिदास ने भी इन दोनो का वर्णन किया है। अविमारक की कथा बाद के साहित्य में लुप्त-सी हो गई है। यदि कतिपय विद्वान् अहिल्या तथा शकुन्तला के कथानक को महाभारत से गृहीत भी मानें, तथापि अविमारक की कथा मे भास की मौलिक उद्भावना है।

वात्स्यायन के काल के सम्बन्ध में निम्नाकित तथ्य सहायक होगे।

वात्स्यायन[1] के कामसूत्र मे चोल राजा का कील के द्वारा चित्रसेना गणिका के बध का वर्णन प्राप्त होता है।

कुतल[2] शातकर्ण शातवाहन ने कर्तरी से मलयवती को मारा।

कुपाणिः[3] नरदेव ने चित्रलेखा को काणा कर दिया।

उपर्युक्त तीनों सन्दर्भ पाण्ड्य राजा के समय के प्रमाणित हो जाते हैं। चोल राजा का समय स्मिथ द्वारा लिखित इतिहास पृष्ठ ४८२ पर ए० डी० ५०-१२० निर्दिष्ट किया है। १२० ए० डी० के पश्चात् १८० ए० डी० मे ६० वर्ष के बाद इस वंश का राजा हुआ। स्मिथ इतिहास पृष्ठ २२१ के अनुसार कुन्तल १२८ ए० डी० मे गद्दी पर बैठा। अतः वात्स्यायन कील, कर्तरी तथा कुपाणि नरदेव से परिचित थे। और इनका समय १४० ए० डी० से २०० ए० डी० तक अवश्य निश्चित किया जा सकता है।

कालिदास[4] भी इसी समय में रहे होगे, क्योंकि वात्स्यायन[5] की प्रतिच्छाया शाकुंतलम् मे प्राप्त होती है। अतः वात्स्यायन १४०-२०० ए० डी० तथा कालिदास भी इसी समय के अनुमानित होने से भी भास इनसे पूर्व के ही होते हैं।

३. भास तथा मनु

धर्मशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथो में आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बोधायन, आश्वलायन, विष्णुस्मृति, गौतम, वशिष्ठ धर्मसूत्र आदि में प्राचीनतम ग्रंथ मनुस्मृति है। इनकी शैली

१. रतियोगे हि कीलया गणिका चित्रसेनां चोलराजो जघान।—काम० अधि० २, अध्याय ७, सूत्र २८

२. कर्तर्या कुंतलः शातकर्णिः शातवाहनः महादेवी मलयवती।—काम० अधि० २, अध्याय ७, सूत्र २९

३. नरदेवः कुपाणिः विद्धया दुष्प्रयुक्तया नटीं चित्रलेखां काणां चकार।

—काम० अधि० २ अध्याय ७ सूत्र ३०.

४. कालि०—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने।
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः॥—शाकु० चतुर्थ अंक

५. काम—श्वश्रूपरिचर्या, तत्पारतंत्र्यम अनुत्तरवादिता। भोगेष्वनुत्सेकः।
परिजने दाक्षिण्यम्।

—काम० अधि० ४ सूत्र ३७-३९

पांरा।णक है तथा पाणिनि और पतञ्जलि इनसे अपरिचित है। भास ने भी प्रतिमा मे शास्त्रों के साथ मानवीय धर्मशास्त्र का वर्णन अवश्य किया है। भास की रचन मनुस्मृति के नियमों की समानता से यह स्पष्ट हो जाता है कि भास के समय मानव पर अन्य ग्रथ रहा होगा, जिसका रूपान्तर अथवा संक्षिप्तीकरण इस मनुस्मृति मनुस्मृति[1] में मृगया आदि व्यसनों के वर्णन मे मनु ने जुआ खेलने का निषेध कि किन्तु आपस्तम्ब तथा विष्णुधर्म ५।१३४-१३५ में राजसी संरक्षण मे यह स्वीकृत गया है। द्यूत विपयक निन्दा तथा ग्लानि की स्वीकृति भास ने अपने नाटक पं[2] तथा उरुभंग में प्रदर्शित की है। पचरात्र में द्रोण युधिष्ठिर को द्यूत में वंचित हुआ हैं तथा दुर्योधन स्वयं उरुभंग में द्यूत के दोषो को स्वीकार करता है। मनु[3] ने उस अनन्तर दक्षिणा पर बल दिया है कि कोई भी यज्ञ साधारण दक्षिणा अथवा दक्षिण रहने से निष्फल रहता है। भास[4] ने भी पंचरात्र में दुर्योधन के द्वारा द्रोण को दक्षि का वर्णन किया है तथा भीष्म दक्षिणा बिना निष्फलता का वर्णन करते है।

मनुस्मृति[5] के अनुसार उपाध्याय से बढ़कर आचार्य तथा आचार्य के समा और माता का पिता से भी सहस्रगुणित गौरव मानने का उल्लेख मिलता है।

भास[6] में पिता के विरुद्ध जाने वाली माता को अमाता कहा है तथा अन्यत्र तथा मध्यम व्यायोग में घटोत्कच माता के आदेश को सर्वोपरि समझता है। कर्ण कर्ण ने स्वयं १।८ में (पुनश्चमातुर्वचनेन वारित) द्वारा माता का विशेप महत्त्व किया है।

इन सभी उद्धरणों के प्रयोग में भी भास की मौलिकता का ही आभास प्रा है। उनके प्रयोग अधिकार रूप में हैं कि भविष्य में इस प्रकार के नियमों का अ किया जाना चाहिए। अतः यह निश्चित है कि मनुस्मृति के पूर्व मानव धर्मशास्त्र र रचनाएँ अवश्य रही होंगी। अतः मनु के समय (तृतीय शती) से पूर्व भास रहे है।

---

१. मृगयाक्षादिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः।
तौर्यत्रिकं वृथाद्या च कामजोदशकोगणः॥—मनु० ७।४७
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमम् विद्याच्चतुष्कं कामजेगणे॥—मनु० ७।५०

२. द्रोण—धर्मच्छेलन वंचितो द्यूताश्रयवृत्ति युधिष्ठिरः।
—पंचरात्र। १।३५ के समीप
दुर्यो०—अक्षव्याजजिता।—उरु० १।६३

३. अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजम्।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमोरिपुः॥—मनु० ११।४०

४. दुर्यो०—प्रतिगृह्यतां दक्षिणा।
भीष्म—किं तद् द्रव्यं···यत्रविप्रो दरिद्रः।—पंच० १।२८

५. सहस्रं तु पितृन्मातागौरवेणातिरिच्यते।—मनु० २।१४५

६. भर्तृ द्रोहादस्तु माताप्यमाता।—पंच० ३।१८

४. भास तथा कौटिल्य

भास न प्रातमा नाटक में रावण द्वारा बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का वर्णन किया है। अतः यह तो निश्चित ही है कि उस समय 'बृहस्पति' द्वारा लिखित अर्थशास्त्र पूर्णरूपेण प्रचार में था। कौटिल्य ने स्वयं मानव औशनस पाराशर बार्हस्पत्य का उल्लेख किया है। भास ने प्रतिज्ञा नाटक में (किमाह शास्त्रम्) कहा है। अतः राज-शास्त्र विषयक ग्रंथ की विद्यमानता निश्चित हो जाती है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में अधिकरण १० अध्याय ३ में "नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णम्" श्लोक उद्धृत किया है जो प्रतिज्ञा में उचित स्थान पर प्रयुक्त किया गया है। कतिपय विद्वान् भास तथा कौटिल्य दोनों को अन्यत्र से उद्धृत करने का विचार रखते है, किन्तु भास के प्रयोग से यह मत समीचीन नही प्रतीत होता है।

भास तथा कौटिल्य के सामयिक चित्रण में महान् अन्तर है। भास की दृष्टि में ब्राह्मण प्रवध्य तथा अनेक दोषों पर भी सर्व प्रकार से प्रतिष्ठित तथा आदरणीय दर्शाया है, किन्तु कौटिल्य ने ब्राह्मण का स्थान इतना उन्नत अंकित नही किया। जाति-प्रथा का प्राबल्य कौटिल्य (तृतीय शती पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य-कालीन) ने दर्शाया है, परन्तु भास[1] ने चरित्र पर विशेष बल दिया है। इस कारण से भास कौटिल्य के ज्येष्ठ समकालीन अनुमानित किये जा सकते हैं।

डॉ० कीथ कौटिल्य को प्रथम शती से भी पूर्व का ठहराते हैं, किन्तु अर्थशास्त्र के अन्तरंग परीक्षण तथा उसमें वर्णित राजनैतिक वर्णन से वह ईस्वी पूर्व ३०० में ही आते हैं। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण का काल ३२७ ई० पूर्व है। अर्थशास्त्र में उस समय की गंगा के मैदान की राजनैतिक तथा सामाजिक दशाओं का चित्रण लभ्य होता है। ये चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री थे, इसके पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं।

५. भास तथा व्यास

जगनक लिखित पृथ्वीराज विजय की समालोचना में भास तथा महाभारत प्रणेता वेदव्यास की ख्याति पर विवाद का प्रसंग प्राप्त होता है। रचनाओं की उत्कृ-ष्टता ग्रंथ के अग्नि में न जलने पर ही निश्चित की जाती है। भास का विष्णुधर्म बिना जले ही प्राप्त होता है, जबकि व्यास के सभी ग्रंथ अग्नि में नष्ट हो गये। भास का विष्णु धर्म अभी तक उपलब्ध न हो सका। इस ओर प्रयास होना आवश्यक है।

६. भास तथा पाणिनि

भास की रचनाओं में व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों पर दृष्टिपात करने से उनकी पाणिनि से यत्र-तत्र भिन्नता प्राप्त होती है। इस भिन्नता पर गहन विवेचन तो

१. चारित्र्यदोषं मयि पातयन्ति।—अवि० ६।१५

अग्रिम अध्याय (भास की भाषा) में किया गया है, किन्तु कतिपय प्रयोगों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पाणिनि के व्याकरण का संस्कृत साहित्य में प्रसार तो अवश्य हो चुका था, किन्तु भास ने लोक-नाटकों में लौकिक व्यावहारिकता की दृष्टि से इन नियमों का अक्षरशः पालन न किया हो अथवा ऐन्द्र आदि व्याकरण के प्रभाव का निराकरण पूर्णरूपेण न कर सके हों। इसी कारण इनके नाटकों में अनेक आर्ष प्रयोग प्राप्त होते हैं।

पाणिनि से भिन्न प्रयोगों के उदाहरण

१. अवन्त्याधिपतेः (अवन्त्याः अधिपते) सन्धि अनियमित है। स्वप्न ५।५
२. विगाह्य उल्काम् (पद्य में सन्धि का अभाव) बाल०
३. गृह्य (पाणिनि क्त्वा) ल्यप् अशुद्ध है। दूतघटो० १।२०
४. मा चिन्त्य (मा के साथ ल्यप्) स्वप्न०[1] पृ० १८
५. परिष्वजति आत्मनेपद—पृ० १४३/१७१
६. मा प्रविशितुम् (तुमुन् प्रत्यय का मा के साथ प्रयोग) स्वप्न० ५६, बाल० ४८, प्रतिज्ञा पृ० ४५

७.	पृच्छसे	आत्मनेपद—प्रतिमा ३।८, पृ० ४०५
८.	उपलप्स्यति	परस्मैपद—पृ० ४६२
९.	गमिष्ये	आत्मनेपद—बाल०
१०.	श्लिष्यते	आत्मनेपद—स्वप्न० पृ० ३
११.	दृश्यते	आत्मनेपद—प्रतिज्ञा
१२.	उत्कण्ठिष्यते उत्कण्ठिष्यति	आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों का प्रयोग—स्वप्न० पृ० ११, १२
१३.	धूमायति	परस्मैपद—पृ० ५५३
१४.	आपृच्छामि	परस्मैपद—स्वप्न० पृ० ११, प्रतिमा पृ० ३१०

१५. मे शापितः (वाक्यारम्भ में 'मे' का प्रयोग) प्रतिमा ६९
१६. जपापुष्पमिव रक्तलोचन (अनियमित समास) प्रतिज्ञा पृ० ९५

१७.	भ्रश्यते	आ० पृ० ५८
१८.	विमुञ्चे	आ० पृ० १६५
१९.	विश्रमिष्ये	आ० पृ० २७५
२०.	यदि दातव्यम्	(कारक विरोध) पंच०

पाणिनि का समय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रंथ (पाणिनिकालीन भारत) में चतुर्थ शती ई० पूर्व माना है तथा उस समय का विस्तृत विवेचन किया है। भास के अपाणिनीय प्रयोग अपवाद के रूप में ही विद्वानों द्वारा स्वीकृत किये गये हैं।

1. यह पृष्ठ-संख्या भास नाटक चक्रम्, पूना (सं० १९५१) की है।

७. भास तथा कात्यायन

कात्यायन वार्तककार हैं तथा यत्र-तत्र पाणिनि के नियमों के सवर्द्धन आदि कार्यों का इन्होने प्रयास किया है। हम भास मे प्रयुक्त उदाहरणों के आधार पर कात्यायन की तुलना करेंगे।

पाणिनि — पृच्छ् धातु को परस्मैपदी कहते हैं।

कात्यायन — आत्मनेपदी (केवल अ, अनु उपसर्गपूर्वक)

पतंजलि — ने उपर्युक्त दोनो नियमों मे संशोधन करके अ, अनु के पश्चात् प्रच्छ् को आत्मनेपदी केवल बड़ो के आदरणीयार्थ मे सीमित कर दिया है।

भास मे हम उपर्युक्त तीनो रूपो को प्राप्त करते है।

पृच्छामि — पच तृतीयाङ्क — पाणिनि के अनुकूल।

आपृच्छे — प्रतिमा — पृ० २७७-२७८ कात्यायन के अनुकूल।

आपृच्छामि — प्रतिमा छठा अङ्क पृ० ३१० पतञ्जलि के उपसंख्यानम् के अनुसार।

पाणिनि — तत्पुरुष में राजन् शब्द से आह तथा सखि में टच् का विधान करते है।

कात्यायन — इस नियम को ऐच्छिक कर देते है। वार्तिक भाष्यादे. के अनुसार, अन्यथा काशीराज्ञी रूप बनेगा।

भास — प्रतिज्ञा में कात्यायन के अनुसार काशी राज्ञी प्रयुक्त करते है। पतञ्जलि भी 'काशी राज्ञी' का ही अनुमोदन करते है। भास पाणिनि के इस नियम की ऐच्छिकता के आधार पर लाभ उठाते है।

८. भास तथा पतञ्जलि

पतञ्जलि के भाष्य में पाणिनि के नियमो की विशदता दर्शाने से विरोध भी ज्ञात होता है। भास के प्रयोग पाणिनि के विरुद्ध होने पर पतञ्जलि के अनुकूल है तथा दूतघटोत्कच मे पाणिनि का विरोध रहते हुए भी भास पतञ्जलि के अनूकूल हैं। भास ने ल्युट् प्रत्यय के स्थान में 'क्त' को नपुंसक में होने में महत्ता दर्शाई है तथा वे 'यत्' प्रत्यय के लिंग-भेद पर विभिन्न मत दर्शाते हैं।

यदि भास की भाषा को हम तीनो मे प्रभावित स्वीकार कर लें, तो पतञ्जलि का समय तो पर्याप्त बाद का है। हमें भास को प्रथम शती के लगभग लाना होगा। किन्तु तथ्य ऐसा नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि भास के समय पाणिनि का व्याकरण पूर्णरूपेण अनुशीलन में नही हुआ था। अतः इन पर पूर्व व्याकरण के प्रभाव के साथ-साथ लौकिक साहित्य मे सृजन की भावना का प्रभाव था। इस कारण भास को पणिनि के बाद शीघ्र ही रखा जा सकता है।

९. जातक तथा भास

सांची, अमरावती और भारत के शिलालेखो में जातक कथाओं के चित्रों का अंकन प्राप्त होता है। भारहुत में कतिपय जातक कथाओं के शीर्षक अंकित है। बुद्ध जन्म की ये कथाएँ बुद्ध धर्म के इतिहास से सम्बन्धित है जो तृतीय शती ई० पू० मे जानी गई है।

भास के वर्णन मे जातक कथाओ मे निम्नांकित समानता मिलती है :

(१) जातक कथाओं मे यक्षिणी[1] का वर्णन है जिसे भास ने भी स्वप्नवासवदत्ता में वर्णित किया है।

(२) जातक कथाओं मे काम्पिल्य[2] नगर का राजा ब्रह्मदत्त था, इस प्रकार की कथा का प्रसंग प्राप्त हुआ है। भास ने भी स्वप्नवासवदत्ता मे इसी प्रकार का वर्णन किया है।

१०. अशोक तथा भास

अशोक के शिलालेखो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रद्योत का राजदूत अपने स्वामी के जामाता उदयन को सम्बोधन में आर्यपुत्र कहता है। भास[3] ने भी स्वप्नवासवदत्ता के छठे अंक में महासेन के कंचुकी द्वारा उदयन को आर्यपुत्र का सम्बोधन प्रयुक्त किया है। अशोक के सिद्धपुर के शिलालेख में आर्यपुत्र राजकुमार के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भास ने अपने बारह नाटकों मे 'महीमेकातपत्राम्' की कामना की है जो भावना ३२७ ई० पू० चन्द्रगुप्त के समय से लेकर कुशनवंश द्वितीय शती ई० पू० तक अनुमानित की जा सकती है पश्चात् मे नही। अत. भास द्वितीय शती पूर्व की भावनाओ से अनुप्राणित है।

११. पौराणिक महाकाव्य तथा भास

रामायण से भास स्वप्नवासवदत्ता में अपना परिचय दर्शाते है। रामायण में लक्ष्मण भरत के छोटे भाई है, किन्तु भास ने बड़ा भाई दर्शाया है।

महाभारत तथा भास में कथावस्तु में अधिक भिन्नता है। पचरात्र मे पाडवो को आधा राज्य दिलवाना और महाभारत जैसी कथा को लुप्त कर देना। अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु का विराट के विरुद्ध कौरवों के साथ लड़ते हुए भीम द्वारा पकड़ा जाना। उपर्युक्त प्रभाव का वर्णन चौथे अध्याय में विस्तार से किया गया है।

---

१. अवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति, सा त्वया दृष्टा भवेत्। —स्वप्न० ५ अंक

२. राजा ब्रह्मदत्तः काम्पिल्यं नाम नगरम्। —स्वप्न० ५ अंक

३. कांचुकीय—जयत्वार्यपुत्रः। —स्वप्न० ६ अंक

१२. छन्दशास्त्र

भास से पूर्व महाकाव्यो में श्लोको के प्रयोग की बहुलता है। इन्होंने १०९२ पद्यों में ४३६ श्लोक जो कि चालीस प्रतिशत की संख्या मे है, प्रयुक्त किए है। पश्चाद्वर्ती साहित्यकारों तथा कालिदास मे इनका प्रयोग अत्यन्त ही न्यून है। अश्वघोष के सूत्रादान में श्लोकों की संख्या-बहुलता से प्राप्त होती है। इस दृष्टि से भी भास रामायण और महाभारत के अनन्तर काल मे ही रखे जा सकते है।

१३. अलंकार साहित्य

अलंकार शास्त्र सर्वत. पूर्व भामह पंचम शती के अन्तमें तथा छठी शती पूर्व में हरीचन्द द्वारा प्रमाणित किये गए है। भामह ने अन्य कवियों (मेधावी, रामशर्मा) के साथ कालिदास का नाम नहीं लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कथावस्तु की आलोचना अपने ग्रंथ काव्यालकार के चतुर्थ अध्याय ८४-८८ श्लोको मे की है। वहाँ (हतोऽनेन) का उद्धरण भास के प्रतिज्ञा नाटक से ही उद्धृत किया है। यह वृहत्कथा मे प्राप्त नहीं होता।

१४. कालिदास तथा भास

कविकुलगुरु कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना मे भास की ख्याति की स्वीकृति आदि नाटककार के रूप में की है। अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि कालिदास भास से प्रभावित थे। कालिदास का समय यद्यपि अभी अनिर्णीत है तथापि प्रथम शती के समीप आने से भास इनसे पूर्ववर्ती निश्चित ही है।

अश्वघोष तथा भास

बौद्ध-कवि अश्वघोष[1] का समय कनिष्क का राज्य काल निश्चित है। इन्होंने शारीपुत्र प्रकरण, बुद्धचरित आदि ग्रंथ लिखे हैं। इन पर भी भास[2] की छाया पड़ी है। भास ने प्रतिज्ञा के प्रथम अंक में जो भाव श्लोक में प्रयुक्त किया है वही अश्वघोष के बुद्धचरित में उसी रूप में लभ्य होता है। भास के भावों मे अश्वघोष की अपेक्षा अधिक प्रभाव है। अतः भास इनसे पूर्ववर्ती है। इस विवेचन में मैने डा० बैनर्जी के भावों का आश्रय लिया है।

१५. ऐतिहासिकों के मत का विवेचन

डा० विटरनित्ज के विचार में भास की भाषा तथा शैली अश्वघोष की अपेक्षा

---

१. काष्ठं हि मथ्नन् लभते हुताशं, भूमि खनन् विन्दति चापि तोयम्।
निर्बन्धिनः किंचन नास्त्यसाध्यं न्याय्येन युक्तं च कृतं च सर्वम्॥ —बु० च० १३।६०

२. काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्, भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां, मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥ —प्रति० १।१८

ालिदास के अधिक निकट है। अश्वघोष को वे द्वितीय शती ए० डी० मे निश्चित करते । भास के इन नाटको की रचना को तृतीय शती ए० डी० मे मानते है। डा० कीथ भी ० डी० तृतीय ही भास का समय मानते है।

स्टेन कोनो भास को ईसा की द्वितीय शती ए० डी० मे रखते है। किन्तु विटर-त्ज ने इसका समर्थन नही किया है।

एस० एन० दास गुप्ता कालिदास से पूर्व की रचना का ही समर्थन अपने संस्कृत ाहित्य के इतिहास' में करते है। इन्होने भास के काल पर अपना कोई स्वतन्त्र मत नही द्या है। म० म० गणपति शास्त्री तथा अन्य पाश्चात्य विपश्चितो के मत पर विचार कया है। ये भाषा और शैली के आधार पर भास को अश्वघोष तथा कालिदास के मध्य ाते है।

प्रो० बलदेव उपाध्याय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास मे भास पर विवेचन न्य ग्रंथो की अपेक्षा अधिक किया है। उन्होने भास के काल के विषय मे विद्वानो के वचारो को विवादास्पद कहा है। पाश्चात्य विद्वानो के मत की आलोचना भी की है।

डॉ० बर्नार्ट इस नाटक-चक्र के रचयिता कल्पित भास को सप्तमी शताब्दी का रलीय कवि कहते है। सप्तमी शताब्दी की रचना मे उन्होने भरत वाक्य के 'राजसिह ास्तु न' के आधार पर राजसिह को केरल देश का सातवी सदी का राजा माना है था उस समय लिखे गये महेन्द्रवीर विक्रम विरचित मत-विलास-प्रहसन से इन नाटको ी भाषा तथा पारिभाषिक शब्दो की समानता दर्शाई है। किन्तु यह समानता नगण्य ही . अत इनका समय भास का समय कदापि नहीं हो सकता। परन्तु भामह द्वारा प्रशसित ोना भास की प्राचीनता का द्योतक है और राजसिह के व्यक्तिवाचक मानने मे कोई इतर प्रमाण नही है। अत विद्वज्जन इस मत मे आस्था नही रखते है।

ास की रचनाओं का अंतरंग परीक्षण

नाटको का आधार रामायण, महाभारत तथा लोक-कथाएँ है। स्वप्न तथा तिज्ञा उदयन सम्बन्धी घटनाओ पर आधारित है। उदयन तथा दर्शक छठी शती ई० ० के ऐतिहासिक व्यक्ति है। रामायण तथा महाभारत का समय भी छठी शती के लग-ग है। अत इन नाटकों की रचना की उपरितन अवधि छठी शती पूर्व है। प्रतिमा ाटक मे वर्णित विधाओ का समय छठी शती ई० पूर्व से भी प्राचीनतर है। मानवीय र्मशास्त्र वर्तमान मनुस्मृति का मूल रूप, धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण ० पू० छठी शती से भी प्राचीनतर है। बार्हस्पत्य धर्मशास्त्र महाभारत मे निर्दिष्ट है ौर कौटिल्य के द्वारा अर्थशास्त्र मे बहुश स्वीकृत है। मेधातिथि का न्यायशास्त्र मेधा-तिथि रचित मनुस्मृति भाष्य नही है अपितु गौतम रचित प्राचीन न्यायशास्त्र है। ाहेश्वर योग-शास्त्र पातञ्जल योग-शास्त्र से प्राचीन शैव सम्प्रदाय के अनुसार कोई प्राचीन म्प्रदाय है। पाशुपत-योग पातञ्जल-योग से अनेक सिद्धान्तो में पार्थक्य रखने वाला एक

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर —एस० एन० दास गुप्ता पृ० ७१२

प्राचीन योग-शास्त्र है जिसका उल्लेख पुराणो में बहुश किया गया है। प्राचेतस श्राद्ध कल्प का अभी तक कोई परिचय प्राप्त नही हुआ।

अविमारक तथा स्वप्न में वर्णित राजवश प्राचीन है जो नन्दवंश तथा मौर्यवंश के समकालीन प्रतीत होते है। राजगृह का राजधानी के रूप मे तथा पाटलिपुत्र का एक सामान्य नगर के रूप में उल्लेख यह सूचित करता है कि नाटककार विक्रम पूर्व पाँचवीं शती से बहुत पहले के नही है।

सामाजिक दशाएँ जातक कथाओ तथा कौटिल्य के साथ सम्पर्क दर्शाती हैं। प्रतिमा मे उल्लिखित मन्दिरो के घेरे मे बालू डालने की प्रथा आपस्तम्ब पाँचवी शती ई० पू० के ग्रथो मे लभ्य है। देवकुल की स्थापना जिसमे मृत राजाओं की प्रस्तर मूर्तियाँ रखी जाती थी (जिसका उल्लेख प्रतिमा नाटक मे है) शैशुनाग राजाओं के युग की याद दिलाती है। मथुरा मे शैशुनाग राजाओ की पुरुषाकार मूर्तियाँ खोज मे मिली हैं। भरत वाक्य में उल्लिखित 'राजसिह' मे किसी निश्चित राजा का बोध नही हुआ है। हिमालय से विध्याचल तक तथा समुद्र पर राज्य करने वाले राजा का उल्लेख सम्भवत नन्दवशीय नरेश की स्मृति मे है। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर प्रो० बलदेव उपा० ने अपने इतिहास में भास का समय चतुर्थ तथा पाँचवी शती वि० पू० के बीच निर्दिष्ट किया है।

भास की रचनाओं का बहिरंग परीक्षण

(क) बाण ने ७वी शती मे भासनाटकचक्र का उल्लेख, वामन ने ८वी शती में काव्यालंकार सूत्रवृत्ति मे व्याजोक्ति के उदाहरण मे पद्य उद्धृत किया है (शरच्चन्द्रांशु-स्वप्न ४।३, वामन ने चारु १।२ तथा प्रतिज्ञा ४।२ पद्यो को अपने ग्रथ मे उद्धृत किया है।

(ख) शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त के आधार पर है। दोनो की समानता आश्चर्यजनक तथा व्यापक है।

(ग) अश्वघोष (द्वितीय शती ए० डी०) ने बुद्धचरित के श्लोक १३।६० से प्रतिज्ञा प्रथमांक मे १।१८ मे शब्दशः तथा अर्थत. साम्यता दर्शाई है।

(घ) कौटिल्यार्थशास्त्र (१०।३ में २ श्लोक 'अपीह श्लोकौं') कहकर उद्धृत किया है, दूसरा श्लोक 'नव शराव' प्रतिज्ञा ४।२ मे भी प्राप्त है जिसमें शूरो को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया गया है। कौटिल्य भास से प्रभावित है और कौटिल्य का समय ई० पू० चौथी शती के लगभग है। अत भास इनके ज्येष्ठ समकालीन माने जा सकते है।

१६. आलोचकों के मत का सार

भास के आलोचको की सख्या पर्याप्त है किन्तु ए० डी० पुशालकर ने अपने ग्रथ भास ए स्टडी' में पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके अध्ययन का निष्कर्ष है कि भास छठी शती पूर्व के नहीं है। इसका निर्णय कथावस्तु के मूल स्रोतो के आधार पर किया है। उदयन.

दर्शक तथा प्रद्योत का समय ऐतिहासिक व्यक्ति होने से छठी शती के बाद नही हो सकता। प्रतिज्ञा मे वर्णित उतर भारत के राजसीय परिवारो के वर्णन से निश्चित होता है कि यह मौर्यकालीन वर्णन है। भास इस वर्णन मे नन्द और चन्द्रगुप्त राजाओ के काल की दशाओ का वर्णन करते है। यह वर्णन इसके पश्चात् का नही हो सकता, क्योंकि इसके अनन्तर काल मे चन्द्रगुप्त द्वारा छोटे-छोटे जनपदो को अपने राज्य मे मिलाने का प्रमाण मिलता है। कवि ने मगध की राजधानी राजगृह से अपना परिचय दर्शाया है जो दर्शक के समय का प्रमाणित होता है। यह राजधानी बाद मे पाटलिपुत्र मे परिवर्तित हो गई।

चारुदत्त मे अकित सामाजिक घटनाओ से पुशाल्कर भास को चौथी, पाँचवी शताब्दी ई० पू० का मानते है। नागवन, वेणुवन, राजगृह तथा पाटलिपुत्र से सम्बन्धित विषय बुद्ध के समय मे महत्त्व मे आए। अत (शाक्य श्रमणक) बुद्ध काल के बाद कवि के होने का पोषण प्राप्त होता है। पुशाल्कर इन्हे महापद्मनन्द के समय का मानते है।

वी० एस० सुखथन्कर[1] ने (स्टडीज इन भास) मे भास के काल पर उसके विभिन्न प्रकार के विवेचन के अनन्तर कोई निश्चित समय निर्धारित नही किया। अपितु प्राकृत विवेचन के आधार पर भास की प्राकृत को अश्वघोष तथा कालिदास के मध्य माना है। इससे किसी प्रकार के निश्चित काल का अनुमान नही हो सकता क्योंकि भास की भाषा मे विभिन्न प्रकार के प्राकृत रूपों की उपलब्धि होती है। इसका विवेचन प्राकृत वाले अध्याय मे किया गया है।

सी० आर० देवधर ने अपने निबन्ध 'प्लेज एस्क्राइब्ड टू भास' में समय तथा प्रामाणिकता पर अधिक विवेचन किया है। ये भास की अतीव प्राचीनता मे आस्था नही रखते है।

डॉ० मैक्सलिडन भरत नाट्य शास्त्र से विभिन्नता के कारण भास की प्राचीनता का पोषण करते है।

प्रो० सिल्वा लेवी अपने लेख (भास स्टडीअन इन कनेक्शन विद दी क्वेश्चन आफ भास टेक्नीक) मे कतिपय सावधानियो के साथ भरत का अनुगमन पाने से पश्चात् कालीन बतलाते है।

डा० ए० बेनर्जी ने अपने लेख (भास का समय तथा मागधी) में इस विषय पर पर्याप्त विवेचन किया है तथा अन्त में द्वितीय शती ए० डी० का ही भास का समय निश्चित किया है। इन्होने कतिपय विद्वानो यथा वात्स्यायन, भरत तथा मनु एवं पाणिनि आदि से तुलना करने का सफल प्रयास किया है।

म० म० टी० गणपति शास्त्री ने अपने गम्भीर अध्ययन द्वारा कवि की अपूर्व प्रतिभा का अन्तरंग तथा वहिरंग परीक्षण करके उन्हें छठी शती पूर्व मे रखने का प्रयास किया है। और उन्होने इस सिद्धात के प्रतिपादन मे पर्याप्त सामग्री को प्रस्तुत किया है

[1] सुखथन्कर मेमोरियल, २१ जनवरी, सन् १९४५ पूना सस्करण

जो कि उनके द्वारा प्रकाशित ग्रंथों में लभ्य होती है।

प्रो० ए० एस० पी० अय्यर ने अपने ग्रथ 'भास' में इस शीर्षक पर कोई पृथक् विवेचन नही किया है किन्तु वे इन्हें मौर्यकाल में निश्चित रूप से मानते है। यह मत समीचीन ही प्रतीत होना है।

१७. अपना मत

किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ऐतिहासिकों की शरण आवश्यक होगी। भास के काल का निर्णय करने से पूर्व हमें तात्कालिक भारतीय इतिहास पर गहन विचार करना होगा। यह सर्वमान्य है कि 'भास' गौतम बुद्ध के पश्चात् हुए। बौद्धकालीन इतिहास पर विहगम दृष्टिपात करना आवश्यक है।

महात्मा बुद्ध के जन्म के पूर्व भारत में सोलह[1] जनपद थे जो राज्य महाजनपद नाम से प्रसिद्ध थे। इनके नाम काशी, कौशल, अग, मगध, वृजि, मल्ल, चेदिवत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गांधार और कम्बोज हैं। बौद्ध धर्म पुस्तक अगुत्तरनिकाय मे भी इन राज्यों की सूची दी गई है। उसमे बंगाल तथा गोदावरी के दक्षिण के किसी राज्य का उल्लेख नही है। इससे निश्चित है कि पूर्व तथा दक्षिण के राज्य आर्य राज्य नहीं माने जाते थे।

बुद्ध का निर्वाण ४८३ ई० पू० कसिया में ८० वर्ष की आयु में होने का वर्णन प्राप्त होता है। इस समय कौशल, अवन्ति, वत्स तथा मगध—चार बड़े राज्य भारत में रह गये थे। शेष परस्पर विवाद के फलस्वरूप बड़े राज्यों मे मिल गये थे।

कौशल—यह छोटा राज्य था। इसमें इक्ष्वाकुवंश के राजा थे। ईसा से पूर्व छठी शती में इस राज्य में शाक्यवंश का कपिलवस्तु का राज्य तथा बनारस का राज्य मिल गया था। काशी राज्य के मिलने से कौशल का मगध से सीधा सम्बन्ध हो गया था। महाकौशल का पुत्र प्रसेनजित् महात्मा बुद्ध का मित्र तथा बौद्ध धर्म का अभिभावक था। काशी के राज्य हेतु उसकी बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु से शत्रुता हो गई किन्तु युद्ध में हारने के कारण वह काशी का राज्य न पा सका। उसके विरुद्ध प्रसेनजित् का पुत्र विरुद्धक गद्दी पर बैठा। बाद मे यह राज्य भी मगध में मिला लिया गया।

अवन्ति—महात्मा बुद्ध के समय अवन्ति (मालवा) में प्रद्योत महासेन राज्य करता था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। वह शक्तिशाली तथा क्रोधी राजा के नाम से प्रसिद्ध था। उसने अपनी पुत्री का विवाह वत्स के राजा उदयन के साथ किया और उसका वश ई० पू० ४०० तक रहा जिसका नाश मगध के शिशुनाग ने किया।

---

१. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया, प्रथम भाग १९५१, पृ० ५५,
(काली कंकर दत्त एम० ए०, पी-एच० डा०)

हिस्ट्री आफ इण्डिया, आर० सी० मजूमदार
भारतीय इतिहास, राय तथा चौधरी

वत्स—इलाहाबाद के समीप वत्स में पाण्डवों के वंशज राज्य करते थे। उनकी राजधानी इलाहाबाद के पास कौशाम्बी थी। इस वंश का राजा महात्मा बुद्ध के समय उदयन था जो भारतीय साहित्य की कथाओं मे वर्णित है। मृगया जाते समय उसे अवन्ति के राजा प्रद्योत ने पकड़ लिया और उससे वासवदत्ता का विवाह कर दिया। बाद मे वत्स मगध के शासकों के हाथ में आया। बिम्बसार ५४३ ईसा से पूर्व में अल्पायु मे ही मगधाधीश हुआ और उसने अपनी राजधानी गिरिव्रज मे अंग राज्य बनाई। वह बुद्ध तथा जैन का मित्र था।

अजातशत्रु—उसे सिंहासन से उतारकर अजातशत्रु सिंहासनारूढ हुआ। उसके उत्तराधिकारी उदयन ने (ईसा ४५६ वर्ष पूर्व—४१३ वर्ष पूर्व) मे अपनी राजधानी गिरिव्रज से बदलकर पाटलिपुत्र बना ली। गंगा सोन के संगम पर स्थित इस नगर की प्राचीर भी उसी ने बनवाई थी। बाद मे यह नगर पाटलिपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाकवि कालिदास को विक्रमादित्य उज्जैन का राजकवि स्वीकार किया है। कालिदास ने (अग्निमित्र सुंग) जो कि द्वितीय शती पूर्व का राजा था, उसी के विषय मे मालविकाग्निमित्र नाटक की रचना की। कुमारसम्भव मे कुमार की उत्पत्ति मे कुमार गुप्त के जन्म का गुप्त संकेत प्रतीत होता है।

बाण सप्तम शती ए० डी० ने भास की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया है। कालिदास ने भी सौमिल्ल (शूद्रक कथा के लेखक तथा मणिप्रभा के लेखक कविपुत्र) से पूर्व भास का वर्णन किया है।

ए० डी० पुशाल्कर ने भास को महापद्मनन्द के समय का तथा प्रो० अय्यर ने चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का बतलाया है। पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के पश्चात् दर्शक सिंहासनारूढ हुआ तथा उसके अनन्तर उसका पुत्र उदयन बैठा। दर्शक का नाम भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता मे आया है। उसे कौशाम्बी के राजा उदयन को ही अजातशत्रु का पुत्र तथा उत्तराधिकारी बतलाते है। बिम्बसार की वंशावली मे नागदशक का नाम आया है, यही पुराणों का दर्शक होगा।

राज्य की सीमा के वर्णन प्रसंग मे इतिहास के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि बिन्दुसार के समय यह राज्य सीमा मैसूर मे ब्रह्मगिरि तथा मद्रास राज्य में कांजीपुरम् तक पहुँच गई थी और सीमावर्ती क्षेत्र अशोक के समय सम्बद्ध रहे और कलिंग पुन: जीता गया। अत: भास ने जो अपनी रचनाओं मे—'हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्···एकातपत्राम्' का मुहुर्मुहुः प्रयोग किया है वह इसी काल की राज्य-सीमा को दर्शाता है। ऐतरेय ब्राह्मण मे आर्यों के राज्य की सीमा उत्तर मे उत्तर कुरु तथा दक्षिण मे जमुना और चम्बल तक वर्णित है।

मेरी दृष्टि मे निम्नांकित प्रमाणों के आधार पर भास का कार्यकाल निश्चित रूपेण पुरु के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक काल ही ठीक ठहरता है।

(क) राज्य की सीमा[1] जिसका मानचित्र भारत में सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व की राजनैतिक दशा को दर्शाता है, वह समय ३२७ ई० पू० है। भास की रचनाओं मे भारत के मानचित्र मे उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण मे विंध्याचल का ही वर्णन है। विभिन्न देशो से आये हुए राजदूतों के प्रसंग मे देशो के नाम प्रतिज्ञा[2] मे परिगणित है।

(ख) प्रतिज्ञा यौगन्धरायण मे यौगन्धरायण[3] का भरत रोहक के पूछने पर कि राजशास्त्र क्या कहता है ? यौगन्धरायण का उत्तर 'वध' मिलना है जो कि सिकन्दर तथा पुरु के युद्धोपरांत वार्तालाप का स्पष्ट संकेत है।

(ग) चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए ही राजसिंह शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि चन्द्रगुप्त बिंदुसार तथा अशोक के वंशज अपने लिए राजसिंह का प्रयोग करते थे। अशोक ने भी सिंहत्रयमुखी राजकीय मुद्रांकित स्तम्भों का निर्माण किया है। आज भी भारतीय गणतन्त्र का राजकीय चिह्न यही है। यह चिह्न सारनाथ स्तूप मे दर्शनीय है। यद्यपि यह चिह्न शाक्यसिंह गौतम की ओर भी संकेत करता है जैसा कि प्रो० अय्यर ने अपने ग्रंथ 'भास' में माना है।

(घ) भास ने अपनी रचनाओ मे नाटक के नायक की उपमा चन्द्र[4] से दी है। अभिषेक नाटक के आरम्भिक श्लोक मे सूत्रधार द्वारा 'निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता' का विशेषण नन्दवंश विनाशक चन्द्रगुप्त के लिए उपयुक्त प्रतीत होता है।

(ङ) भास ने यत्र-तत्र 'गुप्त'[5] शब्द का प्रयोग भी किया है जो इनकी रचना में गुप्त राजा की ओर संकेत करता है। संस्कृत के 'गोप्ता' शब्द जिसका कि अर्थ रक्षक होता है, उसी का यह विकृत रूप है। गुप्त शब्द निगूहन अर्थ में भी आता है।

---

१. हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्'''स्वप्न०, पृ० ५५
त्यक्त्वा सविन्ध्यंवनम्'''प्रतिज्ञा ३।५

२. अश्मकसम्बद्धो मागधः काशिराजो वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः । —प्रतिज्ञा, पृ० ७७

३. भरतरोहक—समरावजितेषु किमाह शास्त्रम् ।
यौगन्धरायण—वधः । —प्रतिज्ञा, पृ० १०६

४. नवशशिनमिवार्य पश्यतो मे न तृप्तिः । —प्रतिमा ७।१२
अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वा चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् । —प्रतिमा ७।१४
विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्रः । —अभि० ६।३२

५. सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता ।
किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।। —अभिषेक १।७
मयि च नीति गुप्ते । —अवि०, पृ० ११२
एकचक्राभिगुप्ताम् । —अवि०, पृ० १
परिगुप्तानि भवन्त्युद्यानानि । —अवि०, पृ० ११०
तृणमपि पितृभुक्तं वीर्यगुप्ते स्वराज्ये । —दूतवाक्य १।३६

(च) राजा के बौद्ध धर्म मे दीक्षित[1] होने का इतिहास मे कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता, किन्तु यह अवश्य प्रतीत होता है कि राजा ने धर्म की दीक्षा ली हो और उस अवसर पर विशेष समारोह का आयोजन किया गया हो। इसी कारण भास ने अपनी रचना में दीक्षित शब्द का प्रयोग किया है।

भास ने शत्रु को चन्द्रमा से ग्रसित होने की उपमा[2] कई स्थलो पर दी है। इससे हमें यही अनुमान हो सकता है कि सम्भवतः राक्षस घनानन्द के मंत्री द्वारा चन्द्रगुप्त का पराजित होना तथा उसे निगलना या विनष्ट करना आदि की कल्पना करना उचित ही है। कामन्दक ने चन्द्रगुप्त को मनुष्यो मे चन्द्र के समान बतलाया है तथा हिन्दू जाति भी राहु-ग्रह को क्रूरग्रह तथा राक्षस के समान पीडाकारी अवगत करती है। इससे भी इसी काल की रचना होना पुष्ट होता है।

प्रो० अय्यर ने अपनी रचना 'भास' मे यौगन्धरायण को ही चाणक्य के रूप में अंकित किया हुआ निर्दिष्ट किया है कि यौगन्धरायण[3] की प्रतिज्ञा भी चाणक्य की ही प्रतिज्ञा है जो कि नन्दवंश के विनाश तथा राज्य-प्राप्ति हेतु की गई हो। मै भी इसी विचार से सहमत हूँ।

प्रतिज्ञा मे 'श्रमणक'[4] का प्रयोग जीव सिद्धि के रूप में है, जिसने चाणक्य को पाटलि-पुत्र के ग्रहण मे सहायता की थी। चन्द्रगुप्त का नन्द वंश की राजकुमारी दुर्धरा के साथ विवाह सम्भवतः मगध राजकुमारी पद्मावती के विवाह का संकेत देता है जो कि इसी प्रकार के राजनैतिक कारणो के आधार पर हुआ हो।

कवि ने 'रणशिरसि',[5] 'समरशिरसि', 'रणातिथि' का इतने अधिक स्थलो पर प्रयोग किया है कि यह सुनिश्चित है कि देश की नैय्या विदेशी आक्रमण से प्रति क्षण आक्रान्त थी। इसी कारण कवि ने परचक्रैरनाक्रान्ताम्' पर चक्र प्रशाम्यतु, 'एकातपत्राकाम्' का भरत वाक्य मे बहुलता से प्रयोग किया है।

---

१. नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव। —पंच १।३
संयुगाध्वरदीक्षितम्। —ऊरु० १।४६
दर्पाहृतं दीक्षितैः। ऊरु० १।६३

२. द्रष्टव्यः शशाङ्कोयं राहोर्वदनमण्डले।—बाल० १।११
यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।—प्रतिज्ञा १।१६
उदयशिखरिमध्ये पूर्णविम्बं शशांकं, ग्रहमिव भगणेशं।—अभि० ६।३
राहुवक्त्रान्तर्गता चन्द्रलेखेव शोभते।—दूत वाक्य १।७

३. मोचयामि न राजानम् नास्मि यौगन्धरायणः। प्रतिज्ञा १।१६
सुभद्रामिव गाण्डीवी... नास्मि यौगन्धरायणः।—प्रतिज्ञा ३।८
यदि तां चैव तं चैव ...नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः।—प्र० ३।९

४. उन्मत्तसदृशो वेषो धारितस्तेनसाधुना।
मोचयिष्यति राजानं मां च प्रच्छादयिष्यति॥—प्रतिज्ञा १।१७

५ अवि० ४।४, अभि० ६।११, पंच २।५, रणातिथि पंच २।१३, दू० घ० १।४३

भास के नाटक प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में प्रद्योत महासेन 'वत्सराज' के गृहीत होने पर बड़े गर्व से 'अद्यास्मि महासेनः' कहता है। यह भी चन्द्रगुप्त का नन्द वंश के राजाओं को परास्त करने के उपरान्त का कथन तथा बालचरित नाटक में कंस की मृत्यु के अनन्तर वसुदेव की घोषणोपरान्त सभी वृष्णि राज्य[1] के प्रतिष्ठित होने का उच्चारण करते है। यह चन्द्रगुप्त की राज्योपलब्धि के अनन्तर की गई घोषणा के समान ही है।

भारत के आरकियालौजिकल विभाग के डाइरेक्टर डा० वी० मी० छावरा ने महाभारत अनुशासन पर्व में वर्णित 'विष्णु'[2] सहस्र नाम की मुद्रा को गुप्तकालीन सिक्कों पर अंकित होना बतलाया है। भास के बालचरित नाटक में विष्णु[3] के प्रभाव को दर्शाया है जिसमें पंक्ति सादृश्य मिलता है।

निष्कर्ष—भास के ग्रन्थों में वर्णित सीमा के आधार पर हम पुरु के युद्ध के समय के भारत के मानचित्र को प्रस्तुत करते है तथा पूर्णतया दृष्टिपात करने से हिमालय तथा विन्ध्याचल सीमावर्ती क्षेत्र को ही भारत का राज्य अनुमानित करते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि उस समय भारत की सीमा भास की वर्णित सीमाओ के समान है। सिकन्दर के आक्रमण के समय का भारत का मानचित्र जो ऐतिहासिकों द्वारा सम्मानित रूप में प्रयुक्त किया गया है, उसी को यहाँ उद्धृत किया जाता है। 'रणशिरसि' के प्रयोग से सिकन्दर का आक्रमण तथा पुरु के उत्तर से प्रतिज्ञा मे यौगन्धरायण का उत्तर 'वध' ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर इसी काल का प्रमाणित होता है। भास को हम इसी समय का मानने के लिए बाध्य है। अत. भास का समय मेरी दृष्टि में ३२७ ई० पू० के समीप ही निश्चित किया जा सकता है।

भारत का मानचित्र

समय—सिकन्दर का आक्रमण काल—३२७ ई० पू०।

सीमा—उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण मे विन्ध्याचल।

भास के वर्णन में साम्य—इमा···हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।

—स्वप्न० तथा बाल भरतवाक्य

भास का पर्वतों का नाम निर्देश—हिमालय, विन्ध्याचल, प्रमुख तथा गन्धमादन, दारु पर्वतक साधारण, स्थिति अनिश्चित।

भास द्वारा प्रयुक्त नदियों[4] के नाम—त्रिपथगा, गंगा, यमुना और नर्मदा।

१. सर्वे-प्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम्।—बाल० ५।१६ के समीप

२. रामकथा का विकास, कामिल बुल्के

३. नन्दक—गच्छामि स्मृतिमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना। बाल० १।२६
यस्य स्मरणमात्रेण···विष्णवे प्रभविष्णवे।—विष्णु स० ना० १

४. कंचु०—तीर्णा चापि वलैर्नदी त्रिपथगा।—स्वप्न० ५।१२
शकुनि—सम्यगाह गंगोपस्पर्शनाद्।—पंच० पृ० ३७८
वसुदेव—अये इयं भगवती यमुना—बाल० पृ० ५१६
तेन०— नर्मदातीरे। स्वप्न पृ० ४५। वालुका नर्मदां तीर्त्वा—प्रति० पृ० ६१

५०० ई० पू० का

भारत

कपिशा
कम्बोज
गान्धार
तक्षशिला
वितस्ता नदी
असिक्नी नदी
ऐरावती नदी
शतद्रु नदी
सिन्धु नदी
कुरु
इन्द्रप्रस्थ
पाञ्चाल
श्रावस्ती
मल्ल
कपिलवस्तु
मत्स्य
शूरसेन
कोशल
विदेह
वैशाली
पाटलिपुत्र
चम्पा
चर्मण्वती नदी
कौशाम्बी
वत्स
काशी
अवन्ति
चेदि
अंग
राजगृह
मगध
उज्जैन
विंध्याचल
नर्मदा नदी
बंग
ताप्ती नदी
महानदी
भोज
विदर्भ
मूलक
अश्मक
गोदावरी नदी
दक्षिणापथ
कलिंग
आन्ध्र
कृष्णा नदी

भारतीय ऐतिहासिक एटलस सी० कॉलिन् डेविस,
१९४९ संस्करण

१—(ग) भास की रचनाएँ और उनकी प्रामाणिकता

भास की रचनाएँ—संस्कृत वाङ्मय में महान् नाटककार एवं महाकवि भास का नाम आज से ४९ वर्ष पूर्व एक समस्या के रूप में था।[1] अन्य कवि तथा नाटककार, सूक्तिकार, यथा कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर, जयदेव, दण्डी, आदि संस्कृत कवियों ने भास की प्रशंसा की थी। किन्तु भास की कोई रचना साहित्य जगत् को उपलब्ध न थी। सन् १९१२-१३ में महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् से भास के नाम से कतिपय नाटकों को प्रकाशित किया जो संकलन भासनाटकचक्रम् नाम से सुविख्यात है। इसमें भास के तेरह नाटकों का संग्रह है।

इन नाटकों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में रामायण, महाभारत व पौराणिक महाकाव्य से सम्बन्धित कथा-प्रसंगों का प्रयोग है, द्वितीय भाग में बृहत्कथा तथा अन्य प्रचलित लोक-कथाओं को आधार माना गया है।

नाटकों के नाम निम्नांकित हैं—

नाटक	आधार
१. प्रतिमा नाटक २. अभिषेक नाटक	रामायण कथा से सम्बन्धित
३. पंचरात्रम् ४. दूतवाक्यम् ५. मध्यमव्यायोग ६. दूतघटोत्कचम् ७. कर्णभारम् ८. उरुभंगम् ९. बालचरितम्	महाभारत की कथाओं से सम्बन्धित
१०. स्वप्नवासवदत्तम् ११. प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् १२. अविमारकम् १३. चारुदत्तम्	गुणाढ्य की बृहत्कथा की कथाओं पर आधारित

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त भी 'भास' ने रचनाएँ लिखी हैं। विद्वानों की ऐसी धारणा है जिसका आधार उनका नाट्यशास्त्र का विशेष ज्ञान है, उनमें नाटकों की संख्या यद्यपि अधिक नहीं है तथापि भास ने रूपक के अधिक भेदों पर रचना लिखी है। इनकी नाटकीय कला की परिपक्वता इस निर्णय की पुष्टि करती है कि इन्होंने नाट्यशास्त्र की रचना भी की होगी। नाटकीय कला में निष्णात होने में इनके नाटकों की अभिनेयता ही प्रमाण है। आज के इस युग में जब प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा सुलभ है और नाटकीय रंगमंच का विकास उत्कर्ष पर आसीन है तब भी भास रचित नाटकों जैसे एकांकी नाटकों

१. केवल स्वप्नवासवदत्ता नाटक का विवरण प्राप्त होता था। १९१० में आनन्दाल्वर (मैसूर) ने इस नाटकचक्र की खोज की।

का संस्कृत वाङ्मय में पूर्णतया अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

नाटकीय कला की सयोजकता ही नही, अपितु भाषा पर भी भास का असाधारण अधिकार था जिससे सामान्य प्रचलित सदुक्तियो द्वारा जनमनरंजन ही नही, काव्यप्रकाश-कार मम्मट का 'काव्य यशसे व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये' तो सिद्ध हुआ ही भले ही अर्थकृते न हुआ हो। अर्थकृते वर्तमानयुगीन उपयोगिता है, युग की देन है। उस समय तो वाङ्मय की समृद्धि तथा स्वमन्देश प्रसारण ही लक्ष्य रहा होगा ऐसी अनुमिति प्रतीत होती है।

भास नाटककार ही नहीं थे, अपितु स्वयं अभिनेता भी थे। यह इनकी सामयिक संघटना अनुभूति, स्फुरण तथा कार्य तत्परता एव अवसरानुकूलता, जोकि इनके नाटकों में तल्लीन होने से प्राप्त होती है, प्रमाणित हो जाता है। मेरी यह दृढ धारणा है कि अनुसन्धान की प्राप्ति भविष्य मे यह प्रमाणित करेगी कि भास नाट्यशास्त्र के प्रणेता ही न थे, अपितु एक स्वतत्र परम्परा के उद्भावक भी थे। इनके ग्रन्थो मे उनके व्यक्तित्व की छाप पृथक् ही है। भरत नाट्यशास्त्र परम्परा की पूर्ववर्ती इनकी परम्परा रही होगी। कुछ भिन्नता अवश्य प्राप्त होती है क्योकि महाकवि कालिदास ने भरत के नाट्यशास्त्र की परम्परा का ही पूर्णतया निर्वहण किया है। प्रश्न हो सकता है कि जब कालिदास भास से प्रभावित थे तो उन्होने इनकी परम्परा को क्यो नहीं अपनाया? किन्तु इसमें कवि की स्वतत्र प्रवृत्ति और इच्छा रही होगी। इन दोनो कवियो के निवास स्थान अभी अनिर्णीत हैं किन्तु दोनो ने अपनी रचनाओ में उज्जयिनी से विशेष रति प्रदर्शित की है। अत हो सकता है कि कवि की उज्जयिनी से निकटता हो और एक स्थलीय होने से निन्दा स्तुति की भावना मे अथवा कविकुलगुरु कालिदास ने अपनी प्रतिभा से भरत की परम्परा को अधिक समीचीन आँका हो। यह तो सुनिश्चित ही है कि कालिदास भास से प्रभावित थे, अन्यथा मालविकाग्निमित्र की भूमिका में भास सौमिल्ल आदि उक्ति न कहते। भास अथवा किसी भी कवि, नाटककार की ख्याति में पचास से सौ वर्ष तक का समय अवश्य लग सकता है। इस प्रकार भास कालिदास से पूर्व ही हुए है। इनके समय में भास की रचनाओं का खूब प्रचार था। कालिदास ने उन रचनाओं में समानता होते हुए भी प्रारम्भिक कालीन अप्रौढता, अपरिपक्वता तथा वैधानिक अपूर्णता के दर्शन किए हो। यह स्पष्ट है कि भाषा तथा नाटकीय कला की प्रौढ़ता की पूर्णता के जो मनोरम दर्शन हम कालिदास में पाते हैं भास मे उसका प्रारम्भिक रूप ही है। किन्तु वह भी बाल शशि की भाँति 'प्रथम दिवस चन्द्र सर्वलोकैकवन्द्य.' के अनुसार वन्दनीय है और संस्कृत वाङ्मय भास के महान् ऋण से कदापि उऋण नही हो सकता है।

महान् नाटककार भास किसी राजा के अमात्य अवश्य रहे हे यह भी इनकी रचनाओ की अन्तरात्मा से नि:सृत भावनाओं के प्रस्फुटित प्रबल प्रवेगों की निर्झरिणी के निमज्जन से स्पष्ट हो जाता है। यथा—अविमारक मे 'अमात्या. नाम विषमशीला: कुन्ती-भोजस्य' से प्रमाणित हो जाता है। इस मन्त्रित्व के समर्थन में अग्रिम अध्याय मे विशेष वर्णन किया गया है। रचनाओ के भरत वाक्य मे नृसिह उपाधि से विभूषित किसी राजा

के यहाँ मंत्री होने का आभास मिलता है कि किन्हीं कारणो से मंत्रित्व पद से पृथक् हुए हो और इन्हें देश निकाला दिया गया हो। वस्तुतः पाठक इस विवेचना पर आरम्भ में भले ही टीका-टिप्पणी करे, परन्तु रचनाओ के अवगाहन से तथा कवि हृदय के अध्ययन की मार्मिक अनुभूति से वे इसका अनुमोदन ही करेंगे। मन्त्रित्व का कठोर उत्तरदायित्वपूर्ण निर्वाह निजी सुखो को तिलाजलि देकर राज्यभक्ति में अपने को लगाना इनके व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत जीवन की भाँकी प्रस्तुत करता है।

मन्त्रिपद पर कार्य करने की क्षमता तथा अनुभव की सार्थकता की पुष्टि उनकी रचनाओं में सुलभ है। किसी भी स्थितिवश अथवा दोषवश इन्हें देश निकाला दिया गया हो, ऐसा विचार भी समीचीन ही है। महान् नाटककार भास उत्तरवासी थे। किसी प्रकार ये दक्षिण में पहुँचे और इन्होंने वहाँ जाकर कुछ रचनाएँ लिखी जिन्हे उत्तरकालीन तथा प्रौढ रचना कह सकते है। वहाँ लिखी गई रचनाओं में वासवदत्ता मे मंत्री का राजा के राज्य प्राप्ति हेतु विदेश जाना, अग्निदाह की कथा का प्रसारण करना और उसी में विदूषक द्वारा मिष्टान्न आदि के प्रसंग मे उत्तरकुरुवासः मयानुभूयते' अर्थात् उत्तर कुरु बद्रीनाथ धाम के समीप के स्थल के आनन्द का अनुभव करता है। वासवदत्ता में ही 'कामेनोज्ज-यिनीम्' के कथन से भारत का व्यापारिक केन्द्र उज्जयिनी जहाँ सुख-समृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि की निधियाँ थीं, का स्मरण कवि को आता रहा है। इस उक्ति में मानो कवि स्वयं बोल रहा है और उसकी उज्जयिनी के प्रति अदम्य लालसा एवं ललक की झलक स्पष्ट झलकती है।

अतः भास स्वयं उत्तरी भारत के निवासी रहे होंगे और किन्ही कारणों वश इन्हें दक्षिण मे जाकर शरण लेनी पडी हो। इसी कारण इनकी रचनाओ की कोई प्रति उत्तर भारत में उपलब्ध नहीं हुई है।

दक्षिण में इनके नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हो गये और उनमें अभिनयात्मकता ने प्रमुखता प्राप्त की। केरलवासियों ने सम्भवतः अपनी नाटकीय कलाओं की उपयुक्तता के हेतु इनमें परिवर्तन भी किया हो। किन्तु भास की एक पृथक् नाटकीय परम्परा रही होगी जिसमें मुद्राराक्षस, मत्तविलास प्रहसन आदि रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओ मे 'अग्निदाह' में कथा प्रसंग को रोचक बनाने तथा प्रायः नाटको में जल का प्रयोग बहुलता से दृष्टिगोचर होता है। 'आपस्तावत्' अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। भास के अग्निदाह प्रसग के आधार पर इन्हें ज्वलनमित्र भी कहा है। राजस्थान वासी अथवा मरुस्थल प्रदेश से निकटता होने से इन दोनों प्रसंगों के प्रयोग की प्रचुरता का पोषण हो जाता है। उज्जयिनी जैसे स्थल में आज भी अग्निकाण्ड तथा जल के प्रयोग की प्रथा इस प्रकार प्राप्त होती है। अतः इन्हें ज्वलनमित्र कहना उचित ही है। प्रो० देवधर ने इन्हें अग्निमित्र भी कहा है।

भास को कतिपय विद्वान् 'धोबी' जाति का कहते हैं। किन्तु ऐसा नही है। धोबी निम्न वर्ग की एक जाति है, जो कभी भी ब्राह्मण प्रशंसा अथवा ब्राह्मण का सम्मान, तथा ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा को सहन नहीं कर सकती। भास ने ब्राह्मण धर्म का प्रतिष्ठापन,

अनुमोदन तथा प्रतिपादन किया है। ये अगस्त्यगोत्रीय ब्राह्मण थे जिसका भेद 'भास' भी है। इन्होंने ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा पर बल दिया और राजधर्म घोषित कर बुद्ध मत के प्रति तटस्थता तथा अनास्था दर्शाई है। इतना ही नही है, अपितु इस महान् नाटककार का निकट का परिचय अथवा सम्पर्क 'विजया'[1] नाम की स्त्री पात्र मे अवश्य रहा होगा क्योंकि इन्होंने कई प्रमुख स्वप्न अभिषेक, प्रतिज्ञा, प्रतिमा रचनाओं मे इसे राजा की प्रतिहारी के रूप मे अंकित किया है जिसे राज्य की गुह्यतम गुत्थियो, रहस्यो का ज्ञान है और इन कार्यो के संचालन मे इसका विशेष हाथ रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि विजया नाम की कोई अभिजात कुल की कन्या होगी जिससे इनका परिचय या प्रेम रहा हो और इसी कारण सम्भवत इन्हे मत्री पद से पृथक् होना पडा हो, देश निकाला दिया गया हो। इसी विजया के कारण इन्हें राज्य के रहस्यो का कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ करता हो। इन उपर्युक्त विवरणो को यथा अवसर प्रसगो द्वारा निबन्ध मे आगे पुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

भास की कृतियों की प्रामाणिकता

यह विचार करने से पूर्व कि यह सभी नाटक एक ही लेखक के है, कतिपय सामान्य तथा विशेष बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक होगा। उपर्युक्त १३ नाटक भास की ही कृति है, इस विषय पर विद्वानो मे विरोध रहा है तथापि अनेक विद्वानो ने इस तथ्य को अन्तत: स्वीकार भी किया है। विवेचन तो कतिपय विद्वानो ने इस ओर प्रशसनीय किया है किन्तु अभी तक सन्तुष्टि नही हो पाई है और अनुसन्धान निरन्तर चल रहा है।

इन नाटको की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता के विषय मे विद्वानो मे तीन दल प्राप्त होते है।

प्रथम दल—इसके अनुसार इन तेरह नाटको को भास प्रणीत ही कहा गया है क्योंकि इन नाटको की भाषा, शैली तथा नाटकीय सविधान मे अत्यधिक समानता है। अतः ये एक ही कवि की रचना है और वह कवि कालिदास से प्राचीन स्वप्नवासवदत्ता का रचयिता भास ही है।

द्वितीय दल—इन नाटकों को भास द्वारा रचित नही मानता है। इनका रचयिता या तो मत्तविलास प्रहसन का रचयिता युवराज महेन्द्र विक्रम (७२० ई०) था अथवा आश्चर्यचूडामणि नाटक का रचयिता शीलभद्र था। इन्होंने इन रचनाओ को सातवी, आठवी शती की किसी दाक्षिणात्य कवि की रचना बतलाया है। इसके समर्थकों मे प्रमुख प्रो० सिल्वा लेवी, प्रो० विटरनित्ज और प्रो० सी० आर० देवधर है।

तृतीय दल—ये तेरह नाटक भास रचित ही है किन्तु इनका सक्षिप्तीकरण रग-मंचोपयुक्त रूप किसी के द्वारा किया गया है। तृतीय मत मे डा० दास तथा गुप्त इतिहास-कार ने कई उप मतो का सार उल्लिखित किया है। कुछ लोगो के मत से सभी नाटक भास के नाटको के सक्षिप्त रूप है जो केरल कवियो ने नटो के लिए रगमंचोपयुक्त बना दिये थे।

१. विजया—अह विजया कि क्रियताम्।—स्वप्न पृ० ४४

अन्य मतानुसार स्वप्नवासवदत्ता तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण भास के ही नाटकों के संक्षिप्त या परिवर्तित रूप है जबकि दरिद्रचारुदत्तम् शूद्रक के मृच्छकटिक के आरम्भिक चार अंकों का प्रेरक रहा है तथा मृच्छकटिक का आधार है। अन्य नाटको के रचयिता के विषय मे इस दल के विद्वान् मौन है।

प्रामाणिकता विषयक विद्वानो को हम निम्नाकित शीर्षको मे रख सकते है।

१. केरलीय उत्पत्ति मानने वाले विद्वान्।

२. केरलीय उत्पत्ति के विरोधी विद्वान्।

३. केरलवासियो द्वारा भास के नाटको को सक्षिप्त करके नाटकीय रूप दिया गया, इस पक्ष के समर्थक विद्वान्।

४. सक्षिप्त रूप के विपक्षी विद्वान्।

५. केरलवासियो ने इन्हें सकलित तथा सम्पादित किया, इस पक्ष के विद्वान्।

६. इस पक्ष के विरोधी विद्वान्।

७. कृतियो के पूर्णत. पोपक विद्वान्।

८. कृतियों के अशतः पोपक विद्वान्।

९. डा० पुशाल्कर, डा० कीथ, डा० विन्टरनित्ज, डा० दास और गुप्ता आदि इतिहासविदो, आलोचको के मत का विशद विवेचन।

१०. म० म० टी० गणपति शास्त्री का मत।

११. अपना मत—उत्तरीय रचनाएँ है किन्तु नाटकीय रंगमचोपयुक्तता में दक्षिण के ऋणी है।

(१) **कुप्पु स्वामी**—नाटको की केरलीय उत्पत्ति के पोषण में चाक्यारों की प्राचीन स्त्री नायार्स में से ही महासेन की रानी अंगारवती को मानते है कि रानी अगारवती ने जो विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग किया है वह आधुनिक नायार्स[1] मे प्रचलित वही सम्बन्ध विवाह का पूर्व प्रचलित शब्द है जो कि प्रतिज्ञा, स्वप्न में वर्णित है किन्तु केवल सम्बन्ध शब्द से ही केरलीय उत्पत्ति का पोषण करना उपयुक्त तथा पर्याप्त प्रतीत नही होता क्योकि यह सम्बन्ध शब्द आज भी मिताक्षरानुयायी कट्टर सनातनी ब्राह्मण विवाह के लिए प्रयुक्त करते है और केरल में मातृपक्ष के रीति-रिवाज प्रचलित है। रानी राजा से निम्न जाति की होनी चाहिए, किन्तु यहाँ सोलह रानियों की अध्यक्षा रानी अगारवती राजा उदयन द्वारा समान भाव से आदरणीय होती है। इतना ही नही है, प्रतिज्ञा[2] द्वितीय अंक मे राजा कन्या-विवाह के विषय मे चिन्तित है कि यदि कन्या अविवाहित रहती है, तो लज्जा आती है और जब वह विवाहित होकर अपने पति के यहाँ चली जाती है तो हम दुःखित होते है। हम शब्द से (माता) पर अधिक बल दिया है। धर्म तथा स्नेह के बन्धन से युक्त.

१. मार्स—पृष्ठ ३० मद्रास १९५७ एस० पी० अय्यर।

२. अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥—प्रतिज्ञा २।७

माताएँ दुःखित ही रहती हैं। रानी से कन्या के विवाह सम्बन्धी राजा को वार्तालाप मे राजा को यह उत्तर मिलता है कि जहाँ देकर[1] हम पीडित न हों वहाँ ही कन्या को दे देना उचित होगा। कोई भी नायार स्त्री कभी अपनी कन्या के लिए पीडित होती हुई किसी स्थल पर नही प्राप्त होती और न यह पिता का कर्तव्य ही था जो कि महासेन ने किया। साथ ही कहा कि पहले तो तुम मुझसे वासवदत्ता के विवाह करने का आग्रह करती थी और अब विवाह की चर्चा को सुनकर रोती हो। रानी पुनः कहती है कि विवाह की इच्छा मैंने की थी और इतने पर भी वियोग से पीडित हूँ।

इस मत का निराकरण—भास की रचनाओं मे सम्बन्ध[2] शब्द का प्रयोग निम्नांकित रूप मे प्राप्त होता है। राजा—ऐसा सुना जाता है कि राजा लोग हमारे सम्बन्ध के लिए आए है। यहाँ सम्बन्ध शब्द विवाह के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है किन्तु नायार स्त्रियो मे कन्या के वियोग से सन्तप्त होने का प्रश्न ही नही उठता, क्योकि कन्या विवाहोपरान्त भी अपनी माता के साथ ही घर पर रहती थी। इस प्रकार वियोग से सन्तप्त होने की विचार-धारा का पोषण न होने से कुप्पु स्वामी का मत निराकृत हो जाता है। प्रो० अय्यर[3] ने इस मत का अपनी पुस्तक भास में विरोध किया है तथा यह भी कहा है कि इन तेरह नाटको में किसी केरलीय वस्तु की झलक नही मिलती है। के० वी० शंकर इस सम्बन्ध विवाह को सिविल मैरिज कहते हैं। मलाबार मैरिज एक्ट मे यह सिविल मैरिज के ही अन्तर्गत आता है जिसमे वर द्वारा वधू को वस्त्र दान मात्र मे विवाह का कार्य सम्पन्न हो जाता है। इसमे मत्रों का उच्चारण नही होता है तथा अन्तर्जातीय अनुलोम विवाह आज्ञप्त है और नियमानुकूल ऐसी पत्नी धार्मिक कृत्यो मे सम्मिलित नही हो सकती और न वह पत्नी पति के साथ भोजन ही कर सकती है। इस प्रकार के बच्चे की जाति मातृ जाति का रिवाज मलाबार में प्रचलित रहा है। इस प्रकार वासवदत्ता तथा कुरगी दोनों का विवाह सम्बन्ध विवाह नही कहा जा सकता। क्योकि दोनो क्षत्रिय जाति की थी तथा मत्रोच्चारण द्वारा अग्नि साक्षी करके विवाह सम्पन्न हुआ था। पतियो का पत्नियो के साथ भोजन करने का प्रश्न ही नही उठता, उनके बच्चे भी नियमत सर्वत्र विवाहित होते थे। त्याग का प्रसग ही न था। बाल-विवाह की प्रथा न थी। वासवदत्ता तथा कुरगी युवती थी।

डा० बर्नेट के अनुसार इन नाटको की रचना पाण्ड्य अथवा पल्लव राजाओ के राजकवियों ने की जिनका समय ६७५ ई० है। यह मत भी समीचीन नही है कि नरसिह वर्मा द्वितीय पल्लव राजा तथा तेनमारन पाण्डय राजाओ के राजकवियो ने इन्हे लिखा और इन्ही दो राजाओं ने राजसिह की उपाधि से अपने को विभूषित किया था और इन नाटको

१. देवी—यत्र दत्त्वा न संतप्यामहे, तत्र दीयताम्।—प्रतिज्ञा, पृ० ७६
देवी—अभिप्रेतं मे प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति।—प्रतिज्ञा, पृ० ७६
२. राजा—अस्मत्सम्बन्धप्रयोजनायागता राजानः।—प्रतिज्ञा, पृ० ७६
राजा—अस्मत्सम्बद्धो मागधः ... पात्रता याति राजा।—प्रतिज्ञा २।८
३. भास—एस० पी० अय्यर पृ० ३२

मे दाक्षिणात्य संस्कृत शब्दों का प्रयोग तथा व्यवहृत अर्थ प्राप्त होता है। इतिहासविदों ने कहीं भी इन राजाओं के राजसिंह कहे जाने तथा राजकवियो द्वारा स्वप्न तथा प्रतिज्ञा आदि नाटको के लिखने का वर्णन नहीं किया है। यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता है कि किसी प्रतिभाशाली कवि ने नाटक लिखे हों और अपने नाम का विवरण भी न दिया हो। प्रथम शती से सस्कृत साहित्यिक परम्परा नाटको की प्रस्तावना मे लेखक के नाम निर्देशन की प्रथा की पुष्टि करती है। यथा अश्वघोष, कालिदास, भवभूति ने उत्तरी भारत में तथा शक्तिभद्र तथा महेन्द्र वर्मन ने दक्षिण में इन नियमो का पालन किया है।

इस मत का निराकरण—यह और भी आश्चर्यजनक है कि पल्लव तथा पाण्ड्य राजा के राजकवियो ने अपनी राजधानी कांची या मदुरा का वर्णन कहीं नहीं किया जबकि ये दोनों नगर दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर थे। यथा 'नगरेषु काञ्ची' आदर्श नगर था। और न अपने प्रान्त की नदियों, पर्वतों, प्रसिद्ध मन्दिरो का ही वर्णन किया है। यह वास्तव मे बड़ा विचित्र है कि वे गोदावरी, कृष्णा, कावेरी नदियो, कांची, मदुरा आदि स्थानो, पाण्ड्य, चोल, राजाओं में महेन्द्रवर्मन, नरसिह वर्मन आदि दक्षिण के अन्य राज्यो तथा उनके शासको को न जानते हो और अंग, अवन्ति, उत्तर कुरु, कम्बोज, काशी, कुरु जगल, कौशल, गांधार, बंग, वत्स, विदेह, शूरसेन, सौराष्ट्र, सौवीर, अयोध्या, उज्जैन, काम्पिल्य, कौशाम्बी, पाटलिपुत्र, मथुरा, राजगृह, वैरान्त्य, विराटनगर, हस्तिनापुर तथा उदयन वत्सराज दर्शक, प्रद्योत, कुतिभोज राजाओं तथा गंगा-यमुना आदि से पूर्णतया परिचित हों। इस प्रकार पाण्ड्य तथा पल्लवराज कवियों द्वारा इन नाटकों की रचना की उक्ति नितान्त निर्मूल सिद्ध हो जाती है और यह मत निराकृत हो जाता है।

केरलवासियों ने नाटकों को संक्षिप्त करके नाटकीय रूप प्रदान किया—प्रो० बर्नेट के विचार हम पूर्व मे रख चुके है। डा० पिशरोटी, डा० राजा, प्रो० के० शास्त्री, कुप्पु स्वामी आदि भी इनके संक्षिप्तीकरण का विचार रखते है। डा० सुखथन्कर[1] ने अपने लेख में डा० बर्नेट के सम्बन्ध में स्पष्टतया लिख दिया है कि इन्होंने भास के नाटको के सम्बन्ध में प्रयुक्त भरतवाक्य में राजसिंह से पल्लव राजा आदि का जो अनुमान लगाने का लेख १९१९ मे प्रस्तुत किया था उससे पूर्व ही उसका निराकरण करने वाले प्रमाण पंडित रामावतार शर्मा पाण्डेय द्वारा प्रयाग से प्रकाशित शारदा पत्रिका के १९१५ वाले अंक में ही व्यक्त किये जा चुके है। इतना ही नही, अपितु डा० बर्नेट के आक्षेपो का निराकरण बैनर्जी, शास्त्री, कोनो, एफ० डब्ल्यू थामस और विन्टरनित्ज ने भी कर दिया है। अत. केरलीय राजकवियो द्वारा रचना का सिद्धान्त निराकृत हो जाता है। इसलिए सख्या १ से ६ तक के मतो की समीक्षा अच्छी प्रकार से हो जाती है।

कृतियों के पूर्णतः पोषक विद्वान्—डा० ए० डी० पुशाल्कर ने अपने ग्रन्थ 'भास ए स्टडी' में विस्तारपूर्वक विचार करते हुए भासनाटकचक्रम् में प्रकाशित तेरह नाटकों को भास की कृतियाँ मानने में विभिन्न विद्वानों के मत का विश्लेषण किया है। इस मत के

१. स्टडीज इन भास, डा० सुखथन्कर, पृ० १४२, पूना १९४५

पापको ने निम्नाकिन नाम सगृहीन किए है ।

अभयकर, असूरी बेनर्जी शास्त्री, वेस्टन हिवार गायकवाड़, वेल्वलकर, भिडे, प्रो० ध्रुवा, दीक्षितार, घटक, गुलेरी, शेष अय्यर, जेकोबी, जायसवाल, जोली, काले, कीथ, थामस कोनो, कृष्ण शास्त्री लकोटे, लेस्नी, लिण्डन, एस० एम० पराजपे, पेवलोनी, लिट्ज, रे, सरुप, हरप्रसाद शास्त्री, हरिहर शास्त्री, सुखथकर, थॉमस, वेलर, डा० विन्टरनित्ज, डा० म० म० गणपति शास्त्री आदि इन तेरह नाटको को भास की रचना स्वीकार करते है।

विरोधी विद्वान्—यथा डा० वर्नेट, भट्टनाथ स्वामी, कारपेन्टर, देवधर, काले, सी० वी० काणे, रामकृष्ण, ए० के० पिसरोट, के० आर० पिशरोटी, सी० के० राजा, के० जी० शकर, रामावतार शर्मा, हीराचन्द शास्त्री, कुप्पु स्वामी, रंगाचार्य, रेडी शास्त्री, सिल्वन लेवी, वुलनर आदि विरोधी है तथा सात नाटको को जाली मानते है।

कृतियों के अंशतः पोषक—डा० सुखथन्कर, प्रो० विन्टरनित्ज कतिपय सीमाओं के साथ भास की रचनाओ को स्वीकार करते है। वर्तमान कालीन विद्वान् डा० सूर्यकान्त, प्रो० बलदेवप्रसाद तथा प्रो० अय्यर आदि भी भास की ही रचना मानते है। म० म० गणपति शास्त्री भी इस मत के पूर्णत पोषक है। डा० कीथ भी इसका समर्थन करते है, किन्तु डा० थॉमस, डा० सरुप, डा० लिण्डन, बैनर्जी शास्त्री, प्रो० एस० एन० पराजपे, प्रो० देवधर, प्रो० जागीरदार केवल स्वप्न वासवदत्ता, प्रतिज्ञा तथा पचरात्र को भास रचित मानते है, शेष रचनाओ को नही। उन्होंने इन नाटको को दो भागो मे विभक्त किया है और विभिन्न काल की रचनाएँ बतलाया है। डा० सुखथन्कर ने स्वप्न तथा प्रतिज्ञा को कवि भास की रचना स्वीकार किया है, शेष अनिश्चित कवि की रचना हैं। स्टेनकोनो शेष नाटको को भी भास की रचना मानते है। प्रो० भिड़े भी इन नाटको को पूर्व मे पूर्णतया स्वीकार कर लेने पर भी पश्चात् मे अपनी अनिश्चितता दर्शाते है। डा० वेलर चारुदत्त, बालचरित तथा अविमारक को भी स्वप्न तथा प्रतिज्ञा के साथ एक ही कवि की रचना बतलाते है। प्रो० ध्रुवा इन सभी नाटकों को भास की रचना स्वीकार करते है किन्तु अभिषेक, कर्णभार, उरुभग, दूतवाक्य तथा दूत-घटोत्कच को वे भिन्न कवि की रचना कहते है। डा० वर्नेट इन रचनाओ को विभिन्न काल की ही बतलाते है और डा० जोन्सटन स्वप्न तथा प्रतिज्ञा को एक ही कवि की रचना स्वीकार करते है। प्रो० के० आर० पिशरोटी केरलीय रचना के पोषण मे इन नाटको को 'कुटीअट्टम' भेद पर रचित निर्धारित करते है तथा स्थापना का आरम्भ ये केरल प्रभाव से मानते है। किन्तु यह कोई प्रबल प्रमाण नही है क्योंकि केरल मे रंगमचीय परिष्कार आठवीं शती से पूर्व का नही प्रतीत होता जबकि स्वप्न तथा अन्य नाटक दक्षिण मे प्राचीन काल से ही अभिनेयता की उपयुक्तता के कारण जनप्रिय हो गये थे। प्रो० पराजपे ने दाक्षिणात्यों की प्रतिभा को भी इस योग्य घोषित नहीं किया है कि आज तक उनका इस प्रकार का कोई उत्तम नाटक उपलब्ध नही है।

ए० डी० पुशालकर ने अपने ग्रन्थ 'भास ए स्टडी' में इनकी प्रामाणिकता पर गम्भीर विवेचन करते हुए भास की रचनाओं को अंशत. स्वीकार किया है तथा इस स्वीकृति मे

विभिन्न प्रकार के समान भावो और नाटकीय संवैधानिक विशेषताओं के आधार पर इस मत का पोषण किया है, तथा इस मत के पक्ष तथा विपक्षी विद्वानों की सूची प्रस्तुत की है जिसका विवरण हम ऊपर दे चुके है। ये भी भास की रचनाओं मे आस्था प्रदर्शित करते है।

म० म० टी० गणपति शास्त्री इस सिद्धान्त के पूर्णतया पोषक और समर्थक है कि ये रचनाएँ भास की ही है और ये छठी शती ई० पूर्व की हैं। ये वे विद्वान् हैं जिन्होंने साहित्य-जगत् में भास की रचनाओ की प्रामाणिकता पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है और विभिन्न आलोचनाओ से युक्त उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक सस्करण प्रकाशित किया है। ये इन सभी नाटको को भासकृत मानते है और पूर्णतया इस मत के समर्थक है।

विभिन्न आलोचको के मत का गम्भीर रूप से अध्ययन करने के उपरान्त तथा भास की रचनाओ मे उसकी मौलिकता, सवैधानिकता, और नाटकीय स्थलो, दृश्यो,शब्द-प्रयोगों, सामान्य दशाओ के अकन के बल पर मैं यह बलपूर्वक कह सकता हूँ जिस कवि की रचना वासवदत्ता तथा प्रतिज्ञा है जिन्हे सभी समर्थक तथा विरोधी पूर्णतया स्वीकार करते हैं, भास की ही रचना है।

भास की ही रचना सिद्ध करने के पूर्व हम एक ही कवि की एक ही काल की रचना सिद्ध करने का प्रयास करते है। जिसका आधार निम्न प्रकार है—

नाटकों में समान वैधानिकता

१. सभी नाटक 'नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्रधार' से आरम्भ होते है, जबकि अन्य लौकिक सस्कृत नाटक नान्दी (श्लोक) से आरम्भ होते है और इसके अनन्तर नान्द्यन्ते तत. आता है।

२ केवल कर्णभार मे प्रस्तावना प्रयुक्त की गई है, शेष १२ नाटको में स्थापना का प्रयोग किया गया है।

३. 'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते अंग पश्यामि।' यह पंक्ति प्रतिज्ञा, अविमारक, चारु तथा प्रतिमा को छोड सभी नाटको में प्रयुक्त की गई है।

४. मुद्रालकार का प्रयोग, जिसमे नाटक के प्रमुख पात्रो का नाम तथा कवि के अभीष्ट देवता की स्तुति भी, चारुदत्त को छोड़कर शेष सभी नाटको मे उपलब्ध होती है। अविमारक मे केवल स्तुति ही है, मुद्रालकार नही है।

५. सामान्य परिवर्तन के साथ सभी नाटकों मे समान रूपेण भरतवाक्य प्राप्त होता है। 'इमामपि मही कृत्स्ना राजसिह. प्रशास्तु न., राजा भूमि प्रशास्तु न', केवल चारुदत्त में भरतवाक्य नहीं है। मध्यम तथा दूत घटोत्कच में राजा की स्तुति के स्थान में भगवत् स्तुति से नाटक की समाप्ति की गई है।

६ भाषा तथा सवैधानिकता मे नाटको मे अत्यन्त सामीप्य है। उनमें भावों,

विचारो, शब्दो, विशेष वाक्यों, पद्य की मुहुर्मुहु आवृत्ति एक ही लेखक की पुष्टि करती है।

७. व्याकरण सम्बन्धी अपाणिनीय प्रयोगो की बहुलता है, जिन्हे आर्ष प्रयोग कहेंगे।

८. अधिकतर नाटको मे 'पताका स्थानक' का प्रयोग किया गया है।

९. नाटको मे लेखक का नाम किसी रचना मे नही है, और रचनाओ के नाम का निर्देश बालचरित, स्वप्न, चारु, पचरात्र तथा अविमारक मे सकेत के रूप मे प्राप्त होता है।

गणपति शास्त्री ने भी उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ भरत के नाटयशास्त्र के नियमो मे विपरीतता होने के कारण नाटककार की प्राचीनता का परिचायक तथा अपाणिनीय आर्ष प्रयोगो मे प्रचुरता मे पाणिनि से पूर्व कवि के होने का वर्णन किया है। इन्होने भाषा, भाव, रस के मिश्रण तथा सवेदन से कवि की प्राचीनता के साथ-साथ प्रतिभा का भी समर्थन किया है तथा प्रतिभा मे वाल्मीकि तथा व्यास का प्रतिविम्ब माना है जिससे यह स्पष्ट है कि कवि की रचनाएँ उस समय की है जबकि सस्कृत बोलचाल की भाषा रही होगी। इतिहास परम्परागत कथाओ, वर्णनो से वासवदत्ता भास-रचित मानी गई है अत. शेष नाटक भी भास-रचित ही है।

प्रो० देवधर ने गणपति शास्त्री की उपर्युक्त बातो को माना है, केवल पूर्व पाणिनि होने में वे सन्देह करते हैं। सम्भव है कवि पाणिनि के शीघ्र पश्चात् रहा हो और पाणिनि व्याकरण का पूर्णतया प्रचार व प्रसार वहाँ तक न हुआ हो।

नाटकीय दशाओं में समानता

प्रतिमा नाटक मे रावण-सीता का वार्तालाप तथा अभिषेक मे भी रावण-सीता का वार्तालाप तथा सीता का शाप देना समान शब्दो में वर्णित है। प्रति० ६/१९, अभि २/१८

सुखावह व्यंग्य—दूत घटोत्कच में मध्यम (ब्राह्मण पुत्र) को बुलाता है और मध्यम पाण्डव भीम वहाँ उपस्थित होते है तथा वहाँ घटोत्कच को पुत्र कहते हैं और वह भीम को पिता के रूप मे नहीं पहचानता है। पिता और पुत्र का गोपनीय आलाप आह्लादकारी है। इसी प्रकार पचरात्र मे अभिमन्यु अपने पिता तथा अन्य को न पहचानकर उनके द्वारा अपना नाम[1] लेकर बोलने वाले को नीच तथा अपनी माता विषयक वार्ता पर रोष प्रकट करता है।

विषादात्मक व्यंग्य—दूत घटोत्कच मे अभिमन्यु के बध के उपरान्त जब यह समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया गया तो वह शीघ्र ही (इसका कौन दोषी है) यह पूछते है और जयद्रथ का नाम सुनकर उसकी मृत्यु[2] की घोषणा करते है क्योकि यही दुःशला के रुदन का

---

१. नीचैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वयाः।—पंच २।४७
कि भवान् धर्मराजो ··यन्मां पितृवदाक्रम्य स्त्रीगतां पृच्छसे कथां।—पंच० २।४८

२. हन्त जयद्रथो निहतः।—दूत० घ०, पृ० ४६१

कारण होता है। प्रतिज्ञा में उदयन के अपने मंत्री द्वारा गृहीत होने पर महासेन (क्या यौगन्धरायण[1] मर गया है) ऐसा कहते हैं जो कि पश्चात् मे यौगन्धरायण के द्वारा उदयन के मोक्ष की प्रतिज्ञा मे परिवर्तित हो जाता है। अविमारक[2] मे योगी नारद अविमारक को कुन्तिभोज द्वारा जान लेने ने महान् सकट की स्थिति का अनुभव करते है।

पताकास्थानक

(क) प्रतिज्ञा मे महासेन कई योग्य राजाओ की सूची बतलाकर देवी से पूछता है कि तुम किसे अच्छा समझती हो? प्रतिहारी शीघ्र आकर 'वत्सराज' कहती है।

(ख) अभिषेक मे रावण सीता से पूछता है कि जब इन्द्रजित् द्वारा राम-लक्ष्मण मारे गये तो रक्षा कौन करेगा? नेपथ्य मे—राम'।

(ग) अविमारक मे विलासिनी नलिनी से कहती है विवाह कब होगा? पर्दे के पीछे मे (आज) की ध्वनि आती है।

(घ) पचरात्र में 'पाण्डवों का समाचार हमको कहाँ से प्राप्त होगा' कहने पर 'विराट नगर से दूत आया है' ऐसा समाचार मिलता है।

(ङ) प्रतिमा नाटक मे जिस समय वल्कल वस्त्रो के विषय में सीता पूछती है तो एक नौकरानी रेवा से वल्कल वस्त्रो को लेकर अचानक लौटती है।

नाट्यकला सादृश्य

भरत नाट्यशास्त्र द्वारा वर्ज्य दृश्यों का रंगमंच पर अभिनीत होना।

(१) प्रतिमा	द्वितीय अक	दशरथ की मृत्यु
(२) अभिषेक	प्रथम अंक	बालि की मृत्यु
(३) उरुभंग	प्रथम अक	दुर्योधन की मृत्यु
(४) बालचरित	पंचम अंक	चाणूर, मुष्टिक तथा कस की मृत्यु
,,	तृतीय अंक	कृष्ण तथा अरिष्टर्षभ का युद्ध
(५) मध्यम	प्रथम अंक	भीम घटोत्कच युद्ध
(६) स्वप्न	पचम अंक	राजा उदयन के समीप वासवदत्ता का शयन
(७) पचरात्र	प्रथम अक	मध्यम को दूर से बुलाना

(८) नाटकों में नाम निर्देश का अभाव।

(९) निष्क्रम्य प्रविश्य द्वारा गतिशीलता का आयोजन।

---

१. किमुपरतो यौगन्धरायणः। प्रतिज्ञा द्वितीय अंक पृ० ७८

२. अद्य कुन्तिभोजस्य सौवीरराजस्य च महानविमारकादर्शनेन कार्यसंकटो वर्तते।—अवि०, पृ० १८०

(१०) आकाशभाषित का स्वतंत्र प्रयोग।

(११) पात्र की अनुपस्थिति में अन्य पात्र द्वारा उसके कथन की आवृत्ति।

(१२) भटों तथा प्रतिहारी द्वारा संग्राम तथा घटना विशेष का परिचय देना।

(१३) विषम परिस्थितियों में पात्र द्वारा जल[1] माँगने की प्रवृत्ति का वर्णन भास की मौलिकता की परिचायक है। इस प्रकार की प्रथा अन्य नाटकों में लभ्य नहीं होती।

(१४) नाटकीय प्रतिष्ठा के प्रति कवि सदैव सजग है। एक पात्र के द्वारा दूसरे पात्र की वन्दना में क्रम का ध्यान रखते है। यथा पंचरात्र में 'द्रोण' अयं क. क्रम। भीष्म-मुत्क्रम्य वन्दितुम्' कहते है तथा दूत घटोत्कच स्वयं अशुद्धि करके पुनः वन्दना क्रम को ठीक करता है।

(१५) किसी भी पात्र द्वारा अपनी समर्थता की अभिव्यक्ति पर श्रोता पात्र द्वारा 'अहो हास्याभिधानम्'[2] कहलाना भी भास की मौलिकता है।

(१६) कष्ट के समय 'आप अधिक संतप्त न होइए'[3] ऐसा किसी पात्र द्वारा कहलाना।

विचार साम्य

१. कवि के समय क्रौञ्च[4] की उपमा का प्रचलन प्रतीत होता है क्योंकि पश्चाद्वर्ती काव्यों मे इस प्रकार की उपमा की न्यूनता है और वर्तमान कालीन साहित्य मे इस उपमा का प्रयोग शून्य ही है। भास ने स्वामी कार्तिकेय के द्वारा किये गए क्रौञ्च के विनाश का कई स्थलों पर समान वर्णन किया है।

२. राक्षसों को मृत्यु[5] के सदृश वर्णन किया है यथा मध्यम में ब्राह्मण पुत्र ने दूत घटोत्कच को 'मृत्यु पुरुष विग्रह.' कहा है। कृष्ण को भी कस की मृत्यु के रूप में वर्णित किया है। भट राजा से कृष्ण को बलराम के साथ मृत्यु के सदृश आने का विधान करता है।

---

१. आपस्तावत् इमाः आपः। अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है

२. अहो हास्याभिधानम्।—प्रतिज्ञा, पंच०, दूत घटोत्कच, कर्णभार

३. मा भवानतिमात्रं संतप्य।—स्वप्न०, अवि०, चारु०

४. क्रौञ्च यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः।—बाल० २।२३
वालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कदेन निधनं गतः।—बाल० ३।६
गुहशक्तिसमाक्रान्तो यथा क्रौञ्चाचलोत्तमः —।अभि० १।२४
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्तिकेयम्।—अभि० ६।७
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति।—प्रतिमा ५।१२

५. सुत इति कृतमंशं कंसमृत्युं वहन्ती।—बाल १।१०
रामेण सार्धमिह मृत्युरिवावतीर्णः।—बाल० ५।३
हतोऽयं मृत्युना स्वय। दूतवाक्य १।२७

दूत वाक्य में कृष्ण कंस की मृत्यु पर कहते हैं कि इसका विनाश तो मृत्यु ने स्वयं ही किया है, अन्य ने नहीं।

३. नाटककार ने प्रायः सभी स्थलों पर बलशाली की उपमा[1] सिंह से तथा दुर्बल की उपमा मृग (हरिण) से दी है। भास की रचनाओं में यह साम्य बालचरित, मध्यम, अभिषेक, दूतवाक्य, प्रतिमा आदि नाटकों में समान रूप से लभ्य होता है। इस प्रकार का विचार साम्य एक कवि की रचना में ही सम्भव हो सकता है।

४. कवि ने आज ही शोभन नक्षत्र[2] है अतः विवाह आज ही उचित है। इस प्रकार का वर्णन कई स्थलों पर किया है।

५. राजा उदयन के गृहीत होने के प्रसंग में हंसक यौगन्धरायण[3] से वर्णन करते समय महासेन के सैनिकों द्वारा 'इसने मेरे भाई आदि को मारा है' कहता है तथा अभिषेक में सीता के कारण भाई, पुत्र तथा मित्र के वध का प्रसंग है।

६. सूर्य की किरणों के संक्षिप्तीकरण[4] का वर्णन दो स्थलों पर समान रूप से वर्णित किया गया है।

७. कवि ने पात्रों द्वारा भुजाओं को अस्त्र[5] बतलाया है।

८. अविमारक में अविमारक स्वयं विद्याधर की पत्नी[6] के विषय में तथा चारुदत्त में विट बसन्त सेना के विषय में समान विचार व्यक्त करता है।

---

१. नाग मृगेन्द्र इव पूर्वकृतावलेपम् ।—बाल० ४।१३
रुष्टोऽपि कुंजरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने ।—मध्यम १।४४
गजपतिमिव मत्तं तीक्ष्णदंष्ट्रो मृगेन्द्रः ।—अभि ६।११
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ ।—दूत वाक्य १।१०
न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।—प्रतिमा० ५।१८
कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।—अभि० ३।२०
व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव ।—चारु० १।६
सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते ।—अभि० २।१३
हरिरिव हरिणीनामन्तरे चेष्टमानः । अभि० २।६

२. अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रं । अद्यैव कौतुकमंगलम् कर्तव्यम् ।—स्वप्न० पृ० १६
अद्यैव खलु गुणवन् नक्षत्रम् । अद्यैव विवाहः प्रवर्तितव्यम् ।—पंच० २।७२ के समीप

३. ममभ्राताहतोऽनेन ।—प्रतिज्ञा प्रथम अंक पृ० ३६०
अस्याःकारणेन बहवः भ्रातरः सुताः··· निहताः ।—अभिषेक पंचम

४. अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः ।—अभिषेक ४।२३
रविरपि च संक्षिप्तकिरणो ··शिखरम् ।—स्वप्न० १।१६

५. गिरितट कठिनांसावेव बाहू ममैतौ प्रहरणमपरं तु त्वादृशा दुर्बलानाम् ।—बाल० ३।११
सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ ।
तावाश्रित्य प्रयुध्येयं दुर्बलैर्गृह्यते धनुः ।।—पंच २।५५

६. तडिदिव तोयधरेषु दृष्टनष्टा ।—अवि० ४।२०
सौदामिनीव जलदोदरसंनिरुद्धा ।—चारु० १।१८

९. कवि ने राहु से ग्रसित चन्द्र की उपमा[1] अनेक स्थलों पर समान रूप से दी है। नायक, राजा आदि प्रधान पात्र की उपमा चन्द्र से और उससे पीड़ित करने वाले की उपमा राहु से दी है। ये स्थल भास में नाटकीय विचार साम्य का अत्यधिक पोषण करते हैं।

१०. कवि असम्भव तथा कठिन कार्य को मन्दर[2] पर्वत के उठाने के सदृश वर्णित करता है। बालकृष्ण को ले जाते हुए भी वसुदेव को मन्दर सदृश पराक्रमशाली घोषित किया है। महासेन स्वयं उदयन के गृहीत होने पर मन्दर के उठाने के सदृश विचार रखता है। अभिषेक में रावण के द्वारा राम के मारने को सुनकर सीता उसे मन्दर पर्वत हाथों द्वारा तोलने की इच्छा करना कहती है।

११. मध्यम में ब्राह्मण अपने पुत्र को राक्षस द्वारा विनष्ट होने की उपमा[3] गज द्वारा विनष्ट वृक्ष की भाँति तथा प्रतिमा में रावण के द्वारा मारे गये जटायु की उपमा भी इसीके समान दी गई है।

१२. क्रोध को अग्नि[4] के समान दर्शाकर शत्रु को वायु वेग बतलाया है।

१३. यत्र-तत्र भास ने मनुष्य की उपमा[5] नक्षत्र गण के मध्य में विराजमान चन्द्र की भाँति प्रदर्शित की है। इस प्रकार के वर्णन भी कई नाटकों में समान रूप से प्राप्त होते हैं। चन्द्र की उपमा राम के लिए दी गई है। यह चन्द्रगुप्त राजा का स्मरण दिलाती है जैसे कोई राजा अपने सभासदों से आकीर्ण रहता हो।

१४. अभिषेक नाटक में सीता[6] को वर्षा के दिन की चन्द्रलेखा के समान अभि-

---

१. किं द्रष्टव्यः शशाकोऽयं राहोर्वदनमण्डले ।—बाल० १।११
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते ।—दूत वाक्य १।७
यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव ।—प्रतिज्ञा १।१६
वृद्धस्य विप्रचन्द्रस्य भवान् राहुरिवोत्थितः ।—मध्यम १।३३

२. व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य ।—प्रतिज्ञा २।९
किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि ।—दूतवाक्य १।४४
बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती ।—बाल० १।६
गिरिमिव मन्दरमुद्वहन् भुजाभ्याम् ।—बाल० १।१४
हं मूढो खु सि रावणओ जो मन्दरं हत्थेण तुलयिदुकाय: ।—अभि०, पृ० ३५७

३. कथमिव गजराजभग्नस्तरुरिव यास्यसि पुष्पितो विनाशम् ।—मध्यम १।२४
नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ।—प्रतिमा ६।४

४. धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः ।—मध्यम पृ० ४३७
पंचानां पाण्डवाग्नीनामात्मा केनेन्धनीकृतः । दूत घट० १।६

५. नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाकः । दूतवाक्य १।३
. पुत्रनक्षत्रकीर्णस्य ''विप्रचन्द्रस्य । मध्यम १।३३
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् । प्रतिमा ७।१४ ।

६. दुर्दिनांतर्गता चन्द्रलेखेव । अभि० पृ० ३३३
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम् । प्रतिमा ७।६
जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः । प्रतिमा ६।१२

हित किया है। अन्यत्र यह वर्णन भिन्नता रखता है।

१५. कृष्ण को पाण्डवों के नेत्र[1] के समान दर्शाया है।

१६. पुत्र के विषय में भास ने दूतघटोत्कच तथा अभिषेक मे प्रथम प्रवाल[2] की घोषणा की है। दूतघटोत्कच मे धृतराष्ट्र ने अभिमन्यु को अर्जुन का प्रथम प्रवाल कहा है तथा वही यदुकुल प्रवाल भी उसीमे वर्णित है। अभिषेक मे वाली सुग्रीव के लिए अगद को सौपते हुए उसे कुल प्रवाल कहता है।

१७. कर्णभार मे युद्ध की शंख ध्वनि[3] को प्रलय सागर घोष तुल्य ध्वनित किया है। दूत वाक्य मे पाञ्चजन्य के घोष को भी प्रलय सागर घोष तुल्य कहा है।

१८. नारद[4] को दोनो स्थलो पर वीणा-विनोद-रसिक तथा कलहप्रिय अंकित किया है।

१९. सुन्दरी पर सभी वस्तुओं की शोभा का अकन सादृश्य[5] का द्योतक है।

२०. धृतराष्ट्र के शौर्य[6] से देवताओ ने आतंकित होकर उसे अन्धा होने का कारण भास ने दूत घटोत्कच तथा उरुभग मे समान रूपेण निर्दिष्ट किया है।

२१. कवि ने दशरथ की कौशल्या के प्रति उक्ति[7] मे तथा वसुदेव की देवकी के प्रति उक्ति में समानता दर्शाई है।

२२ चारुदत्त मे तथा अविमारक मे अन्धकारयुक्त[8] रात्रि का वर्णन समान रूप

---

१. ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे हृतनयना इव पाण्डवा भवेयुः। दूतवाक्य १।६
सर्वत्रानुगमिष्यन्ति शरास्ते कृष्णचक्षुषः। दूतघट० १।३१

२. अयं तु बालः कुरुवंशनाथः छिन्नोऽर्जुनस्य प्रथमः प्रवालः। दू० घ० १।१९
हा वत्स यदुकुलप्रवाल। दू० घ०, पृ० ४७०
कुलप्रवाल परिगृह्यतां नः।—अभि० १।२६

३. शंखध्वनिः प्रलयसागरघोषतुल्यः।—कर्ण १।२४
यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषतुल्यम्। दूत वाक्य १।४९
सेनानिनादपटहशंखनादैः चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः। दूत वाक्य १।५

४. तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि। बाल० १।४।
तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके। अवि० ६।११

५. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। प्रतिमा १ पृ० २५३
अथवा सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम्। अभि० २
आकृतिरेव भर्तृदारिकाया अलंकार इति मन्ये।

६. मन्ये सुरैस्त्रिदिवरक्षणजातशंकै स्त्रासान्निमीलितमुखोऽत्रभवान् हि सृष्टः
—दूत घटोत्कच १।३५
सृष्टो ध्रुवं त्रिदिवरक्षण जातशंकै देवैररातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः।—उरू० १।३३

७. कौसल्ये सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु गर्भे रामो धृतः। प्रतिमा
विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलेक्षणः।
गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः। बाल० १।१२

८. लिम्पतीव ... विफलतांगता।—चारु० १।१९
व्यामृष्ट ... रचयतीव मनुष्यलोकः। अवि० २।१३

से वर्णित किया गया है ।

२३. दूतवाक्य तथा दूत घटोत्कच में अर्जुन के पराक्रम[1] वर्णन में अत्यधिक साम्य है। अर्जुन का भगवान् शंकर के साथ युद्ध, खाण्डव वन दहन, इन्द्र को पीड़ित करने वाले निवात कवचो का विनाश तथा विराट के विरुद्ध कौरवो को अकेले अर्जुन का परास्त करना आदि। दूत वाक्य में वासुदेव ने दुर्योधन से तथा दूत घटोत्कच में धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से अर्जुन के इन गुणो का संकीर्तन किया है। उरुभग मे द्वितीय भट ने भी इसी प्रकार का गुण-गान किया है।

२४. द्विधा कृत[2] की उपमा का वर्णन भी कई स्थलो पर समान रूप मे किया गया है। बाल चरित में वसुदेव यमुना के जल को, अभिषेक में समुद्र को, अविमारक मे अपने शरीर के विषय में अविमारक की उक्ति भावसाम्य का प्रदर्शन करती है।

स्वप्न तथा प्रतिज्ञा को सभी विद्वान् भासकृत मानते है और इनके उद्धरण, वर्णन साम्य अन्य रचनाओ मे भी मिलते है। अतः मेरे विचार से ये सभी नाटक भास की ही रचना प्रतीत होती है।

१. (घ) प्रामाणिकता के स्थिरीकरण में भास की अपनी विशेषताएँ

१ स्वप्न तथा शयन का प्रसंग।
२ शाप तथा शपथ का उल्लेख।
३ कथा के परिवृंहण मे हाथी का केन्द्रीभूत रूप में अंकन।
४ हस्तिशिक्षा तथा वीणाविशारदता प्रणय-सूत्र के साधक।
५. अश्रुसिक्त स्थलो का सुप्रयोग।
६. ब्रह्मचारी पात्र का सायोगिक प्रवेश।
७. मंत्रित्व की प्रतिष्ठा।
८ कन्या-पितृत्व के दो रूप।
९. अपराध की स्वीकृति।
१०. प्रमुख समान भावों की उपयुक्तता का अंकन।
११. सम्पूर्ण पद्य की आवृत्ति।
१२. गद्य खण्ड का आवृत्यात्मक प्रयोग।
१३. नाटकों में प्रयुक्त शब्दो का मुहुर्मुहुः प्रयोग।

---

१. कैरातं वपुः···भीष्मादयो निर्जिताः। दूत वा० १।३२
. शक्रं पृच्छ पुरा···पृच्छ चित्रांगदम्। दूत घटोत्कच १।२२
सृष्ट्वा खाण्डव ··प्रतिग्राहिताः। उरू० १।१४

२. यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता। बाल० १।१३
द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः। अभि०, पृ० ३५१
द्विधाविभक्तं खलु मे शरीरम्। अवि० ४।२१

१. स्वप्न तथा शयन के वर्णन स्थलों का भास की रचना में संकेत

रंगमंच पर नाट्यशास्त्र विरोधी दृश्यों में शयन का अभिनीत करना वर्ज्य समझा गया है। शयन के साथ विभिन्न नाटकों में स्वप्न का प्रसंग भी स्वाभाविक रूप से कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिससे नाटकीय अभिनेयता में द्रुतता तथा आशातीत सफलता की समुपलब्धि होती है। भास के वर्णन में स्वप्न और शयन का प्रसंग परम उचित रीति से अंकित किया गया है जिसमें आलोचकों को अभिनेयता की दृष्टि से किंचिन्मात्र भी आलोचना का अवकाश नहीं है। दैनिक जीवन में व्यवहार में आने वाली घटनाओं का अंकन भास की मौलिकता का परिचायक है। इन्होंने स्वप्नवासवदत्ता आदि अपने नाटकों में स्वप्न तथा शयन के प्रसंगों को इस प्रकार प्रयुक्त किया है। स्वप्नवासवदत्ता नाटक का नाम भी पूर्णतया सार्थक करने के लिए स्वप्न की महती महत्ता स्पष्ट हो जाती है। राजा तथा विदूषक[1] वार्तालाप करते हुए 'आप सो गए'। पद्मावती के सोते हुए श्वास की गति के द्वारा शयन तथा स्वस्थता की सामान्य पुष्टि की गई है। शय्या के एक ओर सोते हुए देख स्नेहवश वासवदत्ता भी वहीं सो जाती है।

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण[2] नामक प्रकरण के आरम्भ में ही नाटककार ने नटी द्वारा स्वप्न में राजा की अस्वस्थता का आभास दिखलाया है।

अविमारक[3] में मागधिका तथा कुरंगी आलाप में सोने को कहती है और स्वप्न की भाँति यह क्या है, ऐसा अनुभव करती है। पुनः नलिनिका तथा मागधिका भर्तृदारिका की मण्डनवेला के सम्बन्ध में स्वप्न की भाँति अनुभव करती है तथा अविमारक भी पर्वत

---

१. विदूषक—अयि सुप्तोऽत्र भवान् ।—स्वप्न०, पृ० ४०
वासवदत्ता—इयं पद्मावत्यवसुप्ता ।—स्वप्न०, पृ० ४१
वासवदत्ता—दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः ।—स्वप्न, पृ० ४२
राजा—आः ! उदकस्नान ''सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।—स्वप्न, पृ० ४३
विदूषक—एतस्मिन्'''सा त्वया स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।—स्वप्न, पृ० ४३
राजा—स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ।।—स्वप्न० ५।१०
योऽयं संत्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ।।—स्वप्न० ५।११
वासवदत्ता०—एकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिंगेति यावत् शयिष्ये ।
—स्वप्न०, पृ० ४१

२. अद्य मया स्वप्ने ज्ञातिकुलस्यास्वास्थ्यमिव दृष्टम् ।—प्रतिज्ञा, पृ० १

३. उभे०—स्वप्न इव किमेतत् ।—अवि०, पृ० १४९
अवि०—विद्याधरं दृष्ट्वा । भोः कोनुखल्वयम् अथवा, स्वप्नोऽयं भवेत् ।
नह्यहंसुप्तः ।—अवि० पृ० ११३
अवि०—अयि को नु खलु ' सुप्तः ।—अवि०, पृ० १५९
विदू०—स्वप्ने हस्तिनाशाद्यमानस्येव ।—अवि० पृ० १२१

से पतन के समय विद्यार्थर को देखकर स्वप्न की भाँति सोचकर किन्तु स्वय ही सोया नहीं हूँ इत्यादि विभिन्न कल्पनाएँ करता है तथा सोये हुए विदूषक को 'अरे कौन सोया है'. कहता है। विदूषक—मैं बहुत देर सोया हूँ, कहता है तथा स्वप्न मे हाथी द्वारा पीडित हुए की भाति कल्पना करता है। नलिनिका और मागधिका दोनो मिलकर स्वप्न की भाँति 'यह क्या हुआ' कहती है।

चारुदत्त[1] तृतीयांक मे विदूपक नायक के 'नींद मुझे वाधित कर रही है' कहने पर स्वय भी कहता है कि 'आप सुखपूर्वक उठने के लिए सोइये', मैं भी सोता हूँ। आगे इसी अंक मे सज्जलक विदूषक को स्वर्ण भांड देते हुए देखकर कहता है कि 'बल लाघव के कारण स्वप्न में कह रहा है (देखकर) निश्चय ही यह सो रहा है।

प्रतिमा[2] नाटक के द्वितीयांकारम्भ मे सुधाकार क्षणभर शयन करता है। अभिषेक[3] नाटक में द्वितीयाक मे सीता हनूमान् से वार्तालाप मे राम विषयक वार्ता की सत्यता में स्वप्न का-सा अनुभव करती है।

बालचरित[4] द्वितीयाक मे राजा प्रतिहारी से कहते है कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं। पुन. राजा शय्या पर जाकर सो जाते है। शाप के साथ वार्तालाप की अभिनव कल्पना की गई है। शाप भी देखकर कहता है कि अरे सो गया।

२. शाप तथा शपथ वर्णन के स्थलों का भास की रचनाओं में निर्देश

महान् कवि तथा नाटककार भास की अमर कृतियो के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि साहित्य समाज का प्रतिविम्ब तो होता ही है किन्तु नाटककार, लेखक तथा लिपिबद्ध करने वाले महान् मनीषी निजी परिस्थितियों के प्रभाव से अपनी रचनाओ को मुक्त नही रख पाते है। उनकी रचनाएँ परिस्थितियों की छाया से स्वाभाविक रूप मे प्रभावित होती है। प्रमाण तो यहाँ तक प्राप्त होते हैं कि वे इन्हीं परिस्थितियों से अनुप्राणित होकर ही महान् उपदेष्टा अथवा लेखक के रूप मे जगत् के समक्ष उपस्थित होते है। भास की उपलब्ध रचनाओं से स्पष्ट है कि ये अपने जीवन मे पूर्ण सुख-सुविधा सौरभ से सुरभित रहकर पश्चात् में आर्थिक एवं सम्मान संकट मे अवश्य रहे जिसके कारण इन्होंने ब्राह्मण तथा ऋषि शाप के साथ पारस्परिक वार्तालाप में शाप का विशेष महत्त्व प्रदर्शित किया है।

---

१. विदू०—शेता भवान् सुख प्रबोधाय। यावदहमपि स्वप्स्यामि।—चारु०, पृ० २२७
सज्जलकः—आहोस्वित् सत्वलाघवात् स्वप्नायते।
भूतार्थ सुप्त एवायम्।—चारु०, पृ० २२६
नायकः—मैत्रेय ! सुप्यताम्।—चारु०, पृ० २२५।

२. सुधाकारः—यावन्मुहूर्त स्वप्स्यामि।—प्रतिमा, पृ० २७२

३. सीता—किन्नु खलु स्वप्नो मया दृष्टः।—अभि०, पृ० ३३७

४. राजा—कि स्वप्नो नु मयानुभूतः।—बाल०, पृ० ५२६
राजा—यावदहमपि शयनमुपगम्य नयनव्याक्षेपं करोमि।—स्वपिति।
शापः—अये प्रसुप्तः। बाल०, पृ० ५२७

इन्होंने मित्रत्व की शपथ देकर प्रसंगों में सजीवता तथा शाप का भय दिखलाकर सामाजिक स्वच्छन्दता को नियमित करने का भरसक प्रयास किया है।

निम्नांकित स्थलों का सकलन इस विषय की पुष्टि मे सहायक होगा।

शपथ का प्रसंग—स्वप्न वासवदत्ता के चतुर्थांक मे विदूषक[1] तथा राजा की मि: हास्य दशा मे विदूषक 'रानी पद्मावती तथा वासवदत्ता दोनों में विशेष स्नेहास्पद कौन है' इस विषय पर राजा को शान्त तथा तटस्थ पाकर अपने वयस्यत्व की शपथ देकर पूछता है तथा किसी से भी न कहने की शपथ के साथ अपनी जिह्वा को काटता है।

यौगन्धरायण[2] तथा हंसक के वार्तालाप में हंसक राजा उदयन द्वारा अपने जीवन की शपथ का स्पष्टीकरण प्रतिज्ञा मे करता है।

अविमारक[3] मे विदूषक ने शाप के भय से अपने को प्रकट न करने का सकेत किया है। सौवीरराज कुंतिभोज से वार्तालाप में अपने-आपको शाप का भय बतलाता है, और शाप के भय से उसका क्षुभित मन किस प्रकार शान्त हुआ यह भी दर्शाता है।

चारुदत्त[4] में विदूषक सज्जलक से कहता है कि मेरे ब्राह्मणत्व से तुम शापित हो यदि तुम ग्रहण नहीं करते हो। विदूषक ब्राह्मणी से झूठ बोलने में शाप का भय दर्शाता है।

प्रतिमा मे राम सीता से राजा के प्राणों की शपथ[5] का स्मरण दिलाते है। राम ने स्वयं भी शाप का वर्णन किया है। रावण सीता के अक्षर-मात्र से शप्त होकर जल सा रहा है। भरत राम के पास आने पर भी शपथ के कारण लौट जाते हैं और सुमन्त्र ने सत्य

१. विदूषक—वयस्यत्वेन शापितोऽसि यदि सत्यं न भणसि। भोः सत्येन शपामि कस्मा अपि न आख्यास्यामि। एषा संदष्टा मे जिह्वा।—वासव०, पृ० २१

२. हंसक—तत आत्मजीवितनिर्दिष्टेन शपथेननिवार्य...!—प्रतिज्ञा, पृ० ६३

३. विदूषक—भो वयस्य! शापेन शापितोसि।—अवि०, पृ० १६०
सौवीरराज—इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान्।—अवि०, पृ० १७७
सौवीरराज—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा...शनैः शनैः कृतवान्। अवि०, पृ० १७८

४ सज्जलक—मम ब्रह्मत्वेन शापितोऽसि।
सज्जलक—किमत्र शपथपरिग्रहेण।—चारु०, पृ० २३०
विदूषक—शापितासि तत्र भवता चारुदत्तेन, यद्यलीकं भणसि। चारु० पृ० २३५

५. रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आसन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः
—प्रतिमा०, पृ० २५६

रामः—नैवं नृपः वसुकृतैः...मे शापितो न...।—प्रतिमा० ४।२४
रावणः—अस्याः परिजितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः।—प्रतिमा० ६।२०
भरतः—लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते।—प्रतिमा० ६।७
भरतः—महाराजपादमूलेन शापितः स्याः।—प्रतिमा०, पृ० ३०३
भरतः—किं शप्तो महाराजः।—प्रतिमा०, पृ० ३०८
कैकेयी:—अपरिहार्यो महर्षिशापः।—प्रतिमा० सप्तम अंक

बोलने मे राजा की शपथ लेते है। भरत पुनः क्या राजा शापित है तथा कैकेयी महाराज को ऋषि शाप की अपरिहार्यता कहती है।

अभिषेक में हनूमान्[1] राम से सुग्रीव तथा बाली के युद्ध के समय शपथ का स्मरण कराते है। रावण विभीषण से गुप्त बातो को जानने के लिए अपने प्राणो की शपथ देता है। दूत वाक्य मे वासुदेव से पाण्डवो की उत्पत्ति के विषय में दुर्योधन[2] मुनि शाप की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। मध्यम में भीम[3] सत्य की शपथ से भय न जानने को कहता है। उरुभग[4] मे अश्वत्थामा राजा दुर्योधन से पाण्डवो को युद्ध मे जलाने की शपथ लेता है।

बालचरित मे कवि ने शाप को स्वयं प्रतिमान[5] रूप में प्रवेश कराया है और उससे कहलाया है कि मै मुनि शाप तुझ अधर्म चारी का सर्वनाश करूँगा। राजा भी मधूक ऋषि के शाप का स्मरण करता है।

३. कथा के परिवृंहण में हाथी के केन्द्रीभूत रूप में अंकित स्थलों का निर्देश

भास की कृतियो के आन्तरिक अध्ययन से यह विवृत होता है कि इनकी कथा-वस्तु मे समानता की उपलब्धि है। नाटककार के समय प्रचलित कलाओ के प्रतिबिम्ब की मनोरम झाँकी हमे मिलती है कि कवि के समय वीणावादन विशेषज्ञ तथा हस्ति-शिक्षा विशारद प्राप्त होते थे और इनका विशेप प्रचलन भी उस समय रहा होगा। किन्तु वर्तमान समय मे हस्ति-शिक्षा पर कोई प्रामाणिक ग्रन्थ हस्तगत नही हुआ है। भारतीय स्वातन्त्र्य १९४७ अगस्त से पूर्व भारतीय स्टेट्स मे हाथियो की संख्या राजसीय गौरव-गरिमा की गाथा की उपगायिका तथा द्योतिका समझी जाती थी। किन्तु अमर सेनानी सरदार पटेल की कर्मठता के कारण भारतीय इतिहास में यह स्वर्णिम वेला आई कि ये विभिन्न छः सौ रियासतें भारत का अभिन्न अंग हो गई और उनमे राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तन आया। इन आर्थिक सकट से हाथियो का भार सँभालना कठिन हो गया और ये आज म्यूजियम की वस्तु रह गई।

प्रस्तुत रचनाओं में भास ने अपनी कथाओ की प्रणय-ग्रन्थि में हस्ति का सहारा

---

१. हनू०—बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलः··· अवस्था शपथश्चैव ··चिन्त्यताम्। —अभि० १।१५

रावण—किं गूहसे। मम खलु प्राणैः शापितः स्याः।—अभि०, पृ० ३४६

२ दुर्योधनः—वने पितृव्यो···मुनिशापमाप्तवान्। दूत० वाक्य १।२१

३. भीमः—शपामि सत्येन भयं न जाने।—मध्यम० १।४१

४. भीमः—भवना चात्मनश्चैव वीरलोकैः शपाम्यहम्।—उरु०

५. ततः प्रविशति शापः।—बाल०, पृ० ५२६।

शापः—परिध्वजामि ··प्राप्नोमि मुनिशापस्त्वामचिरान्नाशमेष्यसि।—बाल० २।९।

वसुदेवः—शौरसेनीमातः! राजा—मधूकस्य ऋषेः शापं।—बाल० २।१५।

लेने का सफल प्रयास किया है तथा नायक को हस्ति-शिक्षा विशारद के रूप में अंकित किया है। प्रमुख रचना 'वासवदत्ता'[1] मे धात्री द्वारा वासवदत्ता को वीणा व्यपदेश के द्वारा दी गई बतलाया है।

प्रतिज्ञा मे राजा उदयन को वीणा विशेषज्ञ होने के साथ-साथ हस्ति-ग्रहण मे नितान्त निपुण प्रदर्शित किया है और इसी कारण वह हस्ति-शिक्षा प्राप्त नीलकुवलय-तनु नाम के चक्रवर्ती हाथी को पकड़ने जाता है।[2] प्रणय कथा की प्रगति मे हाथी को केन्द्रीभूत मानने मे अतिशयोक्ति न होगी। यथा प्रतिज्ञा[3] में राजा महासेन ने अपनी दुहिता वासवदत्ता को गन्धर्वासिक्ता जानकर वत्सराज के साथ पाणिग्रहण के लिए प्रयास किया है। अन्य राजाओं ने विवाहार्थ दूत सम्प्रेषणा भी की और उदयन की ओर से कोई ऐसा प्रस्ताव नही आया तथापि महासेन उसीसे विवाह करना अभीष्ट समझता है। क्रोध में उसे कुञ्जरज्ञानदृप्तः कहता है। महासेन येन-केन प्रकारेण छल-छद्म द्वारा उदयन को गृहीत करने का सफल प्रयास करता है जिसका आधार नीलकुवलयतनु नाम का हाथी हस्ति-शिक्षा मे निपुण है, ऐसा जनवाद कराकर उसे बन्दी बना लेता है।[4] हंसक ने उस हाथी को साल वृक्षों की छाया मे नीलिमा मे विलीन रंग के कारण अशरीरी केवल दन्तयुगल से सूचित दिव्य वारण बतलाया है। वस्तुत: वह स्वनिर्मित हाथी के आकार का था। बाह्याकृति हाथी तथा अंतर्गत धनु शत सैनिक थे। अत. छद्म में ही उदयन को पकड़ा गया। हस्ति-शिक्षा कौशल बल पर ही प्रतिज्ञा मे यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा पूर्ति की अभिव्यक्ति स्पष्टतया प्राप्त होती है। यौगन्धरायण स्वयं छद्मवेष मे महासेन-राज्य मे वसंतक से राजा को सूचना देने का निर्देश करता है कि तुम पुन: स्वामी से मिलो और सूचित कर दो कि कल वह समय है कि जब उनके विमोचनार्थ नलागिरि हाथी को छोड़ा जाएगा।[5] रोपित उस हाथी को दुर्दमनीय जानकर महाराज प्रद्योत आपको बन्धन मे अवश्य मुक्त करेंगे। आपको नलागिरि हाथी को स्वाधीन करके उसपर आसीन होकर राज्य से बाहर जाना है। अन्त में स्वय 'येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते' कहता है। छद्म हाथी के द्वारा उदयन को गृहीत किया गया तथा वहीं उदयन छल के द्वारा हाथी के सहारे मुक्ति भी पा जाता है और साथ ही वासवदत्ता को भी ले जाता है। यौगन्धरायण स्वय विजयसुन्दर हाथी के दांत से असिभग होने के कारण गृहीत होता है। अत: हाथी को महान् नाटककार ने प्रतिज्ञा की

१. धात्री—अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता।—स्वप्न०, पृ० ५०

२. हंसक—अस्त्येष चक्रवर्ती हस्ती नीलकुवलयतनुर्नाम हस्तिशिक्षायां पठितः। गजं ननहं वीणाद्वितीय आनयामीति।—प्रतिज्ञा, पृ० ६२

३. राजा-कथमुत्पन्नोऽस्या गान्धर्वेऽभिलाषः।—प्रतिज्ञा, पृ० ७५
राजा—मम हयखुरभिन्नं ' प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः।—प्रति २।३

४. हंसक—सालवृक्षच्छायाया सावर्ण्यनष्टनीलतया प्रोद्भासिताभ्याम् अशरीराविनिक्षिप्ताभ्यामिव दन्तयुगलाभ्या सूचितो धनुःशतमात्रेणैव दृष्टः स दिव्यवारणप्रतिच्छन्दः।—प्रतिज्ञा, पृ० ६३

५. यौगन्ध०—वसन्तक! गच्छ भूयः स्वामिनं पश्य विज्ञाप्यतां च स्वामी या सा प्रयाणं प्रतीह प्रस्तुता कथा तस्याः श्वः प्रयोगकालः।—प्रतिज्ञा पृष्ठ ६०

कथा मे केन्द्र बिन्दु बनाया है।

विमारक नाटक मे भी नायक अविमारक प्रच्छन्न रूप से नगर मे निवास करता है। राजमार्ग पर जाते हुए एक विशाल हाथी के रोषाक्रान्त होकर राजदारिका[1] कुरंगी के यान की ओर आने का प्रसग दर्शाकर तथा उस दुर्लभ अवस्था में राजदारिका को अभय रक्षण प्रदान कर वह बलवान् राजकुमार हाथी मे आक्रान्त हुआ, किन्तु उसके हटा देने पर वह विशाल व्याल राजकुमार को ही मारने आया। इस पर राजा ने कौञ्जायन से पूछा किसने उसे सनाथ किया। कौञ्जायन दर्शनीय कुमार के गुणो का वर्णन भी करता है। राजदारिका को मुक्ति दिलाने वाले व्यक्ति के विषय में राजा ने शीघ्र ही 'कतरकुल समुद्भूत परव्यसनसहाय.' पूछकर कुरंगी के विवाह की भविष्यवाणी की पुष्टि की है। अविमारक[2] राजप्रासाद मे कुरगी से मिलने के लिए हस्तिशाला मे रज्जु को रखकर उसका का उपयोग करता है।

चारुदत्त[3] मे भी नाटक के नायक चारुदत्त द्वारा किसी परिव्राजक को हस्ति समर्दन के समय त्राण प्रदान करने वाले चेट को अपने प्रावारक को देते देखकर इस प्रकार गुणानुरागी होने के बल पर वसन्त सेना चारुदत्त पर मुग्ध हो जाती है और उत्कठित होकर उससे स्नेह करने लगती है। यहाँ हाथी भी भिन्न नाम का (मंगल हस्ति) चुना गया है। अविमारक में नारदमुनि के द्वारा पूर्व वृत्तान्त सुनकर स्पष्ट शब्दो मे कुन्तिभोज के यह पूछने पर कि मेरी कन्या कुरंगी किसने दी, किस प्रकार अविमारक कन्यापुर मे प्रविष्ट हुआ। नारद[4] उत्तर मे कहते है कि विधि ने गजसम्भ्रम मे देखने पर दे दी।

वस्तुत इन तेरह रचनाओ की कथावस्तु मे दो रामायण से, छ महाभारत से तथा एक कृष्णकथा से सगृहीत है। केवल चार नाटको की कथावस्तु वृहत्कथा से ली गई है, तथापि भास की अपनी अभिनव मौलिक प्रतिभा का सुयोग सर्वत्र सुलभ है। किन्तु इन चार लोक-कथाओ पर आधारित रचनाओं मे सामयिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक प्रभाव प्रदर्शन को अधिक अवकाश मिला है। उदयन की कथा को उस समय लोक-गाथाओं से विशेष प्रश्रय मिला है, ऐसा अनुमान से पुष्ट भी हो जाता है। यह निश्चय है कि भास के

---

१. कौञ्जायन—सहसैव स्वामिदारिका यानमेव प्राप्तः स हस्ती
कौञ्जायन—बलवान् स्वामिदारिकायाम् हस्तिनाभिभूयमानायां द्विपवरम्। ततस्तेन स्वामिदारिका विहाय तमेव हन्तुकामः।—अवि०, पृ० ११२

२ अवि०—क्व नु खलु…रज्जु प्रच्छादयामि। भवतु दृष्टम्। अस्यां हस्तिशालायां पाशं छित्वा क्षिपामि। अवि०, पृ० १४१

३. नारद—दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे।—अवि०, ६।१४

४. चेटः—शृणोत्वज्जुका एष "प्रस्तुतमदगर्वं राजमार्गं कुर्वता मंगलहस्तिना भद्रकपोतकेनानेकपुरुषसकुलेषु राजमार्गेषूत्तरीयपट विरागतयाधिकलक्षणीयः कश्चित् प्रव्रजितः समासादितः। ततो मयाहस्तिहस्ता मर्दताड्यमानो "हाहाविपाटितो इति जनवादे संवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण हस्तिनं कृत्वा मोचितः स परिव्राट्।…प्रावारकः प्रेषितः।
गणिका—को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति।—चारुदत्त पृ० २२१-२२२

ामय हाथियो का भय विशेष रहा होगा और इस भय से रक्षा या जीवनदान को महत्त्व दया जाता रहा होगा । क्योंकि इन चारो नाटकों मे नायक का स्नेह-तड़ाग वीणा अथवा ारण वारि से सिंचित लक्षित होता है । यद्यपि आलोचक महोदय इस प्रसंग को संयोग-श भी कह सकते है, किन्तु इसमें कवि की अभिलाषा प्रतीत होती है ।

ललित कलाओं के प्रसग वर्णन में स्वप्न वासवदत्ता मे उदयन का वीणा विशारद ोना, घोषवती वीणा वादन में वासवदत्ता को शिक्षित करना इस नाटिका की कथावस्तु ां प्रधान आधार है । प्रतिज्ञा में वासवदत्ता नारदीय वीणा वादन की शिक्षा प्राप्ति के लिए तालिकी के समीप जाती है । अन्य कांचनमाला को भी वीणायोग्या करने का प्रसग । राजा महासेन देवी से अपनी कन्या की शिक्षा के लिए 'पति ही इसे शिक्षा देगा' ऐसा हते है । अत. निश्चित है कि राजा की दृष्टि मे वर के गुणो मे वीणा विशारद होना त्यन्त आवश्यक था अन्यथा क्या सम्भव है कि वर वीणा वादन में निपुण ही हो । उदयन प्रति वीणावादन तथा कुञ्जरज्ञान के कारण राजा का आकर्षण प्रतीत होना है । राजा र्पयत्येनं दायादागतो गान्धर्वो वेद.' कहकर उदयन को गर्वित घोषित करते हैं । अवि-रक' में भास ने हाथी के कुरंगी की ओर आक्रमण करने के पूर्व उसके विशेषणों में एक क्ति को प्रकाश में लाने वाला कहा है, क्योंकि इस प्रकार की घटना का होना साधारण । में ही व्यक्त किया जाना चाहिए था तथापि कवि ने इसको विशेष महत्त्व दिया है । ामिसचिवो द्वारा इस कथा का राजा तक निवेदन अपरिहार्य है । आज भी अप्रतिम शौर्य शित करने वाले दुर्दमनीय साहसी व्यक्तियों को राष्ट्रपति पदक से विभूषित किया ाा है । अत. सदैव से ऐसे कार्यो का महत्त्व रहा है । कौजायन द्वारा राजा से इस समाचार-ादन काल में स्वामिदारिका के यान की ओर हाथी के आने पर राजा ने कुरगी के विषय छा कि उसे किसने सनाथ किया । कवि राजा से किसीके द्वारा रक्षा की गई, ऐसा कहला ता था, किन्तु यह कवि-कामना ही है कि इस प्रकार रक्षा-सम्बन्धी कठिन कार्य का ा नाथ पदेन ही व्यवहृत हुआ है, अतः शीघ्र ही वे 'कतरकुलसमुदभूत: परव्यसन-य.' भी कहला देते है । इससे स्पष्ट है कि सामयिक चित्रण कवि को अभीष्ट है

अश्रुसिक्त स्थलों का संकेत

कवि स्वयं भावुक होता है, उसकी सफलता स्वानुभूत तथ्यों के अकन मे तथा कों के मर्मस्थलो का स्पर्श कराते हुए उन्हें भावुकता रूपी सागर में विनिमज्जित ा में निहित रहती है । पाश्चात्य यूरोपीय विद्वानो ने दुःखान्त नाटको को ही उत्कृष्ट : में परिगणित किया है तथा भारतीय नाटकों के केवल सुखान्त होने के कारण विषा-ा के अभाव की आलोचना की है किन्तु यह तो उद्देश्य की भिन्नता पर निर्भर है ।

कौजायन—ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीड्य निवर्तमानायां राजसुतायांस्वामिसचिवानां वक्तव्य जन-यितुकाम इवैकपुरुषविशेषं प्रकाशयितुमिच्छन्निव तं देशमभ्युपगतो हस्ती ।
राजा—अथ केन सनाथी कृता कुरंगी ।—अवि०, पृ० ११२

भारतीय नाटककार जीवन की विविधता, वैपम्य के सजीव चित्रण के अनन्तर नाटक को परिणाम मे सुखावह करके विरत हो जाता है। पाश्चात्य विद्वान् विषादान्त ही में आस्था करते है। वस्तुत जीवन की विविधता मे अन्तिम महत्त्व सुख एव शान्ति की परिणति ही मानी गई है। भारतीय सस्कृत साहित्य के आदिम नाटककार भास की रचनाओं मे आन्तरिक वैपम्य के साथ पीड़ित एवं सतप्त दशाओ मे अश्रुसिक्त स्थलो की बहुलता दर्शनीय है। पाठक इन स्थलों को निहारकर कवि-हृदय की सच्ची टीस का अनुभव करके भारतीय नाटक वाङ्मय की आलोचना को उपेक्षणीय कह सकेगे। उपर्युक्त सदर्भ के अन्तर्गत उन्ही स्थलो की ओर सकेत किया गया है जहां नाटककार विभिन्न नाटको मे पात्रों को बाष्प-पर्याकुल अथवा अश्रुसिक्त दशा में अकित करता है।

स्वप्नवासवदत्ता के प्रथमांक में ब्रह्मचारी राजा को 'प्रततरुदित' कहता है। गुप्त रूप मे निवास करती हुई वासवदत्ता पद्मावती से वार्तालाप मे राजा उदयन को देखकर 'साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टि:' वाली हो जाती है। नाटककार ने अश्रुओ के निर्वहण का कार्य भ्रमरो के[1] द्वारा गिराए गए पराग के कारण दृष्टि को जलयुक्त होना वर्णित किया है। इसी अक मे विदूपक[2] तथा राजा के वार्तालाप मे विदूपक पद्मावती तथा वासवदता दोनो मे कौन श्रेप्ठ है ऐसा पूछने पर राजा को अश्रुयुक्त पाता है। वासवदत्ता के प्रति वह उत्कण्ठित हो जाता है। पुन. विदूषक द्वारा वायु के बहने से काशकुसुमरेणु पतन से अश्रुपात कहकर निर्वाह किया जाता है। राजा स्वय पद्मावती से कहते है। पुन. छठे अक मे प्रतिहारी[3] के कथन मे राजा उदयन घोषवती वीणा की समुपलब्धि पर वीणा को सम्बोधित करते हुए सजीव की भाँति पूछता है कि तूने वासवदत्ता को देखा है। यह कहते हुए उसकी दृष्टि अश्रुसिक्त हो जाती है।

प्रतिज्ञा[4] नाटक मे उदयन के पकड़े जाने का समाचार लेकर जब हसक यौगन्धरायण के समीप पहुँचता है तो वह राजा को संदेश भेजते समय उसे अश्रुओ से युक्त बतलाता है। प्रतिज्ञा में ही राजा तथा देवी की वार्तालाप मे वासवदत्ता के विवाह के प्रसग मे रानी के लिए राजा कहते है कि उसकी दृष्टि[5] आँसुओं से पूर्ण है, यह क्या निश्चय करेगी।

अविमारक[6] तृतीयाक मे सलज्जा कुरगी को अधिक रुदन मे क्या? मै शरणागत

१. वासवदत्ता—एपा खलु मधुकरा ' काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः। —स्वप्न०, पृ० २८।

२. विदूपक—अश्रुपातक्लिन्नं भवतो मुखम् यावन्मुखोदकमानयामि।
पद्मावती—बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्यमुखम्।
विदूपक—भवति। वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाक्षिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम्। तद्गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम्।—वासव०, पृ० ३२।३३।

३. प्रतिहारी—ततो ' बाष्पपर्याकुलेन मुखेन ''घोषवति।—वासव०, पृ० ४५

४. हंसक—भर्तारमन्तर्जलावगाढया दृष्ट्या ''कामेनास्मि भर्त्रोक्तः।—प्रतिज्ञा पृ० ६९

५. राजा—अश्रुपूर्णा व्याकुला कथं निश्चयं गमिष्यति।—प्रतिज्ञा, पृ० ७३।

६ ततः प्रविशति सास्रा नलिनिका।—अवि०, पृ० १४८

हूँ' ऐसा अविमारक के कहने पर कुरगी के नेत्रो को आश्रुओं से आपूरित बतलाया गया है। पुन. नलिनिका भी अश्रुओं से युक्त होकर प्रवेश करती है।

अविमारक[1] चतुर्थांक में कुरगी को अश्रुओं से युक्त कहा गया है। वह शिला तल पर बायें हाथ पर मुख को रक्खे हुए बैठी है। उसकी इस दशा के सजीव चित्रण मे भी बाष्पो का निवारण असम्भव है। अविमारक विदूषक से वार्तालाप करते-करते कुरगी की दशा देख उसे अश्रुओ से युक्त वर्णित करता है। राजा कुन्तीभोज और सौवीरराज के नेत्र वार्तालाप करते समय अश्रुसिक्त हो जाते है तथा सौवीरराज अपने पुत्रगत शोक को अश्रुओं द्वारा दूर किया हुआ कहता है।

चारुदत्त[2] मे चेटी शकार को पैर से ताड़ित करती हुई रोकर कहती है। विदूषक ब्राह्मणी से अलीक कहने पर शाप का भय देता है वह अश्रुसिक्त नेत्रो से कहती है।

प्रतिमा[3] मे सीता अभिषेक जल को मुखोदक कहती है। राम राज्याभिषेक—वर्णन सुनाते समय अपने पिता की अश्रुधारा का वर्णन करते है तथा वन-गमन समय अश्रुसिक्त मुख वाली सीता को सभी पुरवासियो द्वारा देखने को कहते है। सुमन्त्र राम के वन चले जाने पर भृत्यगण की दशा मे नेत्रो को अश्रुओ से आपूरित दर्शाते है। सुधाकार अपने अपराध को रोकर ही व्यक्त करता है।

भरत[4] कैकेयी से अपने को अपयश से' सम्पूर्ण अयोध्या को निरन्तर रोने से युक्त कर दिया' ऐसा कहते है। सीता सुमन्त्र को अपनी दीर्घायु का दोष देते हुए अश्रुओं से युक्त पाती है। आर्य राम भी रुदन करते हैं। रावण सीता को रोते देखकर स्वय को आर्यपुत्र समझने के लिए कहता है।

अभिषेक[5] मे हनूमान् लका में स्थित सीता को वाष्पससिक्तवक्त्रा कहते है।

अवि०—वाष्पाविला मामनवेक्षमाणा ।—अवि० ४।२
वाष्पं-निवारयितुमूर्ध्वमवेक्षमाणा ।—अवि०, पृ० १६५ ।
नेत्राभ्या वाष्पपूर्णाभ्या किन्नु कर्तु व्यवसिता ।—अवि० ५।३
उभौ परिष्वजेते···वाष्पाहतगद्‌गदं च···नेत्रे सबाष्पे ।—अवि० ६।२

२. चेटी—शकार पादेन ताडयन्ती रुदित्वा । चारु०, पृ० २०७
विदू०—रोदितीव भवत्या दृष्टिः, एषा वाचा दुःखं रक्षित्वाश्रुभिः ।—चारु०, पृ० २३५ ।

३. सीता—यद्येवं, न तदभिषेकोदकं मुखोदकं, नाम ।—प्रतिमा, पृ० २५४
रामः—सर्वं वाष्पेण···शिरः ।—प्रतिमा १।६
सुमन्त्र—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा,
स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाक्षाः ।—प्रतिमा २।१३
सुधाकार—रुदित्वा ।—प्रतिमा, पृ० २७५

४. भरत—प्रततरुदितैः···मृगैः ।—प्रतिमा ३।१७
सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।—प्रतिमा, पृ० २८१
रावण—विलपसि किमिदं विशालनेत्रे ।—प्रतिमा, पृ० ३००

५. हनूमान्—वाष्पसंसिक्तवक्त्रा । अभिषेक २।८

पचरात्र[1] मे दुर्योधन से वार्तालाप में द्रोण कहते है कि अश्रु वेग मुझे बाधित कर रहा है और दुर्योधन अश्रु वेग से अशौच की स्वच्छता के लिए जल मँगाता है तथा द्रोण अपनी कार्य-सिद्धि को ही मुखोदक कहते है। पचरात्र में ही अभिमन्यु को देखकर युधिष्ठिर स्वागत कहते है कि मेरे सामने अश्रुओ से युक्त यह लज्जित होता है।

उरुभंग[2] मे द्वितीय कहता है कि भीम दुर्योधन गदायुद्ध मे युधिष्ठिर दीनता को प्राप्त हो रहे है और विदुर अश्रुयुक्त नेत्रो वाले है। दुर्योधन अपनी स्त्रियो को रोते हुए देखकर दुःखित होता है। बलदेव भी गांधारी को अश्रुयुक्त देखकर कहते है। दुर्योधन अपनी धर्मचारिणी को रोता हुआ देखकर रोने का निषेध करता है।

५. अश्रुओं के पीड़ा प्रतिकारक के रूप में अंकित स्थलों का निर्देश

भास ने अश्रुओ द्वारा कष्ट के निराकरण हो जाने से बुद्धि का हल्का हो जाना व्यंजित किया है। स्वप्नवासवदत्ता[3] मे उदयन वासवदत्ता के वियोग मे अश्रुधारा प्रवाहित कर अपने ऋण से उऋण होना व्यक्त करता है।

अविमारक[4] मे कवि ने बाष्प के द्वारा सौवीरराज का हृदयगत शोक दूर करने का प्रसंग वर्णित किया है। वह अपने पुत्र के वियोग से व्यथित है। भास ने प्रेमीजनो के वियोग मे उनकी स्मृति मे कष्ट का अनुभव किया है तथा अश्रुधारा प्रवाहित करके उस कष्ट की पीडा को दूर करने का प्रयास किया है। वस्तुतः प्रेमी के वियोग मे अश्रु प्रवाहित होने से हृदय के हल्के हो जाने का अनुभव होता है और यह विचार पूर्णतया व्यावहारिक दृष्टि से समीचीन भी प्रतीत होता है।

६. ब्रह्मचारी पात्र के प्रवेश स्थलों का वर्णन

महान् नाटककार भास ने नाटकीय कुतूहल को सजग रखने के हेतु ऐसा सामयिक

---

१. द्रोण—बाष्पवेगस्तु मां बाधते ।
दुर्यो०—भो आचार्य ! अश्रुपातोच्छिष्टस्य क्रियतां शौचम् ।
द्रोण—मम कार्यक्रियैव मुखोदकमस्तु ।—पंचरात्र, पृ० ३८१
भगवान्—स्वैरं तावद् यातुमुद्बाष्पता व...पुत्रम् ।—पंचरात्र २।४०

२. बलदेवः—अस्रैरजस्रमधुना पतिधर्मचिह्नं ...दधाति ।—उरु० १।४०
देवा०—बाला एषा सहधर्मचारिणी रोदिमि । उरु०, पृ० ५०४
राजा—चेटोवत्... न हि रुदन्त्येवंविधानां स्त्रियः ।—उरु० १।५२

३. राजा—दुःख त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ।।—स्वप्न० ४।६

४. सौवीरराजः—या मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते ।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां बाष्परूपेण निर्गतः ।।—अवि० ६।३

सामजस्य स्थापित किया है कि जिससे पाठको को आलोचना का कहीं अवकाश नहीं मिलता। एक विशेष तथा उचित पात्र की आवश्यकतानुसार उपस्थिति अपनी उपयुक्तता को चरितार्थ कर देती है। वासवदत्ता, प्रतिज्ञा, अविमारक तथा बालचरित नाटको मे ब्रह्मचारी पात्र का आगमन एक अनुपम मौलिकता को दर्शाता है। स्वप्नवासवदत्ता के प्रथमाक मे वासवदत्ता के पद्मावती के समीप न्यास रूप मे छोडने से पूर्व ही यौगन्धरायण तथा वासवदत्ता जनवाद द्वारा घोषित समाचार की पुष्टि से अवगत हो जाते है तथा उन्हे राजा उदयन के समाचार और रुमण्वान् द्वारा किये गए सत्प्रयत्नो का परिज्ञान भी हो जाता है। ब्रह्मचारी[1] द्वारा उदयन का प्रगाढ प्रेम भी वासवदत्ता को ज्ञात हो जाता है कि राजा 'हा अवन्तिपुत्रि, हा प्रिये' कहकर स्मरण करते है। ब्रह्मचारी भी ऐसी स्त्री को धन्य कहता है कि जो अग्नि में जलकर भी जीवित है और जिसको उसका पति इतना अधिक प्रेम करता है, यह समाचार पद्मावती को भी विदित हो जाता है। ब्रह्मचारी के आगमन का कारण भी यही है कि राजा के चले जाने पर नगर नक्षत्र तथा चन्द्र से रहित आकाश की भाँति अरमणीय हो गया है।

महान् नाटककार ने नाटक के बीज रूप कथा की उद्भावना की है। कथा मे सूत्र रूप से भावी घटना को ग्रथित किया है। इसी स्थल पर तापसी[2] के द्वारा यह कहलाया है कि राजा गुणवान् है क्योकि यह आगन्तुक भी उसकी प्रशसा कर रहा है जो कि पद्मावती के आकर्षण के लिए पर्याप्त है। क्योंकि उसके सम्मुख राजा उदयन के गुणो का सकीर्तन नाटककार को अभीष्ट है और चेटी के द्वारा पुनः कोई दूसरी स्त्री उसे प्राप्त हो जाएगी कथन से पद्मावती के हृदयानुकूल वातावरण उपस्थित किया जाता है। अतः नाटक मे इतना औचित्य और भावी कथावस्तु का साफल्य बीजांकुरवपन ब्रह्मचारी के आगमन से सन्निक्षिप्त हुआ। यही वैधानिक पूर्णता है जिसके बल पर भास की नाटकीयता अप्रतिम है।

प्रतिज्ञा में उदयन का मित्र वसन्तक विदूषक[3] के रूप मे दर्शको को अपने प्रच्छन्न-रूप को अनाविष्कृत रखने हेतु 'ब्रह्मचारी' (गणेश) की ओर मोदक के बहाने शिवालय के चबूतरे पर वार्ता के निर्वहण में तल्लीन है, लक्ष्य सिद्धि में सचेष्ट है तथा स्वय मोदक चक्र में व्यस्त रहता है। वस्तुस्थिति का रहस्य अप्रकट ही रहता है।

---

१. ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये हा प्रियशिष्ये ! धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता, भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥—स्वप्न०, १।१३।

२. तापसी—स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते। चेटी—किं नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति।—स्वप्न०, पृ० ११

३. विदूषक—यद्यप्येष ब्रह्मचारी बहुकै रूपैरविनयं करोति।—प्रतिज्ञा, पृ० ८३

अविमारक[1] में अविमारक स्वयं जब कुरंगी से मिलने की इच्छा से राज प्रासाद की ओर बढ़ता है तो रात्रि मे विभिन्न प्रकार की स्थितियों का अध्ययन करता है तथा नगर के चौराहे पर स्नेहपूर्ण वार्तालाप करते देखकर बडा सशंकित होता है। इस स्थल पर भी वह ब्रह्मचारी तपस्वी इनका कोई परिचित व्यक्ति विद्यमान है। अत. गुप्तचर के परिचित होने से अविमारक का गमन नि शंक हो जाता है।

अभिषेक[2] नाटक नवीन कल्पना से ओत-प्रोत है। इसमें नाटककार जहाँ स्वय कुछ कहना चाहता है वहाँ विद्याधरास्त्रय: के रूप में राम-रावण के युद्ध का वर्णन करता है। यह शैली भास के अन्य नाटकों मे भी प्राप्त होती है।

पञ्चरात्र[3] में वृद्ध गोपालक द्वारा सामयिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। मध्यम व्यायोग[4] मे मध्यम ब्राह्मण स्वयं ही इस मध्यम नाटक का आधार है। राक्षस को विद्युत् सहित घन के सदृश यज्ञोपवीतयुक्त प्रलयंकारी शिव की प्रतिमा कहा है। इसी नाटक मे भीम ने ब्राह्मण को किसी भी कारण कष्ट न देने को कहा है।

बालचरित[5] में भी ब्रह्मचारी की स्थिति अविमारक की भाँति ऐसे स्थल पर आती है कि जहाँ सशंकित होना स्वाभाविक है। वसुदेव रात्रि मे शिशु को लेकर जाते है, तो देखते ही यह कौन रात्रि में कष्ट देता है, उत्तर मे यह हमारा ब्रह्मचारी तपस्वी है, परिचित होने का लाभ यहां भी सराहनीय है।

चारुदत्त[6] मे भी महान् नाटककार ने परिव्राजक को मंगलहस्ति के द्वारा बचाने वाले चेट को चारुदत्त द्वारा प्रावारक दिया जाना ही वसन्तसेना का अपने नायक के प्रति आकर्षण बिन्दु है। अत: इस नाटक मे भी ब्रह्मचारी या परिव्राजक ही एक ऐसा पात्र है जो अत्यन्त अल्पकाल के लिए दर्शकों के सम्मुख आए बिना भी अपना स्थायी महत्त्व रखता है। यही से सम्पूर्ण नाटक की कथा का बीजवपन होता है। गुणानुरागिणी वसन्तसेना अपने प्रेमी के गुणों पर मुग्ध हो जाती है।

प्रतिमा[7] नाटक में रावण का परिव्राजक वेष में पदार्पण करना तथा स्वरपदहीनाहव्यधारा की भाँति जनकसुता के अपहरण की उसकी अभिव्यक्ति नाटक में परिव्राजक की सत्ता बतलाती है। दूसरा पात्र तापस भी नन्दिलक से वार्तालाप करता हुआ विभीषण सम्बन्धी राक्षसों को अनुमति देने से पूर्व से ही सावधान कर देता है। इस कारण प्रमुख

---

१. अविमारक—को नु खल्वयमस्मिन्''' अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं।—अवि०, पृ० १३६
२. ततः प्रविशन्ति विद्याधरास्त्रयः।—अभि०, पृ० ३६१
३. वृद्धगोपालकः—अविधवाश्च''' वायसः''' विरवरं विलपति।—पंच०, पृ० ३८६
४. ब्राह्मण—सतडिदिव घनः ''प्रतिमाकृतिर्हरस्य।—मध्यम० १।४
भीम—किमर्थं ब्राह्मणजनमपराध्यसि।—मध्यम० पृ० ४३३
५. वसुदेवः—अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी।—बाल, पृ० ५१७।
६. चेटः—ततो मया'''कृत्वामोचितः स परिव्राट्।—चारु०, पृ० २२१
७. तापसः—अलमलसम्भ्रमेण। विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः।—प्रतिमा०, पृ० ३११

स्थल पर तापस की चरितार्थता प्राप्त होती है।

उपर्युक्त उदाहरणो मे ब्रह्मचारी का रूप कुछ परिवर्तित होकर परिव्राजक या तापस के नाम से अवश्य प्रयुक्त हुआ है किन्तु कवि ने ब्रह्मचारी या संन्यासी को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रयुक्त किया है। प्रतिज्ञा[1] मे यौगन्धरायण स्वय सन्यासी के वेश में आता है और अपने उचित कार्य को सम्पादित करता है।

७. मन्त्रित्व की प्रतिष्ठा का प्रतिबोध

भास की रचनाओ के अध्ययन से यह स्पष्ट आभासित होता है कि ये किसी राजा के मंत्री थे और मंत्री[2] केवल स्व आर्थिक पूर्ति हेतु ही नही अपितु राजभक्ति मे प्रेरित होकर अपना कार्य करते थे। इनमें राजभक्ति कूट-कूट कर भरी थी। पद-पद पर हमे ऐसे प्रमाण इनकी रचनाओ मे सुलभ हो जाते है। राजभक्ति वैशिष्टय के बल पर ही इन्होंने राजा के हित मे प्रच्छन्नरूपेण देशोद्धार का कार्य भी किया हो और पुनः राज्य प्राप्ति कराने में राजा की सहायता की हो ऐसा प्रतीत होता है। मन्त्रिपद को ये सुमनशय्या नही दर्शाते हैं अपितु यह पद महान् उत्तरदायित्व का है और मंत्रित्व के गुणो की समष्टि दुर्लभ है।

अमात्यों के कार्य बुद्धि प्रेरक होने चाहिए, भावना प्रेरित नही।[3] ऐसा इन्होने वर्णित किया है। प्रतिज्ञा मे इन्होने राजा के द्वारा मंत्री के स्नेह की अपेक्षा की उपेक्षा स्पष्टतया की है। अविमारक मे भी राज्यभार मत्रियों पर ही है और उन्हें सुबुद्धि के द्वारा यत्नपूर्वक अपने कर्तव्य-पालन का ध्यान आवश्यक है।

मन्त्री सम्बन्धी प्रसंगों का निर्देश—अविमारक में राजा के द्वारा राज्य भार को कठिन दर्शाते है किन्तु सचिवमतिगति को भी राजा को स्वबुद्धि द्वारा यत्नपूर्वक देखते रहने का आदेश देते है और गुप्तचर द्वारा मंत्रिमण्डल तथा लोकवृत्त के ज्ञान पर बल देते हैं। इन्होंने[4] कामी, कुमति मत्रियो से युक्त, ब्राह्मणों से शप्त राजा को उचित नही बतलाया है। राजाओं को भृत्यो[5] के द्वारा दोष नही दिया जाना चाहिए, वे मंत्रियो के स्वामी हैं अतः इसी कारण भूतिक मंत्री के द्वारा राजा से किसी विषय में पूर्ण निश्चय नहीं कहते हैं। अविमारक मे प्रथम अक में नवें श्लोक के पश्चात् के प्रसंग के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि सामयिक परिस्थिति मे मत्रियो की क्या स्थिति थी और राजा की दृष्टि मे मंत्री का कितना सम्मान था। ऐसा ज्ञात होता है कि राजा मे कुमंत्रियों तथा ब्राह्मणों के शाप के प्रभाव के साथ स्वजनराग में विशेष आकर्षण था। वस्तुत. ये राज्य विनाश के लक्षण है। अतः मत्रियों की बुद्धि की ही प्रशंसा की गई है।

वासवदत्ता मे मत्री के भार को महान् समझते हुए यौगन्धरायण के रूप में मानो लेखक

१. यौगन्ध०—इयं तु पूजाममदण्डधारिणः कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः।— प्रतिज्ञा०, पृ० १०५

२. यौगन्ध—कार्य ··नाहं कापायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।—स्वप्न, १।८

३. राजा—अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम्।—अवि० पृ० ११७

४. राजा-कामाहतः···हेतुः। अवि० १।११

५. भूतिकः—न भृत्यदूषणीया राजानः, स्वामिनो हि स्वाम्यमात्यानाम्।—अवि०, पृ० ११६

स्वय ही दूसरे मंत्री पर राज्यभार आ जाने के कारण विशेष भार वाला मानता है और कहता है कि वस्तुतः रुमण्वान्[1] जिसके आधीन राजा इस समय है, उस पर राष्ट्र का पूरा भार है। वह राजा की बागडोर कहीं भी ले जा सकता है। रुमण्वान् के द्वारा उदयन को पार्ष्णि संगठन तथा राजा के गुणो मे पुरवासियो की आस्था का विश्वास दिलाना सफल मन्त्रित्व के लिए उचित है। राजा उदयन वासवदत्ता के पिता के यहाँ के समाचार से सकुचित भी है क्योकि वह स्वय इस वाक्य का महत्त्व धात्री से राज्यलाभशतादपि कहता है। क्योंकि कन्यापहरण के अपराधी होने पर राजा के द्वारा उसका स्मरण उसके लिए महत्त्व रखता है। मंत्री पद की कसौटी पर यौगन्धरायण का साफल्य कवि को अभीष्ट है, क्योकि प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे उसकी प्रतिज्ञा को पूर्णतया सफल होना अकित किया है और वासवदत्ता मे भी उसने मत्री की कर्मठता को चरम सीमा तक पहुँचाया है। क्योकि वह स्वय यह कहता है कि मैने राजमहिषी को गुप्त रक्खा और राजहित किया। कार्य तो सिद्ध हो गया किन्तु मेरे हृदय में यह शका बनी है कि राजा क्या कहेगे ? वस्तुतः राजा भी स्वयं इसी प्रकार की शका से सशकित है। अतः 'कि वक्ष्यतीति हृदयं परिशकित' में उक्ति की उपयोगिता तथा मार्मिकता अवर्णनीय है। कवि ने राजा तथा मंत्री दोनो को स्वदोषो के कारण सशंकित व्यक्त किया है।

परिणाम सुखावह होने से नाटक सुखान्त ही रहा। यही भारतीय नाटचकला का रहस्य है। अत. भास स्वयं मंत्री रहे और किसी दोष के कारण ये मंत्री पद से अलग हुए तथापि इन्होने राज्यहित ही किया किन्तु सशकित अवश्य बने रहे। गुणों के लिए जैसा वासवदत्ता मे "गुणाना वा विशालाना कर्तारः सुलभा. लोके, विज्ञातारस्तु दुर्लभाः" ४।६ कहा है और प्रतिज्ञा के आरम्भ मे ही 'यो वा विज्ञाता सत्कृतानां गुणानां' १।३ कहा है। ये दोनों प्रसग भास के मन्त्रित्व पद पर आसीन होते हुए राजा के प्रति प्रदर्शित गुणों के विज्ञाता के अभाव को द्योतित करते है। मंत्री को क्रीतसामर्थ्य[2] कहकर अपनी परतंत्रता की अभिव्यक्ति ही दर्शायी है। प्रतिज्ञा[2] में प्रद्योत के मंत्री द्वारा उदयन के गृहीत हो जाने पर यौगन्धरायण अत्यन्त ही खिन्न है तथा अपनी ख्याति को वहाँ नष्ट हुआ समझता है क्योंकि प्रद्योत काञ्चुकीय द्वारा उदयन के ग्रहण का समाचार सुनकर कहता है कि क्या वत्सराज पकड़ा गया ? क्या यौगन्धरायण[3] मर गया ? अथवा वह कौशाम्बी मे नहीं है ? वह इस विषय

---

१. यौग०—अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् ।
सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥—स्वप्न० १।१५

२. यौगन्ध—स्निग्धेष्वासज्यं कर्म यद् दुष्करं स्याद्
यो वा विज्ञाता सत्कृतानां गुणानाम् ।
क्रीतं सामर्थ्य यस्य तस्य क्रमेण
दैवप्रामाण्याद् भ्रश्यते वर्धते वा ॥—प्रतिज्ञा १।३

३. राजा—अथ किमुपरता यौगन्धरायणः । प्रतिज्ञा पृ० ७८

में विश्वास नहीं करता है और इस कार्य को मन्दराचल को हाथों से उठाना बतलाता है। क्योंकि योगन्धरायण[1] की बुद्धि की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं। जिस यौगन्धरायण[2] के प्रति अन्य राजाओं की यह धारणा रही हो, यही नहीं, राजा उदयन ने भी पकड़े जाते समय हंसक को भेजते हुए 'गच्छ यौगन्ध०' अर्थात् यौगन्धरायण से मिलने के लिए कहा हो, ऐसे मंत्री की ख्याति से अधिक राजभक्ति, प्रमाणित होती है। ऐसी स्थिति सर्वतोभावेन यौगन्धरायण का 'सर्वसचिवमण्डलमतिक्रम्य' यह भाव आना उत्सर्ग के लिए उद्यत करता है। अतएव मंत्री यौगन्धरायण हंसक द्वारा राजा के गमन को सुनकर 'अथास्ति प्रत्याशा अथवा अद्यैव प्राणा मोक्तव्या' कहलाती है और मंत्री के लिए उचित आदर तथा प्रशंसा प्रदर्शित करना कवि का लक्ष्य रहा है। राजा उदयन के गृहीत होने पर यौगन्धरायण क्षुभित है 'अद्यप्रभृति वत्सराजसचिवाना प्रतिष्ठितमसामर्थ्यमयशश्च' कहलाता है तथा क्रीत पर्ण-गहनदुर्गतयाप्रनष्ट, अतिभारतया विपन्नम्' आदि कहला कर महान् पाप हुआ ऐसा समझता है तथा प्रद्योत के मंत्री शालकायन से इस अनर्थ का बदला लेने की प्रतिज्ञा[2] करता है। राजा के उचित आदर करने पर भी वह हर्षातिरेक से प्रफुल्ल हो कर्म से अनभिज्ञ या अनवधान नहीं होता है। कृतज्ञता प्रकाशन में कर्म के लिए अग्रसरता भी दर्शनीय है। 'अनर्हं प्रति-ग्रियमनिर्विष्टभर्तृपिण्डमनुपकृतराज सत्कार यदि खलु मा द्रष्टव्यं मन्यते स्वामी' कहकर राजा की सेवा में जीवन लगाना ही मंत्री के लिए उचित दर्शाया है। यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा अत्यन्त कठिन है, वह राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्रमा की भाँति राजा को छुड़ाने की प्रतिज्ञा करता है। इतना ही नहीं है, प्रद्योत[3] आज भी सशंकित है कि उसे उस ब्राह्मण मंत्री शालकायन ने उदयन का समाचार नहीं दिया। इस शंका का कारण उदयन के मंत्रियों का यत्नपूर्वक सब साधन एकत्र किये रहने से है। यह है यौगन्धरायण आदि मंत्रियों की ख्याति। मंत्रित्व की चरम कसौटी तो तब दृष्टिगत हो जाती है जब कि भास अपने मंत्रित्वकाल में राजा के लिए उत्सर्ग न करने से नरक[4] प्राप्ति कह जाते हैं। ऐसा नहीं है कि मंत्री का पद सामान्य ही हो। इन्होंने अविमारक में मंत्री पद की कठिनता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है और 'कष्टममात्य नाम' कहला कर 'श्रुतिसुखम्' शब्द कहा है किन्तु राज्य की दशाओं के

---

१. राजा—नश्रद्दधाम्युदयनग्रहणं त्वयोक्तं···
यौगन्धरायणमतानि च नः स्वनन्ति।—प्रतिज्ञा २।९

२. यौगन्ध०—यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः॥—प्रतिज्ञा १।१६

यौगन्ध०—सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः॥—प्रतिज्ञा ३।८

यौगन्ध—यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः॥—प्रतिज्ञा ३।९

३. राजा—भोः ··वत्सराज ग्रहणार्थं शालंकायनंप्रतिगतामे बुद्धिः।—प्रतिज्ञा, पृ० ७५

४. गात्र सेवक—नवं शरावं···न युध्येत्।—प्रतिज्ञा, ४।२

परिवर्तन का सम्पूर्ण दोष मत्रियो पर ही रखा है। यौगन्धरायण[1] में प्रद्योत के सैनिकों द्वारा गृहीत होने पर अपने को देखने के लिए जनता के लिए स्पष्टतः घोषणा की है कि मुझे सभी पुरुष पूर्ण रूप मे देखें और मेरी इस दशा को देखकर जो व्यक्ति मत्री पद को सुमन समझा समझे बैठे है वे अपने मन की इस अभिलाषा को कठिन कसौटी पर कसकर आँक लेवें कि वे मन्त्रीपद का कार्यभार सँभाल सकते है अथवा नही। यौगन्धरायण[2] भरत रोहक के पूछने पर कि क्या दण्ड दिया जाना चाहिए अपने को 'बधार्ह' कहता है। अपने इस कौशल से वह राजा प्रद्योत को प्रसन्न करता है तथा सफल मत्रित्व का पुरस्कार भी प्राप्त करता है। भरत रोहक[3] भी यौगन्धरायण के द्वारा छद्म से राजा को बचा लेने पर उससे बदला लेने की भावना को व्यक्त करता है।

८. कन्या पितृत्व के रूपद्वय के संकेत स्थल

महान् नाटककार भास ने कन्या पिता होने के निजी अनुभवो को काव्य में निबद्ध किया है। रचनाओं के विलोडन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि के विजया नाम की कोई कन्या अवश्य रही होगी जिसके चरित्र का उसे सदैव ध्यान बना रहा है। विवाह सम्बन्धी विचारो मे लेखक ने कन्या के पिता को पीड़ित दर्शाया है। सामान्यतया कन्या की उत्पत्ति समाज में चिन्ताजनक मानी गई है। कन्या को उचित वर की प्राप्ति और वर प्राप्ति के पश्चात् भी सुख प्राप्ति आदि की विविध चिन्ताएँ पिता को सदैव ग्रमित रखती हैं। यथा 'कन्या पितृत्वखलुनामकष्टम्' कहा गया है। भास की रचनाओ मे गुणी वर का होना आवश्यक है। वर के विभिन्न गुणों में अच्छे वश का होना, विनीत तथा वीर होना आवश्यक समझा गया है। प्रतिज्ञा, स्वप्न तथा अविमारक इन तीनो नाटकों में लोक-कथाओं के आधार पर कवि ने समय की, सामाजिक प्रथाओ मे विवाह सम्बन्धी विवरण का उल्लेख किया है। कन्या के पिता को सतत चिन्ताओ से पीड़ित दर्शाया है। राजा[4] महासेन अपनी कन्या के विवाह के विषय मे चिन्तित है और कोई निर्णय नहीं कर पाते है।

कन्या के पिता के यहाँ वर के पिता के द्वारा दूत सम्पात अथवा दूतसम्प्रेषणा की

---

१. यौगन्ध—मद्दर्शनाभिलाषी जनो न कश्चिदुत्सारयितव्यः।
　　पश्यन्तु मा नरपतेः पुरुषाः ससत्वा
　　राजानुरागनियमेन विपद्यमानम्।
　　ये प्रार्थयन्ति च मनोभिरगात्यशब्द
　　तेषां स्थिरीभवतु नश्यतु वाभिलापः ॥—प्रतिज्ञा ४।६

२. यौगन्ध—वधः।—प्रतिज्ञा पृ० १०५

३. भरतरोहकः—मन्त्रित्वे वंचितो प्रतीक्षते।—प्रतिज्ञा ४।१४

४. राजा—इष्टा सखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
　　प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः।
　　एवंविधस्य च न मेऽस्ति मनःप्रहर्षः
　　कन्यापितुर्हिसततं बहु चिन्तनीयम् ॥—अवि० १।२

प्रथा की भी पुष्टि होती है। स्वप्नवासवदत्ता मे उदयन स्वयं ही पद्मावती के पिता के समीप आया है और वहाँ उसका विवाह निश्चित हो जाता है। वासवदत्ता के धात्री से पूछने पर कि राजकुमारी किसे दे दी ? धात्री ने वत्सराज उदयन का नाम निर्दिष्ट किया है। वासवदत्ता स्वय कहती है कि हे आर्य ! क्या राजा ने स्वय वरण कर ली, तो धात्री इसका निषेध करती हुई उदयन के अन्य प्रयोजनवश आने पर वय रूप के अनुकूल देखकर महाराज द्वारा देने का वर्णन करती है। प्रतिज्ञा नाटक मे भी महासेन के यहाँ अनेक स्थानो मे राजदूत पधारे है। महासेन कन्या के लिए योग्य वर प्राप्ति का भार दैव पर ही छोड़ते है। विभिन्न नरेन्द्रो मे राजा उचित गुणो को जानते हुए भी जिस व्यक्ति को कन्या वधूत्व रूप मे देनी है, जानने मे कठिनाई का अनुभव करते हैं। राजा बादरायण मे वर के गुणो[1] में सर्वप्रथम कुल, दयालुता, बलवत्ता, सौन्दर्य तथा शौर्य का होना आवश्यक समझते है। इस प्रकार गुणो का अन्वेषण नाटककार के लिए सर्वप्रथम वस्तु समझी गई है। राजा के द्वारा अन्य वरों मे केवल उदयन के प्रति आकृष्ट होने का कारण यही है कि वह उन्नत वश का होते हुए शूर तथा सुन्दर है। अविमारक मे कौञ्जायन ने पहले ही सौवीरराज तथा काशीराज के द्वारा पुत्र के कारण दूत भेजने का वर्णन किया है। राजा ने यहाँ भी कुरगी की हाथी से रक्षा करने पर पूछा है कि 'कतरकुल समुद्भूत परव्यसनसहाय.'। अत सर्वप्रथम अन्वय पर बल दिया गया है। महासेन वर के अच्छा खोजने पर तो पूर्व मे बल देते है। क्योंकि इतना ही पिता के आधीन है शेष तो उसके भाग्याधीन[2]। अत पिता का अपना कर्तव्य-पालन धर्म है। महासेन की रानी भी अधिक पूछने पर स्पष्ट कह देती है कि कन्या को देकर जहाँ हमे कष्ट न हो वहाँ दे दीजिए। भूतिक मन्त्री आकृति तथा स्वभाव द्वारा ही वश को समझने का प्रयत्न करता है और अविमारक के विषय में 'दैवरूप ब्रह्मजं तस्य वाक्य' कहता है। इतना ही नहीं वश विषयक चर्चा मे वह 'व्यर्थोऽस्माकशास्त्रमार्गेषु खेद:' कहा जाता है।

महासेन के यहाँ विवाह सम्बन्ध में अनेक राजदूत आए है। इनकी उपस्थिति से राजा को कन्या के पिता होने के कारण बहुवन्दनीय[3] कहा गया है, जिसका आशय यह है कि जिस प्रकार मल्ल पताका प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं इसी प्रकार कन्या की प्राप्ति के लिए राजाओ का प्रयत्न है। इस कारण कन्या के पिता को बहुवन्दनीय कहा है।

---

१. राजा—कुल तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाङ्क्षे हि मनसा
ततः सानुक्रोश मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्ति न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्र न हि न परिपाल्या युवतयः ।।—प्रतिज्ञा० २।४।

२. राजा—कन्याया वरसम्पत्तिः "भाग्येषु"'चान्यथा ।।—प्रतिज्ञा० २।५

३. भूतिक:—न तत्र कर्तव्यमिहास्ति लोके
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम्।
सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्या
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ।।—अवि० १।९

कौंजायन विवाह को 'बहुमुखा' विवाहा यथेष्ट साध्यन्ते' कहता है। अविमारक के द्वितीयाक मे नेपथ्य से कुलगत शका छोडो और अपना कार्य सिद्ध करो की ध्वनि आती है। चारुदत्त मे भी नायक चतुर्थाक मे कुल तथा दरिद्रता को धिक्कारता है और अच्छा वश होने पर भी धन के अभाव को ठीक नही समझता। यहाँ तो कवि[1] ने धन मे रहित पुरुष को नारी और धन वाली स्त्री को पुरुषत्व से विभूषित किया है। यहाँ पर ही मज्जलक चारुदत्त को कुलवान् तथा गुणों से सतुष्ट होना निर्दिष्ट करता है। पचरात्र मे राजा विराट् उत्तरा-विवाह के समय कुल तथा कन्या पितृत्व से व्यथित है। स्त्रियो को पुत्री के वियोग मे अधिक कष्ट होने पर राजा उन्हे 'धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दु.खिता खलु मातर' कहता है। राजा[2] पुन. कन्या को जामाता की सम्पत्ति का पूर्ण विचार करके ही देने को कहता है, अन्यथा वह क्षुब्ध नारी की भाँति दोनों कुलो को नष्ट कर सकती है। अविमारक के विषय मे कुरंगी की सखियाँ गुणयुक्त होने पर भी वर का कुलीन होना आवश्यक समझती है। और धात्री कहती है कि मत्रियो के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि वह दुष्कुलज नही है, अपितु किन्हीं कारणो से अपने वश को छिपाए हुए है। इस प्रकार भास की रचनाओ मे 'कन्या पितृत्व बहुचिन्तनीय' तथा 'कन्या पितृत्वं बहुवन्दनीय' दोनो रूपों के दर्शन हम करते है।

९. अपराध-वर्णन के प्रसंग स्थलों का निर्देश

ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार को अपने अपराध का बोध प्रतिक्षण रहा है। इनसे कोई महान् अपराध अवश्य हुआ है और उस अपराध के प्रति क्षमा-याचना करना तथा उसको क्षम्य मानना इन्हे रुचिकर भी रहा है। क्योंकि प्राय. प्रत्येक रचना में इन्होंने अपराध के प्रति पूर्ण जागरूकता प्रदर्शित की है तथा पात्रो से 'त्वा शीर्षेण प्रसादयामि' कहलाया है। वर्णन में भिन्नता अवश्य रही है। स्वप्न तृतीयाक मे धात्री के यह कहने पर कि 'पद्मावती दे दी गई', वासवदत्ता स्वय कहती है कि अन्य प्रयोजनवश यहाँ आने के कारण राजा का अपराध नही है। उदयन द्वारा भी अपने अपराध के प्रति भय की आशंका तथा बिना कहे ही अपराध की स्वीकृति की अभिव्यजना व्यजित होती है। वह स्वयं 'कि वक्ष्यतीति हृदय परिशकित मे, कन्यामयाप्यपहृता न चरक्षिता सा' तथा दृढ़मपहृता कन्या भूयोमया न च रक्षिता' कहकर अपने दोष को स्वीकार करता है। अन्त मे धात्री द्वारा दिये गए चित्रफलक को देखकर महासेन के प्रेम को वह सौ[3] राज्यो से भी बढ़कर कहता है कि

१. नायक:—अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान् ।।—चारु० ३।१७

२. राजा—विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति । कुतः,

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ।।—अवि० १।३

३. राजा—वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ।।—स्वप्न० ६।१२

अपराधी होने पर भी मुझे राजा ने नही भुलाया। वासवदत्ता तथा पद्मावती दोनों मे जब वार्तालाप होता है और पद्मावती[1] वासवदत्ता को पूर्ण रूप से पहचान जाती है तो वह अपने सखी समय के किये गए अपराधों के प्रति क्षमा-याचना करती है। किन्तु कितनी शिष्ट तथा प्राञ्जल भाषा में विचारों का आदान-प्रदान होता है कि सखी रूप में शिष्टाचार से कृत दोषो के प्रति सिर झुकाकर प्रसन्न करती है और वासवदत्ता भी अर्थित्व कहकर अपने को दोषी ठहराती है। प्रतिज्ञा[2] के चतुर्थांक में भट गात्रसेवक से कहता है कि तुम्हारा अपराध नही है। इस शौण्डकी (मद्य बेचने वाली) का अपराध है। यौगन्धरायण[3] तथा भरत रोहक दोनो मत्रियो मे वार्तालाप के समय यौगन्धरायण अपना अपराध स्वीकार नहीं करते। अविमारक तृतीयांक मे निशीथ की नीरवता में कोई अपनी पत्नी मे विनय करने पर महान् अपराध की स्वीकृति करता है। चारुदत्त मे विदूषक नायक से कह रहा है कि सकीर्ण राजमार्ग पर चलने से वायु के कारण मेरा दीपक शान्त हो गया अत मेरा अपराध अल्प है। गणिका[4] अपने अपराध के लिए सिर झुका कर प्रसन्न करती है। प्रतिमा मे सुधाकार भट के साथ वार्तालाप मे अपने अपराध को ज्ञात करने को कहता है। भट उसके अपराध को निषेधित करता है। भरत[5] कौशल्या से प्रणाम करने हुए अपने को अपराध-रहित कहते है। अभिषेक[6] नाटक मे सुग्रीव राम से युद्ध मे सेवा करने की प्रार्थना करते है और अपराध के कारण त्यक्त हुआ बतलाते है। रावण से विभीषण कहता है कि सब कुछ अप-राध होने पर भी दूत अवध्य होते हैं। वरुण राम से अपने अपराध को स्वीकार करता है। पचरात्र[7] मे युधिष्ठिर अपराध के विषय मे कहता है। राजा अभिमन्यु से अपराध के विषय

---

१. पद्मावती—सखीजनसमुदाचारेण मानन्त्यातिक्रान्तः समुदाचारः,
तच्छीर्षेण प्रसादयामि।
वासवदत्ता—उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे। अर्थित्वं नाम शरीरमपराध्यति।—स्वप्न० पृ० ५५
२. भटः—नास्ति किलापराध। न त्वमत्रापराद्धः। कण्डिल शौण्डकी खल्वपराद्धा।
३. यौगन्ध०—राज्ञो वारणनिग्रहे परिचयाद् वीणाश्रिता वंचना।
पूर्वं प्रस्तुतमेव यामि भवता नैवापराधो मम ॥—प्रतिज्ञा० ४।१६
यौगन्ध०—इय तु पूजा मम दण्डधारिणः कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः ॥—प्रतिज्ञा ४।२२
४. गणिका—अदत्तभूमिप्रवेशप्रवर्षणेनापराद्धाहमार्य शार्षेण प्रसादयामि ॥—चारु० पृ० २११
सुधाकार—रुदित्वा शक्यमिदानी भर्तः ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ॥—अवि०, पृ० २५३।
५. भरतः—अम्ब। अनपराद्धोऽमभिवादये। अभिषेक, पृ० २८०
भरतः—दिष्ट्यानपराद्धा नत्रभवती ॥—प्रतिमा०, पृ० ३०६।
६. सुग्रीव—अपराधमनुद्दिश्य परित्यक्तस्त्वया विभो। युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्तुमिच्छति ॥
—अभिषेक, १।८
विभी०—सर्वापराधेष्वपि अवध्याः खलु दूताः ॥—अभिषेक, पृ० ३४३
वरुण—कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधो।—अभिषेक, ४।१३
७. भगवान्—गैरप्रियैर्गुर्हिऽकृते पराधे यत्सत्यमस्मामिरिवापराद्धम् ॥—पंच० २।६
राजा—किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं, तस्यपुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि।—पंच०, २।५८,६८
दुर्यो०—सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः।—पंच० ३।४

मे बतलाते हैं। दुर्योधन कुल के विरोध होने पर भी बालको का अपराध स्वीकार नही करता। मध्यम[1] व्यायोग मे घटोत्कच से ब्राह्मण को कष्ट देने से अपराध करने को निषेधित करता है और सभी प्रकार के अपराधों पर ब्राह्मण को वर्ज्य बतलाता है। घटोत्कच पुत्र के किये गए अपराध की भीम से क्षमा-याचना करता है। दूत वाक्य[2] मे दुर्योधन वासुदेव से कहता है कि अपराध के द्वारा मुनि शाप प्राप्त किया। धृतराष्ट्र भी अपने पुत्र के अपराध पर क्षमा-याचना करता है। बालचरित[3] मे वसुदेव नन्दगोप से कहते है कि अपराध के कारण रस्सियो से बाँधकर मारा गया हो।

१०. प्रमुख समान भावों का संक्षेप रूप में अंकन

यद्यपि भास के नाटकों की प्रामाणिकता वाले भाग मे इस प्रकार के सदर्भो का विस्तृत विवेचन कर दिया गया है तथापि संक्षेप में यहाँ उन स्थलों के अतिरिक्त भावो का निर्देश किया जाता है।

नगर की समीपता का वर्णन अभिषेक[4] तथा प्रतिमा[5] मे समान रूप से वर्णित है। प्रतिमा मे वृक्षो की समीपता से अयोध्या की निकटता को दर्शाया है। अभिषेक मे भी वृक्षो की प्रचुरता के कारण किष्किन्धा की निकटता बतलाई है। चारुदत्त[6] मे भी इसी प्रकार का प्रसग वर्णित है।

भास ने अपने नाटकों मे दयनीय दृश्यो का समान रूप से अकन किया है और उन स्थानो पर भावनाओं मे अनुपम साम्य है। यथा मृत्यु का दृश्य उरुभग तथा प्रतिमा में प्राय. समान रूप से ही वर्णित किया गया है। उरुभग[7] में दुर्योधन शान्तनु आदि अपने पितामहो को अपने चारो ओर देखता है, इसी प्रकार प्रतिमा[8] मे दशरथ अपने पूर्वज दिलीप, रघु

---

१. घटोत्कच—अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।—मध्यम० १।५०

२. धृत०—मम पुत्रापराधात् पादयोः पतितं शिरः ।।—दूत वा० १।५५

३. बसुदेव—स्तेन कंसस्य राज्ञो वचनं श्रुत्वापराद्धः कशाभिस्ताडयित्वा ।।—बाल०, पृ० ५१८

४. सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम् ।।—अभि, पृ० ३२३

५. सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।।—प्रतिमा, पृ० ४२

६. सोपस्नेहतया गृहविशिष्ट इवायं भवनविन्यासः ।।—चारुदत्त० तृतीयांक

७. राजा—परित्यजन्तीव मे प्राणाः। इमेऽत्रभवन्तः शान्तनुप्रभृतयो मे पितृपितामहाः···एता गंगाप्रभृतयो महानद्यः ।।—उरु०, पृ० ५०८

८. राजा—(आचम्यावलोक्य)

अयममरपतेः सखा दिलीपो रघुरयमत्रभवानजः पिता मे।
किमभिगमनकारणं भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ।।—प्रतिमा २।२१

अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि।
हे पितरः! अयमयमागच्छामि ।।—प्रतिमा, पृ० २७१

आदि को देखता है तथा अभिषेक[1] मे भी बाली मृत्यु के समय गगा आदि नदियों की उपस्थिति का समान रूप से वर्णन करता है। इन उपर्युक्त प्रसंगो में भाव साम्य ही नही, शब्दों की पूर्णत. आवृत्ति यह दर्शाती है कि ये रचनाएं एक ही कवि की, एक ही समय की, एक ही स्थल की रची हुई हैं और जब वासवदत्ता, तथा प्रतिज्ञा के एक कवित्व मे सभी विद्वान् आस्था रखते है, तब यह निश्चित ही हो जाता है कि ये सभी रचनाएं भास की रची हुई है।

११ः सम्पूर्ण पद्य की आवृत्ति—

१. इमाम् सागरपर्यन्ताम् हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्रांकाम् राजसिहः प्रशास्तु नः ॥

स्वप्न०	बाल०	दूत वाक्य०
६।१९	५।२०	१।५६

२. भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि मही कृत्स्नां राजसिह. प्रशास्तु नः ॥

प्रतिज्ञा०	अवि०	अभिषेक०
४।२५	६।२२	६।३५

३. लिम्पतीव तमोंऽगानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलता गता ॥

बाल०	चारु०
१।१५	१।१९

४. वक्षःप्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्प प्रह्ला दय व्यसनदग्धमिद शरीरम् ॥

प्रतिमा	प्रतिमा
४।१६	७।७

५. प्रथम भाग में वर्णित सागरपर्यन्ताम् के सदृश ही चतुः सागरपर्यन्तां का प्रयोग है।

चतु सागरपर्यन्तां ससप्तकुलपर्वताम् ।
दहेय पृथिवी कृत्स्नां किं भुजं न दहामि ते ॥—बाल० ४।१०

६. द्वितीय भाग का अर्ध भाग—इमामपि मही कृत्स्नां राजसिह. प्रशास्तु नः।

स्वप्न०	प्रतिज्ञा०	पचरात्र०	अवि०	बाल०	दूत०	अभि०
६।१९	४।२५	३।२६	६।२२	५।२०	१।५६	६।३५

१. वाली—(आचम्य) परित्यजन्तीव मां प्राणाः। इमा गंगाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्याद्योऽप्सरसः मामभिगताः।
• एप सहस्रहंसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितो मां नेतुमागतः। भवतु। अयमयमागच्छामि ॥ (स्वर्यातः)—अभिषेक, पृ० ३२८-३२९।

भूमिमेक: प्रशास्तु न	राजा भूमि प्रशास्तु नः
कर्ण०	प्रतिमा०
१।२५	७।१५.

७ निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृत प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथ तिष्ठतु यात्विति ।—प्रतिमा ४।५
न ते क्षेपेण रुष्यामि रुष्यता भवता रमे ।
किमुक्त्वावानापराद्धोऽहं कथ तिष्ठतु यात्विति ।—पंच० २।५८

८. यदि तेऽस्ति धनु. श्लाघा ।—अभि० ३।२२, प्रतिमा १।२०

९ कि वक्ष्यतीति हृदय परिशकित मे ।—स्व० ६।४, १५, अभि० ४।७

१०. चन्द्रलेखेव शोभते ।—दूतवाक्य० १।७, चारु० १।२७
विद्युल्लेखेव शोभते ।—अभि० २।७

११. त्व पाण्डवाना कुरु सविभागम् ।—पचरात्र० १।३१, ४७

१२. धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता ।—प्रतिज्ञा० २।७, अभि० ६।२३

१३ नृपा भीष्मादयो भग्ना ।—पंच० २।४१, २।६१

१४. भारतानां कुले जात ।—स्वप्न० ६।१६, प्रतिज्ञा० ४।१७

१५ शत्रुपक्षमुपाश्रित्य ।—अभि० ३।२४
शत्रुपक्षमुपाश्रितम् ।—अभि० ३।२५

१६. सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना । दूतवाक्य १।७, चारु० ४।३

१७. प्रसादं कर्तुमर्हसि ।—पच० २।६८, मध्यम० १।५०

१२. गद्य खण्ड का आवृत्यात्मक प्रयोग—

१. एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अग ! पश्यामि। नेपथ्ये।
स्वप्न०, पच०, मध्यम०, दूत वा०, दूत घटो०, उरुभंग, अभिषेक, बालचरित०, प्रतिज्ञा०, अवि०, (प्रतिज्ञा मे नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) तथा चारुदत्त मे इसका अभाव है।

२. कि ते भूय. प्रियमुपहरामि। यदि मे भगवान् प्रसन्न. । किमतः परमहमिच्छामि ।—अवि०, प्रतिज्ञा०, दूत वाक्य०, अभि०, वाल०

३. अहो अकरुणाः खलु ईश्वरा ।—स्वप्न ६२, ६७ पृष्ठ, अभि० पृ० २३

४ अहो हास्याभिधानम् ।—प्रतिज्ञा० पृ० ६१, ६७, पंच० ४८, दूत घ० ६६

५. अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितम् ।—पच० पृ० ४६, स्वप्न० पृ० ७८

६. एष समासः ।—पच० पृ० २५, प्रतिज्ञा ३२, अवि० पृ० ३१

७. अलमिदानीं भवानतिमात्र सतप्य ।—स्वप्न० पृ० २४, पंच० पृ० ९८

८. अभिजनस्य सदृशं मत्रितम् ।—स्व० ४६, अवि० १०६

९. अर्धमवसितं भारस्य ।—स्वप्न० प्रथमांक
निष्ठितमर्धकार्यस्य ।—अभि० २।१२ गद्य, पृ० ३३०

१०. परित्यजन्तीव मां प्राणा. ।—अभि० २ अंक, पृ० ३२८
परित्यजन्तीव मे प्राणाः ।—उरूभंग पृ० ५०८

११. अहो बलवाश्चायमन्धकारः सम्प्रति हि । बाल० तथा चारु०

१२. अहो परिजनस्य प्रमादः ।—स्वप्न० तथा अविमारक०

१३. अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्रं निवेद्यताम् ।—पंच० २।३ श्लोक से पूर्व, अभि० ३।२ श्लोक से पूर्व ।

१४. अयमक्रम , अथ कः क्रम. ।—पंच० १।२४ से पूर्व प्रतिमा २।१५ से पूर्व ।

१५. आपस्तावत्, यदाज्ञापयति महाराज. । निष्क्रम्य प्रविश्य । इमा. आप ।
—मध्यम० पृ० ४३५, प्रतिमा० पृ० २७१, पंचरात्र० पृ० ४१०

१६. अतिक्रामति मातुराहारकालः ।—मध्यम० पृ० ४२७, ४२८

स्वप्न तथा अभिषेक में साम्य

काञ्चु०—क. इह भो ! कांचनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते, प्रविश्य ।
प्रति०—अह विजया । किं क्रियताम् ।
काञ्चु०—भवति । निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराजलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय ।
—स्वप्न० ६ अंक

शकुकर्ण—कः इह भोः । कांचनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते, प्रविश्य ।
प्रति०—आर्य । अहं विजया । किं क्रियताम् ।
शंकु०—विजये । निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लंकेश्वराय ।—अभि० तृतीयांक
भटः—निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय विराटेश्वराय ।—पंच० २।२३
भटः—भोः भोः । निवेद्यताम् सर्वक्षत्रियाचार्यपुरोगाणां ।—पंच० ३
भट.—भोः भो. । निवेद्यताम् निवेद्यतां महाराजायांगेश्वराय ।—कर्ण १
निवेद्यतां निवेद्यतां पुत्रशतश्लाघ्यबान्धवाय धृतराष्ट्राय ।—दूत० वा०

१३. नाटकों में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग—

एषा गच्छामि मन्दभागा ।—स्वप्न, प्रतिज्ञा, बाल०, अभि०, उरु०
जीवामि मन्दभागा ।—स्वप्न०, पृ० १७
का गतिः ।—स्वप्न० प्रतिमा०
कः कालः ।—स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, चारु०
कः कालस्त्वामन्विष्यामि ।—स्वप्न० पृ० १७, प्रतिज्ञा० पृ० २१
गच्छतु पुनर्दर्शनाय ।—स्वप्न०, अवि०, बाल०, मध्यम०, दूतवा०, चारु०
यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः ।—बाल०, दूतवाक्य०

न शक्नोमि रोष धारयितुम् ।—दूत घ०, अभि०, प्रतिमा

बाढं प्रथम. कल्प: ।—स्वप्न०, पंच०, अवि०, बाल०, मध्यम०, अभि०, प्रतिमा० उरु० ।

महाराजस्य प्रत्यन्तरीभवाम: ।—उरु०, अभि०

वक्तुकामामिव त्वा लक्षये ।—प्रतिज्ञा०, अभिषेक०

सर्व तावत् तिष्ठतु ।—प्रतिज्ञा०, अवि०, बाल०, चारु०

स्थितो मध्याह्न. ।—स्वप्न०, प्रतिज्ञा०

शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवतु अस्माकं गोधनस्य ।—पच०, बाल० ।

भास के विशेष प्रयोग

अभ्यन्तरचतु शाला ।—स्वप्न०, चारु०

एकातपत्र ।—स्वप्न०, अवि०, बाल०, दूतवाक्य०, प्रतिमा०

कनकरचिता ।—प्रतिज्ञा०, अभि०

कनकखचिता ।—दूतवाक्य०

कमलायताक्ष ।—बाल०, दूत०

दत्तमूल्य: ।—उरु०, चारु०

दारुपर्वतक ।—स्वप्न०, अवि०

दूतसम्पात ।—स्व०, अवि०

मणिभूमि ।—स्वप्न, प्रतिज्ञा०

समुद्रगृहक ।—स्वप्न०, प्रतिमा०

१. (ङ) प्राचीन सस्कृत विद्वानों की प्रशस्तियों के आधार पर निर्धारित भास की विशेषताएँ

प्राचीन संस्कृत विद्वानों की प्रशस्तियो को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) प्रत्यक्ष।

(२) अप्रत्यक्ष।

(३) प्रमाण रूप मे।

प्रथम श्रेणी मे वे सभी कवि तथा उल्लेखकर्ता आये है जिन्होंने भास का नाम तथा रचनाएँ दोनों को प्रमाणित मानकर उद्धृत किया है। यथा—

१. कविकुलगुरु कालिदास।

२. गद्यकार बाणभट्ट।

३. दण्डी।

४. वाक् पतिराज।

५. राजशेखर ।

६. जयदेव।

७ जल्हण ।

द्वितीय श्रेणी मे उन्हें परिगणित किया गया है जिन्होंने भास या उनकी रचना की चर्चा किसी-न-किसी रूप मे की है। यथा—

१ अर्थशास्त्र प्रणेता कौटिल्य ।

२. दण्डी ।

३. भामह ।

४. वामन ।

५. अभिनव गुप्त ।

तृतीय श्रेणी में प्रमाण या उद्धरण के रूप मे भास की रचनाओ से श्लोक उद्धृत करने वाले तथा उनसे प्रभावित होकर उनके विचारो के भाव के आधार पर निजी भाषा मे रखने वाले विद्वानो को उल्लिखित किया गया है।

१. भोजदेव ।

२. सर्वानन्द ।

३. शारदातनय ।

४. रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ।

५. सागर नन्दिन ।

६. साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ।

अन्य—श्री एस० आर० सहगल द्वारा भास के बालचरित नाटक[1] की भूमिका मे अज्ञात रूपेण श्लोक उद्धृत किया गया है जिससे उनकी रचनाओं की सख्या बीस तक प्रमाणित की गई है और उन्हें अनेकान्त विधाता विशेषण देकर उज्ज्वल महाकाव्यों के रचयिता भास मुनि नाम से उद्धृत किया गया है।

१. प्रशस्तियो में सर्वत. प्रथम कविकुलगुरु महाकवि कालिदास[1] द्वारा भास सौमिल्ल तथा कविपुत्र आदि कवियों के लिए प्रथितयशसा विशेषण देने मे यह स्पष्ट है कि इनके समय में भास की नाट्यकला जनप्रिय हो चुकी थी। इसी कारण ये स्पर्धात्मक भाव से नाटकीय कला को परिमार्जित तथा परिष्कृत रूप प्रदान कर सके। ऐसे मेधावी महाकवि द्वारा सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियो से पूर्व भास की प्रतिष्ठा की स्वीकृति इनके सर्वप्रथम लब्धप्रतिष्ठ नाटककार होने का प्रबल प्रमाण है।

---

१. भासमानमहाकाव्यः कृतविंशतिनाटकः।
अनेकान्तविधाता च मुनिर्भासोऽभवत् कविः ॥

—डा० एस० आर० सहगल, १९५९ संस्करण, पृ० ३९

१ प्रथितयशसां भास सौमिल्ल कविपुत्रादीनांप्रबन्धानतिक्रम्य
कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ॥—माल० मित्र

कालिदास को सन्देह था कि भास के नाटको की ख्याति इतनी सुदृढ़ हो चुकी है कि कहीं उसकी रचनाएँ उपेक्षित न हो जायें क्योकि अन्य नाटको से भास के नाटको की अभिनेयता की उपयुक्तता तो आज भी लेखको के लिए स्पृहणीय है। अत. कालिदास ने अन्य मनुष्यो की विचार परम्परा मे उत्कृष्ट रचनाओ के निर्माण करने वाले व्यक्तियो को 'मूढ़: परप्रत्ययनेयबुद्धि:' कहा है। प्राचीनता तथा नवीनता उनकी दृष्टि में कोई आदरणीय वस्तु नही है, अपितु स्वय गुणो के आधार पर इसका निर्णय करना आवश्यक है। इस कारण से यह और भी पुष्ट हो जाता है कि रचनाएँ अच्छी कोटि की थी, तभी कवि को प्राचीन और अर्वाचीन रचनाओ के गुण दोषो की दृष्टि पर ध्यान आकृष्ट करने की महती आवश्यकता हुई। विद्वान् वर्ग ही इसका निर्णय करेंगे। यह तो सर्वमान्य है कि भास ने जिस नाटकीय कला के पूर्व रूप की सत्ता एव अभिनेयता मे अपनी प्रतिभा की अलौकिकता प्रदर्शित की उसी के प्राञ्जल तथा स्निग्ध रूप का लावण्य हम कालिदास मे देखते है। कालिदास के समक्ष कतिपय नाटक थे उनकी आलोचना के पश्चात् उन्हे अपनी प्रतिभा के प्रयोग का पूर्ण अवसर रहा। अत. वे शाकुन्तल जैसी रचना जनता के समक्ष रख सके और इसी कारण इनकी रचना 'काव्येषु नाटकं रम्यम् रम्यं शकुतला' के शोभनीय पद पर आसीन है जिसकी विदेशी कवि गेटे ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

२. गद्यकार बाण द्वारा हर्षचरित मे महान् नाटककार भास के लिए प्रशस्ति[१] प्रयुक्त की गई है। प्रशस्ति पर विचार करने से पूर्व उसकी उपयुक्तता तथा प्रयुक्तकर्ता के सामयिक प्रासंगिक वर्णन पर भी सक्षिप्त विचार करना अनुचित न होगा।

(क) हर्षचरित प्रथम उच्छ्वास के आरम्भ में ही महाकवि बाण साम्बशिव की उपासना के अनन्तर महाभारत प्रणेता महाकवि वेदव्यास[२] के लिए प्रणामाञ्जलि प्रस्तुत करते है तथा अन्य कुकवियो को कोकिला की भाति वाचाल और चौर सदृश दर्शाते हुए यह स्पष्ट करते है कि 'अभिनव कल्पना, विदग्धतापूर्ण श्लिष्ट पद रचना, रसयुक्त, विकट अक्षर बन्ध'[३] इन सभी की एकत्र उपलब्धि दुष्कर है। इसके अनन्तर आख्यायिकाकारो को भी उन्होंने वन्द्या निर्दिष्ट किया है।

(ख) गद्यबन्ध हरिश्चन्द्र, सातवाहन तथा कवि प्रवरसेन की कुमुदोज्ज्वला कलित कीर्ति की स्वीकृति उन्होंने की है। इसके पश्चात् नाटकीय क्षेत्र मे सर्वप्रथम भास की वैशिष्ट्ययुक्त प्रशस्ति सुदृढ़ भित्ति की भाँति वर्णित है। इतना ही नही, बाण का नाटकीय अध्ययन भी विस्तृत एवं गहन रहा होगा जिससे वे उपयुक्त विशेषणों की समष्टि मे भास

१. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—बाण हर्ष० च० १।१५

२. नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥—हर्ष० १।३

३. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्रदुष्करम् ॥—हर्ष च० १।८

की ख्याति की हार्दिक उपकृति की अभिव्यक्ति कर सके। भास के उपरान्त ही उन्होंने कालिदास[1] की सूक्तियो की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः नाटक के क्षेत्र में बाण ने केवल भास की ही ख्याति की उपयुक्त विशेषणो के साथ प्रशस्ति नही की, अपितु अन्य कवियों के विषय मे भी अपने विचार व्यक्त किये है।

२ बाण की प्रशस्ति की व्याख्या :—

सूत्रधार (नाटक का मैनेजर या कारीगर) बहुभूमिकैः, (पार्टियाँ आँगन) वाले पताकैः, पताका प्रासगिक कथा तथा ध्वजाओं से मण्डित मंदिर की भाँति भास ने अपने नाटकों मे यश की प्राप्ति की। बाण ने महान् नाटककार भास के नाटकों के लिए तीन शब्द विशेषण के रूप मे तथा देवकुलैः उपमा अथवा तुलना के रूप मे प्रयुक्त किए है। (सूत्रधार-कृतारम्भैः बहुभूमिकैः सपताकैः) नाटकों की पर्यालोचना से सूत्रधारकृतारम्भ विशेषण समीचीन ही है। सभी नाटको में यह प्रथा प्राप्त है। 'बहुभूमिकैः' से आशय विभिन्न पात्रों तथा उनकी उपयुक्त अवस्थाओं, स्थानों की बहुलता के वर्णन से है जो इन नाटकों मे प्रयुक्त हुई है। मन्दिर के पक्ष मे विस्तृत आगन वाले अर्थ प्रयुक्त होता है। 'सपताकैः' विशेषण में पताका[2] की परिभाषा इस प्रकार है। प्रधान कथा की उपकारिणी प्रासंगिक कथा को पताका कहा गया है। बहुभूमिकैः, सपताकैः विशेषणों को देवकुलैरिव के साथ जब हम प्रयुक्त करते है तो विभिन्न प्रसिद्ध कारीगरों, विभिन्न कथाओं, आँगन वाले तथा ध्वजाओं से मण्डित मन्दिरो के समान नाटकों मे यश की उपलब्धि की, ऐसा अर्थ संघटित होता है। बाण ने देवकुलैरिव उपमा इसी हेतु दी कि नाटक संग्रह में पवित्र एवं धार्मिक लोक-कथाओं का वर्णन सगृहीत रहा है। यथा प्रतिमा, अभिषेक, बालचरित तथा दूतवाक्य में इन पूत चरित्रों के चित्रांकन के बल पर आधारित भास की ख्याति का आधार देवकुल (मन्दिर समूह) है और उन्हीं के साथ उनकी समानता दर्शायी न कि दर्शकगृहों, राजकीय महलों, रंगमहलो आदि के साथ। वैसे तो भास के समय नृत्यगृहों तथा राजभवनों की कीर्ति पर्याप्त मात्रा में थी। भास के बहुभूमिकायुक्त नाटक बाण के समय प्रसिद्ध थे, अतः भास को सर्व-प्रथम नाटककार घोषित करना उपयुक्त ही है। देवकुल शब्द से नाटकों का सम्बन्ध इस कारण भी प्रतीत होता है कि भारत में भी नाटकों का आयोजन तथा उपयोग उत्सवों पर्वों तथा विशेष समारोहो के अवसरो पर मन्दिरों की सुसज्जा के समीप अथवा मदिरो में ही हुआ करता था और मन्दिर ही सार्वजनिक सम्मेलन स्थल थे और आज भी इस प्रकार के आयोजनों को आयोजित करने के लिए प्रायः ऐसे स्थल ही चुने जाते हैं यद्यपि सम्प्रति

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते॥—हर्ष च० १।१६

२. बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च। अर्थ प्रकृतयो ह्येताः पंचसर्वप्रयोगगा इति। यद्वृत्तं तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम् प्रधानवच्च कल्पेत सा पताकेति कीर्त्यते। वैजयन्तीपताका च।
—सा० द०

विशेष स्थलो की सुगठित योजना भी प्राप्त होती है।

'विभिन्न धार्मिक कथाओ के चित्रण तथा विभिन्न ध्वजाओं से मण्डित मन्दिरो के निर्माण द्वारा जैसे कोई व्यक्ति स्थायी ख्याति प्राप्त करता है, उसी प्रकार महान् नाटककार भास ने अपने नाटको मे विभाव्यमान भूमिकाओं, धार्मिक कथाओ, सहायक कथाओं के सुगुम्फन से अपनी कीर्ति प्राप्त की। कथाओ के प्रणयन मे लकड़ी के हाथी की कथा प्रतिज्ञा यौगन्धरायण मे, प्रतिमा नाटक मे प्रतिमा मन्दिर की अभिनव कल्पना, अविमारक में प्रियतम का प्रणयिनी की अनुपलब्धि मे आत्मबलिदान तथा अनेक जन-जीवन सुलभ सदुक्तियों, सुभाषित वचनावलियो, हास्यास्पद कथनोपकथन, ललित एवं लावण्यमयी लोक-कथाओ के सुअंकन द्वारा भास के नाटक जनप्रिय हो गए।

वाण के देवकुल शब्द के प्रयोग का सम्बन्ध प्रतिमा नाटक में प्रयुक्त प्रतिमा मदिर के देवकुलिक से भी रहा होगा। क्योकि नाटकों के अध्ययन के पश्चात् ही किसी नाटककार अथवा कवि की इतनी मार्मिक एवं समीचीन समालोचना की जा सकती है। अतः बाण ने भास की प्रायः सभी रचनाओं को स्वयं देखा होगा तभी ऐसी सबल युक्ति के द्वारा प्रशस्ति लिखी। भास के लिए बाण ने देवकुलैरिव विशेषण एकाकी प्रयुक्त नही किया, अपितु सातवाहन[1] की रचना को 'रत्नैरिव' तथा प्रवरसेन[2] की रचनाओ को कपिसेनेव, तथा कालिदास[3] की कृतियो को 'मंजरीष्विव' आदि समान पदो द्वारा प्रयुक्त किया है। अतः भास की यह उक्ति केवल विहंगम दृष्टि द्वारा अथवा कथा श्रवण मात्र पर आधारित न होकर भासनाटकविलोडन के पश्चात् ही समीक्षात्मक एवं सत्य ठहरती है। इसकी पुष्टि में आधुनिक विद्वानों को निसन्दिग्ध स्वीकृति देनी चाहिए। अभी भास की रचनाओ की पूर्णतया उपलब्धि नही हुई है। इस ओर प्रयास करना आवश्यक है।

३. दण्डी ने सातवी शती उत्तरार्द्ध में अपनी पुस्तक अवन्तिसुन्दरी कथा[4] की भूमिका के श्लोक ११ में भास को नाटक रूपी शरीर के द्वारा स्थित रहने का निर्देश किया है। इन नाटकों में मुखाद्यंको का स्पष्टतया उल्लेख लभ्य होता है। इस प्रशस्ति में 'परेतोऽपि' विशेषण भास के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस नश्वर शरीर के विनष्ट हो जाने पर भी 'शरीरैरिव नाटकैः' नाटकों रूपी शरीर को धारण करने के कारण भास सम्प्रति भी हमारे सम्मुख समासीन है। नाटक तथा शरीर के विशेषण में 'सुविभक्त मुखाद्यंगै. व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः' का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि यथा मुख आदि इन्द्रियों तथा वृत्तियो के चाक्षुष प्रत्यक्ष के बल पर ही शरीर का स्पष्ट दर्शन तथा उसकी सत्ता की स्वीकृति होती है, उसी प्रकार मुख आदि सधियो व अंकों के समुचित सुविभाजन के साथ नाटकीय लक्षणों

१. अविनाशिन ··क्रोशं रत्नैरिव सुभाषितैः।—हर्ष च० १।१३

२. कीर्तिः प्रवरसेनस्य ·कपिसेनेव सेतुना।—हर्ष च० १।१४

३. निर्गतासु न···कालिदासस्य···मंजरीष्विव।—हर्ष च० १।१६

४. सुविभक्तमुखाद्यंगैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः॥—दण्डी अव० सुन्द० कथा भूमिका, श्लोक ११

तथा वृत्तियों की उचित व्यवस्था से विभूपित नाटकों की रचना करके भास अमरत्व को प्राप्त कर चुके है। नाटक ही शरार का कार्य कर रहे है। इन नाटको में ही भास के प्रत्यक्ष दर्शन हम करते है। नाटकै शब्द से भास नाटक चक्रम् की पुष्टि होती है। शरीर सम्बन्धी विवरण की पुप्टि मे दूत-वाक्य मे वासुदेव के विभिन्न रूपो और उन सभी रूपो मे उनकी शारीरिक उपस्थिति का नयनाभिराम वर्णन प्रशस्तिकार की दृप्टि मे अवश्य रहा होगा। नाटक के विभिन्न रूपो की पुष्टि भी भास द्वारा लिखित रचनाओ से हो जाती है। क्योकि इन्होने रूपक के कई भेद नाटक, प्रकरण, व्यायोग आदि पर रचनायें लिखी है। यथा दूतवाक्य व्यायोग अथवा वीथि तथा मध्यम व्यायोग, कर्णभार, दूत घटोत्कच तथा उरुभंग उत्सृष्टाक है। पचरात्रसमवकार, अभिपेक, बालचरित, प्रतिमा, अविमारक तथा स्वप्न वासवत्ता नाटक है और चारुदत्त तथा प्रतिज्ञा प्रकरण है। इस प्रकार विभिन्न रूपो से रूपायित रचना द्वारा भास ने स्थायित्व प्राप्त किया।

४. वाक्पतिराज[1] ८वी शती ए० डी० ने अपने गउडवहो नामक ग्रन्थ में भास को ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) कहा है। भास को ज्वलनमित्र उपाधि से विभूपित करने समय यह निश्चित है कि वाक्पतिराज के मस्तिप्क मे भास की रचना स्वप्नवासवदत्ता में वर्णित कथा मे वासवदत्ता का अग्नि में भस्म होने का वृत्तान्त अवश्य रहा होगा। इसी कारण उन्होने भास को 'अग्नि का मित्र' कहा है।

५ ९वी शती ए० डी० में सूक्ति मुक्तावली के रचयिता 'राजशेखर'[2] ने भास नाटक चक्रम् का उल्लेख किया है तथा स्वप्न वासवदत्ता को उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना घोषित किया है। वर्तमान संग्रह भास नाटक चक्रम् जोकि टी० गणपति शास्त्री द्वारा १३ नाटकों का प्रकाशित किया गया है। उसकी पुष्टि मे यह प्रबल प्रमाण सुगमतया प्राप्त हो जाता है। सामान्यतया यह उक्ति भास की रचनाओ के विषय में श्लिप्टरूपेण समुचित अंकित की गई है। भास की सभी रचनाओं को अग्नि में जला देने पर भी स्वप्न वासवदत्ता को अग्नि न जला सकी और यह रचना शेष रह गई। यदि हम अन्य सभी रचनाओ की उपेक्षा भी कर दे और उन्हे जला भी दे तब भी स्वप्नवासवदत्ता स्थायी रूपेण काव्य-सम्पदा के रूप में अपनानी आवश्यक है। दूसरा आशय भास के कथानक को भी स्पप्टतया घोपित करता है कि स्वप्न वासवदत्ता नाटक में अग्निदाह की मिथ्या वार्ता प्रसारण के आधार पर वासवदत्ता को अग्नि न जला सकी। यह सर्वमान्य है कि राजशेखर ने भास की रचनाओ को पूर्णतया पढकर उनमें वासवदत्ता के अग्निदाह के प्रसंग के आधार पर ही अपनी प्रशस्ति लिखी। अत: भास की ही रचना वासवदत्ता अग्निदाह प्रसंग से सम्बन्धित नाटकचक्र में से एक है, प्रमाणित हो जाता है।

---

१. भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ॥—वाक्पतिराज, गउडवहो

२ भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥—सू० मु०

६. १२वीं शती के प्रसन्नराघवकार जयदेव[1] ने भास को वाणी का हास माना है। उन्होंने भास के हास तथा कालिदास के विलास वर्णन मे इन दोनो की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हास्य सम्बन्धी विशेषण की उक्ति भास की रचनाओ मे वाणी के हास, सारल्य तथा सौष्ठवयुक्त वर्णन के लिए है। इसी में वाणी का उज्ज्वल रूप प्राप्त होता है। वासवदत्ता, अविमारक आदि मे वसन्तक का हास केवल आमोददायक ही नहीं है अपितु चिंतित परिस्थितियों मे जीवनी शक्ति भी प्रदान करने वाला है। सामयिक नाटकों मे हास्य का नितान्त अभाव ही रहा होगा किन्तु भास ने अपनी रचनाओं मे वसन्तक द्वारा जनसुलभ हास्य के पुट का मिश्रण किया है। भास की उक्तियों मे कालिदास के समान सुकुमार हास्य के ही दर्शन नही होते अपितु प्रतिज्ञा के विदूषक में उद्धत हास्य के दर्शन भी हमें होते है।

७. कवि जल्हण १२वीं शती ने भी राजशेखर द्वारा प्रयुक्त 'भास नाटक चक्रेऽपि' वाली प्रशस्ति की पुनरावृत्ति की है।

अप्रत्यक्ष रूप मे जिन्होने भास कृत रचना न बतलाकर वासवदत्ता अथवा अन्य ग्रन्थों से उद्धरण दिए है, उनका यहां उल्लेख किया जाता है।

(१) ईसवी पूर्व चतुर्थ शती में अर्थशास्त्र प्रणेता कौटिल्य[2] ने जो श्लोक उद्धृत किया है वहाँ 'अपीह श्लोकौ भवत' कहकर प्रयुक्त किया है। वही श्लोक प्रतिज्ञा में चतुर्थांक मे उद्धृत किया गया है जिसमें यौगन्धरायण वीरो को युद्ध हेतु प्रोत्साहित करता है तथा राजा के लिए प्राणार्पण न करने वालो को नरकगमन का निर्देश करता है। कौटिल्य का यह उद्धरण प्रसगानुकूल होने के कारण भास की रचना से ही उद्धृत है। यदि यह पद्य किसी स्मृति ग्रन्थ से लिया गया होता तो वहाँ स्मृतौ पद से अंकित अवश्य किया गया होता। इससे भास की अत्यन्त प्राचीनता सिद्ध होती है।

(२) दण्डी[3] ने ६ ए० डी० मे जो पद्य अपने ग्रन्थ काव्यादर्श मे उद्धृत किया है, वह बालचरित तथा चारुदत्त मे प्राप्त होता है। अन्धकार के वर्णन में कवि की मौलिकता है और इस प्रकार के सफल वर्णन से उद्धरण लिया जाना समीचीन ही है। इतना ही नहीं है अपितु जिन दोनों स्थलों पर चारुदत्त तथा बालचरित मे यह श्लोक प्रयुक्त है; वहां नाटको का प्रमुख पात्र (अन्धकार की शरण) महान् लक्ष्य की प्राप्ति करता है। चारुदत्त[4] में वसन्त सेना गणिका, जोकि नाटक की नायिका है, विट द्वारा संत्रस्त होने के कारण

---

१. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।—प्र० रा० जयदेव

२. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्ध्येत्॥
—कौटिल्य १०।३, प्रतिज्ञा ४।२

३. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥——काव्यादर्श. चारु० तथा बाल०

४. चारुदत्त में विटः—अहो बलवांश्चायमंधकारः।—बाल०

अन्धकार के बल से ही चारुदत्त के यहाँ अपने को शरण देती है। कवि इस स्थल पर गहन अन्धकार को सुलभ शरण कहता है। अन्धकार भयकारक तथा भयभीत का रक्षक दोनों रूप मे वर्णित है। बालचरित[1] मे वसुदेव नाटक के नायक बालकृष्ण को छिपा कर ले जाने में अन्धकार का आश्रय लेते है। इस श्लोक के पश्चात् दूसरा श्लोक भी समान भाव का घोषित करता है। क्योकि चारुदत्त में भी गहन वन की समानता दर्शायी है और यहां बालचरित मे भी दिशाओ की अप्रकाशता वृक्षों की घनीभूतता मे लोक के रूप को ही परिवर्तित कहा गया है। दोनो नाटको के गमनकालीन वर्णन में अन्धकार का प्रसंग है। दोनों पात्रों को वह अन्धकार हर्षदायक है। यथा वसन्तसेना अन्धकार की निविड़ता से अपनी प्रियोपलब्धि मे हर्षित है तथा वसुदेव भी अन्धकार मे कंस के भृत्यो द्वारा अदृष्ट होकर अभीष्ट स्थल पर पहुँचने मे हर्षित है। अत. वर्णनसाम्यता दर्शनीय है।

(३) भामह ८०० ने काव्यालंकार के चतुर्थांक में न्यायविरोध के वर्णन में वत्सराज की जीवन घटना प्रसंग में इस प्रकार का वर्णन किया है कि 'अनेन मम भ्राता हत:' जो वर्णन प्रतिज्ञा में भी वत्सराज के गृहीत होने के समय महासेन के सैनिको द्वारा उच्चरित है। यहाँ तो नायक वत्सराज के गुणों का वर्णन है और वहाँ शत्रुदल की विपत्ति का। काव्यालकार मे नाटक तथा नाटककार का नाम निर्दिष्ट नही है। ऐसा ही प्रसंग गुणाढ्य की वृहत्कथा मे भी है। अत भासविरोधी व्यक्ति भास के विरोध वर्णन में वृहत्कथा के स्मरण की इस प्रसग के उद्धृत करने में विचारधारा रखते हैं किन्तु यह समीचीन नही है।

(४) वामन ९०० ए० डी० ने अपने काव्यालकार सूत्रवृत्ति मे व्याजोक्ति के उदाहरण मे निम्नाकित श्लोक उद्धृत किया है।

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम्॥

व्याजोक्ति के समीचीन उदाहरण में काशपुष्पलवेन मे ही उपयुक्तता है। यह भासकृत स्वप्न के चतुर्थांक का सप्तम श्लोक है। राजा के मित्र की दक्षिणता का मनोरम उदाहरण है। काशपुष्प के श्वेत पराग का ही वर्णन उससे पूर्व भी स्वप्न वासवदत्ता[2] में विदूषक करता है। तथापि यह कह देने के पश्चात् अन्य स्पष्टीकरण की आवश्यकता अपेक्षित न थी, तथापि राजा के मुख से इस श्लोक को कहलाया गया है तथा दूसरे श्लोक में स्पष्ट वार्ता न कहने का कारण भी आत्मगतम् कहकर व्यक्त किया गया है। वामन ने भास की अन्य रचनाओ से भी अंशो को उद्धृत किया है जोकि प्रतिज्ञा मे 'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्' चतुर्थांक में प्राप्त होता है। यह शब्द प्रतिज्ञा मे प्रथमांक मे भी हंसक के साथ वार्तालाप मे यौगन्धरायण अपने को राजा द्वारा स्मरण किया जाने पर और स्वामी की रक्षा न करने पर भी द्रष्टव्य समझता है और गर्वित अनुभव करता है। उसकी यह

---

१. वसुदेव—अहो बलवांश्चायमंधकारः।—बाल०

२. विदूषक—भवति! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाक्षिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम्। तद् प्रह्लादु भवतीदं मुखोदकम्।—स्वप्न० चतुर्थांक

उक्ति (नून हि अनर्हप्रतिक्रियमनिर्विष्टभर्तृपिण्डम्) स्वामी के लिए अपनी योग्यता की परिचायिका है। शरच्चन्द्रांशु वाले पद्य मे केवल चन्द्रांशु के स्थान पर शशांक तथा कृतं के स्थान पर मम मिलता है। वामन ने इसी ग्रन्थ में 'यासां वलिर्भवति···मुखावलीढ:' वाला पद्य भी उद्धृत किया है जो कि चारुदत्त तथा मृच्छकटिक दोनो मे प्राप्त होता है। कतिपय विद्वान् इसको मृच्छकटिक से उद्धृत कहते हैं; क्योकि वामन ने इसके साथ मे एक गद्य खण्ड 'द्यूत हि नाम पुरुषस्यासिंहासन राज्यम्' कह कर द्यूत की निन्दा का वर्णन किया है जोकि चारुदत्त मे प्राप्त नही होता।

(५) अभिनवगुप्त दशम शती ए० डी० ने अपने ग्रन्थ नाट्यवेदविवृत्ति मे वासवदत्ता का उल्लेख (क्वचित्क्रीड़ा यथा वासवदत्तायाम्) किया है। भासकृत स्वप्नवासवदत्ता[1] मे पद्मावती का कन्दुक क्रीडा का वर्णन साम्य रखता है, अत यह सकेत इसी रचना की ओर है। इन्होंने ही ध्वन्यालोक[2] की व्याख्या मे एक आर्याछन्द का भी स्वप्न से उद्धृत होने का उल्लेख किया है। वह छन्द प्रस्तुत सस्करण मे लभ्य नही होता। व्याख्याकार के ग्रन्थ निर्देशन मे भी यह त्रुटि सम्भव हो सकती है अथवा लिपिकारो की भूल भी स्वीकृत की जा सकती है।

३. तृतीय श्रेणी में वर्णित विद्वान्—

(१) भोज देव ११ शती ए० डी० ने अपने ग्रन्थ शृंगार प्रकाश मे स्वप्नवासवदत्ता के भाव का प्रसंग उद्धृत किया है। जिसमे शब्दो में परिवर्तन अवश्य है किन्तु भाव साम्य स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। निम्नाकित[3] प्रसग भी वासवदत्ता से ही लिया गया है। क्योकि यह सम्भव है कि भोजदेव ने इस प्रसग को पढ़ा हो और उद्धरण के समय भास रचित स्वप्नवासवदत्ता प्राप्त न हो सकी हो और कथा प्रसग सक्षेप में दिया हो।

(२) सर्वानन्द ११५९ ए० डी० ने अमरकोष की आलोचना मे शृंगाररस की आलोचना इस प्रकार की कि उन्होंने शृंगार के तीन भेद करते हुए उदाहरण रूप मे स्वप्नवासवदत्ता को उद्धृत किया है। यथा 'त्रिविधः शृंगारः धर्मार्थकामभिन्न.'। जिसका आशय यह है कि पद्मावती के परिणय प्रसंग मे तीनो प्रकार के भेदो को घटित किया गया है।

१. स्वप्न०—अम्मो इयं भर्तृदारिका कन्दुकेन क्रीडन्ती इत आगच्छति।
अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकं संजातरागौ ॥—स्व ...

२. संचितपक्ष्मकपाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥—ध्वन्यालोक

३ पद्मावती मंत्रस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहित च तदवलोक्य तस्या एव शयने सुष्वाप। वासवदत्ता च स्वप्नवत्स्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामावभाषे। स्वप्नशब्देन चेह स्वापो स्वप्नदर्शनं वा स्वप्नायितम् वा विवक्षितम्।
वासवदत्ता—(प्रविश्यावलोक्य) अहो परिजनस्य प्रमादः अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यजति। यावदुपविशामि अथवान्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि।—स्वप्न० पंचम अंक

निम्नांकित[1] प्रसंग में श्रृंगार के वर्णन में वासवदत्ता का प्रसंग है किन्तु उसमे वासवदत्ता परिणय की अपेक्षा पद्मावती का परिणय प्राप्त होता है। इसी आधार पर भट्टनाथ स्वामी त्रिवेन्द्रम् की वासवदत्ता को अभीष्ट न कहकर भिन्न ठहराते हैं। किन्तु यह स्मरण रहे कि त्रिविध श्रृगार मे अर्थ श्रृगार के उदाहरण मे ग्रन्थ का निर्देश नही किया। यह वाक्यों मे शब्द परिवर्तन द्वारा सम्भव हो सकता है। वस्तुत. अर्थ तथा काम श्रृगार दोनो के उदाहरण स्वप्न मे मिलते हैं।

(३) शारदातनय बारहवीं शती ए० डी० ने भावप्रकाश मे प्रशान्त नाटक की परिभाषा बतलाते हुए स्वप्न का उदाहरण दिया है और इसे सुबन्धु द्वारा वर्णित पचसन्धि-समन्वित बतलाया है। इसके प्रथमांक में वासवदत्ता का न्यास रूप में पद्मावती के पास सौंप दिया जाना मुखसन्धि, पद्मावती के मस्तक पर सुन्दर तिलक द्वारा वासवदत्ता के जीवित रहने के अनुमान से प्रतिमुख सन्धि बतलाई है। यह प्रसग प्रस्तुत वासवदत्ता मे नहीं प्राप्त होता है। तृतीय में वासवदत्ता को बुलाने मे गर्भबीजोक्ति, यह नाटक मे प्राप्त होती है। घोषवती वीणा की प्राप्ति चतुर्थ, बीजदर्शन, किं ते भूय. प्रियं कुर्याम् मे उपसहृति नामक सन्धि है। विरोधी विद्वान् द्वितीय सन्धि (तिलक के प्रसंग) को प्रस्तुत वासवदत्ता मे न आया हुआ मान कर भास की रचना मे सन्देह करते है। किन्तु ऐसा नहीं है। जब चारों सन्धिया प्राप्त होती है तो केवल एक सन्धि के अभाव में ऐसा नही माना जा सकता। यह प्रतिलिपि की अशुद्धि भी कही जा सकती है।

(४) बारहवी शती मे रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण मे स्वप्न वासवदत्ता का नाम उसके रचयिता के साथ उल्लिखित किया गया है। यथा 'भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शैफालिका शिलातलमवलोक्य'।

वत्सराजः—पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेद शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मा दृष्ट्वा सहसा गता॥

वस्तुत. उपर्युक्त पद्य त्रिवेन्द्रम सीरीज वाली वासवदत्ता में प्राप्त नहीं होता है। प्रो० सिल्वा लेवी इस वासवदत्ता के भास रचित होने मे सन्देह करते है। किन्तु यह पद्य एम० आर० काले द्वारा सम्पादित वासवदत्ता चतुर्थांक मे तृतीय श्लोक के पश्चात् उचित स्थल पर अंकित दिखलाया गया है। इस प्रकार एक छन्द की त्रुटि प्रतिलिपि में सम्भव हो सकती है।

(५) **सागरनन्दिन**—ने अपने ग्रन्थ नाटक लक्षण रत्नकोष में पताका से प्रमुख घटना (आधिकारिक कथावस्तु) की ओर आने की विधि में स्वप्न की ओर संकेत किया

---

१. यथा—त्रिविधः श्रृंगारः धर्मार्थकामभिन्नः। तत्राद्यो यथा नदपत्न्यां ब्राह्मणभोजनम्। द्वितीयः स्त्रद्शिखिमात्मसात्कर्तुं मुद्यतस्य पद्मावती परिणयोऽर्थ श्रृंगारः। तृतीयः स्वप्नवासवदत्ते तस्यैव वासवदत्ता परिणयः कामश्रृंगारः—अ० को० सर्वानन्द

है। इसमें ग्रन्थकार ने भाव को गृहीत कर अपनी भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रसंग[1] के विषय में प्रो० लेवी[2] तथा अन्य विरोधी विद्वान् त्रिवेन्द्रम ग्रन्थमाला की स्वप्न वासवदत्ता को भासकृत मानने में सन्दिहान प्रतीत होते है किन्तु भोजदेव द्वारा प्रयुक्त भाषा मे जिस प्रकार वासवदत्ता के भाव साम्य की पुष्टि होती है, उसी प्रकार प्रथमाक में यही प्रसग वासवदत्ता में उपलब्ध है। अत. उद्धरण भास रचित वासवदत्ता से ही सगृहीत किया गया है।

(६) विश्वनाथ १५०० ए० डी० ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण के छठे परिच्छेद मे वातचीत मे निम्नाकित[3] पद्य का निर्देश किया है। जिसमे परशुराम की राम के प्रति उक्ति है और त्रिवेन्द्रम बाल चरित मे कृष्ण चरित का वर्णन है। अत: यह प्रसग अन्यत्र का ही प्रमाणित होता है। साहित्यदर्पण में नान्दी की[4] परिभाषा के अनन्तर नान्द्यन्ते सूत्रधार का प्रसग भी प्राप्त होता है। कतिपय विद्वानो की सम्मति मे नान्दी की उक्त परिभाषा उचित है किन्तु अन्य विद्वान् इसे पूर्व रंग अथवा रंगद्वार का पूर्व भाग कहते है, तथापि साहित्यदर्पणकार की यह परिभाषा कालिदास कवि के इन पद्यो के साथ सहमत नही प्रतीत होती। 'यथावेदान्तेषु'''। यह भी कहा गया है कि कवि को अपनी रचना के आरम्भ में रगद्वार रखना चाहिए। इसी कारण पूर्व रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियो मे नान्द्यन्ते तत: प्रविशति सूत्रधार: के बाद ही वेदान्तेषु आदि लिखा हुआ प्राप्त होता है। इसी कारण नान्दी मगल श्लोक नही है अपितु रगद्वार का ही एक पूर्व भाग होता है जोकि प्राचीन रचनाएँ जिनसे विश्वनाथ परिचित होगे उनमे सबसे प्राचीन विक्रमोर्वशीय में सर्वत: प्रथम नान्द्यन्ते आदि मिलता है। अत यही नियम दाक्षिणात्यों को भी अपनी रचनाओं मे प्रयुक्त करने का अवसर मिला है। इस प्रकार प्रो० सी० आर० देवधर भास की रचना मे कोई वैशिष्टच स्वीकार नहीं करते है।

प्रशस्तियों के विषय में विभिन्न विद्वानों के मतों का विवेचन

डा० वर्नेट[5] ने इन नाटकों को ७ ए० डी० की रचना निश्चित करने का प्रयास

---

१. यथा स्वप्न वासवदत्ते नेपथ्ये सूत्रधार: उत्सारणां श्रुत्वा पठति अये कथं तपोवनेऽप्युत्सारणा। विलोक्य कथं मंत्री यौगन्धरायण: वत्सराजस्य राज्यप्रत्यायनं पद्मावतीजनेनोत्सार्यते। इत्युत्सारणाशब्दोऽप्यत्र पूर्व प्रयोगमुत्सार्य। नाटकार्थ सूचक इति प्रयोगातिशय: ।—ना० ल० र० सागरनन्दिन

२. प्रो० सिल्वां लैवां द्वारा नाटक लक्षण रत्नकोष' की आलोचना, एशियाटिक पत्रिका (अक्तूबर-दिसम्बर १९२९)

३. उत्साहातिशयं वाल्यं च पश्यत: ।
मम हर्ष विषादाभ्यामाक्रान्तं युगपन्मन: ॥——सा० द० ६ विश्वनाथ

४. एतन्नांदीति कस्य चिन्मतानुसारेणोक्तम् । वस्तुतस्तु पूर्वरंगस्य रंगद्वाराभिधानमंगम् इत्यादि। कालिदासादि महाकवि प्रबन्धेषु च वेदान्तेषु यमाहुरेक पुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी। एवमादिषु नान्दीलक्षणयोगात्। उक्तं च रंगद्वारमारभ्य कवि: कुर्यात् इति। अतएव प्राक्तनपुस्तकेषु नान्द्यन्ते सूत्रधार: इत्यनन्तरमेव वेदान्तेषु इत्यादि श्लोक लिखनं दृश्यते।—सा० द०

५ दी बुलेटिन आफ दी स्कूल्ज आफ ओरियन्टल स्टडीज।—प्रथम वोल्यूम ४०, अक्तूबर, १९२०

किया है। महा० म० गणपति शास्त्री ने बाण द्वारा हर्षचरित में उद्धृत भास की प्रमुख विशेषताओं के आधार पर रामायण, महाभारत काल के समीप की रचना बतलाया है और बाण की प्रशस्ति मे पूर्ण आस्था दर्शाई है। क्योंकि सूत्रधार कृतारम्भै. विशेषणो को वे भास के नाटको मे प्राप्त करते हैं। डा० वर्नेट ने अपने मत की पुष्टि मे पल्लव राजा महेन्द्र वीर विक्रम द्वारा लिखित मत्तविलास प्रहसन का आरम्भ भी भास की रचनाओं की तरह नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार· से माना है। इस कारण वे इन रचनाओं को भी इसी समय की बतलाते है। किन्तु बाण की प्रशस्ति के आधार पर भास का समय ६२० ए० डी० में नही हो सकता।

प्रो० विन्टरनित्ज इन दोनों प्रमाणो में अपनी आस्था नही रखते तथा इन्हे प्रमाणो की सूची से बहिष्कृत करते हैं। क्योकि गणपति शास्त्री द्वारा प्रमाणित मत मे स्थापना सभी नाटको मे नहीं प्राप्त होती। कर्णभार में इसका नाम प्रस्तावना ही निर्दिष्ट है। उनके विचार मे यह दोनों विशेषताएँ किसी दक्षिण के नाटककार की है। क्योंकि कुलशेखर वर्मन की रचनाओं 'ताप्तीस्वयंवर तथा सुभद्राधनञ्जय, शूद्रक की पद्य प्रभृतक ईश्वरदत्त की रचना धूर्तविलास, वररुचि की रचना उभयाभिसारिका, श्यामितक की पदाताादिताका की रचना इसी प्रकार की पाते हैं। इसी प्रकार के एक एकांकी नाटक नीलकण्ठ द्वारा रचित कल्याण सौगन्धिका को भी हम अपने नाटककार के निकट पाते है। इसमें भी आरम्भ तथा स्थापना को प्राप्त करते हैं। प्रो० विन्टरनित्ज के अनुसार इन रचनाओं में समानता होने पर भी भिन्नता अधिक है। शक्ति भद्र की रचना आश्चर्य चूड़ामणि जो कि नवीं शताब्दी की रचना है, यदि उससे हम भास की रचनाओं की समानता मानें तो भी वह रचना नवीं शताब्दी की है और उससे दो शताब्दी पूर्व बाण ने भास के नाटकों को 'सूत्रधार कृतारम्भै', दण्डी ने तथा भामह ने इनका उल्लेख किया है। अतः इतने पश्चात्काल की रचना रखने में इन प्रशस्तियों का विचित्र मूल्यांकन नहीं हो पाता। प्रो० परांजपे ने भी शक्तिभद्र लिखित आश्चर्य चूड़ामणि, उन्मत्त वासवदत्ता, वीणा वासवदत्ता तथा मत्तविलास प्रहसन को किसी भी प्रकार भास की रचनाओ की समानता तथा समकालीनता में नहीं ला सकते। क्योकि इनमें विचार, भाव शब्द, वाक्य, चरित्र-चित्रण तथा कथावस्तु में भास के नाटको से अत्यन्त नगण्य साम्य मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन जोकि प्रशस्तियों के सम्बन्ध में लिखा गया है जिसमें तीनों प्रकार के विद्वानो के उल्लेखो का उनके ग्रन्थो के स्थलों के अध्ययन के पश्चात् अंकन किया गया है। बाण की प्रशस्ति ही भास की रचनाओं के लिए जीवनदायिनी बूटी है जिसके रस से सिक्त होकर हम उन्हे अमरता प्रदान कर सकते है। इन प्रशस्तियों के अभाव में संस्कृत वाङ्मय के महान् नाटककार के विषय में हम कोई भी सूचना नहीं प्राप्त कर सकते थे।

१. (च) भास के साहित्य का अध्ययन और उसका अधूरापन

भास की रचनाओं का अध्ययन सर्वप्रथम[1] म० म० गणपति शास्त्री ने १९१२ मे त्रिवेन्द्रम सीरीज मे प्रकाशित किया। इससे पूर्व यत्र-तत्र इनका निर्देश सतत प्राप्त होता रहा है। विभिन्न विद्वानों ने अपने मत का विवेचन 'भास नाटक चक्रम्' के विषय मे अभिव्यक्त किया है। डा० विन्टरनित्ज ने इन्हे भास कृत मानने मे विरोध किया तथा १९३७ में अपने मित्र विद्वानो से भास नाटक चक्रम् की आलोचना के विषय में निवेदन किया। इसके उपरान्त वी० एम० सुखथन्कर[2] ने भास पर गम्भीर गवेषणापूर्ण विवरण अपने लेख 'भास के अध्ययन' के नाम से निकाला जोकि सुखथन्कर मेमोरियल वोल्यूम द्वितीय मे प्रकाशित किया गया है। उसमे विभिन्न दृष्टियों से भास की समस्या का समाधान किया गया है। यह ग्रन्थ १९२४ मे पूना से प्रकाशित हुआ।

भास के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर सी० आर० देवधर ने भी इन नाटकों का गम्भीर अध्ययन किया तथा इसी समस्या का विश्वनाथ नारायण माण्डलिक गोल्ड मेडल की निबन्ध प्रतियोगिता में बम्बई विश्वविद्यालय ने १९२३ में प्रस्तुत किया तथा यह निबन्ध भण्डारकर इन्स्टीटयूट की वार्षिक पत्रिका मे प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् १९२७[3] मे यह निबन्ध एक पुस्तक के आकार मे भास के नाटको की प्रामाणिकता के रूप मे प्रकाशित हुआ इस विवेचन मे इन्होने अपने पूर्ववर्ती विद्वान् म० म० गणपति शास्त्री तथा वी० एस० सुखथन्कर के अध्ययन का आश्रय लिया है जिसे इन्होंने भास नाटक चक्रम् की भूमिका मे स्वीकृत किया है। पुनः श्री देवधर ने १९२५-२६ में स्वप्न वासवदत्ता, अविमारक तथा बालचरित, १९२६-२७ मे मध्यम व्यायोग, उरुभंग, दूतघटोत्कच तथा कर्णभार को हस्तलिखित प्रतियों से पुन. तुलना करके प्रकाशित किया। तदनतर भास नाटक चक्रम्[4] का आलोचनात्मक सस्करण विद्वानो के समक्ष आया। उन्होंने इन नाटकों को भास की रचना मानने का विरोध किया तथा डा० विटरनित्ज ने इसका समर्थन भी प्रदर्शित किया। इसी बुलेटिन[5] मे विटरनित्ज ने भास की रचना की स्वीकृति का विरोध दर्शाया है। इसी समय डा० ए० बैनर्जी शास्त्री[6] एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन) ने १९२१ मे अपने लेख 'प्लेज आफ भास' मे भास के काल तथा उसकी प्राकृत भाषा को मागधी नाम देकर एक विस्तृत लेख लिखा जो बिहार तथा उड़ीसा की रिसर्च समिति

---

१. 'बुलेटिन आफ दी रामावर्मा रिसर्च इन्स्टीट्यूट' वोल्यूम ५ भाग १, जन० १९३७
२. 'स्टडीज इन भास', 'भास ए रिडिल', 'ए प्रपोज्ड साल्यूशन' ।—१९२४, पूना संस्करण
३. 'प्लेज एस्क्राइब्ड टू भास', दियर अथेन्टिसिटी एण्ड मैरिट ।
—सी० आर० देवधर, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९२७
४. 'भास नाटक चक्रम्', भूमिका, पृ० २, द्वितीय संस्करण, १९५१, ओ० बु० ए० पूना ।
५. ए लेटर एड्रेस्ड टू पी० अनुजान अचन 'आई एम नो लांगर ए बिलीवर इन भासाज आथरशिप आफ दीज प्लेज' ।
६. 'दी प्लेज आफ भास' बैनेर्जी शास्त्री जे० आर० ए० एस०, जुलाई, १९२१

द्वारा जरनल[1] के रूप में १९२३ मे प्रकाशित हुआ। इस लेख में विद्वान् लेखक ने भास के काल निर्णय मे इनके पूर्ववर्ती तथा समकालीन विद्वानो की तुलना मे अपना गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्राकृत मे भी सामान्यतया मागधी भाषा के शब्दों को, अशोक के शिला-लेखों तथा अन्य ग्रन्थों में लभ्य शब्द रूपों से तुलना की है। इन्होंने भास का काल द्वितीय-तृतीय शती ए० डी० निर्धारित करने का प्रयास किया है।

मैक्सलिण्डन[2] ने भास स्टडी मे भी भास के नाट्यकला तथा नाटकों की कथा-वस्तु के स्रोत रामायण तथा महाभारत को ही निर्दिष्ट किया है किन्तु अविमारक को इसका अपवाद स्वरूप माना है। डॉ० लिण्डन ने इन रचनाओ की कथा-वस्तु में पौराणिक महाकाव्यो के प्रभाव को पूर्णतः दर्शाया है।

डॉ० विटरनित्ज ने भास के नाटको का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।

महाभारत—पंच०, दूतवाक्य०, मध्यम०, दूत घट०, कर्णभार० तथा उरुभंग।

कृष्णकथा—बाल चरित।

रामायण—प्रतिमा तथा अभिषेक।

बृहत्कथा—स्वप्न०, प्रतिज्ञा०, अवि० तथा चारुदत्त०।

भास की आभास, विविध ज्ञान विस्तार, नाम से एप्रिल सन् १९१६ में भास पर विवेचन प्रस्तुत किया गया जो कि भास व तद्रचित्त नाटकम् महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका में सितम्बर १९२० में प्रकाशित हुआ। म० म० गणपति शास्त्री ने १९२२ में भास के चारुदत्त पर विवेचन किया। मृच्छ और चारुदत्त पर पूना की प्रथम ओरियण्टल कान्फ्रेन्स की प्रोसीडिंग्ज़ मे विशद विवरण प्राप्त होता है। चारुदत्त तथा मृच्छ० पर जार्ज मोरगेस्टर्न ने भी अपने विचार व्यक्त किए है। जे० ए० ओ० एस० "स्टडीज़ इन भास" द्वितीय वाल्यूम, अप्रैल सन् २१ तथा जे० ए० ओ० एस० "स्टडीज इन भास' प्रथम वाल्यूम, ४०, अक्टूबर सन् १९२० तथा बुलेटिन आफ दी स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज, १९२० भाग तृतीय में भास तथा मत्तविलास प्रहसन सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

डॉ० वर्नेट[3] ने भास की रचना के विषय में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें इन नाटको की भास की कृतित्व पर विरोध प्रकट किया। इसके अतिरिक्त भास के सम्बन्ध मे निम्नांकित विद्वानो ने अपने लेख प्रस्तुत किए जिनमें भास की रचना के सिद्धान्त पर कतिपय सहमत हैं, अन्य विरोधी है तथा शेष मध्यममार्गी है, जिनका विस्तृत विवेचन रचनाओं की प्रामाणिकता वाले भाग में किया जा चुका है तथापि सक्षेप मे भास की समस्या पर विचार करने वाले विद्वानो के नाम निम्नांकित हैं।

---

१. दी जरनल आफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना, वो० ९, १९२३।

२. 'भास स्टडी', लिडन, पृ० १८

३. जे० आर० ए० एस०. २२-२३ मार्च, सन् १९१९, पृ० २३३।

सर्वश्री अमरनाथ शर्मा, आप्टे, अनन्ताचार्य, असूरी, बैनर्जी शास्त्री, वेस्टन, वेकर्नी क्रेसेन्र्जा, वेलोनी फिलिप, वेल्वेल्कर, भट्ट, मिडे, चौधरी, देव, देसपाण्डे, ध्रुव, गणपति शास्त्री, ग्रे, गुणे, हरप्रसाद हर्तेल, हिलेब्राउण्ट, जैकोबी, बैनवीर, जायसवाल, जौली, काले, खुप्रेकर, कोनो, लेकोट, लेस्नी, लेवी, लिण्डल, महेण्डल, मोरगेन्स्टर्न, ओग्डेन, पन्नालाल, प्रांजपे, पेवोलिनी, पिशरोटी, प्रिंट्ज, सुन्दर्स, सुआली, थामस, उर्ध्ववार्शे तथा वेलर आदि विद्वान है।

प्रो० सिल्वा लेवी के प्रयास से वासवदत्ता के फ्रेच अनुवाद का समाधान हुआ। पश्चात् मे ये भी विरोधी दल में सम्मिलित हो गए जिनके नाम ये हैं—वर्नेट, भट्टनाथ स्वामी, काणे, महावल, रंगाचार्य रेड्डी तथा रामावतार शर्मा। वासवदत्ता के विभिन्न भाषाओ मे विभिन्न विद्वानो ने अनुवाद किए, यथा—अग्रेजी, फ्रेच, जर्मन, इटेलियन तथा गुजराती। चारुदत्त तथा मृच्छकटिक का भी फ्रेंच मे अनुवाद किया गया। पश्चात् में अन्य नाटक भी अन्य भाषाओ मे अनूदित हुए। डॉ० गुणे ने प्रतिज्ञा यौगन्धरायण की विस्तृत व्याख्या की। गणपतिशास्त्री का स्वप्न तथा प्रतिमा का आलोचनात्मक अध्ययन भास समस्या पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। कोनो ने भी भास की रचनाओ पर आलोचना की।

इन आलोचकों मे मिडे ने भास को ५वी शती पूर्व, गणपति शास्त्री ने द्वितीय-तृतीय शती पूर्व; वी० मी० जायसवाल तथा चौधरी ने प्रथम शती पूर्व, कोनो, लिण्डन ने द्वितीय शती पूर्व; जैली, जैकोबी, बैनर्जी शास्त्री ने तृतीय-चतुर्थ शती; लेसनी और विटरनित्ज आदि ने चौथी शती; वर्नेट ने सातवी शती; काणे ने ९वीं शती; रामावतार पाण्डे ने १०वी शती, रगाचार्य रेड्डी ने ११वी शती, अपनी-अपनी रचनाओ मे वर्णित की है।

नाटकों के संस्करण[1]

अभिषेक	गणपति शास्त्री, १९१३, त्रिवेन्द्रम सीरीज न० २६
	इसी का इटेलियन अनुवाद इलेना वेकरनी क्रेसेजी ने १९१५ में किया।
अविमारक	गणपति शास्त्री, १९१२, त्रिवेन्द्रम् सीरीज, स० २०
	इटेलियन अनुवाद इलेना वैकरनी १९१७
उरुभग	गणपति शास्त्री, १९१२, त्रिवेन्द्रम् सीरीज, स० २०
कर्णभार	गणपति शास्त्री, १९१२, त्रिवेन्द्रम् सीरीज, स० २०
चारुदत्त	गणपति शास्त्री, १९१४, त्रिवेन्द्रम् सीरीज, सं० ३९
चारुदत्त	मिश्रप्रकरण, १९२२
	बगाली अनुवाद—श्रद्धाचन्द्र गोशल, १९१८

१. स्टडीज इन भास।

इसी का अनवाद स्टेनकोनो ने १६१६, वेलोनी फिलिप ने १६२३ मे किया।

बी० एस० सुखथन्कर ने "चारुदत्त ए फ्रेगमेन्ट" मिथिक सोसाइटी, बैंगलोर के क्वार्टरली पत्रिका १६१६ में चारुदत्त तथा मृच्छकटिक के सम्बन्ध पर १६२२ मे प्राजपे ने भी पृ० स० ८४ पर विवरण दिया है।

दूतघटोत्कच तथा दूतवाक्य, म० म० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् सीरीज, १६१८ में प्रकाशित किया जिसमे पुस्तक की पाठ्य वस्तु मे भी सशोधन किया। विटरनित्ज ने महाभारत द्वितीय शीर्षक मे भास के दूतवाक्य का १६१७ में प्रकाशन किया।

पंचरात्र—म० म० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् सीरीज सं० १७, १६१२ में इसका सपादन किया तथा दूसरा सस्करण १६१७ में निकाला जिसमें ग्रन्थ के पाठ मे भी उचित सशोधन किया गया। इसका अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद भी गोपाल ऊर्धवारशे तथा कृष्ण शास्त्री की संस्कृत आलोचना सहित हिन्दी अनुवाद इन्दौर मे १६२० में प्रकाशित हुआ।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण—गणपति शास्त्री द्वारा १६१२ में तथा द्वितीय सस्करण सं० १६, त्रिवेन्द्रम् सीरीज मे और तृतीय संस्करण त्रिवेन्द्रम् से १६२० में प्रकाशित हुआ जिसमें पुस्तक पाठ मे संशोधन भी किया गया। इसी का गुजराती मे प्रो० ध्रुवा ने १६२२ मे अनुवाद किया जो अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ।

मध्यम-व्यायोग—गणपति शास्त्री ने मध्यम व्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभग का त्रिवेन्द्रम् सीरीज, सं० २२ मे, १६१२ में प्रकाशन किया तथा उसका द्वितीय संस्करण १६१७ में हस्तलिखित प्रतियों मे संशोधन के उपरान्त प्रकाशित किया गया। मध्यम व्यायोग का आलोचनायुक्त अंग्रेजी अनुवाद अर्नेस्ट पैक्सटन जैनवियर ने पैन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के शोध प्रबन्ध मे मैसूर मे १६२२ में प्रकाशित किया। इसी का अनुवाद गुजराती में उत्तमराम अम्बाराम द्वारा बम्बई से १६१७ मे प्रकाशित किया गया। के० एच० ध्रुवा ने बडौदा से १६२१ मे मध्यम० का अनुवाद प्रस्तुत किया। इसी का पी० ई० पेवोलिनी ने १६१७ मे इटली भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया।

पी० डी० गुणे द्वारा प्रद्योत उदयन कथानक तथा श्रेणिक एक जैन कथा-भण्डारकर इन्स्टीट्यूट से १६२०-२१ मे प्रकाशित हुआ, जिसमें उदयन कथा के तीनों सस्करण कथासरित्सागर, प्रतिज्ञा और कुमार पाल प्रतिबोध की तुलनात्मक रूपरेखा पर विचार किया गया।

प्रतिमा नाटक का गणपति शास्त्री द्वारा सन् १६१५ मे त्रिवेन्द्रम् सीरीज में प्रकाशन हुआ। इसका अंग्रेज़ी मे अनुवाद के० राम० पिशरोटी ने क्वार्टरली जरनल

अम्फ दी मिथिक सोसाइटी, वाल्यूम द्वितीय मे १९२०-२१ मे प्रथम चार अंकों की विशद व्याख्या की गई। इसी का गुजराती अनुवाद मनीलाल छाबाराम भट्ट द्वारा अहमदाबाद से १९१६ में प्रकाशित हुआ।

बालचरित गणपति शास्त्री द्वारा त्रिवेन्द्रम् सीरीज संख्या २१ में १९१२ में प्रकाशित हुआ। डॉ० एच० वेलर ने भी बालचरित का अनुवाद प्रस्तुत किया। इसी का अध्ययन विटरनित्ज ने भी कृष्ण-कथा की तुलना के साथ १९२० मे निकाला।

स्वप्नवासवदत्तम्—गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् सीरीज सं० १५ में १९१२ में भास की रचना स्वप्नवासवदत्तम् का सम्पादन किया तथा १९१६ मे पुनः इसका संशोधन किया। इसी वर्ष एच० वी० मिडे ने टीका सहित इस संस्करण को नारायण शंकर राजवैद्य की संस्कृत आलोचना सहित प्रकाशित किया जिसकी आवृत्ति श्यामसुन्दर शास्त्री ने की। इसकी भूमिका में भास की तिथि को पांचवीं शती ई० पू० मे निश्चित किया है। इसका अंग्रेजी अनुवाद का संस्करण "दी ड्रीम क्वीन" नाम से ए० जी० शिरेफ तथा पन्नालाल ने इलाहाबाद से १९१८ में प्रकाशित किया। स्वप्नवासवदत्तम् का आलोचनात्मक संस्करण के० राम० पिशरोटी ने क्वार्टरली जरनल आफ दी मिथिक सोसाइटी, बगलौर से १९१९-२० मे पृ० १६४, १७४, २०८-२२० तथा द्वितीय वाल्यूम मे १९२० ई० में पृ० १२२-१३७ मे प्रकाशित किया। वासवदत्ता का एक नया साहित्यिक विवेचन डॉ० वी० एस० सुखथन्कर ने 'आर्ट लिटरेचर एण्ड फिलासफी' नामक पत्रिका की द्वितीय वाल्यूम मे मद्रास से १९२२ मे प्रकाशित किया, जिसकी आवृत्यात्मक रूपरेखा आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुई। इसी का फ्रेंच भाषा मे एल्वर्ट वैस्टन ने १९१४ मे अनुवाद किया। हरमेन जैकोबी ने १९१३ में जर्मन भाषा मे इसका अनुवाद किया तथा सन् १९१६ मे प्रो० के० एच० ध्रुवा ने गुजराती में अनुवाद किया और इसी वर्ष वैलौनी फिलिप ने इटैलियन भाषा में अनुवाद किया। इसकी वैलोनी फिलिप ने १९१५ मे आलोचना की। लैकोटे पे.लीक्स ने भी १९१९ में वासवदत्ता की आलोचना की जो कि जरनल एशियाटिक में प्रकाशित हुई। इसमे स्वप्न की कथावस्तु की कथासरित्सागर, रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा तापसवत्सराज से तुलना की गई। ओडन चार्ल्स ने जरनल अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, वाल्यूम ३५ मे एक लेग्जीकोग्रेफिकल तथा व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी सहित १९१५ मे आलोचना प्रस्तुत की। इन्होंने ही उदयन कथा पर १९२३ मे भी अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी की मीटिंग मे भी आलोचना प्रस्तुत की।

नाटकों की सामान्य आलोचना

अमरनाथ शर्मा ने प्रयाग से प्रकाशित पत्रिका के द्वितीय वाल्यूम में महाकवि भास पर संस्कृत मे आलोचना की।

अनन्ताचार्य असूरी ने भी संस्कृत में ही महाकवि भास की १९१२ मे सस्कृत भारती मे आलोचना प्रस्तुत की।

हरिनारायण आप्टे ने मराठी मे १९१७ मे भास नाटक कथा प्रकाशित की।

ए० वैनर्जी शास्त्री ने 'दी प्लेज़ आफ भास' को जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी मे १९२१ मे प्रकाशित किया। इन्होने भास की रचना की पुष्टि भाषा के आधार पर की तथा भास को अश्वघोष तथा कालिदास के मध्य काल तृतीय शती से ५वी शती.ए० डी० के काल का निश्चित करने का प्रयास किया है।

एल० डी० वर्नेट 'दी प्लेज़ एस्क्राइब्ड टू भास' तथा मतविलास पर रायल एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका मे १९१९ मे प्रकाशित किया। इन्होंने ही मत्तविलास तथा भास पर 'दी बुलेटिन आफ दी स्कूल आफ ओरियण्टल स्डटीज लन्दन इस्टीट्यूट' मे १९२० मे आलोचना प्रस्तुत की। इन्होंने मत्तविलास की समानता तथा भास के नाटकों के भरतवाक्य मे प्रयुक्त राजसिह के आधार पर किसी अज्ञात राजकवि की रचना कहा है तथा उस कवि को पाण्ड्य राजा का राजकवि सिद्ध करने का प्रयास किया है किन्तु यह विचार अब अमान्य है।

डी० सी० भट्टाचार्य ने भास तथा उसकी रचनाओं की बगाल की एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका मे १९१७ में आलोचना की।

भट्टनाथ स्वामी ने १९१६ में इन तेरह नाटको की आलोचना की जिसमे भास की रचना की प्रामाणिकता का विरोध करके उसे अज्ञात कवि की रचना तथा अज्ञात समय की रचना बतलाया।

पी० चौधरी ने १९१६ मे माडर्न रिव्यू में कलकत्ता से भास के काल पर आलोचना प्रकाशित की।

आर० डी० देशपाण्डेय ने बम्बई से सन् १९१९ में विविध ज्ञान विस्तार में भास व धावक पर मराठी मे आलोचना की। इन्होंने ही भास और कालिदास की भी मराठी में आलोचना की।

गणपति शास्त्री ने स्वप्न तथा प्रतिमा की आलोचना की।

चन्द्रधर गुलेरी ने भास की कविता की सन् १९१३ में आलोचना की।

भास, रामिल्ल तथा सौमिल्ल 'तीन नाटकों' का अध्ययन 'हाल' ने प्रस्तुत किया।

एच० जैकोबी ने वासवदत्ता का जर्मनी में अनुवाद प्रस्तुत किया।

के० पी० जायसवाल ने 'दी प्लेज आफ भास एण्ड किग दर्शक आफ मगध' सम्बन्धित लेख सन् १९१३ मे प्रकाशित किया।

पी० वी० काणे ने १९२० मे विविध ज्ञान विस्तार मे 'कवि भास व तद्रचित नाटकम्' लेख प्रकाशित किया। इन्होने ही रेड्डी द्वारा प्रतिपादित ८वी शती ए०डी० के समय का भास के विषय मे समर्थन किया।

बी० एम० खुपरेकर ने 'लोक शिक्षण' मे मराठी में भास पर आलोचना प्रस्तुत की।

स्टेनकोनो ने क्षत्रपराजा रुद्रसिह द्वितीय शती ए० डी० के समकालीन भास को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

वी० लेस्नी ने १९१७ मे भास की प्राकृत तथा काल की आलोचना की।

सिल्वा लेवी ने भास के तेरह नाटको का अध्ययन प्रस्तुत किया तथा वेस्टन के अनुवाद की भूमिका लिखी।

मैक्सलिण्डन ने 'भास स्टडी' नाम से भास की आलोचना की।

ए० ए० मैकडानल ने भास के तीन नाटको की त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज़ मे आलोचना प्रस्तुत की।

एस० एम० प्रांजपे ने चारुदत्त तथा मृच्छकटिक की आलोचना प्रस्तुत की।

विलियम प्रिट्ज ने भास की प्राकृत की आलोचना की।

रामावतार शर्मा पाण्डेय ने महाकवि भास की सस्कृत मे आलोचना की, जिसमे भास को पाण्ड्य राजा राजसिह का अज्ञात राजकवि घोषित करने का प्रयास किया।

वी० ए० स्मिथ ने कालिदास के पूर्वकालीन भास के नाटकों को खोज की आलोचना प्रस्तुत की।

बी० एस० सुखथन्कर ने 'स्टडीज़ इन भास' नाम का लेख गम्भीर विवेचन के साथ १९१२ मे प्रस्तुत किया जिसमे प्राकृत वैशिष्ट्य, छन्द विचार, चारु तथा मृच्छ के सम्बन्ध मे नाटको मे समानता का विशद विवरण प्रस्तुत किया। इन्होने ही भास के नाटको की आलोचना पर मद्रास से प्रकाशित कला, साहित्य तथा दर्शन सम्बन्धी पत्रिका मे लेख दिया।

एफ० डब्लू० थामस ने 'दि प्लेज़ आफ भास' पर भास की रचना के सिद्धान्त का समर्थन किया।

टी० एल० वेंकटरमन ने भास के काल पर कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली पत्रिका मे लेख दिया।

विटरनित्ज ने भास की रचनाओं, काल आदि पर १९२२ में लेख दिया।

एस० पी० अय्यर ने भी भास नामक ग्रन्थ कुछ ही वर्ष पूर्व प्रकाशित किया है जिसमें भास-विषयक सामग्री का विवेचन अच्छे ढंग से किया गया है। इन्होंने कतिपय अन्य विद्वानों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया है।

आर० एस० सहगल ने बालचरित नाटक को सन् १६५६ में वीर काव्य के रूप मे विस्तृत व्याख्या के साथ साहित्य जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। इन सबके अतिरिक्त भी भास के नाटको का अनुवाद तथा आलोचनात्मक सस्करण विभिन्न विद्वानों ने किया है। किन्तु इन सब पर एकत्र विवेचन तथा आधुनिकतम विवेचना की एकत्र समुपलब्धि का नितान्त अभाव था और भास के विषय में विचारो का ि [illegible] ल रहा था। इस कारण इस ओर अध्ययन की आवश्यकता थी।

१. (छ) अपने अध्ययन का दृष्टिकोण

सन् १६१२ में म० म० गणपति शास्त्री द्वारा भास नाटक चक्रम् के प्रकाशित होने के उपरान्त सस्कृत विद्वानों में भास-विषयक सुप्त ज्ञान मे जागृति आई और विभिन्न विद्वानो ने अपने तर्कयुक्त मतो का विवेचन प्रस्तुत किया। गणपति शास्त्री ने पूर्णरूपेण इन रचनाओं को भास रचित निर्दिष्ट किया तथा अनेक तर्को से प्रमाणित कर ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी मे रखने का प्रयास किया। तदनन्तर सी० आर० देवधर, के० आर० पिशरोटी, विटरनित्ज आदि विद्वानो ने भास विषयक सामग्री पर अपने मत अभिव्यक्त किए।

सन् १६४५ मे ए० डी० पुशाल्कर ने अपना ग्रन्थ 'भास ए स्टडी' विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में इस प्रकार के आलोचनात्मक लेख निकलते रहे। कुछ ही समय पूर्व एम० पी० अय्यर ने भास ग्रन्थ लिखा तथा इनके नाटको का अनुवाद भी अग्रेजी भाषा मे किया। आर० सहगल ने बालचरित को वीर काव्य के रूप मे आलोचनात्मक ढग से सन् १६५६ मे प्रकाशित किया तथा भास को २० नाटकों का रचयिता बतलाया। इतना विवेचन होने पर भी यह केवल भास की रचना सम्बन्धी व्याख्या थी। लेस्नी तथा प्रिट्ज ने भास की प्राकृत पर विवेचना प्रस्तुत की। बैनर्जी शास्त्री तथा सुखथन्कर ने भी प्राकृत की आलोचना की। सुखथन्कर ने प्रिट्ज की प्राकृत सम्बन्धी विवेचना पर मतभेद प्रकट किया।

इतना विवेचन होने पर भी भास की भाषा, प्राकृत तथा व्याकरण का विवेचन अभी शेष था। मैंने अपने इस प्रबन्ध मे भास की प्राकृत की पाली तथा अन्य प्राकृत भेदो के साथ तुलनात्मक अध्ययन रखने का प्रयास किया है क्योंकि इस दृष्टि से अब तक किसी ने विवेचन नही किया था।

भास के नाटको को भरत नाट्यशास्त्र के नियमो का विरोध करने वाला कहकर सभी इस विषय को आज तक छोड़ते रहे, किन्तु किसी ने भी भास के रूपकों के विभिन्न भेदों पर प्राप्त रचनाओ के कारण सन्ध्यगों की मार्मिक उपयुक्तता पर दृष्टिपात नही किया था। मैंने भास के विभिन्न रूपक भेदों में लिखित रचनाओं मे से प्रत्येक में प्राप्य रूपक-भेद, सन्धि-भेद, मुख-प्रतिमुख तथा उनके अंगों पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत

करने का प्रयास किया है। यद्यपि इन अग-भेदों की सूक्ष्मता में स्वय अत्यन्त ही कठिनाई मे रहा और गुरुजनों की शरण में तद्विषयक सन्देहो के निराकरण हेतु निरन्तर जाता रहा और उन्होंने अनेक स्थलों पर निश्चयात्मक निर्णय दिए भी हैं तथापि कतिपय स्थल विवादास्पद रहे है। सम्भवतः उन स्थलो पर मतभेद भी रहे। आशा है बुधजन इस भेद को क्षम्य दृष्टि से निहारेगे।

भास के काल पर मैने अब तक प्राप्त तथ्यो के अतिरिक्त भी 'पुरु' राजा के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य के काल मे भास को सिद्ध करने का यत्न किया है, और इसके प्रमाण मे तात्कालीन भारतीय राजनैतिक मानचित्र में 'हिमवद्विन्ध्य-कुण्डलाम्' की चरितार्थता से सिकन्दर के आक्रमण के समय से पूर्व का भारत का मानचित्र भी सलग्न किया है।

५०० ई० पू० के भारत के मानचित्र में ऐतिहासिको ने सोलह जनपदो का वर्णन किया है जिनमे से सिकन्दर के आक्रमण के समय ३२६ ई० पू० मे कतिपय प्रमुख अवशिष्ट थे। जैसे सिन्धु और झेलम नदियो के बीच तक्षशिला मे आम्भी का राज्य, झेलम तथा चिनाब नदियों के मध्य पुरु राज्य, चिनाब और व्यास नदियो के बीच पाँच स्वतंत्र गणतत्र राज्य, चेदि, वत्स, बंग, अवन्ति काशी, कौशल और मगध का शक्तिशाली राज्य जो पश्चिम मे सतलज नदी से प्रारम्भ होकर पूर्व मे अग राज्य की पश्चिमी सीमा तक फैल गया था। इसी मे कुरु राज्य (उत्तरी-पश्चिमी उत्तर प्रदेश) भी सम्मिलित था। मगध में महापद्मनन्द राज्य करता था।

३२१ ई० पूर्व मे चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिहासनारूढ होकर उत्तर-पश्चिम के राज्यों को मिला लिया। अतः राज्य की सीमा उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे विध्याचल पर्वत नर्मदा तक थी। नाटककार भास ने ताप्ती सिन्ध आदि नदियो के नाम का उल्लेख नहीं किया है अपितु वे गगा यमुना तथा उत्तर कुरुभूमि का ही स्मरण करते हैं। डॉ० ए० डी० पुशाल्कर ने अपने ग्रन्थ 'भास ए स्टडी' में इनका समय महापद्मनन्द का राज्यकाल स्वीकार किया है जिससे मैं सहमत नही हूँ, क्योकि भास के नाटको के अन्त.परीक्षण से ब्राह्मणो का जो सम्मान तथा ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा का वर्णन प्राप्त होता है वह नन्दवशीय राजाओ को कदापि सह्य नही हो सकता। भा० ना० च० के पृष्ठ ७७ पर (मागधः काशिराजो वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेन.) इत्यादि का वर्णन मिलता है, जिन राज्यों की सत्ता चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य के प्रारम्भिक काल मे मानी जा सकती है। क्योंकि मौर्य राज्य के पूर्ण विकास के समय इन जनपदो की सत्ता समाप्तप्रायः ही थी इसलिए इन्हें चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य के बाद भी नही ले जा सकते है। अतः भास का समय चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य-काल ही है। ऐतिहासिको का यह भी मत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य बाद में जैन धर्म स्वीकार करके अपना राज्य छोडकर सुदूर दक्षिण मे चला गया और उसने वहाँ जैन धर्मानुसार अनशन द्वारा प्राण त्यागे। इससे यह भी अनुमानित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के दक्षिण जाते समय अन्य राजपत्रों के

साथ भास के नाटक भी ले जाए गए हो और वहाँ वे सुरक्षित बने रहे हो जबकि उत्तरी भारत में विदेशियों के आक्रमण ने सभी साहित्य नष्ट कर दिया था। अतः भास के द्वारा "इमा सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्" मे आर्य राज्य की सीमा हिमालय तथा विन्ध्याचल से कुण्डलित होकर सागर पर्यन्त वर्णित है। इस कारण चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-काल ही भास का समय समीचीन प्रतीत होता है।

ग्रन्थो की प्रामाणिकता में अब तक प्राप्त तथ्यों के अतिरिक्त भी मैंने अन्य भावो, विचारों, शब्दों का संकलन प्रस्तुत किया है जो अब तक की आलोचनाओं में इस रूप मे लभ्य नही होता।

भास पर पौराणिक महाकाव्यो के प्रभाव की पुष्टि में मैंने रामायण तथा महाभारत से वाक्याशो, शब्दों, भावों को तुलनात्मक रूप में उद्धृत किया है तथा परवर्तीय साहित्यकारों पर भास का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए कालिदास आदि के उद्धरणो को यथावसर उपस्थित किया है। भास की शैली में उनकी विशेषता तथा मर्मस्पर्शिणी उक्तियों का सकलन भी प्रबन्ध में किया है। इस प्रकार अपने सामान्य श्रम को उपस्थित करने का प्रयास किया है। यद्यपि भास की प्राकृत का पूर्ण अध्ययन तो एक पृथक् प्रबन्ध का ही विषय है अतः कलेवर वृद्धि के भय से यथाशक्ति तथा सामान्य बुद्धि के अनुसार विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय

व्याकरण-सम्बन्धी दृष्टिकोण

(क) भास के युग की भाषा (प्राकृत) और उसकी विशेषताएँ।

(ख) भास के नाटकों मे प्रयुक्त अपाणिनीय प्रयोगों का अध्ययन।

(ग) भास की शैली।

द्वितीय अध्याय

व्याकरण-सम्बन्धी दृष्टिकोण

(क) भास के युग की भाषा और उसकी विशेषताएँ :—

भास के नाटकों के विकास की स्थिति इस विषय में प्रबल प्रमाण है कि भास के समय तक प्राकृत मिश्रित संस्कृत भाषा में नाटकीय कला का उचित विकास हो चुका था। भास के युग तक पहुँचने से पूर्व हमें निम्नांकित निष्कर्ष अवगत करने आवश्यक है कि :—

संस्कृत का साहित्य सुसमृद्ध था। उस समय संस्कृत ही राजकीय भाषा थी। राज्य-कार्य इसी में होता था। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी प्रायः इसी में लिखे जाते थे। यह सम्पूर्ण भारत के विद्वानो की भाषा थी, इसी कारण संस्कृत का प्रचार सम्पूर्ण भारत में था।

प्राकृत भाषा का प्रचार सर्वसाधारण जनता में था, यही बोलचाल की भाषा थी, इसका साहित्य भी उन्नत था।

दक्षिण भारत के पण्डितों की भाषा तो संस्कृत थी, किन्तु वहाँ की बोलचाल की भाषा द्राविड थी जिसमें तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नडी आदि भाषाओं का समावेश था और इन भाषाओं का साहित्य भी प्रगति पथ पर था।

ई० पूर्व० ६०० में पाणिनि ने संस्कृत को सूत्रो तथा नियमों में बाँध दिया, जिससे वह जनसाधारण के लिए तो कठिन हो ही गई। विद्वानों में भी आरम्भ में अन्य व्याकरणों के प्रति पक्षपात रहा और कालान्तर में ऐकमत्य हो सका। महा-भाष्यकार पंतजलि ने भी उनके प्रयोगों का ऋषिवचनवत् आदर किया और समन्व-यात्मक दृष्टिकोण अपनाया। इस प्रकार संस्कृत पूर्णतया पाणिनि व्याकरण मे आबद्ध हो गई थी। भास ने अपनी भाषा में अपाणिनीय प्रयोगों को प्रयुक्त किया है, इससे पाणिनि की व्याकरण की सार्वदेशिक व्यापकता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि के व्याकरण का सर्वत्र प्रसार तो हो गया था, किंतु पूर्णतया अनुगमन नहीं हो पाया था। भास उन्ही विद्वानों मे से एक है जिन्होने साम-यिक व्याकरणों के आधार पर भी कतिपय प्रयोगो को अपनाया है।

काल निर्णय वाले अध्याय मे हमने महात्मा बुद्ध के पश्चात् की तिथियों का आश्रय लिया है और यह सर्वमान्य है कि बुद्ध के पश्चात् ही भास हुए। अतः बौद्ध-कालीन भाषा पर विचार कर लेना आवश्यक होगा। बौद्धकालीन पुस्तक 'अगुत्तर-निकाय' मे १६ जनपदो की सूची दी गई है उसमे बगाल तथा गोदावरी के दक्षिण के

किसी राज्य का उल्लेख नहीं है। बुद्ध धर्म के उपदेश के समय छठी शती अन्तिम ५६३ ई० पूर्व मे केवल कौशल प्रसेनजित्, अवन्ति, वत्स, उदयन तथा मगध मे अजातशत्रु, चार बड़े-बड़े राज्य थे। ५४३ ई० पूर्व बिम्बसार मगध के सिहासन पर बैठा। उसने अपनी राजधानी गिरिव्रज मे अग राज्य बनाई, और विजय प्राप्त करके काशी के कुछ जिले दहेज में प्राप्त किए। यह बुद्ध तथा जैन महावीर स्वामी दोनो का मित्र था और दोनो ही उसे अपने धर्म का अनुयायी मानते थे। इसके पश्चात् अजातशत्रु ४९१ ई० पूर्व मे मगध के सिहासन पर आरूढ़ हुआ। उसके शासन के ८वे वर्ष मे बुद्ध का निर्वाण हुआ।

अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा इन दोनों धर्मो का प्रभाव भाषा पर भी पडा। इन्होने भारतीय भाषाओ के विकास मे योग दिया। जनसाधारण की भाषा (प्राकृत) मे उपदेश दिये, ग्रन्थो की रचना की गई। दक्षिण की भाषा कन्नडी पर जैन धर्म का विशेष प्रभाव है। तीर्थंकरो की स्मृति में पाषाण खण्डो पर सुन्दर छन्द, स्तम्भलेख, मूर्तियो का निर्माण, उदयगिरि की गुफाओ मे हाथी गुम्फा के भव्य मन्दिरो मे वास्तुकला का प्रभाव पडा। ईसा पूर्व ४थी शती मे मेगस्थनीज ने मथुरा के शूरसेनी यादवो के सम्बन्ध मे 'हेरिक्लिस' हरिकृष्ण (वासुदेव) की पूजा का उल्लेख किया है। पाणिनि से पूर्व ईसा पूर्व ६०० मे वासुदेव की पूजा प्रचलित थी। अत भागवत सम्प्रदाय या मूर्तिपूजा उससे भी प्राचीन है। भास ने प्रतिमा नाटक मे भी इसी प्रभाव के कारण प्रतिमा मदिर तथा अन्य नाटको मे वैष्णव धर्म का पोषण किया है।

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके वचनो का संग्रह निम्न सम्मेलनो मे हुआ।

४८५ ई० पूर्व बुद्ध निर्वाण के कुछ समय बाद प्रथम महासम्मेलन मे सुत्तपिटक और दूसरे पिटक का अधिकाश रूप सगृहीत हुआ।

दूसरा सम्मेलन वैशाली मे १०० वर्ष उपरान्त ३८४ ई० पूर्व मे हुआ।

तीसरा महासम्मेलन अशोक के संरक्षण मे २८४ ई० पूर्व मे पाटलीपुत्र में हुआ। इस सम्मेलन मे बुद्ध के सम्पूर्ण वचनों का सग्रह हुआ।

जातक कथाओं का उल्लेख ३०८ ई० पूर्व के लगभग भरहुत तथा सांची के स्तूपो की पत्थर की चाहरदीवारी पर हुआ। इन जातक कथाओ से ५-६वी शती पूर्व की सभ्यता का पता चलता है।

भास ने प्राचीन कथाओ से उद्धृत कथांशो को लेकर भी नाटक लिखे हैं। इनके तेरह नाटको मे केवल तीन नाटक अविमारक, चारुदत्त तथा वासवदत्ता ही लोक-कथाओ पर आधारित है। अविमारक की कथावस्तु जातक कथाओं में भी प्राप्त होती है। यद्यपि यह कथा गुणाढय की बृहत्कथा से ही भास ने उद्धृत की है तथापि जातक कथाओ से सम्बन्ध होने के कारण हम यहाँ भाषा सम्बन्धी विवेचन

मे गजमुख जातक से उद्धृत गद्यांश देकर प्राकृत की विवेचना आरम्भ करते हैं जिससे भास की भाषा को बौद्ध ग्रन्थो मे प्रयुक्त पालि तथा प्राकृत से तुलना की जा सके।

गजमुख जातक से उद्धृतांश

अतीते बाराणसियम् ब्रह्मदत्तेरज्जम् कारेन्ते बोधिसत्तो तस्स अमच्चरतनं अहोसि। बाराणसीराजा आलसियजातिको अहोसि, बोधिसत्तो राजान बोधेस्सामीति एकम् उपायम् उपधारेन्तो चरति, अथ एक. दिवसं राजा उय्यान गन्त्वा अमच्च परिवुतो तत्थ विचरन्तो एकं गजकुम्भम् आलसियम् पस्सि, तथारूपा किर आलसिया सकल दिवस गच्छन्तापि एकागलद्व गुलमेत्त एव गच्छन्ति, राजा त दिस्वा वयस्स को नाम एसौ ति पुच्छि, बोधिसत्तो गजकुम्भो नाम एस महाराज आलसियो, एवरूपो हि सकल दिवस गच्छन्तोपि एकागलद्वंगुलमत्तम् एव गच्छतीति वक्त्वा तेन सद्धि सल्लपन्तो अम्भो गजकुम्भ तुम्हकम् दण्डगमनम्, इमास्पि अरण्णे दावाग्गिम्हि उट्ठिते कि करोथा ति तत्वा पठमम् गाथम् आह।

उपर्युक्त गद्य भाग का सामान्य विश्लेषण ही पाली की ध्वन्यात्मक विशेषताओ तथा पाली और सस्कृत की समानता का स्पष्ट दिग्दर्शन कराता है।

यथा :—

बाराणसियम्	इस शब्द मे व का परिवर्तन ब मे हुआ।
स्याम्	अन्तिम स्वर लुप्त हो गया।
रज्जम्	य का ज् मे परिवर्तन (राज्यम्) तथा दीर्घ स्वर का ह्रस्व होना। इसी प्रकार का परिवर्तन सत्तो, तस्स, अमच्च, स्सामि, उय्यान मे हुआ।
अमच्च	दीर्घ आकार का संयुक्ताक्षर के पूर्व होने के कारण ह्रस्व तथा य का तालव्य भाव मे परिवर्तन, पूर्व त का च मे परिवर्तन।
मत्तम्	सयुक्ताक्षर से पूर्व ह्रस्व तथा मिश्रण होना।
आलसिया	इस मे व्यजन का परिवर्तन।

पाली मे उपर्युक्त परिवर्तनो को छोड़कर सस्कृत व्यजनो का पूर्णरूप प्राप्त होता है। विशेषकर उत्तरकालीन साहित्यिक प्राकृतो में स्वर मध्यवर्ती व्यजन (अ) मे परिवर्तित हो जाता है। इसी आधार पर जैकोबी ने 'अयरगसुत्त प्रथम भाग पृ० ८' पर पाली को सभ। प्राकृतों से प्राचीन स्थान दिया है और पाली का अध्ययन इस विषय मे प्राचीनता का पोषक सिद्ध ही होता है।

एसो	सस्कृत (ष्) का परिवर्तन (स्) मे हुआ, अन्तिम 'स्' 'ओ' मे परिवर्तित हुआ यथा परिवुत्तो, अन्तिम अस् व्यजन पूर्व मे होने के कारण सदैव 'ओ' हो जाता है यथा 'गच्छन्तो' 'आलसियजातिको' आदि।

द्व गुर्ल इसमें असावधानी करने वाले 'य्' का विलीन होना।
पठमम् इसमे 'र' का विलीन होना।
इमस्सिं तथा दावग्गिम्हि—में संस्कृत के सप्तमी अधिकरण 'स्मिन्' के दो रूप प्रथम मे पूर्व स् को मिलाना, दूसरे मे स् का ह् मे परिवर्तन।

विभक्तिमूलक साम्य—पाली तथा सस्कृत मे समानता

बोधिसत्तो, राजा, राजान, महाराज, गजकुम्भ, रतन, रज्जम्, बोधिसत्त, दिवस, उय्यान।

तं, तस्म, वयस्स. अतीते, इमस्सि, उट्ठिते, संस्कृत रूपो के समान।

चरति, गच्छन्ति आह, बोधेस्सामि—संस्कृत के समान।

अहोसि, पस्सि, पुच्छि—यद्यपि रूप मे परिवर्तन है किन्तु लकार वही है।

पाली का ध्वनि-विज्ञान—

ऋ, लृ, ऐ. औ स्वरो के अतिरिक्त और सभी स्वर पाली में हैं।

(अ) अग्नि-अग्गि, अग्र-अग्ग, अच्युत-अच्चुत, अर्थ-अट्ठ।
आकाश-आकाम, आशक-आसंक, आषाढी-आसाव्ही।
(ब) ऋषिगिरि-इसिगिलि, गौतमी-गोतमी।
(स) उत्कण्ठित उवकण्ठित, भिक्षु-भिक्खु।
(द) एक-एक, क्षेम-खेम, गोपालपुत्रः-गोपालपुत्तो।
(क) मृत्यु-मच्चु, ऋण-इण, ऋषभ-उसभ, पृच्छ-पुच्छि।
(ख) परिवृत्तः-परिवुत्तः, ऋत्विज-रित्विज, ऋते-रिते।
(ग) ऐरावण-एरावण, कैलास-केलास, वैदेहे-वेदेहे, गौतम-गोतम।
(घ) औषध-औसध, कौरव्य-कोरव्य, सौवीर-सोविर।

स्वरों का विपर्यय—अ--ए, अ—इ

अन्तःपुर-अन्तेपुर, शय्या-सैय्या, त्रपु-तिपु, तमिस्रा-तिमिस्सा।

अ—उ

निमज्जति-निमुज्जति, पर्जन्य-पज्जुण।

आ—ए

पारावत-पारेवत, मात्र-मेत्त।

आ—ओ

दोषा-दोसो

इ—अ

पृथिवी-पठवी

इ—ए　　　　　　　　　　　　इ—उ

गृहीत्वा-गहेत्वा, इयत्-एत्त　　　　　　राजिल-राजुल

उ—अ　　　　　　　　　　उ—ओ

अगुरु-अगुरु, उल्का-ओक्का, अनुपम-अनोपम ज्योत्स्ना-जुण्हा।

दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं—

आर्जवम्-अज्जवम्, पूर्ण-पुण्ण, तीर्थ-तित्थ, प्राप्ति-पत्ती।

आत्मनो-अत्तणो, शाक्य-सक्क, शान्त-सन्त, दान्त-दन्त, ग्रहीष्यति-गहिस्सति।

ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं—

सिंह-सीह, विंशति-वीसति, त्रिंशत्-त्रीस।

द के लिए य का प्रयोग—गोदान-गोयान, खादित-खायित।

पहला स्वर दीर्घ हो जाता है और उसका उच्चारण लम्बा हो जाता है—मुक्त-मुत्त, दुग्ध-दुद्ध, उत्पतति-उप्पतति, शब्द-सद्द, लब्ध-लद्द, औत्सुक्य-उस्सुक्क, उच्यते-वुच्चति, एकत्व-एकच्च, तप्यते-तप्पति, आचार्य-आचरिय, सूर्य-सूरिय।

पाली मे संस्कृत की भाति विच्छेद तथा मिश्रण होता है किन्तु पाली मे वेशेषता यह है कि या तो अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है या अन्त में 'अ' का ोग हो जाता है और यह अन्य प्राकृतो में भी प्राप्त होता है। इतना होने पर भी ाली मे अन्तिम व्यञ्जन के शेष रहने के कुछ उदाहरण अवश्य प्राप्त होते हैं। पाली ौकिक सस्कृत से भी प्रभावित प्रतीत होती है जिसके कतिपय उदाहरण आगे दिये ायेंगे।

पाली मे परस्मैपद न्यूनता के साथ प्राप्त होता है। प्राकृत में प्रायः इसका भाव ही है किन्तु भास में परस्मैपद प्राप्त होता है।

पाली मे ध्वनि-विज्ञान के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पाली प्राचीन स्कृत के निकट है। यद्यपि प्राकृत की भाति कुछ स्वर त्याग दिए गए हैं और ञ्जनो का परिवर्तन भी प्राकृत की भाति नही हुआ है तथापि सभी प्राकृतो के नात्मक अध्ययन से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इसमे भाषा का प्राचीन विकृत र प्राप्त होता है और यह जन-साधारण मे व्यवहार में आने के कारण शब्दो मे 'नि-परिवर्तन के बल पर अपने अनेक नए रूपो में प्राप्त होती है। यह सब कुछ ने पर भी वेकरनागल के विचार मे प्राकृतो मे पाली सब मे प्राचीन है।

सन्धि-विवेचन

भाषा के समस्त पदो मे पहले शब्द की अन्त्य ध्वनि और अगले शब्द आदि ध्वनि के योग से सन्धि का विकास होता है। साहित्यिक भाषा मे सन्धियो प्रयुक्तता अधिक है। लौकिक व्यवहार मे अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है। प्राकृत

भाषाओं मे प्रयोग की भिन्नता मे मूल रूप मे भी भिन्नता मिलती है। सस्कृत मे सन्ध्यर्थ शव्दो मे प्राय. पहले शब्द के अन्त्य स्वर का परिवर्तन अगले स्वर की अपेक्षा अधिक हुआ है। यथा वैदिक स्वरसन्धि आ+ई=ए, आ+उ=ओ का विकसित रूप अ+इ=ए, अ+उ=ओ माना गया है।

पाली प्राकृत मे पहले शब्द के अन्त्य स्वर का प्राय. लोप हो जाता है यथा — नर+इन्द्र=नरिन्द, णरिन्द्र, गज+इन्द्र=गइन्द (महा०)।

प्राकृत मे सन्धियो का वैशिष्ट्य यह है कि जब अगले शब्द का आदि स्वर दीर्घ हो अथवा अपने स्थान-विशेष के कारण महत्त्वपूर्ण होता है तो पहले शब्द के अन्त्य स्वर का लोप हो जाता है।

प्राकृत संयुक्त स्वर शब्दो के स्वर मध्यवर्ती व्यञ्जन के लोप होने पर अवशिष्ट स्वरों की सन्धि नही होती अतः वहाँ एक ही शव्द मे दो स्वरो का अलग अलग प्रयोग प्राप्त होता है किन्तु सस्कृत मे ऐसा नही है।

सन्धि-विभाजन

प्राकृत में स्वर तथा व्यञ्जन दो ही रूप प्राप्त है। पाली मे एक तीसरे प्रकार की निग्गहीत (अनुस्वार) सन्धि का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह स्वरसन्धि का ही रूप है। इस सन्धि में कही अनुस्वार का आगम और कही लोप हो जाता है। उदाहरण — चक्खु = उदपादि = चक्खुं उदपादि, बुद्धान+सासन= बुद्धानशासन, गन्तुं+कामो = गन्तुकामो ।

भास की रचनाओ से उद्धृत उदाहरण:—कर्तुकाम: (कत्तुकाम), वक्तुकाम: (वत्तुकाम:), क्रीडितुकामाया—कीलिदुकामाए भा० ना० च० (पृ० ९४ व ९७), विज्ञापयितुं कामा —विण्णविदुकामा भा० ना० च० (पृ० ७६), उत्पादयितुकामः— उप्पादइदुकामो भा० ना० च० (पृ० ६६), सन्देष्टुकाम—सन्दट्ठुकामो भा० ना० च० (पृ० ६९), प्राप्तुकामोऽसि—पत्तुकामोसि भा० ना० च० (पृ० १३०)।

अनुस्वार आगम के उदाहरण — कर्तु — कत्तुं भा० ना० च० (पृ० ७०)

पूर्व शब्द के अनुस्वार होने पर अगले शब्द के आदि स्वर का विकल्प से लोप मिलता है :—

उदाहरण—त्व+असि = त्वसि, इद+अपि = इदम्पि।

भास से उद्धृत उदाहरण—अह+अपि=अह पि, एत+अपि=एदं पि
(एतदपि) भा० ना० च० (पृ० १८)
=अहपि भा० ना० च० (पृ० ८६), अहं वि
भा० ना० च० (पृ० ३५, ३६, ८६, १५८)

नोट– उद्धरणों में पृष्ठ संख्या सी० आर० देवधर द्वारा संपादित भास नाटक चक्रम, १९५१

किम्+अपि=किपि	(भा० ना० च० पृ० ६४)
एवं+अपि=एवपि	(भा० ना० च० पृ० १६४)
अल्प+अपि=अप्प वि	(भा० ना० च० पृ० २१७)
बहुकं+अपि=बहुक पि	(भा० ना० च० पृ० ३१७)

अगले शब्द के आदि मे यदि कोई वर्गीय व्यञ्जन हो तो पहले शब्द का अनु-
त रूप कही कही उसी वर्ग के अनुनासिक व्यञ्जन मे बदल जाता है।

उदा०—तं+करोति=तङ् करोति,
त+ठान =तण्ठानं

भास—एतद्+निमित्त=एदण्णिमित्त

पाली मे पहले शब्द के अन्त्य स्वर के बाद कोई स्वर हो तो पूर्व स्वर का
हो जाता है।

उदा०—यस्स+इन्द्रियाणि=यस्सिन्द्रियाणि

कभी-कभी अग्रिम स्वर का भी लोप मिलता है।

उदा०—सो+अपि=सोपि, ततः+एव=ततोव।

कभी कभी किसी का लोप नही होता।

उदा०—लता+इव=लता इव

भास मे इन शब्दो के ऐसे ही रूप मिलते है।

वैदिक स्वरों का परिवर्तन तथा पाली और भास में उसका तुलनात्मक रूप :

ऋकार का अ, इ, उ, ए में परिवर्तन

पाली	भास	
गेह	गेह	(चारुदत्त पृ० १)
	गिहं	(भा० ना० च० पृ० २७३)
इसि	इसि	(भा० ना० च० पृ० ११८)
मिश्र	मिश्र	(स्वप्न० पृ० २५)
तिण	तिण	(बाल० पृ० ५३४)
उसभ	वषभो	(भा० ना० च० पृ० ३६० व ५३४)

पाली में संस्कृत स्वर ऐ, औ के स्थान में ए, ओ मिलते है :—

	औसध	ओसह	(भा० ना० च० पृ० १९)
य	—	सोभग्ग	(भा० ना० च० पृ० १५)
णः		एलावणे	(भा० ना० च० पृ० ८५)

संयुक्त व्यंजनों और अनुस्वार के पूर्व दीर्घ स्वरों का प्रायः ह्रस्व हो जाता है :—

कार्य	कज्ज	कय्य	(भा० ना० च० पृ० ६८)
लता	लत	लदां	(भा० ना० च० पृ० २६)
आर्य	अय्य	अय्य	(भा० ना० च० पृ० २)
तूष्णीक.	—	तुण्हीओ	भा० ना० च० पृ० २४)
शीघ्रं	—	सिग्घं	(भा० ना० च० पृ० ६८)
राज्य	रज्जम्	रज्जम्	(भा० ना० च० पृ० २५०)
श्राद्धं	—	सद्धम्	(भा० ना० च० पृ० २६५)

पाली में स्वरों का परस्पर व्यत्यय भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है :—

संस्कृत	**पाली**	**भास**	
अत्र	एत्थ	एत्थ	(भा० ना० च० पृ० ५)
शय्या	सेज्जा	सेज्जा, सय्या	(भा० ना० च० पृ० ३७)
लवण	लोण	लोण	(भा० ना० च०पृ० ६५)
पुस्तक	पोत्थक	पुत्थए	(भा० ना० च० पृ० १२०)
ज्योत्स्ना	जुण्हा	जोह्ला	(भा० ना० च० पृ० ३६१)
कस्य	किस्स	किस्स	(भा० ना० च० पृ० १६०)
		कश्श और कस्स	(भा० ना० च० पृ० ८४)
पृथिवी	पठवी	पुहुवी	(भा० ना० च० पृ० ३८६)
वृक्ष	रुक्खो	लुक्ख	(भा० ना० च० पृ० ३७६)

संस्कृत के संयुक्त व्यञ्जनों का पाली में प्रायः समीकृत रूप मिलता है अथवा संयुक्त व्यजन के दोनो वर्णों मे से पहले किसी एक का परिवर्तन और फिर उनका स्थान-विपर्यय कर दिया गया है। सयुक्त व्यञ्जनों में से किसी एक वर्ण का प्रायः लोप अथवा सयुक्त व्यञ्जन के बीच मे किसी स्वर के प्रयोग से उसे विभक्त कर दिया गया होता है। इस परिवर्तन को स्वरविभक्ति कहते है।

स्नेह	सिनेह	सिणेह	(भा० ना० च० पृ० ४)
क्लेश	किलेश	किलेश	
स्निग्धेन	—	सिणिद्धेण	(भा० ना० च० पृ० ३१)

सयुक्त व्यञ्जन के दोनों वर्णों मे से यदि कोई ऊष्म वर्ण हो तो उसका 'ह' मे परिवर्तन और फिर स्थान-परिवर्तन हो जाता है।

स्नान	नहान	ण्हान	
अस्माकं	अम्हाकं	अम्हाकं, अम्हाअम,	
तूष्णीकः	—	तुण्हीओ	(भा० ना० च० २४)

संयुक्त व्यञ्जन मे 'स' के साथ कोई अनुनासिक व्यञ्जन न, म, य, व ह
स्थान-परिवर्तन हो जाता है।

सस्कृत	पाली	भास	
सायह्न	सायन्ह	—	
ज्योत्स्ना	जुण्हा	जोण्हा, जोहणा	(भा०ना०चा० पृ० १९६, ३९१)

सयुक्त व्यञ्जनो के दो भिन्न वर्णों का यदि समरूप हो जाता है तो उसे समीकरण कहते है। जब सयुक्त व्यञ्जनो का पहला व्यञ्जन बाद वाले व्यञ्जन को अपने सदृश कर लेता है तो उसे **पुरोगामी समीकरण** कहते हैं।

उद्विग्न	उब्विग्ग	—	
आविग्ना	—	आविग्गा	(भा० ना० च० पृ० ४८)
शुक्ल	सुक्क	—	
राज्य	रज्जम्	रज्जम्	(भा० ना० च० पृ० २५०)
अग्नि	—	अग्गि	(भा० ना० च० पृ० ३१)
शक्य	—	सक्क	(भा० ना० च० पृ० २९)

जब बाद का वर्ण पहले को अपने सदृश कर लेता है तो **पश्चात्गामी समीकरण** कहलाता है।

वल्कल	वक्कल	वक्कल	(भा० ना० च० पृ० २५१)
तत्काल	तक्काल	तक्काल	(भा० ना० च० पृ० ६६)
निष्क्रान्तो	णिक्कतो	णिक्कन्तो	(भा० ना० च० पृ० ९५)
शुल्क	—	सुक्क	(भा० ना० च० पृ० २८१)
स्पर्श	फस्स	—	
ऊर्मि	उम्मि	उम्मि	
उत्पादक	—	उप्पादअ	
अनतिक्रमणीय	—	अणदिक्कमणीओ	(भा० ना० च० पृ० ३२)
उत्कृतकर्ण	—	उक्करिदकण्ण	(भा० ना० च० पृ० १३)

रेफ के साथ व, य, ल, भ वर्णों का **पश्चगामी** समीकरण होता है।

सस्कृत	पाली	भास	
आर्य	अय्य	अय्य	(स्वप्न० पृ० १)
भार्या	भय्या	भय्या	(स्वप्न० पृ० २)
सर्व	सव्व	सव्व	(भा० ना० च० पृ० २०१)
निर्याति	—	निय्याति	
कार्य	कय्य	कय्य	(भा० ना० च० पृ० ९८)
	सुय्य	सुय्य, पुय्यो	(भा० ना० च० पृ० ६१ व ३९१)
पर्यवस्थानानि	—	पय्यवस्थाणाणि	(भा० ना० च० पृ० १५)

ऊष्म ध्वनि के साथ य, र, ल, व आदि के होने पर **पुरोगामी** समीक होता है ।

संस्कृत	**पाली**	**भास**	
अवश्य	अवस्स	अवस्स	
अश्व	अस्स	अस्स	
श्वेत	सेत	सेत	
मिश्र	मिस्स	मिस्स	
परिश्रम:	—	परिस्सम:	(भा० ना० च० पृ०. २)
तपस्विजन:	—	तंपस्सिजण:	(भा० ना० च० पृ० ५)
आश्रमपद	—	अस्समपद	(भा० ना० च० पृ० ५)
अस्वस्थ	—	अस्सत्थ	(भा० ना० च० पृ० ५७)

शब्द मे दो समान ध्वनियो के विभिन्न रूप भी हो जाते हैं । इसे **विषम करण** कहते है ।

पिपीलिका	किपिल्लिका	—	
चिकित्सति	तिकिच्छति	—	
विभीम:	—	भाआमो	(भा० ना० च० पृ० ५४८)
विभीहि	—	भाआहि	(भा० ना० च० पृ० ८६)

सयुक्त व्यञ्जन के किसी एक वर्ण का प्राय. लोप भी हो जाता है । यह लो शब्द के आरम्भ और मध्य दोनो मे मिलता है । शब्द के आरम्भ मे किसी व्यञ्ज के लोप को आदिवर्ण लोप कहा जाता है ।

स्थान	ठान	ट्ठाण
स्थूल	थूल	थूल

शब्द के मध्य मे प्रयुक्त सयुक्त व्यञ्जन का वर्ण लोप मध्यम व्यञ्जन लो कहलाता है ।

द्विज	दिज	दिज	
व्यायाम	—	वाआम	(भा० ना० च० पृ० १३)
स्वेद	—	सेद	(भा० ना० च० पृ० १३)
व्याघ्र	—	वग्घ	(भा० ना० च० पृ० २५)
सप्तच्छद	—	सत्तच्छद	(,, ,, ,, पृ० २५)
स्वामिना	—	सामिणा	(,, ,, ,, पृ० ६२)
अर्थिस्व	—	अत्थिसअ	(,, ,, ,, पृ० ५५)

कभी सयुक्त व्यञ्जन के स्थान पर किसी एक नए वर्ण का प्रयोग मिलता है ।

द्युति	जुति	जुति	
शब्द:	सद्दो	सद्दो	(भा० ना० च० पृ० ४५)
शूद्र:	खुद्दो	खुद्दो	

कभी कभी सयुक्त व्यञ्जनो के दोनो वर्णो अथवा एक वर्ण का परिवर्तन हो जाता है ।

नृत्य	नच्च	णोच्च	(भा० ना० च० पृ० ३९१)
सत्य	सच्च	सच्च	(भा० ना० च० पृ० २५)
अत्यन्त	अच्चन्त	अच्चन्त	
आश्चर्य	अच्छरिय	अच्छरिअ, अच्छलीअ	(भा० ना०च० पृ० ७१, ५२१)
पुष्प	पुप्फ	पुप्फ	(भा० ना० च० पृ० ५४६)

भास की भाषा का साहित्यिक प्राकृतो (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश तथा उनके भेद) के साथ तुलनात्मक विवरण :—

स्वर सन्धि

समान स्वर जब एक साथ आते है तो सस्कृत के समान ही उनकी सन्धिया अन्य प्राकृत भाषाओ मे दृष्टिगत होती है । महाराष्ट्री मे बहुत कम किन्तु शौरसेनी में बहुधा स्वर बिना मिले ही रहते है । भास की भाषा मे भी हम स्वरो को बहुधा बिना मिले ही पाते हैं :—

भास द्वारा प्रयुक्त स्वरसन्धि के कतिपय प्रयोग :—

अ + अ = आ

कुसुम + अवचयम् = कुसुमावचयम् = कुसुमावचअ (भा० ना० च० पृ० २२)

पुष्प + अनुकाराभ्याम् = पुष्पानुकाराभ्याम् = पुप्फाणुकारेहि (भा० ना० च० पृ० ५४६)

अभिजन + अनुरूपम् = अभिजनानुरूपम् = अभिजणाणुरूव (भा० ना० च० पृ० ४)

अ + आ = आ

विवाह + आमोद = विवाहामोद = विवाहामोद (भा० ना च० पृ० १६)

शयन + आसनानि = शयनासनानि = सअणासणाणि (भा० ना० च० पृ० १३३)

वात + आयन = वातायन = वादाअण (भा० ना० च० पृ० २२१)

पान + आगार = पानागार = पाणागार (भा० ना० च० पृ० ६४)

निमीलित + आकारा = निमीलिताकारा = निमीलिआकाला (भा० ना० च० पृ० ५१७)

भास की मौलिकता

एव + आगच्छति = एवागच्छति = एव्व आअच्छदि (भा० ना० च० पृ० १३)

आ + अ = आ

मुक्ता + अवली = मुक्तावली = मुत्तावली (भा० ना० च० पृ० २३३)

ज्योत्स्ना + अवगुण्ठिता = ज्योत्स्नावगुठिता = जोह्णावगुण्ठिदो (भा० ना० च० पृ० ३९१)

आत्मा + अभिप्रायात् = आत्माभिप्रायाद् = अत्ताभिप्पाआदो (भा० ना० च० पृ० ६४)

आ + आ = आ
शय्या + आस्तीर्णा = शय्यास्तीर्णा = सेज्जात्थिण्णा (भा० ना० च० पृ० ३६)

भास के मौलिक प्रयोग—

भास में कहीं कहीं 'अ-अ' मिलकर 'आ' होने की अपेक्षा ह्रस्व भी रहते हैं।
काल + अष्टमी = कालाष्टमी = कालट्ठमी (भा० ना० च० पृ० ६१)
दन्त + अन्तर = दन्तान्तर = दन्तन्तर (भा० ना० च० पृ० ३२१)

अन्य प्राकृतों में उदाहरण—
कृतापराध = कआवराह—महाराष्ट्री
क्लेशानल = किलेसाणल—शौरसेनी
जन्मान्तरे = जम्मन्तरे —शौरसेनी (मृच्छ०)
गुणार्थिन = गुणट्ठि —मागधी

इ = इ = ई
क्रीडन्ति + इति = क्रीडन्तीति = कीलदित्ति इदो (भा० ना० च० पृ० १२)
सीदति + इव = सीदतीव = सीददि विअ (भा० ना० च० पृ० ८३)

उ + उ = ऊ
खलु + उदकम् = खलूदकम् = हु उदअ (भा० ना० च० पृ० ८३)
बहु + उदक = बहूदक = बहु उदग, बहूदय (अर्धमागधी) (सूय० पृ० ५६५)

गुण-सन्धि

अ, आ + इ = ए
बाला + इति = बालेति = बालेत्ति (भा० ना० च० पृ० ५३१)

भास की मौलिकता

दारिका + इति = दारिकेति = दारिअत्ति (भा० ना० च० पृ० ५३१)
अतिशीतला + इय अतिशीतलेयम् = अदिसीदलाइअ (भा० ना० चा० पृ० ४०)
अनुभूतसुखा + इति = अनुभूतसुखेति = अणुहुदसुहत्ति (भा० ना० च० पृ० ७)
आगत्य + इय = आगत्येयम् = आअच्छिअ इम (भा० ना० च० पृ० २३)
विश्रामस्थानभूता + इय = विश्रामस्थानभूतेय = विस्समत्थाणभूदा इअं (भा० ना० च० पृ० ४१)
महा + ऋषि = महर्षि = महेसि (अर्धमागधी तथा शौरसेनी)
राज + ऋषि = राजर्षि + राएसी (महाराष्ट्री, शौरसेनी)

अ, आ + उ = ओ
मुख + उदकम् = मुखोदकम् = मुहोदअ (भा० ना० च० पृ० ३२-३३)
इषुक्षेपमात्र + उत्थिते = इषुक्षेपमात्रोत्थिते = इसुखेवमत्तोत्थिदे (भा० ना० च० पृ० ६
स + उदका = सोदका = सोदआ (भा० ना० च० पृ० २८)
महामात्र + उत्तरायुधीय = महामात्रोत्तरीयायुधीय = महामत्तोत्तराउही (भा० ना० च० पृ० ६४)

स्नान + उदकम् = स्नानोदकम् = ह्लाणोदग्र (भा० ना० च० पृ० १३१)
महा + इन्द्र = महेन्द्र = महेन्द (मागधी, शौरसेनी)
महिन्द भी
नख + उत्पल = नखोत्पल = णहुप्पल (मागधी, मृच्छ० पृ० १२२)
वसन्त + उत्सव = वसन्तोत्सव = वसतूत्सव (शौरसेनी, शकुन्तला पृ० १२१)
महा + उत्सव = महोत्सव = महूत्सव (शौरसेनी, कर्पूर० पृ० १२६)
वात + इरित = वातेरित = वादेरिद (शकुन्तला पृ० १२१)

भास की मौलिकता

परस्य + उपन्यासं = परस्योपन्यासम् = परस्सं उवण्णास (भा० ना० च० पृ० ६४)
उल्लाल्य + उल्लाल्य = उल्लाल्योल्लाल्य = उल्लालिग्र उल्लालिग्र
(भा० ना० च० पृ० १६४)
मम + उदर = ममोदरम् = मम उदरं (भा० ना० च० पृ० १६५)
वात + उद्भ्रामेण = वातोद्भ्रामेण = वाउब्भामेण (भा० ना० च० पृ० ८५)
प्र + उद्भासिताभ्याम् = प्रोद्भासिताभ्याम् = परुब्भासिदेहि (" पृ० ६२)
नाम + उत्सव = नामोत्सव = णामउप्पवो (भा० ना० च० पृ० ५१६)
विरहिता + उत्कण्ठिता = विरहितोत्कण्ठिता = विरहिदा उक्कण्ठिदा (" पृ० २३)

स्वरों का लोप और दर्शन

ध्वनि बल-हीन शब्दो मे सस्कृत शब्द के आदि स्वर का लोप प्राकृत भाषा मे लभ्य होता है। इस नियम के अनुसार अन्तिम वर्ण स्वरित होने मे दो अधिक वर्णों के शब्दो मे निम्नलिखित परिवर्तन प्राप्त होते हैं।

शब्द	**परिवर्तित रूप**	**प्राकृत भेद**	**स्थल-निर्देश**
उदक	दग, उदग, उदय	अर्धमागधी	सूय० २०२

यह लोप अन्य भाषाओ मे लभ्य नहीं है।

उदक	उअग्र	महाराष्ट्री	गौड़, हाल० रावण०
उदक	उदय	जैन० महाराष्ट्री	एर्त्से०
उदक	उदग्र	शौरसेनी तथा मागधी	मृच्छ० ४५ व ३७

भास ने भी उदग्र शौरसेनी तथा मागधी प्रयुक्त किया है
(भा० ना० च० पृ० ३२, ३८, ६४)

अहकः	हगे, हग्गे	मागधी	
अहकम्	हउ	अपभ्रंश	
भास ने	**अहं**	**का प्रयोग किया है।**	
अवस्थित	वट्ठित	शौरसेनी	
अरण्य	रण्ण	अपभ्रंश	
	अरण्ण	शौरसेनी	शकुन्तला पृ० ३३-३४

भास ने भी अरण्ण शब्द का प्रयोग किया है।

ध्वनि बल की हीनता के प्रभाव से अव्यय (जो अपने से पहले वर्ण को ध्वनि-बलयुक्त कर देते है तथा स्वय बलहीन रहते है) बहुधा आरम्भ के स्वर का लोप कर देते है। जब ये शब्द उक्त अव्यय रूप मे नही आते तो आरम्भिक स्वर बना रहता है। इस नियम के अनुसार अनुस्वार के बाद आने पर अपि का पि रूप हो जाता है, स्वर के बाद यह रूप 'वि' में परिणत हो जाता है। पल्लव-दानपात्रो मे (अन्यान् अपि) का (अन्ते वि) रूप प्राप्त हुआ है।

शब्द	परिवर्तित रूप	प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश
मरणमपि	मरणं पि	महाराष्ट्री	हाल
तमपि	त पि	महाराष्ट्री	गउडवहो

भास के प्रयोग

शब्द	परिवर्तित प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश		
एतमपि	एदं पि	भा० ना० च० पृ०		१८
अहमपि	अह पि	,,	,,	२४
	अह वि			३६
अयमपि	अअ वि	,,	,,	१४
किमपि	कि पि	,,	,,	७६, ६४
	कि वि	,,	,	१७४
एवमपि	एवं पि	,,	,,	१६४
इयमपि	इअ वि	,,	,,	२३
अल्पमपि	अप्पं वि	,,	,,	२१७
मामपि	मं पि	,,	,,	३१
बहुकमपि	बहुअं पि	,,	,,	२१७
पुष्पमपि	पुप्फ वि	,,	,,	१४७
एकमपि	एक्कं पि	,,	,,	१३५
इदानीमपि	इदाणि पि	,,	,,	५६ व ७६
महासेनमपि	महासेण वि	,,	,,	७६
त्वमपि	तुव पि	,,	,,	१२
अज्ञातवासमपि	अञ्ञादवास पि	,,	,,	३०

पुनरपि	पुनर अवि	अ० मा०, जैन महाराष्ट्री
केनापि	केणावि	महा० शौरसेनी
ममापि	ममावि	शौरसेनी तथा मागधी

शब्द	परिवर्तित रूप	प्राकृत-भेद	स्थल-निर्देश
केनापि	केणवि		भा० ना० च० पृ० ५२
पुनरपि	पुणो वि		,, ,, ६४
सोपि	सो वि, षो वि		,, ८८, ९३, ५३६
स्नेहोपि	सिणेहो वि		,, ,, ४
वागपि	वाआ वि		,, ,, ४
आगन्तुकेनापि	आअन्तुएण वि		,, ,, ११
आर्यपुत्रोपि	अय्यउत्तोवि		,, ,, २०
कस्मा अपि	कस्म वि		,, ,, २६
को पि	कोवि		,, ,, ४२
वाक्यारम्भ में			
अपितावत्	अविदाव		,, ,, २०
अपि	वि	मागधी	,, ,, २८१

'इति'—अनुस्वार के बाद इति का रूप 'ति' तथा स्वरों के अनन्तर 'त्ति' बनता है। इससे पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।

जीवितम् इति	जीविय ति	महाराष्ट्री	रावणवध ५, ४
नास्तीति	णत्थि ति	महा०	गउड़वहो
एतद् इति	इणंति	अर्धमागधी	
लभेयम् इति	लहेअं ति	शौरसेनी	शकुन्तला १३ व ६
भास का प्रयोग	लभेअं ति		भा० ना० च० पृ० २१६
अनुपरिवर्तत इति	अणुपरियट्टइ त्ति	महा०	आयार १२

अर्धमागधी मे इति से पहलेवाला दीर्घ स्वर बना रहता है जब यह प्लुत स्वर होता है और जब यह इति वा से पहले आता हो तो इन स्थलो पर इति का ति बनकर इ रह जाता है।

उत्ताने इति वा	उट्ठाने इ वा	विवाह० ६७, ६८
कर्मेति वा	कम्मे इ वा	
बलम् इति वा	बले इ वा	
वीर्यम् इति वा	वीरिए इ वा	
पुरुषकार इति वा	पुरिसक्कार इ वा	
पराक्रम इति वा	परक्कमेइ वा	

भास का प्रयोग,

पराक्रमेण समीकरोमिति	परक्कमेण समीकरोमि त्ति	भा० ना० च० पृ० ६५
महत्तरे इति	महत्तराणि त्ति	,, ,, ,, ,, ५

शब्द	परिवर्तित रूप प्राकृत-भेद	स्थल-निर्देश
ईच्छतीति	इच्छदि त्ति	भा० ना० च० पृ० ५ व ६
गतः इति	गदो त्ति	,, ,, ,, ,, १०
क्रीडतीति	कीलदि त्ति	,, ,, ,, ,, १३
कर्तव्यमिति	कादव्व त्ति	,, ,, ,, ,, १६
पश्यामीति	पेक्खामि त्ति	,, ,, ,, ,, १७
निपुणेति	णिउणा त्ति	,, ,, ,, ,, १७
कामदेव इति	कामदेवोत्ति	,, ,, ,, ,, १८
निष्प्रयोजनमिति	णिप्पश्रोश्रणं त्ति	,, ,, ,, ,, १६
उन्मङ्क्ष्याम इति	उम्मजिस्सामो त्ति	,, ,, ,, , २०
जामाता इति	जामादुश्रो त्ति	,, ,, ,, ,, २१
वर्तत इति	वत्तदि त्ति	भा० ना० च० पृ० २१
वेति (वा+इति)	वे त्ति	,, ,, ,, ,, २२
भर्तेति	भत्त त्ति	,, ,, ,, ,, २४
आनयामीति	आणेमि त्ति	,, ,, ,, ,, २१
वर्ते इति	वत्तामि त्ति	,, ,, ,, ,, २२

भास ने सभी नाटकों में केवल 'त्ति' का ही प्रयोग किया है। 'इ' का प्रयोग कहीं प्राप्त नहीं होता।

इव

भास ने 'इव' के स्थान मे 'विश्र' का ही अपनी रचनाओं में सर्वत्र प्रयोग किया है।

सम्प्रसारण

ध्वनि बलहीन य का इ और व का उ प्राप्त होता है।

अभ्यन्तर	अब्भिन्तर	अर्द्धमागधी
भास का प्रयोग	अब्भन्तर	भा० ना० च० पृ० ११
स्वप्न	सुविण, सुमिण अर्द्धमागधी	
भास का प्रयोग	सिविण	,, ,, ,, , ४३
त्वरित	तुरिश्र महाराष्ट्री	
भास का प्रयोग	तुवरम्	,, ,, ,, ,, २२०
लवण	लोण महाराष्ट्री, अ० मा०, जैन० म०, अप०	
	लोणिय	जैन महाराष्ट्री
	लवण	शौरसेनी

शब्द	**परिवर्तित रूप**	**स्थल-निर्देश**
भास का प्रयोग	**लक्षण**	
भवति	भोदि	शौर० मागधी
	होइ	अपभ्रंश
	होदि	जैन, शौरसेनी
भास का प्रयोग	**भोदि**	

संयुक्त व्यञ्जन से पहले 'ओ' भी हो जाता है।

सर्वास्ति	सो त्थि	भा० सा० च० पृ० २४३
अवसुप्ता	ओसुत्ता	,, ,, ,, ,, २२३
अवलम्बता	ओलवदं	,, ,, ,, ,, २७
अवलग्न	ओलग्गो	,, ,, ,, ,, ८२

संयुक्ताक्षर के अभाव में 'ओ' का प्रयोग—

अवनमित	ओणमिअ	,, ,, ,, ,, २२१
अवगाहन	ओगाहण	,, ,, ,, ,, २२१
अवलोकित	ओलोइअ	,, ,, ,, ,, ३१२
अवधूय	ओधूय	,, ,, ,, ,, २७

भास की मौलिकता—

अवच्चित्य	अवइणिअ	,, ,, ,, ,, २३

सम्प्रसारण नियम के अन्तर्गत 'अय्' का 'ए', 'अव' का 'ओ' हो जाता है—

कथयति	कधेदु	शौरसेनी
	कधेदि	मागधी
	कहेइ	अर्धमागधी
भास का प्रयोग	कथयिष्यामि, कहइस्स	भा० ना० च० पृ० ३६
नयतु	णेदु	शौरसेनी
भास का प्रयोग	**णेदु**	
ददति	देदि	शौरसेनी

उपसर्गों के अन्त में आने वाले 'इ' और 'उ' अपने बाद आने वाले स्वर के साथ संस्कृत नियमानुसार सन्धियुक्त प्राप्त होते हैं।

अत्यन्त	अच्चन्त	महा०, अर्धमा०, जैन महा०, शौरसेनी
भास का प्रयोग	**अच्चन्त**	

शब्द के अन्त में जो दीर्घ स्वर आता है वह महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन शौरसेनी में सन्धि होते हुए भी ह्रस्व रूप धारण कर लेता है। ऐसा बहुधा उन शब्दों में होता है जिनके अन्त 'इ' आती है।

शब्द	**परिवर्तित रूप**	**स्थलनिर्देश**
नदीपूर	णइपुर	हाल ३१
नदीकक्ष	णईकच्छ	हाल ४१६

मागधी शौरसेनी मे गद्य मे दीर्घ स्वर सदा दीर्घ ही रहता है ।

नदीवेग	णईवेअ	शौरसेनी	शाकुन्तलम् ३२
शोणित—	शोणिअ		
नदीदर्शन	णई दशण	शौरसेनी	वेणीसहार ३५
भास का प्रयोग	**णइ**		

पहले या बाद का वर्ण 'स्वरित' रहने से 'ए' कभी-कभी 'इ' मे परिः विभक्ति के रूप में 'ए' तथा बोलियो मे दीर्घ स्वर के बाद 'इ' होता है । अम्हेहि, तुम्हेहि रूप भास द्वारा प्रयुक्त हुए है जो कि शौरसेनी और मागधी मे प्रयुक्त हुए हैं ।

ओष्ठ्य वर्णो के पहले और बाद मे कभी-कभी 'अ' 'उ' मे परिणत हो जाता है ।

प्रथम	पुढम	महाराष्ट्री	
	पढुम, पुढुम	अर्धमागधी	
	पढम	सभी प्राकृतों मे, मुद्राराक्षस	
	पुडम		दक्षिण भारत की प्रतियो मे
भास का प्रयोग	**पढम**		भा० ना० च० पृ० ५
श्मशान	मसाण	शौरसेनी	,, ,, ,, ,, ३९८
भास का प्रयोग	**मसाण**		

स्त्री शब्द

सस्कृत-रूपावली 'स्त्री' शब्द के मूल मे दो अलग-अलग अक्षरो को प्रमाणित करती है ।

स्त्री— इत्थी[1]—अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री, शौरसेनी, हेमचन्द्र २, १३०

इत्थिया—अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री

इत्थिआ—शौरसेनी

इस्तिआ—मागधी

भास ने **इत्थिआ**, **इत्थि** दोनो का प्रयोग किया है ।

सभी प्राकृत भाषाओ मे इत्थी शब्द का ही प्रयोग हुआ है । उपर्युक्त 'इ' किसी प्राचीन स्वर का अवशेष है । यह तथ्य मोहानमोन ने ठीक प्रकार जान लिया था ।

महाराष्ट्री की प्रमुख विशेषता जो अर्धमागधी मे भी लभ्य होती है किन्तु शौरसेनी तथा मागधी मे अल्पमात्र मे मिलती है । भास मे इस प्रकार के प्रयोग प्राप्त

१—वररुचि का प्राकृत-प्रकाश, अध्याय ३।४८

होते है। अविमारक मे सयुक्त व्यञ्जन के पूर्व ह्रस्व स्वर होने वाले शब्दो की सूची पहले हम दे चुके है। भास मे इस प्रकार का प्रयोग महाराष्ट्री के प्रभाव को दर्शाता है।

आत्मन् शब्द महाराष्ट्री[1] मे प्राय: 'अत्त' और नित्य ही 'अप्प' हो जाता है। कम स्थलो पर अत्त का प्रयोग मिलता है। जैन महाराष्ट्री मे 'अप्प' और 'अत्त' मिलते है। शौरसेनी, मागधी में कर्ता एकवचन मे 'अप्प' बहुत आता है। अन्य कारकों मे 'अत्त' ही आता है। भास ने अपनी रचनाओ मे 'अत्त' का ही बहुलता से प्रयोग किया है। केवल एक या दो स्थलो पर 'अप्प' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।

पूर्व शब्द के लिए भी भास ने इसका शौरसेनी रूप 'पुरव:' ही प्रयुक्त किया है।

ननु शब्द के स्थान में इसका शौरसेनी रूप 'ण' प्रयुक्त किया है।

पुन: के स्थान पर भास ने शौरसेनी तथा मागधी दोनो भाषाओ मे प्राप्त होने वाले रूप 'उण' को प्रयुक्त किया है।

इदानीम् शब्द के दो रूप प्राप्त होते है, वाक्य के आरम्भ में 'इकार' बना रहता है। अन्यत्र 'इ' का लोप रहता है। शौरसेनी तथा मागधी मे 'इदानीम्' का 'दाणिम्' रूप चलता है और यही रूप भास के नाटकों में प्रयुक्त हुआ है।

भास का प्रयोग —

मेदानी भवाननर्थं चिन्तयित्वा—मा दाणिं भव अणत्थ चिन्तिअ।

भा० ना० च० पृ० ४४

इदानीमपि न तावत्—इदाणिं पि ण दाव। भा० ना० च० पृ० ७६

दिष्ट्येदानीमपि स्मरति—दिट्ठिआ इदाणि पि सुमरदि।

भा० ना० च० पृ० ५३

उपर्युक्त वाक्यो मे भास ने 'इदानीम्' शब्द का वाक्यारम्भ में, वाक्य के मध्य मे दोनो प्रकार से प्रयोग किया है।

खलु शब्द का 'खु' रूप बन जाता है। मागधी और शौरसेनी में 'ए' और 'ओ' का ह्रस्व हो जाता है और 'खु' रूप 'क्खु' हो जाता है।

शब्द	**परिवर्तित रूप**	**प्राकृत भेद**	**स्थल-निर्देश**
असमये खलु	असमए क्खु	शौरसेनी	शकुन्तला १४, ६
माया खलु	माए क्खु	शौरसेनी	विक्रमो० २६, १५
महान् खलु	महन्ते क्खु	शौरसेनी	
काम: खलु	कामो क्खु	शौरसेनी	

१—वररुचि का प्राकृत प्रकाश, अध्याय ३।४८

अहं खलु	हगे क्खु	मागधी	शाकु० ११३।६
दुष्कर· खलु	दुक्कलं क्खु	मागधी	मृच्छ० ४३।४

मागधी शौरसेनी मे 'ए' और 'ओ' छोड़कर अन्य दीर्घ स्वरो के बाद 'खु' हो जाता है। ह्रस्व स्वरो के बाद क्खु हो जाता है किन्तु कहीं-कहीं 'हु' भी मिलता है। इन दोनो में 'णहु' भी आता है। णक्खु और णुक्खु पाठ भी मिलता है। शाकुन्तलम् में भी सर्वत्र यही रूप प्राप्त होता है केवल पृ० ५०, २ में णहु मिलता है किन्तु यह णक्खु ही होना चाहिए। शौरसेनी और मागधी मे कविता मे 'हु' रूप ठीक प्रतीत होता है।

शब्द	परिवर्तित रूप	प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश
अस्ति खलु	अत्थिखु	शौरसेनी	शाकु० १२७, १४
बिभेमि खलु	भाआमि क्खु	शौरसेनी	विक्रमो० १३, ४
मा खलु	मा खु	महाराष्ट्री	मृच्छ० ५४, २१
को खलु	को खु	महाराष्ट्री	हेम० २१
	को क्खु	शौरसेनी	मृच्छ० ६४
स खलु	सो क्खु	शौरसेनी	मृच्छ० २८
	सो खु	महाराष्ट्री	
	से हु	अर्धमागधी	आयार०
	शे क्खु	मागधी	मृच्छ० १२।२०
एष खलु	एसो क्खु	शौरसेनी	मृच्छ० १८, ८
	एशे क्खु	मागधी	मृच्छ० ४०, ६
	एसो हु	अर्धमागधी	उत्तर० ३६२
	मा हू	जैन महा०	एत्से० ७७।२३

अनुस्वार के बाद खलु का 'खु' रूप प्रयुक्त होना चाहिए। यथा मार्कण्डेय ने पृष्ठ ७२ मे शौरसेनी के लिए निर्दिष्ट किया है। महाराष्ट्री तथा अर्धमागधी मे भी यही रूप प्राप्त होता है।

शब्द	परिवर्तित रूप	प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश
तत् खलु	त खु	अर्धमागधी	गउड़० पृ० ८६०
एतत् खलु	एव खु	अर्धमागधी	सूय० पृ० ६५
तच्छ्रेय खलु	त सेव खलु	अर्धमागधी	एर्त्से ३३, १२
आत्मा खलु	अप्पा हु खलु		उत्तर० १६
दुर्दमः	दुद्दमो		

भास द्वारा 'खलु' शब्द का प्रयोग— अनुस्वार के बाद—

अभिजनानुरूप खलु	— अभिजणाणुरूव खु	— मागधी तथा शौर०	— भा० ना० च०	४
अलीकमलीक खलु	— अलिअअलिअ खु	— " " "	— " " "	६
सर्वजनमनोभिराम खलु	— सव्वजणमणोभिरामं खु	— " , "	— " " "	१५
शून्य खलु इदम्	— सुण्ण खु इद	— " , "	— " " "	२८
प्रतिहाररक्षकं खलु	— पडिहारक्खअउत्ति खु	— " , "	— " " "	८६

दीर्घ स्वर के पश्चात्—

अर्हा खलु	— अर्हा खु	— , " "	— " " "	५
सुपरिपालनीया खलु	— सुपरिवालणीओ खु	— " , "	— " " "	८
धन्या खलु	— धञ्ञा खु	— , " "	— " " "	१६
अकरुणाः खलु ईश्वराः	— अकरुणा खु इस्सरा	— " " "	— " , "	१८
सदृशी खल्वियमार्यायाः	— सदिसी खु इअ अय्याए	— " " "	— " " "	५१
सा खलु इदानीम्	— सा हु दाणि	— " " "	— " " "	३५
सा खलु न	— सा हु ण	— " " "	— " , "	४५
एकः खलु महान्	— एक्को खु महन्तो	— " " "	— " " "	२०

ह्रस्व स्वर के बाद—			
रोदिति खलु	रोदिदि खु	भा० ना० च० पृ०	६
कि नु खु	कि णु खु	,, ,,	११
केन खलु	केण खु	,, ,,	१४
न खलु एषः	ण खु एसो	,, ,,	१५
न खलु किंचित्	ण हु किंचि	,, ,,	१५
न खलु अहं	ण खु अहं	,, ,,	१५
कुत्र न खलु गतः	कहिं णु खु गदो	,, ,,	२१
न खलु अय	ण हु अअं	,, ,,	३८
न खलु ते	ण हु दे	,, ,,	६३
न खलु	ण खु	,, ,,	७६
किन्नु खलु	किण्णु हु	,, ,,	८०
न खलु	ण हु	,, ,,	८५

'खलु' शब्द के प्रयोग का भास की रचनानाओं में प्रयुक्त रूप और उसका निष्कर्ष :—

भास ने सर्वत्र 'खु' और 'हु' का प्रयोग किया है, केवल 'क्खु' एक स्थल पर बालचरित[1] मे प्रयुक्त किया है। यह 'क्खु' रूप शौरसेनी प्राकृत का है। खलु के विषय मे पल्लवदान पत्र[2] में भी निम्नांकित विवरण दिया है।

भास की प्राकृत की अन्य प्राकृतो से तुलना करने पर हम इसे शौरसेनी तथा मागधी के अधिक निकट पाते हैं। वैसे तो इस पर पाली, प्राकृत की सन्निकटता और रूपान्तरो को हम पाली शब्दों की ध्वनि सम्बन्धी विकृति के साथ अध्याय के आरम्भ मे ही लिख चुके हैं। इस समय शौरसेनी प्राकृत के नियमों की समानता दर्शाने वाले प्रयोगो को उपस्थित किया जाता है।

शौरसेनी प्राकृत की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं मे त और थ का क्रमशः द और ध रूप मे परिवर्तन प्राप्त होता है। भास के प्रयोगों में त का द मे परिवर्तन अधिकतया प्राप्त होता है, थ के स्थान पर ध का प्रयोग नही के बराबर है।

---

१. वृद्धगोपालक—भो मेघदिएण। क्खु, वषभदिएण। भा० ना० च० पृ० ५३४।

२. पल्लवदानपत्र में तस खु (७, ४१) और स च खु (७, ४७) में 'खु' प्रस्तर लेखों की लिपि के ढंग के अनुसार क्खु के लिए आया है। कापेलर ने हस्तलिखित प्रतियों के विरुद्ध अपने संस्करणो मे जो क्खु दीर्घ स्वरों के बाद आए है, उनको सर्वत्र ह्रस्व कर दिया है। ऐसा खु रत्ना० ३०२, २ के स्थान पर एस क्खु कर दिया है। सा खु (रत्ना० २९२, ३१ के लिए स क्खु, मा खु के लिए म क्खु, महती खलु के लिए महदिक्खु, पथिवी खलु के स्थान पर 'पुढ़वि' क्खु का प्रयोग किया है।

त का द में परिवर्तन

ंस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
ागत	साऊदं	अतिथि	अदिहि
न्ताप:	सन्दाव:	कौतुकं	कोदुअम्
ामाता	जामादुओ	आतप:	आदव:
ीतला	शीदला	सकाशात्	सआसाद्
र्वगतं	सव्वगदम्	आनीत:	आणीद:
,रोति	करेदि	इच्छति	इच्छदि
रयति	वरेति	श्रूयते	सुणीअदि
ाणति	भणादि	गत:	गद:
ारिष्यति	करिस्सदि	परिहरतु	परिहरदु
ानुतिष्ठतु	अणुचिट्ठदु	आगच्छति	आअच्छदि
पनिमत्रयतां	उवणिमत्तीअदु	भवितव्यम्	होदव्वं
वरजीवतु	चिरंजीवदु	स्मरति	स्मरदि
वालान्तरितै:	पवालान्तरिदेहि	वातशोणित	वादशोणिद

भास की क्रियाओं में पूर्वकालिक कृदन्त का प्रत्यय "क्त्वा" "इ अ" में परिर्तित हुआ मिला है। जो कि शौरसेनी प्राकृत में सर्वत्र प्रयुक्त हुआ है।

ंस्कृत	परिवर्तित शब्द	प्राकृत भेद			स्थल निर्देश
ुत्वा	सुणिअ	शौरसेनी	भा० ना०	च० पृ०	४, १०, ४५
द्घोष्य	उग्घोसिअ	"	"	"	६
ीडित्वा	कीलिअ	"	"	"	१३
ातप्य	सन्तप्पिअ	"	"	"	१५, १६
ष्ट्वा	पेक्खिअ	"	"	"	१६, २३
रित्यज्य	परित्तजिअ	"	"	"	१७
चन्तयित्वा	चिन्तिअ	"	"	"	१८, ४४
मृत्वा	सुमरिअ	"	"	"	२४
ागत्य	आअच्छिअ	"	"	"	२६
ज्झित्वा	उज्झिअ	"	"	"	३२
पविश्य	उवविसिअ	"	"	"	३८
हीत्वा	गण्हिअ	"	"	"	४०
त्वा	करिअ	"	"	"	४१, ४५
स्थत्वा	चिट्ठिअ	"	"	"	४२
ारोप्य	आरोविअ	"	"	"	४२
ोर्त्वा	तरिअ	"	"	"	६१

संस्कृत	परिवर्तित शब्द	प्राकृत भेद	स्थल निर्देश			
आवास्य	आवासिअ	शौरसेनी	भा० ना०	च०	पृ०	६१
प्रसाद्य	पसादिअ	"	"	"		६२
आरुह्य	आलुहिअ	"	"	"		६३
समाश्वास्य	समस्सासिअ	"	"	"		६४
प्रेक्ष्य	पेक्खिअ	"	"	"		६५, ७१, ७
परिवर्त्य	परिवत्तिअ	"	"	"		६६
सक्षिप्य	सखिविअ	"	"	"		६६
पीडयित्वा	पीडिअ	"	"	"		६६
भणित्वा	भणिअ	"	"	"		६७
आरोप्य	आरोविअ	"	"	"		७१
हसित्वा	हसिअ	"	"	"		७१
निक्षिप्य	णिक्खिविअ	"	"	"		८२, ८८
गणयित्वा	गणिअ	"	"	"		८२, ८४
स्थापयित्वा	ठाविअ	"	"	"		८७
सम्भाव्य	सम्भाविअ	"	"	"		९१
पीत्वा	पिविअ	"	"	"		९५
मर्दित्वा	मदिअ	"	"	"		९५
प्रविश्य	पविसिअ	"	"	"		१२०
वञ्चयित्वा	वचिअ	"	"	"		१२०
ज्ञात्वा	जाणिअ	"	"	"		१२३
परिभ्रम्य	परिब्भमिअ	"	"	"		१२९
निर्वध्य	णिब्बन्धिअ	"	"	"		१३४
लब्ध्वा	लभिअ	"	"	"		१५८
गत्वा	गच्छिअ	"	"	"		१९१
अशित्वा	अण्हिअ	"	"	"		१९५
चरित्वा	चरिअ	"	"	"		१९५
प्रतीष्य	पडिच्छिअ	"	"	"		२५३
अवघट्य	औघट्टीअ	"	"	"		२५४
अभिषिच्य	अहिसिचिअ	"	"	"		२५४
संमन्त्र्य	सम्मन्तिअ	"	"	"		३२३
व्यपदिश्य	ववदिसिअ	"	"	"		३३५
श्रुत्वा	सुणिअ	"	"	"		३३६

संस्कृत	परिवर्तित शब्द	प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश
गत्वा	गच्छिअ	शौरसेनी	भा० ना० च० पृ० ३८९
आरुह्य	आलुहिअ	,,	,, ,, ,, ,, ३९१
कृत्वा	करिअ	,,	,, ,, ,, ,, ४६२
उज्झित्वा	उज्झिअ	,,	,, ,, ,, ,, ५१६
रन्त्वा	लमिअ	,,	,, ,, ,, ,, ५१७

नोट—उपर्युक्त सकलन मे भास की सभी रचनाओ मे से इस प्रकार के क्त्वा के प्रयोगों को उद्धृत करने का प्रयास किया है। जिसमे निम्नांकित विवरण के आधार पर भास-नाटक-चक्रम् मे सगृहीत भास के नाटको मे इन शब्दो की प्राप्ति होती है।

भा० ना० च०	पृष्ठ सख्या	ग्रन्थ सन्दर्भ
	४-४२	स्वप्नवासवदत्ता
	६१-९५	प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण
	१२०-१५८	अविमारक
	१९१-१९५	चारुदत्त
	२५३-२५४	प्रतिमा
	३२३-३३६	अभिषेक
	३८९-३९१	पचरात्र
	४६२	दूत-घटोत्कच
	५१६	बालचरित

शौरसेनी प्राकृत के समर्थन में वररुचि के प्राकृत-प्रकाश द्वादश परिच्छेद के सूत्र 'क्त्व' इअः (१) ९, को उद्धृत किया जाता है।

भास की रचनाओ मे भिन्न ध्वनियो का परिवर्तन प्राप्त होता है जो कि शौरसेनी से समानता रखता है।

शब्द	परिवर्तित रूप	प्राकृत भेद	स्थल-निर्देश
अज्ञात	अञ्जाद	शौरसेनी	भा० ना० च० पृ० ३०
धन्या	धञ्जा	,,	,, ,, ,, ,, २५
धन्यः	धण्णः	,,	,, ,, ,, ,, २१
शून्य	सुञ्जं	,,	,, ,, ,, ,,
शून्यं	सुण्णं	,,	,, ,, ,, ,, २८
परिज्ञान	परिञ्जाण	,,	,, ,, ,, ,, ६४
प्रतिज्ञाभारो	पण्डिण्णाहारो	,,	,, ,, ,, ,, ४१
यज्ञ	जण्ण	,,	,, ,, ,, ,,
यज्ञ	यञ्ञ	,,	,, ,, ,, ,, ५१९

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भास में ण्ण, ञ्ञ दोनों रूप अपनी

रचनाओं में प्रयुक्त किए हैं जो कि वररुचि[1] के प्राकृत-प्रकाश से अनुमोदित हैं।

भास की रचना में प्राकृत, संस्कृत और शौरसेनी मिश्रित रूप में प्रयुक्त हुई प्राप्त होती है।- अकारान्त तृर्त या, एक वचन 'टा' एन्-ए, एण का वैकल्पिक प्रयोग प्राप्त होता है जो कि प्राकृतानुशासन परि० १६[2] से अनुमोदित है।

शब्द	परिवर्तित रूप	शब्द	परिवर्तित रूप
वचनेन	वअणेण	प्रदानेन	प्पदाणेन
आगन्तुकेन	आअन्तुएण	हृदयेन	हिअएण
धूलिकेन	धूलिएण	शीर्षवेदनया	सीसवेदणए
अनया	इमाए	मया	मए
कन्दुकेन	कन्दुएण	विचित्रितेन	विइत्तिदेण
प्रयोगेन	पओअणेण	मनोरथेन	मणोरहेण
विस्तरेण	वित्थरेण	सत्येन	सच्चेण
नृपसेन	णिससेण	कार्यतया	कय्यदाए
त्वया	तुए	यया	जाए

क्रियाओं में भी शौरसेनी से कतिपय स्थलों पर पूर्णतया साम्य दृष्टिगोचर होता है, यथा—कृ धातु के प्रयोग में सदा ही 'कर'[3] का रूप प्राप्त होता है।

शब्द	परिवर्तित रूप	शब्द	परिवर्तित रूप
करोति	करेदि	करोमि	करेमि
कुरु	करेहि	करोतु	करेदु
कुर्म	करम्ह	कुर्वः	करेम्ह
कुर्वन्	करअन्त	कुर्वती	करअन्तीए

स्था के स्थान में 'चिट्ठ'[4] रूप शौरसेनी के समान है।

तिष्ठति	चिट्ठदि	स्थास्यामि	चिट्ठिस्सं
तिष्ठतु	चिट्ठतु	उपतिष्ठे	उवचिट्ठामि

स्मृ धातु का 'सुमर'[5] रूप भी शौरसेनी के समान है।

स्मरति	सुमरेदि	स्मर	स्मरेहि
स्मरामि	सुमरामि, पुमलामि	भा० ना० च० पृ० ५१८	

दृश् धातु का 'पेक्ख'[6] रूप भी शौरसेनी के समान है।

पश्यति	पेक्खदि	दृष्ट्वा, प्रेक्ष्य	पेक्खिअ

१. ब्रह्मचर्यविज्ञयज्ञकन्यकानांण्यज्ञन्यानां ञ्जो वा। वररुचि प्रा० प्र० १२।७
२. एन्वटान्तस्य। प्राकृतानुशासन, हेमचन्द्र, परि० १६
३. डुकृञः करः। वररुचि प्राकृत-प्रकाश १५
४. स्थश्चिट्ठः। ,, ,, ,, १६
५. स्मरतेः सुमरः। ,, ,, ,, १७
६. दृशेः पेक्खः। ,, ,, ,, १८

दा धातु का विभक्तियो के पूर्व वर्तमान में 'दे' भविष्य में 'दइस्स'[1] होने का उदाहरण भी भास की रचनाओ में शौरसेनी के अनुसार मिलता है।

शब्द	परिवर्तित रूप	शब्द	परिवर्तित रूप
ददाति	देदि	ददासि	देसि
ददामि	देमि	ददातु	देदु
दत्तः	दिण्णः	दास्यामि	दइस्सं

भू धातु मे 'भो' तथा 'हो' वाले दोनो रूप प्राप्त होते है।

भवामि	होमि	भवतु	भोदु
भवितव्यम्	होदव्यं	भवेत्	भवे
भवति	भोदि, होइ	भवामः	होमः

संज्ञा और सर्वनाम के द्विवचन के रूपों के प्रयोग बहुवचन के रूपों में सम्मिलित हो गए जिसके उदाहरण भास को रचना में प्राप्त होते हैं।

हस्तौ	हत्था	परकीयौ	परकीआ
राज्ञौ	राआ		

सर्वनाम शब्दों में प्राप्त रूप इस प्रकार के है।

अस्मद् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहं	—	वय
द्वितीया	म	--	अम्हे
तृतीया	मए	अम्हेहि	अम्हेहि
चतुर्थी	—		
पचमी	—		
षष्ठी	मे		अम्हाणं अम्हाअं
सप्तमी	मह		

भास की प्राकृत का अध्ययन ही एक पृथक् प्रबन्ध के रूप में अभी अन्वेषण की वस्तु है। यद्यपि इस विषय में कई विद्वानों ने अपनी गम्भीर आलोचना प्रस्तुत की है जिनमे प्रमुख डॉ० ए० बैनर्जी शास्त्री, विलियम प्रिट्स, लेस्नी ने अपने लेखो में भास की प्राकृत की आलोचना की है। इन उपर्युक्त विद्वानों की आलोचना के पश्चात् भी वी० एस० सुखथन्कर ने विलियम प्रिट्ज के अध्ययन की आलोचना अपने ग्रन्थ मे की जो कि सुखथन्कर वाल्यूम द्वितीय से १९४५ में संगृहीत सस्करण में प्रकाशित हुई है। डॉ० विलियम प्रिट्ज ने १९१९ में फ्रेंक फर्ट यूनिवर्सिटी मे भास की प्राकृत का गम्भीर अध्ययन करके अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया जो १९२१ के बाद छपा है।

---

[1] ददाते र्दे दइस्स लटि। वररुचि प्राकतप्रकाश सूत्र सं० १४

इस गम्भीर विवेचन मे डॉ० प्रिट्ज का श्रम सराहनीय है, इनका कार्य केवल त्रिवेन्द्रम् नाटकों की प्राकृत के लिए ही नही अपितु नाटकीय प्राकृत के लिए परमोपयोगी है।

डॉ० प्रिट्ज ने भास के नाटको की प्राकृत का अध्ययन प्रो० ल्यूडर्स द्वारा किए गए बौद्ध नाटको के तुरफान सस्करणो की भाँति ही किया गया है। उन्होने इन नाटको की प्राकृत को पूर्ण आस्था एव विश्वास के साथ सम्पादित किया है और इनकी भिन्नता तथा शताब्दियो के प्रयोग के कारण विद्यमान दोषो और विकृतियों पर दृष्टिपात करके गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। भास की रचनाओं की स्वीकृति इन्होने पूर्ण रूप मे की है। इनकी दृष्टि मे हम नाटकीय प्राकृत के अध्ययन से पूर्णतया अपना समर्थन नही रखते है। इनके अध्ययन के पश्चात् डॉ० सुखथन्कर ने भी उसमे कतिपय दोषो का विवेचन किया है। प्रिट्ज ने मागधी मे शब्द-परिवर्तन की तुलना भास के प्रयुक्त भाषा के शब्दो से करने का प्रयास किया है।

प्रिट्ज ने अपने ग्रंथ के पृष्ठ ६ पर कृष्ण-सम्बन्धी दोनो नाटको 'पञ्चरात्र' तथा 'बालचरित' मे गोपालको की भाषा को मागधी कहा है। यह स्पष्ट है कि जिस मागधी मे कर्ता कारक एक वचन का अन्त 'ओ' से होता है वहाँ वह मागधी प्रयुक्त नही है। बाल० तथा पञ्चरात्र के गोपालको की भाषा को उत्तरी तथा पश्चिमी जन-भाषाओं का ही रूप कहा जा सकता है। डॉ० वेलर ने इस प्राकृत को शौरसेनी कहा है। ए० बैनेर्जी शास्त्री ने इसे मागधी ही कहा है। 'कर्णभार' मे इन्द्र तथा बाल मे गोपालक की भाषा को प्रिट्ज ने अर्धमागधी कहा है किन्तु इन उपर्युक्त स्थलो की प्राकृत को मागधी तथा अर्धमागधी कहना उपयुक्त नही है। भास की प्राकृत का अध्ययन दक्षिण के अन्य नाटको के लिए अवश्य उपयोगी है किन्तु भास की भाषा के निश्चित करने मे मतभेद अवश्य है।

नाटकों की प्राकृत के शब्दों का प्रिट्ज द्वारा विवेचन—

शब्द	परिवर्तित रूप	स्थलनिर्देश
प्राकृत	पाअड	अवि० मे प्राकृत गणिका भा० ना० च० पृ० १२६
	पाकिद	प्रतिज्ञा० में ,, ,, ६५
वृषभ	वसभ, वृषभ	,, ,, १५

इन शब्दो को प्रिट्ज ने मागधी प्राकृत का निर्दिष्ट किया है किन्तु हमारी दृष्टि मे शौरसेनी के किसी भेद के अन्तर्गत आ सकते है। वृषभ शब्द का प्रयोग ग्वालो की भाषा की व्यावहारिकता से भी विवेच्य हो सकता है।

हृदय	हिअअ	भा० ना० च० पृ० ५४

इसे भी प्रिट्ज ने मागधी का रूप निर्दिष्ट किया है किन्तु हम ऐसा रूप शौरसेनी मे भी पाते हैं।

वृत्तान्त	वुत्तन्त	भा० ना० च० पृ० ६८, १००
	उत्तन्त	,, ,, ३३७

उपर्युक्त शब्द मे एक स्थल पर 'व' का उच्चारण शेष है और दूसरे स्थल पर केवल 'उ' ही दिया गया है। प्रतिज्ञा तथा अभिषेक मे भी वृत्तिम मे 'व' बराबर विद्यमान मिलता है। अत: इन दोनो प्रयोगो मे भिन्नता है।

सुष्ठु इदम् सुत्थुइदम

सुष्ठुगीतम् सुत्थुगैदम्, षठ्ठु गाइद भा० ना० च० पृ० ३६१

थ का ह में परिवर्तन 'ध' की अपेक्षा शौरसेनी की विशेषता है। यह इन मलयालम प्रतियो मे प्राप्त होती है। कल्याण सौगन्धिका मे भी बर्नेट ने इसी प्रकार के प्रयोग 'कथ' के स्थान में 'कह' और 'नाथ' के स्थान मे 'नाह' को प्राप्त किया है।

'च्छ' का 'श्च' मे परिवर्तन इन नाटको मे नही मिलता है। पिशेल के अनुसार इनमे 'च्छ' का ही प्रयोग हुआ है जो कि मत्तविलास, सुभद्रा धनञ्जय तथा मलयालम प्रतियों मे समान रूप से मिलता है।

शौरसेनी तथा मागधी मे सस्कृत शब्द 'ज्ञ' के परिवर्तन मे भास की रचनाओ मे प्राप्त रूपो को प्रिट्ज ने मागधी बतलाया है। किन्तु ऐसे रूप शौरसेनी मे भी मिलते है जैसा कि हम पूर्व में तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत कर चुके है।

सम्बोधन कारक स्त्रीलिङ्ग में 'आम्' का सम्बोधन सस्कृत का प्रभाव दर्शाता है। प्रिट्स ने वीणा 'वादन्ती' जो कि 'वादयन्ती' का रूप है, को कर्ता कारक कहा है वह अनुचित है। प्रिट्ज ने उज्जैन्य: शब्द मे भी कर्ता कारक का विचार रक्खा है किन्तु यह भी कर्तृवाचक विशेषण है अतः प्रिट्ज की विचारधारा इन स्थलो पर अमान्य है। कुछ दोष छाया के अनुवाद मे भी सम्भवत: हो गये है।

ए० बैनर्जी शास्त्री ने "भास के काल तथा मागधी" लेख मे इनकी प्राकृत के शब्दों की मागधी शब्दो से तथा अन्य ग्रन्थों, अशोककालीन शिलालेखों मे प्राप्त शब्दो से तुलना की है। जिनके कतिपय उदाहरण यहाँ देने से उनके दृष्टिकोण का परिचय हमें प्राप्त हो सकेगा।

शब्द	**विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त रूपों का डा० ए० बैनर्जी द्वारा निर्देश**[1]
अहम्	अहकम् (अश्वघोष), अहके (कालिदास), अहम् (मृच्छ०), (मत्त०), (मुद्रा०), भास ने 'अहम्' सर्वत्र केवल एक स्थल पर 'अहके' प्रयोग किया है।
इदम्	'इदम्' (मत्तविलास, मुद्राराक्षस और भास)
अनेक	इमिना (सुतनक अशोक, कालिदास, मत्तविलास और भास)
इमे	सुतनक अशोक, कालिदास और भास

१. भास का काल तथा मागधी—जर्नल बिहार तथा उड़ीसा रिचर्स सोसाइटी, सन् १९२३, पृ० ८१

कृते	कते (सुतनक अशोक, कए (कालिदास), कडे और किडे (मृच्छ०), कडे (भास)
करोति	कलेति (सुतनक अशोक), कलेमि (अश्वघोष), कलेमि (कालिदास), क्लेदि (मृच्छ०), कतरेदि (मुद्रा०) और करेदि (भास)
खलु	खु (सुतनक अशोक, अश्वघोष, कालिदास, मत्तविलास और भास)
गच्छति	गच्छेम (सुतनक अशोक), गच्छदि (मृच्छ०), गश्चिदि (मुद्राराक्षस)
तमं	नुम (सुतनक अशोक), (कालिदास), तथा (भास)
तावत्	दाव (सुतनक अशोक). ताव (अश्वघोष), दाव (कालिदास, मुद्राराक्षस और भास)
पश्चात्	पच्चा (सुतनक अशोक) तथा (भास)
अपि	पि (सुतनक अशोक), कालिदास, मुद्राराक्षस तथा भास
पुनः	पुना (सुतनक अशोक), पुनः (मृच्छकटिक तथा भास)
वचनेन	वचनेन (सुतनक अशोक), वअनेन (भास)
श्रमणक	श्रमन (सुतनक अशोक), समनक (मृच्छ०), समनअ (भास)
भवति	भोति (सुतनक अशोक), होइ (मृच्छ० और मत्तविलास तथा भास)

इनके अध्ययन से पता चलता है कि कर्ताकारक एकवचन मे उत्तम पुरुष मे भास ने अहम् तथा 'अहके' का प्रयोग किया है और अश्वघोष ने अहकम्, तथा बाद के साहित्य मे 'हके' 'अहके' और 'हगे' का प्रयोग हुआ है।

डॉ० ए० बैनर्जी शास्त्री ने उपर्युक्त विवरण के आधार पर अपने लेख मे भास की भाषा को मागधी के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया है।

प्रो० लेस्नी ने भास की प्राकृत की परिवर्तनशीलता तथा विभिन्न रूपो के साथ प्रयोगों की अधिकता के बल पर अश्वघोष तथा कालिदास से तुलना की है, और यह सिद्ध किया है कि ये नाटक कालिदास से पूर्व तथा अश्वघोष के बाद के है इनके इस मत मे बैनर्जी शास्त्री ने अश्वघोष के बाद के होने मे पर्याप्त सामग्री न होने से अपने समर्थन का अभाव दर्शाया है। जो भिन्नता प्रो० लेस्नी ने दिखलायी है उसका निराकरण अश्वघोष से प्राप्त सामग्री के पश्चात् किया जा सकता है। लेस्नी के अध्ययन की सी० आर० देवधर ने अपने निबन्ध मे आलोचना प्रस्तुत की है। उन्होंने 'अम्हाअ' तथा 'अम्हाण' शब्द के प्रयोग पर विचार करते हुए इन दोनो शब्दो के प्रयोग को बाद की रचनाओं मे भी निर्दिष्ट किया है। यह मत्तविलास प्रहसन मे पृ० ६ पर अम्हाअ तथा पृष्ठ १२ पर अम्हाण के रूप में प्राप्त होता है और सुभद्रा धनंजय मे भी अम्हाअ और अम्हाण समान रूप से प्राप्त होता है।

अहं शब्द के स्थान मे अहके (मागधी) का प्रयोग केवल एक बार हुआ है जो वररुचि प्राकृत प्रकाश के अनुसार नियमानुकूल रूप मे प्राप्त होता है। डॉ० सूक-

थन्कर ने शकुन्तला नाटक की देवनागरी प्रतियो मे यह शब्द 'अहके' प्राप्त होने का निर्देश किया है। इसे भास का पृथक् प्रयोग कदापि नही कहा जा सकता क्योकि यह कुलशेखर वर्मन के सुभद्रा धनजय नाटक में प्राप्त होता है।- तार्प्तीस्वयवर में भी 'अहके' शब्द प्राप्त होता है। किन्तु गणपति शास्त्री ने कुलशेखर वर्मन को १०वी तथा १२वी शती के मध्य मे निश्चित किया है।

आम् शब्द का प्रयोग इन नाटको में पर्याप्त रूप मे मिलता है। यह अन्य प्राकृत-भेदो मे भी प्राप्त होता है किन्तु इसके प्रयोग का कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नही होता। यह पाली में भी प्रयुक्त हुआ है। अश्वघोष के तुर्फान हस्तलिखित प्रतियो में इसके प्रयोग से कोई प्रकाश नही मिलता। हमे यह ज्ञात होता है कि यह आम् लौकिक साहित्य मे भी प्रयुक्त किया गया है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे तथा ताप्तीस्वयवर और सुभद्रा-धनञ्जय में भी इसके प्रयोग प्राप्त होने से लौकिक साहित्य में इससे प्रयोग की पुष्टि होती है।

यह शब्द गाथा-सप्तशती से आनन्दवर्धन ने उद्धृत किया है। अतः इस सम्बन्ध मे हरप्रसाद शास्त्री की यह उक्ति, कि 'आम्' ही एक ऐसा शब्द है जो कि भास के बाद के लौकिक सस्कृत साहित्य के कवियो ने प्रयुक्त नही किया है और पाली मे ही प्रयुक्त हुआ है, निर्मूल सिद्ध हो जाती है। क्योकि उन्होने इसी के आधार पर इन नाटको की प्राचीनता का पोषण किया था।

करिअ शब्द का प्रयोग पिशेल के अनुसार शकुन्तला तथा मालविकाग्निमित्र की दक्षिण की प्रतियो मे ही केवल प्राप्त होता है। सुकथन्कर इस प्रयोग को विशेष प्रयोग मानते है क्योकि यह अश्वघोष की तुर्फान हस्तलिखित प्रतियो मे प्राप्त होता है। अतः केवल इसी के आधार पर प्राचीनता निश्चित नही की जा सकती।

किस्स, किश्श तथा दिस्स, दिश्श शब्दो के प्रयोग अन्य ग्रन्थों मे भी प्राप्त होते हैं। यह मागधी किश्श मत्तविलास में, दीसदि के स्थान मे दिस्सई, कालिदास मे अनेक स्थलो पर प्राप्त होता है। इन हस्तलिखित प्रतियों मे भी दिस्सइ मिलता है। अतः मागधी के समान दिस्स और दीस, किस्स और कीस से कालिदास तथा महेन्द्रवीर विक्रम के काल की पुष्टि की जाती है।

वअ शब्द नाटको मे इस रूप मे केवल तीन स्थलो पर प्राप्त होता है। वयं शब्द भास ने अधिकतर प्रयोग किया है और कालिदास ने भी विक्रमोर्वशीय में 'अन्तरिदा वयम्' प्रयुक्त किया है जो कि वअ के लिए है जिसे वररुचि तथा मार्कण्डेय. ने अनुमोदित किया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर देवधर ने अम्हाअं और अम्हाण, किस्स कीस, अहके, करिअ शब्दो का प्रयोग बाद की प्राकृत मे मिलने का पोषण हो जाता है जिसकी समानता दाक्षिणात्य नाटको की प्राकृत से समानता रखती है किन्तु इससे यह

पता नहीं चलता है कि ये नाटक लौकिक साहित्यिक नाटकों से प्राचीन हैं। इसी प्रकार का पोषण बैनर्जी शास्त्री ने भास की भाषा को मागधी की विशेषता में दर्शाने का प्रयास किया है।[१]

भास की प्राकृत के विशेष प्रयोग

शब्द	प्राकृत रूप	स्थल-निर्देश		
भवतु	हिज्जउ	भा० ना०	च० पृ०	६७
ज्ञातः	मुणिओ	"	"	११६
विज्ञाय	विजाणिओ	"	"	५३६
विज्ञापितः	विण्णाविदो	"	"	६३
गत्वा	गच्छिअ (सर्वत्र), गदुअ	"	"	६३ व १३३
वर्तते, वर्धते	वत्तदि, वट्टई, वड्ढई	"	"	२०, ५१७, ५३५
वर्तन्ते	वत्तन्ति	"	"	३६, ५३५
मृता	मुदा (सर्वत्र), मदलिआ	"	"	५३५, ५२१
पीत्वा	पिविअ (सर्वत्र) पादूण	"	"	५३४
सर्वेषां	पव्वाण	"	"	५३५
सर्वे	पव्वा	"	"	५३६
विशति	विसदि	"	"	६३
द्वितीय	दुदीओ	"	"	६२
अस्याः	से, इमाए	"	"	४, ५२

निष्कर्ष—भास की प्राकृत में 'न्न' और 'ण्ण' के स्थान मे 'ञ्ञ' और 'ण्ण' दोनों रूपों से तथा 'र' के स्थान मे 'ल' मलयालम वैशिष्ट्य प्रतीत नही होता। सुखथन्कर ने मागधी तथा शौरसेनी में 'ज्ञ' का 'ञ्ञ' तथा तुर्फान में 'ण्ण' का विधान किया है। भास मे 'द्य' का 'र्य' की अपेक्षा 'य्य' का ही रूप मिलता है। 'क्ष' 'च्छ' तथा 'क्ख' दोनो रूप मिलते हैं जो बाद के नाटको में भी प्राप्त है।

सुकथन्कर इन नाटकों की प्राकृत को भास की मूल प्राकृत से भिन्न समझते है किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। प्रिट्ज का मागधी तथा अर्धमागधी का भेद उचित नही है, इसमे शौरसेनी के शब्द भी मिलते है। भास के पंचरात्र तथा बालचरित में 'र' का 'ल', तथा 'स' का 'श', 'ष' मे परिवर्तन प्राप्य है। प्राकृत का अध्ययनकाल निर्णय मे विशेष सहायक नही होता है। इसका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

ख—भास के नाटकों में प्रयुक्त अपाणिनीय प्रयोगों का अध्ययन

वैदिक युग से ही शब्द मीमांसा की ओर भारतीय महान् मनीषियो का सतत प्रयास रहा है। उच्चारण पर विचार करने वाले वेदाग 'शिक्षा' के प्रतिपादन के लिए प्रातिशाख्यों की रचना की गई। तदनन्तर शब्द-निरुक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ

सर्वत: प्रथम महामुनि यास्क द्वारा निरुक्त के रूप में जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया गया। प्रातिशाख्यों के अध्ययन ने शब्द-शास्त्र मे प्रवेश का ज्ञान दिया तथा पाणिनि ने उसको पूर्ण तथा स्थायी एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। अत: यास्क ही इस प्रगति की आधार-शिला है। इन्होंने ही सर्वप्रथम शब्दो के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) का स्वरूप उपस्थित किया तथा सम्पूर्ण शब्द-समूह को धातु समूह पर ही आधारित सिद्ध करने स्तुत्य प्रयास किया। आधुनिक निरुक्ति-विज्ञान तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी का मूल आधार यदि हम इसे ही माने तो इस स्तुत्य प्रयास की समुचित प्रतिष्ठा ही होगी।

स्वविषयक अप्रकाशन की पूर्व-प्रवर्तक कृत प्रचलित प्रथा के कारण यास्क के परवर्ती और पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यो का उल्लेख मात्र तो यत्र तत्र उपलब्ध होता है किन्तु उनकी रचनाओ की उपलब्धि असम्भव ही है। पाणिनि से पूर्व प्रमुख वैयाकरणो के नाम इस प्रकार प्राप्त होते है—आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र, चाक्रवर्मण, गालव, गार्ग्य, भारद्वाज आदि विद्वानो का उल्लेख पाणिनि अष्टाध्यायी मे तथा बाद की टीकाओ मे लभ्य होता है। इन सभी व्याकरणो मे ऐन्द्र व्याकरण का एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय कालान्तर तक समाज के लिए उपयोगी बना रहा, प्रयुक्त भी हुआ। इसी का अनुसरण चीनी यात्री ह्वेनसाग तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार कलापव्याकरण ने ही किया है। तैत्तिरीय सहिता के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम व्याकरण है। डॉ० बर्नेल ने इस मत की पुष्टि में प्राचीनतम तामिल व्याकरण तोल्कापियम् की ऐन्द्र व्याकरण से समानता प्रदर्शित की है और ऐन्द्र व्याकरण की सर्वत: प्राथमिकता मे अपना मत व्यक्त किया है। इसी के अनुकरण पर कातन्त्र तथा अन्य व्याकरणों की रचना हुई है। वररुचि और व्याडि इसी व्याकरण सम्प्रदाय के थे। ऐन्द्र व्याकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि इनकी परिभाषाएँ पाणिनि की भाँति जटिल और प्रौढ़ नही है। ऐसा अनुमान है कि ऐन्द्र व्याकरण के बाद न्यूनतम से न्यूनतम सम्प्रदाय पाणिनि के पूर्व प्रवर्तित हुए।

यास्क का समय ईसा पूर्व ८०० वर्ष ही अनुमानित किया है। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ 'पाणिनि कालीन भारत' मे पाणिनि की रचना में प्राप्त भारतीय चित्रण को विशद रूप से प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि पाणिनि का समय ५०० ई० पूर्व और ४०० ई० पूर्व के बीच है। मैक्समूलर ने ३५० ई० पूर्व निर्धारित किया था।

वस्तुत: पाणिनि ने इतने संक्षिप्त एवं सुव्यवस्थित तथा दृढ़ रूप से भाषा का विस्तृत व्याकरण लिखकर सम्पूर्ण ससार के लिए अपनी अपूर्व प्रतिभा को प्रदर्शित किया है। इनका वैज्ञानिक विवेचन तथा शैली का चमत्कार स्पृहणीय है। इस प्रकार का पूर्ण व्याकरण विश्व भर की किसी भाषा मे अद्यावधि उपलब्ध नही होता है।

भास की रचनाओं में संस्कृत का प्रयोग देखने पर हम यह निष्कर्ष पाते हैं कि भास ने पाणिनि का पूर्णतया अनुकरण नहीं किया है। जहाँ तक काल का प्रश्न है, यह तो निश्चित ही है कि पाणिनि भास से पूर्व समय के हैं। तथा उनके व्याकरण का प्रचार और प्रसार भी अवश्य रहा होगा। भास की रचनाओं में जो प्रयोग पाणिनि के व्याकरण के नियमों के विरुद्ध प्राप्त होते हैं उनसे हम यही निर्णय लेने का प्रयास करते हैं कि भास पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरणों के नियमों से प्रभावित रहे होंगे। प्राचीन वैयाकरणों की रचनाओं की प्राप्ति यदि सम्भव हो सकती तो किस व्याकरण से ये कितने प्रभावित हुए हैं इसका निर्णय स्पष्ट रूप से किया जा सकता था। किन्तु केवल नाम निर्देश अथवा दो-चार सूत्रों के प्रसंग से किसी निश्चयात्मक रूप को प्रस्तुत करना दुरूह है। अतः भास के अपाणिनीय प्रयोगों को हम आर्ष रूप में स्वीकार करके उनकी सूची देते हैं।

भास के अपाणिनीय प्रयोग

अनियमित सन्धियाँ—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः।	भा० ना० च० पृ० ३९
विगाह्य उल्का।	भा० ना० च० पृ० ५२६
हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघम्।	भा० ना० च० पृ० ३१६

आत्मने-पद के स्थान में परस्मैपद का प्रयोग—

आपृच्छामि भवन्तौ।	भा० ना० च० पृ० ११
साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति।	,, ,, १२
आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च।	,, ,, २९८
परिष्वजामि गाढं त्वाम्।	,, ,, ५२८
रोषेण धूमायति यस्य देहः।	,, ,, ५५३

परस्मै-पद के स्थान में आत्मनेपद का प्रयोग—

अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि।	,, ,, ३
अपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा	,, ,, ५१४
दैव-प्रामाण्याद् भ्रश्यते वर्धते वा।	,, ,, ५८
कथमगणितपूर्वं द्रक्ष्यते तं नरेन्द्रः।	,, ,, ६७
कुरङ्गीमभिलषमाणो।	,, ,, १५४
शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।	,, ,, १९८
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारः।	,, ,, २०३
अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये।	,, ,, २७५

इमा दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसे ?	भा० ना० च०	पृ०	२७८
जित इति पुनरेन रुध्यते वासुभद्रः ।	,,	,,	४०४
स्त्रीगतां पृच्छसे कथाम् ।	,,	,,	४०५
गमिष्ये विबुधावासम् ।	,,	,,	५५७
वृन्दावने सललित प्रतिगर्जमानं ।	,,	,,	५४०

अकर्मक धातुओं का सकर्मक की भांति प्रयोग—

इमा हतवीणा न रमे ।	,,	,,	२२३
स्रवति धनुरुग्रा शरनदीम् ।	,,	,,	३६८
मत्प्रत्यक्ष लज्जते ह्येष पुत्रम् ।	,,	,,	४०३

प्रेरणार्थक के लिए साधारण का प्रयोग—

भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा ।	,,	,,	११३
तात अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातृणाम् ।	,,	,,	२२०
मम हस्ते निक्षिप्त''''प्रतिग्रहीतुमिच्छामि ।	,,	,,	२६१

अनियमित समास—

एव लोकस्तुल्य-धर्मो वनानां ।	,,	,,	५०

अनियमित समासान्त विधि—

उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः ।	,,	,,	४४५

अनियमित प्रत्यय —

अय्ये मा दाणि अज्जं चिन्तिअ ।	,,	,,	१८
मा मा भूयो अवइरिणअ ।	,,	,,	२३
अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुमुमसमिद्धिं पेक्खिअ ।	,,	,,	२३
दुःखं त्यक्तु बद्धमूलोऽनुरागः ।	,,	,,	३२
मा खा मा खु म शविदु ।	,,	,,	८७
याचेमि मा णिव्बन्धिअ ।	,,	,,	१३४
अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।	,,	,,	२६०

अन्य प्रयोग—

यदि दातव्ये राज्ये किमस्माभिः सह मन्त्रितम्	,,	,,	३८५
अत्र यदि शब्दस्य सत्सप्तम्याश्च सहप्रयोगोऽपूर्वः ।	,,	,,	३८५
अद्यापि गन्धेन न सश्रयन्ते ।	,,	,,	१५०
ताते धनुर्नमयि ।	,,	,,	२६१

शुश्रूषयस्व भगवन्तम् । भा० ना० च० पृ० २९९

पञ्चरात्रोऽपि युज्यते । पञ्चरात्रमिति युक्तम् ।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त भी प्रयोग प्राप्त होते है । हम इनमे से कुछ प्रयोगो को प्राचीन वैयाकरणो के आधार पर उपयुक्त पाते है ।

स्मराम्यवन्त्याधिपते—अवन्त्याः अधिपतिः (ष० त०) तस्य । शेषे षष्ठी । अवन्ती + अधिपतिः = अवन्त्याधिपति. । कैसे 'अवन्त्या' हुआ ? यह अशुद्ध है । म० हरप्रसाद शास्त्री के 'भूम्याधिकारी' प्रयोग के अनुसार सिद्ध हो सकता है । आङ् समन्तात् अधिपतिः इति आ + अधिपतिः आधिपति ., तब अवन्ती + आधिपतिः । अवन्त्या हेतुना अधिपतिः, अवन्त्या + अधिपति , अवन्त्याधिपतिः, भुवास्वामी, गवास्वामी के अनुसार । अवन्त्या मे हेतौ तृतीया है । अवन्त्या. + अधिपतिः—अवन्त्या अधिपतिः विसर्ग को लुप्त मानकर भास ने यहाँ दीर्घ सन्धि कर दी ।

विनयादपेतपुरुष:—विनयात् अपेतः इति विनयादपेतः (अलुक् समास होने पर विभक्ति का लोप न होना) विनयादपेतश्चासौ पुरुषश्च इति विनयादपेतपुरुषः, (कर्मधारय समास) विनय से शून्य पुरुष । विनय पद अर्थ की दृष्टि से अपेत से सम्बद्ध है और इन दोनो को अपेतापोढ सूत्र के अनुसार समस्त होना चाहिए; किन्तु यहाँ विनयात् पृथक् कर दिया गया है और अपेत पुरुष के साथ सापेक्षत्वे गमकत्वात् समासः है । विनयात् अपेता. इति विनयादपेताः, तादृश. पुरुषाः यस्य (बहुव्रीहिः) । धरते खलु वासवदत्ता, (स्वप्नवासवदत्तम्), हतेषु देहेषु गुणाः धरन्ते (कर्ण०), नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते । (क) धृञ् धारणे भ्वादि सकर्मक उभयपदी धरति या धरते प्राणान्, यह सकर्मक है । अतः यहाँ कर्म होना चाहिए, यहाँ आत्मानम् या प्राणान् कर्म हो हो सकता है । (ख) धृञ् अवबन्धने भ्वादि धरते—अर्थ है अवबन्धन न कि जीवित रहना । (ग) धृङ् अवस्थाने—(जीवित रहना) ध्रियते (जीवित है) ध्रिये, उत्तररामचरित तृतीयाक मे भी), (ध्रियते यावदेकोऽपि) माघ । यदि प्रथम अर्थ में प्रयुक्त है तो एक कर्म अवश्य होना चाहिए, अब प्राणान् या आत्मानम् दिया जा सकता है । यदि द्वितीय अर्थ में प्रयोग किया जाय तो उचित नही है । पृच्छ धातु के प्रयोग में भास मे 'आङ्' उपसर्ग होने पर आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों का प्रयोग मिलता है । जो आत्मनेपद का रूप पाणिनि के अनुकूल न होकर कात्यायन के मत मे समीचीन है ।

युधिष्ठिर मीमासक के संस्कृत व्याकरण शास्त्र के इतिहास में पाणिनि के उत्तरवर्ती महाकवि भास मे पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध अनेक प्रकार के प्रयोग मिलने के सन्दर्भ मे उन्होने लिखा है कि ये प्रयोग अपशब्द नही कहे जा सकते, ये अवश्य किसी प्राचीन व्याकरण के अनुसार साधु रहे होंगे । काशिराज्ञे (भा० ना०च०

पृ० १८७) तथा सर्वराज्ञः (भा० ना० च० पृ० ४४५) के प्रयोग इन्हे प्राचीन सिद्ध करते है। क्योकि महाभारत[1] मे भी सर्वराज्ञाम् तथा नागराज्ञा[2] और मत्स्यराज्ञा[3] के प्रयोग प्राप्त हुए है। इन्होंने अपने ग्रन्थ मे पाणिनि के दो सूत्रो मे दीधीङ्[4] वेवीङ् और इन्धी[5] धातुओ का निर्देश किया है। महाभाष्यकार ने इन्हे छान्दस कहा है। यह प्रयोग कातन्त्र का है। इस प्रकार बाद के आने वाले वैयाकरणो ने अपने पूर्ववर्ती प्रयोगो को आर्ष तथा छान्दस कहा है। सस्कृत भाषा मे अनेक शब्द ऐसे है जिनका पहले लोक मे निर्बाध प्रयोग होता था परन्तु कालान्तर मे उनका प्रयोग सीमित रह गया है अतः उत्तरवर्ती वैयाकरण उन्हे छान्दस मानने लगे है जैसे हिन्दी मे 'घर' शब्द 'गृह' का अपभ्रंश कहा जाता है किन्तु यह सस्कृत का शुद्ध शब्द है। इसका विवरण दशापादी[5] उणादि सूत्र मे प्राप्त होता है। जैन सस्कृत ग्रन्थो मे यह शब्द प्राप्त होता है। इस प्रकार इन्होने पाणिनि से भिन्न प्रयोगो की उपयुक्तता पूर्व वैयाकरणो के आधार पर सिद्ध की है और विद्वानो को प्राकृत की छाया मे सस्कृत के प्रयोग को अधिक दूर ले जाने का दोष देकर प्राकृत के प्रयोगो के अनुसार ही व्यवहार में लौकिक सस्कृत में प्रयुक्त करने का विचार भास के ही ग्रन्थो से उद्धृत प्रयोगों के आधार पर दिया है। इन्होंने 'अणुकरेदि' के शुद्ध रूप 'अनुकरोति' के प्रयोग की अपेक्षा 'अनुकरति', 'पेक्खन्ती' के शुद्ध रूप 'पश्यन्ती' की अपेक्षा प्रेक्षन्ती' के प्रयोग का विचार अपने व्याकरण-शास्त्र के इतिहास पृष्ठ ४० पर अकित किया है।

फ्रेंकलिन एजर्टन—इन्होने पाली प्राकृत के अध्ययन मे अथक श्रम किया है और अपने ग्रन्थ 'बुद्धिस्ट हाइब्रिड सस्कृत' मे दस व्याख्यानों का सग्रह प्रस्तुत किया है। ये बौद्ध साहित्य की उत्तरीय प्रतियों को प्रमाणित मानते है। अपने इस ग्रन्थ मे इन्होंने इस भाषा को 'मिडिल इण्डिका' शब्द से व्यवहृत किया है क्योंकि उनमें प्राप्त बहुत से शब्द सस्कृत मे नही है। शब्दों के विच्छेद सस्कृत के समान हैं किन्तु वे कभी स्टैन्डर्ड सस्कृत मे प्रयुक्त नही हुए, इन्होने इस प्रकार के प्रयोगो को अशुद्ध सस्कृत शीर्षक मे रखने वालो की कड़ी आलोचना की है। इनकी दृष्टि में "खान्धावार'[6] जिसका शुद्ध रूप 'स्कन्धावार' है, 'वाचति' जिसका शुद्ध रूप 'उच्यते' है, 'मातरि' जिसको सस्कृत की सप्तमी विभक्ति का रूप कहते हैं उसका विरोध किया है अपितु व्यावहारिक बोलचाल के रूप को महत्व दिया है। 'कुलपुत्र' के लिए 'कुलपुत्राहो',

---

१. सर्वराज्ञाम्—आदि पर्व २ १०२, सभा पर्व ४२'१२

२. नागराज्ञा—आदि पर्व १६।१३

३. मत्स्यराज्ञा—आदि पर्व १।११५

४. कातन्त्र—दीधीवेव्योश्च परोक्षायामिन्धि श्रन्थि ग्रन्थि दम्भीनामगुणे ' कातन्त्र ३।६ ३.

५. इन्तेरन् घ च। द० उणा० ८।१०४ युधिष्ठिर मीमांसक इतिहास पृ० ३२।

६. 'बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत', फ्रैंकलिन एजर्टन, पृ० ३।

तथा जगत् का अवशिष्ट रूप 'जग्ग' आदि संक्षिप्त रूपों को अशुद्ध नहीं बतलाया है एजर्टन ने अपने दूसरे ग्रन्थ 'हाइब्रिड संस्कृत ग्रामर तथा डिक्शनरी' नामक ग्रन्थ में केवल ऐसे ही प्रयोगों को संगृहीत करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार व्याकरण-सम्मत नहीं है। उन्होंने इस प्रकार के शब्दों को सन्धि, समास, स्वर तथा व्यञ्जन के विभिन्न रूपों, क्रियाओं के परिवर्तन आदि का एक बृहद् रूप में विवेचन प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ इस दिशा में अत्यन्त उपादेय है। इन्होंने भास के प्रयोगों का निर्दोष सिद्ध करते हुए उसके समर्थन में विन्टरनित्ज़ के कथन का उद्धरण[1], अपने ग्रन्थ में दिया है।

इस प्रकार भास की प्राकृत तथा व्याकरण का पाणिनि के भिन्न प्रयोगों और अन्य स्थलों के क्रियारूपों पर विवेचन करने का प्रयास किया गया है और यह निष्कर्ष अनुभव में आया है कि भास के प्रयोग अपाणिनीय होने से दोषयुक्त नहीं है अपितु वे किसी पूर्व ऐन्द्र आदि व्याकरणों से अनुमोदित है। ऐन्द्र आदि व्याकरण ग्रन्थों का इस समय उपलब्ध होना असम्भव है अन्यथा उन ग्रन्थों की दृष्टि में भास पर स्पष्ट रूप से इस व्याकरण का प्रभाव कितना हुआ है इसके पोषण में अधिक प्रयत्न किया जा सकता था।

(ग) भास की शैली

भास की शैली की विवेचना हमें इस दृष्टि से करनी है कि इस नाटककार ने अपने नाटकों की रचना आरम्भिक काल में की। किसी भी कार्य का आरम्भ कठिन होता है उसे अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करना होता है किन्तु ऐसा होते हुए भी भास ने सरलता तथा रंगमंचोपयुक्तता के कारण लोकप्रियता प्राप्त की। इन्होंने अपनी रचनाओं में नाटकीयत्व का सन्निवेश रुचिपूर्ण ढंग से किया है। इनका काव्यत्व नाटकत्व का पूरक है उसमें किसी प्रकार का दोष प्राप्त नहीं किया जा सकता जैसा कि अन्य कवियों में प्राप्त होता है। इनके पात्रों के संवाद संक्षिप्त, उचित अवसरानुकूल तथा कथावस्तु के परिबृंहण में सहायता करते है और नाटकीय कुतूहल को सदैव सजग रखने का सफल प्रयास करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पात्र के रूप में कवि स्वयं अपने भावों की अभिव्यक्ति सन्देश रूप में प्रसारित कर रहा है और जनता के लिए वह अपूर्व आदर्श उपस्थित करने में संलग्न है। इनके नाटकों में लोक-

1. 'His Sanskrit is faultless, even though it does not always comply strictly with the rules of Panini (Winternitz 'History of Indian Literature', Vol. 2, 1933, Page 260) very many brahamanical Sanskrit works like fail to comply stricitly with these rules.'— Budhist Hybrid Sanskrit Grammar & Dictionary, P. 1, Franklin Edgerton.

ान तथा लोकरक्षण दोनों के सामंजस्य के साथ नाटकीयत्व का मनोज्ञ सुगुम्फन सुलभ । इस प्रकार के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास शैली के विवेचन में या जाता है।

शैली जैसे बृहद् शीर्षक में इसके विभिन्न अंगों और विवेचनों से कलेवर वृद्धि भय से कतिपय प्रमुख विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

भास के पात्र केवल परम्परावादी नहीं हैं, उनमे वैयक्तिकता के सन्निवेश के ाथ-साथ समाज का प्रतिनिधित्व विद्यमान है। स्वप्नवासवदत्तम् मे यौगन्धरायण[1] पने राजा के प्रति राष्ट्र उद्धार-हेतु संलग्न है और कार्यो मे अपना अपूर्व त्याग तथा ार्य प्रदर्शित करता है किन्तु वह बराबर संदिग्ध है कि गुणो के करने वाले व्यक्ति ा समाज मे है किन्तु इन गुणो के जानने वाले व्यक्ति दुर्लभ है, इस प्रकार यह शंकित होकर विचारो को रखता है कि विशाल गुण वाले व्यक्तियो में इस प्रकार भेद-ज्ञान की महती आवश्यकता है। उदयन[2] स्वय अपने अपराधो के प्रति सचेष्ट और उनकी स्वीकृति मे आशंकित है कि महाराजा क्या कहेंगे। यौगन्धरायण की ी यही स्थिति व्यक्त की गई है। यह वर्णन हृदयहारी तथा मानवमात्र के लिए सन्देश । यौगन्धरायण के मुख से अपने अपराधो की स्वीकृति के साथ-साथ कञ्चुकी द्वारा रेन्द्रश्री[3] केवल उत्साहयुक्त व्यक्तियो द्वारा ही उपयोग की जाती है इस कथन मे ाष्ट्र के उन्नायक राजा तथा आदर्श व्यक्तियो मे उत्साह से आभरित होने का सन्देश दया गया है। कञ्चुकी[4] ने ही कितनी मृदुल और सुभग सन्तोष की उक्ति कही कि ासवदत्ता यदि नही रक्षित की जा सकी तो इसमें राजा का कोई दोष नही है क्योकि रस्सी के टूट जाने पर घडे को कुएँ मे जाने से कौन रोक सकता है। इसी प्रकार ाणी की मृत्यु के अवसर पर कोई रक्षा नही कर सकता और यह वन के वृक्षो की ाति विनाश और विकास को प्राप्त होता रहता है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक ा यौगन्धरायण की मानसिक स्थिति की व्यग्रता की अभिव्यक्ति अन्तस्तल की अनु- ृति के प्रत्यक्ष दर्शन कराती है कि वह राजा के प्रिय अथवा अप्रिय समाचार से कितना चिन्तित है। महासेन का रानी[5] के विषय मे अपनी कन्या के प्रति

1. गुणाना वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ स्वप्न० ४।६
2. किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितं मे । स्वप्न० ६।४
3. कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ स्वप्न० ६।७
4. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ स्वप्न० ६ १०
5. अदत्ते त्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥ प्रतिज्ञा २।७

अगाध स्नेह की अनुभूति सुख और दुःख दोनो की अभिव्यञ्जना को घोषित करती है उसका मन धर्म तथा स्नेह के बन्धन मे दोलायित है। एक ओर धर्म-बन्धन की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर स्नेहजन्य दुःख भी। माताओं की स्थिति का सबल अंकन इसे कहा जा सकता है। यौगन्धरायण[1] स्वय युद्ध करते हुए गृहीत हो जाने पर मन्त्रित्व पद की कठिनता को दर्शाते हुए साधारण जन उन व्यक्तियों को अपने दर्शन हेतु मना नहीं करने देता जिनके मन मे मंत्री होने की अदम्य लालसा छिपी हुई है।

अविमारक[2] में विवाह के सम्बन्ध मे कितना सुन्दर और गाम्भीर्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि बिना विचारे हुए यदि कन्या को दे दिया जाता है तो उन्मत्त नारी दोनो वंशों को क्षुब्ध नदी के दोनो किनारो की भांति विनाश कर देती है। नारी की समानता क्षुब्ध नदी से दर्शायी गई है। कौञ्जायन मंत्रित्व को सुनने मे अच्छा लगने वाला शब्द कहकर भी असफलता होने पर मंत्रियो को दण्ड्य सिद्ध करता है। प्रतिमा[3] नाटक मे राम अपने पिता दशरथ के विषय मे सब गुणो से युक्त होते हुए भी राज्याभिषेक आदि के कार्य मे असफलता पाने पर इस प्रकार के कार्यो में विधि को बलवान् बतलाना तथा ऐसे उत्तम पुरुषो की असमर्थता का वर्णन अत्यन्त विवेचनायुक्त है। सीता के उतारे हुए आभूषणों के वर्णन मे कवि की दृष्टि कितनी सूक्ष्म है कि वह अनुभव के द्वारा शीघ्र उतारे गये आभूषणो की पहचान प्रत्यग्र शब्द से अभिव्यक्त करते है। अभिषेक नाटक[4] में राम मित्र की परिभाषा करते हुए विभीषण से इस प्रकार कहते हैं कि जो आपत्ति के समय अथवा व्यसनो से मनुष्य को निवारित करे वही मित्र है अन्यथा शत्रु। अभिषेक में ही रावण हनूमान्[5] का सवाद मानवो के लिए विभिन्न परिस्थितियों मे कर्तव्य-पालन तथा बुद्धि-क्षमता के प्रदर्शन हेतु अनुकरणीय तथा कौतूहल को सजग रखने मे उपयुक्त ही है।

---

१. ये प्रार्थयन्ति च मनोभिरमात्यशब्दं,
तेषां स्थिरीभवतु नश्यतु वाभिलाषः ॥ प्रतिज्ञा० ४।७

२. कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी।
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ अविमारक १।३

३. ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके।
धिग् भो! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ प्रतिमा० ४।२२

४. मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै।
निवारयति यो राजन्! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ अभिषेक० ६'२२

५. रावणः—कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते ॥ अभिषेक ३ २०
हनुमान—नक्तञ्चरापसद! रावण! राघवं तं…
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार! नीचैः ॥ अभि० ३।२१

शृंगार रस का वर्णन—अविमारक[1] का कुरगी के वियोग मे सन्तप्त होना और उसके सौन्दर्य की कल्पना मे डूबे रहना तथा अपने बलिदान् हेतु प्रयत्न करना अविमारक नाटक मे वर्णित है। अविमारक कुरगी के विषय मे इस प्रकार की कल्पना करना कि 'स्त्री स्वभाव से ही प्रतिकूल कहती है' तथा कुरंगी के पास पहुँच जाने पर रात्रि को युग के समान बढने की कल्पना करना, यही स्थल शृंगार रस के लिए उद्धृत करने योग्य है।

बाह्य दृश्य विज्ञान—प्रकृति-चित्रण मे भास ने अन्धकार का वर्णन, आश्रम का वर्णन यज्ञ का वर्णन, युद्ध का वर्णन, नदी का वर्णन विशेष रूप से किया है। यथा स्वप्नवासवदत्तम् मे तपोवन के वर्णन मे कितनी सरलता तथा स्वाभाविकता प्राप्त होती है कि 'वृक्ष-बहुल वातावरण होने के कारण तपोवन के अभिज्ञान में कठिनाई की अनुभूति ही नही होती। वृक्षो की समीपता किष्किन्धा तथा अयोध्या नगरी के आगमन की सूचना देती है। इन्होने ग्रामीकरोति, नगरीकरोति, देशान्तर रचयतीव मनुष्यलोकः, इत्यादि अनेक प्रकार की प्रकृति-वर्णन की रम्य झाँकी प्रस्तुत की है। अविमारक नाटक मे अर्धरात्रि तथा ससार की स्थिति का वर्णन दर्शनीय है। विभिन्न प्रकार की वेशभूषा से युक्त पात्रो का प्राकृतिक दृश्यो के समान वर्णन मनोहारी है। इन्होने जलहीन पक मे दुग्ध की धाराओं[2] का बड़ा रम्य वर्णन किया है।

सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से कवि अत्यन्त गम्भीर से गम्भीर रहस्य की बात को सक्षेप मे किन्तु सुगठित शब्द योजना मे व्यक्त करते है। इन्होने कतिपय स्थलों पर भावो को सक्षेप मे व्यक्त किया है जिन्हे आपाततः समझने मे कठिनाई की भी अनुभूति होती है। इतना होने पर भी ऐसे स्थल नगण्य है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[3] में यौगन्धरायण की उपकार की भावना पर पुरस्कार का वर्णन है।

गागर में सागर भरने वाली उक्ति महान् नाटककार भास की रचनाओं में चरितार्थ होती है। इनका कथन क्षण भर मे गुह्यतम गुत्थियों का समाधान, मानसिक भावनाओं की मुख मे परिणति, तथा विचारो को सक्षेप मे रखते हुए भाव की स्पष्टता के दोष को अवकाश नही मिलता। स्वप्नवासवदत्तम्[4] नाटक मे सुख-दु.ख की वेदना

१. अवि०—उरः स्तनतटान्तसं जघनभारखिन्ना तनुः
मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्।
भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः
कथन्नु सुरतान्तर-प्रचुरविभ्रमं तद् भवेत्॥ अवि० २।६

२. उदयति हि शशांकः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्ग-प्रदीपः।
तिमिरनिचय-मध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति॥ चारुदत्त १।२९

३. कारणैर्बहुभिर्युक्तैः कामं शृंगारः प्रतिगृह्यताम्। प्रतिज्ञा० ४.२१

४. चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। स्वप्न० १।४

इनकी उक्ति मर्मस्पर्शिनी होने के कारण मानव हृदय के अन्तस्तल तक बिना किसी प्रयास के ही पहुँच जाती है, इनका अनुभूति वैचित्र्य दर्शको तथा पाठको के लिए परम आकर्षक है। इन्होने अविमारक[1] नाटक में स्थितिवश शत्रु मे भी मित्र की कल्पना का अनुपम कथन प्रयुक्त किया है।

शैली के आकर्षक, सरल, हृद्य तथा नाटकीय उपयुक्तता के कारण नाटक के क्षेत्र में भास अप्रतिम ठहरते है। इनके संक्षिप्त अभिनेय नाटक सुखान्त तथा विषादान्त होने के कारण संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि के रूप मे मान्य है।

---

१. अवस्था खलु नाम शत्रुमपि सुहृत्त्वे कल्पयति। भा० ना० च० पृ० ६७

तृतीय अध्याय

नाट्य-सम्बन्धी विशेषताएँ

(क) नाट्यशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त ।

(ख) बाण द्वारा निर्दिष्ट भास की नाटकीय विशेषताएँ ।

(ग) भास की नाटकीय विशेषताओं का अपना अध्ययन ।
(वस्तु, नेता, रस, वृत्ति तथा अभिनय सम्बन्धी)

तृतीय अध्याय

नाट्य-सम्बन्धी विशेषताएँ

(क) नाटक के सामान्य मूलाधार :—

अनुकरण

आरोपण

अग-प्रक्षेपण (नृत्य, नृत्त, सगीत आदि)।

उपर्युक्त का समन्वयात्मक विवेचन :—

काव्य के प्रमुख दो भेदो मे श्रव्य काव्य श्रवण के माध्यम द्वारा सामाजिको के हृदय को स्पर्श करता है, दूसरा दृश्य काव्य नेत्रो के माध्यम से सामाजिको के हृदय को बलात् आकृष्ट करता है। दृश्य काव्य मे वस्तु के प्रत्यक्ष दर्शन होने के कारण अतीव रम्य, रोचक तथा आकर्षक हो जाना स्वाभाविक है। इसी रूपायित रूप के बल पर आचार्यों ने इसे रूपक कहा है। रूपक एक अलकार है जिसमे एक वस्तु (यथा मुख) के ऊपर तत्सदृश अन्य वस्तु (यथा चन्द्रमा) का आरोप किया जाता है। नट इसी प्रकार राम तथा सीता की विभिन्न अवस्थाओ का रगमच के ऊपर अनुकरण करता है, वियोगी राम के समान नट भी सीता के वियोग मे पचवटी के वृक्षो, शाखाओं, वन, लताओ, पशुओ से सीता का समाचार ज्ञात करने पर राम की तात्कालिक दशाओ का अपनी कला-मर्मज्ञता के आधार पर सुन्दर अभिनय करता हुआ, दर्शकों को मत्रमुग्ध करता है। तथा नटी भी अशोक वाटिका मे स्थित राक्षसियो से आवृत्त रावण से त्रस्त होकर राम के वियोग की सतप्तता एवं भय का प्रदर्शन भी आकर्षक ढंग से करती है। अभिनय-नैपुण्य के आधार पर ही नट के ऊपर राम का तथा नटी के ऊपर सीता का आरोप दर्शकों के द्वारा स्वतः हो जाता है और वे उन्हे वास्तविक राम तथा सीता समझ कर आनन्दमग्न होते हैं। अत. समारोप (सम्यक् रूपेण आरोपित) होने के कारण दृश्य काव्य की रूपक-सज्ञा दी गई है।

इसी कारण कालिदास की यह उक्ति 'नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्' भिन्न रुचि वालो के चित्त को नाना प्रकार से तृप्त करने का एक ही साधन है और वह नाटक में चरितार्थ होता है। रूपक में नट द्वारा अगविक्षेप, भावभगिमाओ और उच्चारण-सौष्ठव के सहारे अभिव्यक्त रसपूर्ण जीवन चाक्षुष-प्रधान होने के कारण दृश्य और कवि की वाणी द्वारा अभिव्यक्त अनुभव श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से अनुभूत होने के कारण श्रव्य काव्य के अभिधान से ख्यात है।

रूपक शब्द के अनेक अर्थ—सस्कृत इगलिश डिक्शनरी मोनियर विलियम पृष्ठ ८८४ पर साहित्य मे रूपक शब्द रूप धातु से ण्वुल् प्रत्यय मिलाने से निर्मित

हुआ जो साहित्य में नाट्य का वाचक स्वीकृत हुआ है। कहीं-कहीं इसी अर्थ मे केवल रूप शब्द का भी प्रयोग किया गया है। प्रत्यय-भेद से अर्थ मे कोई मौलिक अन्तर नही है। नाट्य के अर्थ मे इन शब्दो का प्रयोग अतीव प्राचीन समय से प्रयुक्त हुआ है। इन शब्दो के अर्थ मे अभिनेयता का समावेश नवी तथा दसवी शताब्दी की विचार-धारा रखने वाले विद्वान् उपेक्षणीय है।

ऋग्वेद सहिता ६।४६।१८ मे रूपक शब्द का अर्थ 'भेष बदलना' है। भरत नाट्य शास्त्र[1] मे 'दशरूपविधाने तु पाठ्य योज्य प्रयोक्तृभिः' दश रूप का प्रयोग नाट्य की दशविधाओ 'दशरूपविधाने तु' की अभिनवगुप्त-कृत व्याख्या मे किया गया है। नाट्य शास्त्र का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी ई० पू० तक निश्चित किया गया है। विश्वनाथ रचित साहित्यदर्पण[2] की भूमिका में ई० पू० से ही रूपक शब्द नाट्य के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ प्रचलित दीख पडता है। रूपक या रूप की व्याख्या से पूर्व नाट्य, नृत्य तथा नृत्त शब्दो की विवेचना करना आवश्यक है। ये तीनो शब्द रूपक के विकास की प्रथम तीन भूमिकाओं के द्योतक हैं। बिना इनके जाने हुए रूपक और उसके भेद-प्रभेद का ज्ञान कठिन है।

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण के अनुसार पृ० २८ पर नाट्य शब्द को नाट् धातु से व्युत्पन्न बतलाया है। किन्तु यह मत सर्वमान्य न हो सका, क्योंकि पाणिनि ने नाट्य की उत्पत्ति नट् धातु से ४-३-१२९ मे निर्दिष्ट की है। अत पाणिनि का मत प्रतिष्ठित समझा गया जो आनुमानिक क्रीड़ाओं की ओर सकेत करता है। वे नट् धातु को आधार मानते है। बेवर[3] ने अपने ग्रन्थ मे नट् धातु को नृत् का प्राकृत रूप माना है। मोनियर ने अपने कोष मे भी पृ० ५२५ पर इस मत का समर्थन किया है। अन्य विद्वान् नृत को नट् का प्राकृत रूप नही मानते थे, वे नट् को बाद की धातु कहते हैं। इस मत का समर्थन श्री मनकद ने अपनी पुस्तक टाइप्स आफ सस्कृत ड्रामा, पृ० ७ पर किया है। डॉ० चन्द्रभानु गुप्त ने इडियन थ्येटर अध्याय ६, पृ० १२६ पर जो मत व्यक्त किया है वह दशरूपक के टीकाकार डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत भी स्वीकार करते है। उनका कथन है कि नृत् धातु का प्रयोग हमे ऋग्वेद मे भी प्राप्य है किन्तु नट् धातु पाणिनि से पहले कही प्रयुक्त नही हुई। यह श्रमसाध्य खोजो के आधार पर तर्क है। डॉ० त्रिगुणायत ने ऋग्वेद मे ७-१०४-२३ मे नट् धातु के प्रयोग को दर्शाया है। अतः श्री मनकद का मत निराकृत हो जाता है।

---

१. भरत नाट्यशास्त्र, निर्णय सागर प्रेस, संस्करण १९४३, पृ० २८६

२. साहित्यदर्पण, काशी, तृतीय संस्करण, पृ० ४०

३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, तृतीय संस्करण, पृ० १९७

वस्तुत. अभिनय कला का विकास रूपक मे प्राप्त होता है। नाट्य को रूपक के आरोप के साथ निर्दिष्ट न किया जाये तो पूर्ण साधारणीकरण नहीं होगा। अतः नृत्य, नृत्त और नाट्य ये तीनो रूपक की आरम्भिक भूमिकाएँ हैं और अभिनय कला का पूर्ण रूप हमे रूपक मे ही प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य रूपक तथा उपरूपक दो प्रकार की विधाओं की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करता है। रूपक नाट्य के भेद तथा उपरूपक नृत्य के भेद हैं। दशरूपक पृष्ठ ६ पर नृत्य के स्वरूप की व्याख्या हिन्दी दशरूपक व्याख्याकार डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत द्वारा पृ० ४ पर 'दशधैव रसाश्रयम्' की व्याख्या है। नाट्य शास्त्र १८।२३ मे प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग का वर्णन है। इनके अतिरिक्त भरत मुनि ने नाटक और प्रकरण के योग से नाटी की उत्पत्ति बतलाई है। अग्नि-पुराण[1] मे रूपक तथा उपरूपक का भेद नही दिखाई पडता केवल वहाँ २८ नाटकों का उल्लेख है। दशरूपककार ने भरत के अनुकरण पर दश प्रकार के रूपक बतलाये हैं। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन पृ० ३१७ पर दश भेदो मे नाटिका और सट्टक जोड दिए है। नाट्य-दर्पणकार रामचन्द्र व गुणचन्द्र ने पृ० २६ पर यह संख्या दस से बढाकर १२ कर दी है। और सट्टक के स्थान मे प्रकरण का उल्लेख किया है। भाव-प्रकाश में दशरूपक और नाट्यशास्त्र मे परिगणित रूपक के दश भेदो को प्रधानता दी गई है। नाट्यदर्पण मे नाटिका का उद्भव नाटक और प्रकरण के योग से मान्य है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने नाटिका की गणना उपरूपको मे की है। रूपको की संख्या मे भेद होने पर भी भरत तथा दशरूपक द्वारा निर्दिष्ट दश भेद ही स्वीकृत किये गए है।

वस्तुत नट् और नृत् धातुएँ ऋग्वेद काल से स्वतन्त्र है, अतएव पाणिनि ने ४-३-१२९ मे इसका पृथक् प्रयोग किया है। इन दोनों का अर्थ भाषावैज्ञानिको ने भिन्न रखा है, समय-समय पर उसमे परिवर्तन होता रहा है। सायण[2] ने नट् धातु का अर्थ व्याप्नोति किया है और नृत्त का प्रयोग हिलने-डुलने के अर्थ मे। वेदोत्तर काल मे सम्भवतः ये समानार्थक हो गई थी, बाद मे नट् धातु के अर्थ का और भी विस्तार हुआ। नृत् धातु के अर्थ के साथ अभिनय का अर्थ भी सम्बद्ध हुआ। इसका पोषण नाट्य-सर्वस्वदीपिका[3] तथा लघुसिद्धान्तकौमुदी[4] के तिङन्त प्रकरण मे मिलता है। इन दोनो ग्रन्थो मे नट् धातु के गात्र-विक्षेपण और अभिनय दोनों ही

१. अग्निपुराण, अध्याय ३३८, श्लोक १ से ४ तक।
२. सायणभाष्य, १०-१८-३, नृत् के अर्थ के लिए, नट के अर्थ – ४-१०५-२३ की टीका।
३. टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा, पृ० ८
४. नट नृत्तौ। इत्थमेव पूर्वमपि पठितम्। तत्रायम् विवेकः। पूर्वं पठितस्य नाट्यमर्थः यत्कारिषु नटव्यपदेशः। लघुसिद्धान्तकौमुदी, तिङन्त-प्रकरण।

अर्थ लिये गये है। आगे नट् धातु केवल अभिनयवाचक और नृत् धातु गात्रविक्षेपण मे प्रयोग की गई। नाट्य शब्द अभिनयार्थक नट् धातु से बना है और नृत्य तथा नृत्त ये दोनो शब्द गात्रविक्षेपणार्थक नृत् धातु से बने है। नाट्य, नृत्य और नृत्त इन तीनो की व्याख्या शारदातनय के भावप्रकाश पृष्ठ १८१, विद्यानाथ कृत प्रतापरुद्र यशोभूषण बौम्बे सस्कृत सीरीज, पृष्ठ १०१ तथा निश्शक सारगदेव रचित सगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थो मे स्पष्टतया मिलती है। इनके अतिरिक्त काव्यमाला सीरीज मन्दारमन्दचम्पू कृष्ण शर्मन् पृ० ५६, रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण मे भी अच्छा प्रकाश मिलता है। इन ग्रन्थो मे नाट्य-स्वरूप के विषय मे कोई मतभेद नही है किन्तु नृत्य और नृत्त मे धारणाएँ भिन्न है। दशरूपक का मत प्रतिष्ठित समझा गया है। धनञ्जय के दशरूपक के टीकाकार धनिक ने नाट्यस्वरूप को सविस्तार समझाया है। 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' धनञ्जय ने अवस्था की अनुकृति को नाट्य माना है। इसी की व्याख्या धनिक ने इस प्रकार की है कि काव्य मे जो नायक की धीरोदात्त आदि अवस्थाएँ निर्दिष्ट की गई है उनकी एकरूपता जब नट् अभिनय द्वारा प्राप्त कर लेता है तब वही एकरूपता की प्राप्ति नाट्य कहलाती है। उसमे आगिक अभिनय के साथ सात्विक अभिनय भी होता है; उसका विषय रस है अतः वह रसाश्रित है।

नृत्य नाट्य से भिन्न होता है। दोनो मे विषय का अन्तर है। नाट्य रसाश्रित है और नृत्य भावाश्रित। नृत्य मे काव्य को सुनने की बात नही है इसी कारण मनुष्य नृत्य को प्राय देखने की वस्तु कहते है। नृत्य मे आगिक अभिनय की ही प्रधानता रहती है। इसमे पदार्थ का अभिनय होता है वाक्य का नही। नृत्य से नृत्त भिन्न होता है। नृत्य मे पदार्थ का अभिनय होता है परन्तु नृत्त मे किसी प्रकार का अभिनय नही। नृत्य और नृत्त मे आधार सम्बन्धी भेद है। नृत्य का आधार भाव होते है और नृत्त का ताल। इस विवेचन से नाट्य, नृत्य और नृत्त का भेद स्पष्ट हो जाता है। रूपक सामान्यतया नाटक का ही पर्यायवाची माना जाता है किन्तु सूक्ष्मतया इनमे भी नाट्य और नृत्य जैसा अन्तर मिलता है। नट मे पात्रो के रूप का आरोप करने से नाट्य को रूपक कहा जाता है। साहित्यदर्पणकार ने भी इन्ही शब्दो को 'दृश्य तत्राभिनेय, तद्रूपारोपात्तु रूपकम्' (६।१) मे अवस्थाओ की अनुकृति को महत्त्व दिया है किन्तु रूपक मे इनके साथ-साथ रूप का आरोप भी आवश्यक बतलाया है।

भारतीय नाट्य-परम्परा नाटक का सम्बन्ध भरत मुनि से जोडती है। स्वय कालिदास ने विक्रमोर्वशीय के प्रथम अक मे भरत को नाट्याचार्य के रूप मे माना है तथा उनके द्वारा इन्द्र की सभा के आयोजन मे एक नाटक मे जाने का प्रसग मिलता है। नन्दिकेश्वर के अभिनय दर्पण मे भी भरत को नाट्याचार्य के रूप मे माना गया है। भरत कोई वास्तविक व्यक्ति थे या इनका पौराणिक व्यक्तित्व रहा है, इस सम्बन्ध में प्रो० जागीरदार ने आर्य जाति की एक शाखा को भरत माना है जो कि

आर्यों की प्रमुख जाति के रूप मे प्रसिद्ध रही है किन्तु उत्तर वैदिककाल मे भरत जाति का इतना सम्मान नही रहा। इसी भरत जाति ने सर्वप्रथम नाट्यकला का पल्लवन किया। वैदिक कर्मकाण्ड के पुरोहितो ने कुत्सित कार्य कहकर इन्हें निम्न समझा। फलतः भरतो के सम्मुख नाट्यकला को छोड़कर शूद्रो मे परिगणित होने का विकल्प था अतः शूद्र बनकर रहने मे भी नाट्यकला को अपनाया। भरत के १०० पुत्रों को ब्राह्मणो ने शूद्र होने तथा उनकी सन्तति को भी शूद्र होने का शाप दिया। आर्यो ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा इन्हे महत्त्व न दिया, इस कारण इन्हें सप्तसिन्धु छोड़कर दक्षिण जाना पड़ा और वहाँ अनार्य राजा नहुष (नहुट्)[1] (यज्ञ न करने वाला) ने इनको आश्रय दिया। पुराणो मे भी ब्राह्मणो तथा देवताओं के विरोध की चर्चा प्राप्त होती है। इस प्रकार सस्कृत नाटको का विकास वैदिक क्रियाकलाप न मानकर वेदविरोधी प्रवृत्ति माना है।

नाटक के सम्बन्ध में जार्ज वर्नार्डशा के विचारो को हम सक्षेप मे इस प्रकार रख सकते है कि नाटक धार्मिक प्रवचन के समान होते हैं, इनमे उपदेश दिया जाता है और एक उद्देश्य छिपा रहता है। अनेक देश (चीन, जापान इगलैंड आदि) में प्रारम्भिक नाटक धार्मिक कथावस्तु पर आधारित हैं। इगलैंड के मिस्ट्री और मिरेकिल नाटक धर्म-प्रचार मे ही सम्बन्धित है। शा महोदय ने आधुनिक जीवन मे नाट्यशाला का वही स्थान स्वीकार किया है जो प्राचीन समय चर्च का था।

अरस्तु ३३० ई० पूर्व मे एक महान् नाटककार हो गए है। इनसे पूर्व भी ५०० ई० पूर्व से ४०० ई० पूर्व तक के समय मे यूनानी नाटक के इतिहास मे महत्त्व-पूर्ण दिशाएँ एव प्रगति लक्षित की गई है। अरस्तु ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पोइटिक्स' में नाट्य ग्रंथो के आधार पर सिद्धान्त इस प्रकार लिखे हैं—

(१) ललित कला मानव मस्तिष्क की एक स्वाधीन कृति है उसका कोई धार्मिक, राजनैतिक, शिक्षात्मक एव नैतिक उद्देश्य नहीं होता।

(२) प्रत्येक कलाकृति प्रकृतिगत वस्तु अथवा घटना अथवा भावना की अनुकृति होती है, प्रतिमात्मक अभिव्यक्ति नही। सर्वोच्च प्रकार की अनुकरणात्मक कला अर्थात् कविता एव नाटक मानव जीवन के सर्वव्यापी एव स्थायी तत्त्वो की अभिव्यक्ति करती है।

(३) कला आदर्श शिक्षा की देन नही वरन् एक उच्च प्रकार का शुद्ध भावात्मक एव बौद्धिक आनन्द प्रदान करना है। थ्येटर हाल स्कूल का स्थान नही ले सकता, इसके अवलोकन मे भावनाओं का रेचन अथवा विशुद्धीकरण हो जाता है।

---

१. भरत नाट्य शास्त्र ३४-४८।

१९वी सदी के डॉ० बर्नेज ने कहा है कि थिएटर मे हमारी अतृप्त भावनाएँ जाती है। इस नियमित एव निश्चल तृप्ति के द्वारा हमारा मानसिक सतुलन स्थापित हो जाता है।

हिन्दी नाटकों में भी विषयवस्तु का वैविध्य भारतेन्दु-युग मे दृष्टिगोचर होने लगा था किन्तु प्रसाद ने इस विविधता की समानता को श्रेयस्कर नही समझा। वे वैविध्यपूर्ण सामान्य मे से विशेष का निर्वाचन करते थे। इसी कारण उन्होंने अतीत के गौरवपूर्ण कथानकों के आधार पर अपने नाटको की रचना की। प्रसाद के पश्चात् नाटककारो ने भी प्राचीन इतिवृत्त पर आधारित नाटक लिखे किन्तु उनमे विशेषीकरण की प्रवृत्ति नही थी। अतः पुनः वैविध्य ने स्थान ले लिया। सेठ गोविन्ददास ने कहा है कि मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी लेखक को यह अधिकार नही है कि वह किसी भी पुरानी कथा को तोड़-मरोडकर उसे एक नई कथा ही बना दे; हाँ, कथा का अर्थ वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है। विषय वस्तु की विभिन्नता और विविध नाट्य रूपो के प्रयोग की दृष्टि से सेठजी का नाटककार के रूप मे बहुमुखी व्यक्तित्व है। 'भूदान यज्ञ' नाटक की भूमिका मे सामयिक वयोवृद्ध भूदान नेता 'सन्त विनोबा' के ये शब्द महत्त्व रखते है कि सूचक साहित्य मे नाटक शिरोमणि है परन्तु उत्तम नाटक लिखना आसान बात नही है।

डॉ० वी० राघवन[1] ने नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध मे निम्नाकित विचार व्यक्त किए है। नाट्य शब्द मे अर्थतः नृत्य तथा नाटक दोनों ही समाविष्ट रहते है। पाणिनि के समय ईसा पूर्व पंचम शती मे अभिनय कला पर्याप्त मात्रा मे विकसित थी, जिसका ईसा पूर्व चौथी शती मे कौटिल्य को अच्छा ज्ञान था। बौद्ध साहित्य इस कला की लोकप्रियता को सिद्ध करता है। वासवदत्ता उसी नाट्य-धारा के रूप मे विद्यमान है। मौर्य राजकवि तथा मंत्री सुबन्धु ने इसे लिखा था, जिसमे राज्य सभा के षड्यन्त्र, वासवदत्ता तथा उदयन की कथा का प्रयोग किया है। द्वितीय शती में पतञ्जलि ने रगमच पर बलिबन्धन तथा कसवध नाटक के खेले जाने का वर्णन किया है। भरत का नाट्यशास्त्र ई० पू० द्वितीय शती इण्डोनेशिया मे नाटक के पहले लगाया गया वृक्ष या पौधा इन्द्र के ध्वज का द्योतन करता है। नट् शब्द का अर्थ व्यायाम भी है। वैदिक साहित्य मे हमे अन्त्येष्टि क्रिया के नृत्य तथा नाटक से सम्बद्ध होने के प्रमाण मिले हैं। बाली द्वीप मे नृत्य तथा नाटकों का अभिनय उस समय होता था जब आत्माओं का आगमन उनके गृहों में होता था जैसे महालय पक्ष आदि। रंग शब्द क्रीडा-क्षेत्र तथा नाटकीय-रगमंच दोनों के लिए प्रचलित है।

डॉ० सूर्यकान्त ने सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ में सस्कृत के प्रमुख 'नाटककार' लेख मे नाटक की परिभाषा मे निम्नाकित विचार व्यक्त किए हैं :—

---

१. सेठ गोविन्ददास, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४०३।

"सामान्य जनता में, इस सामान्य नृत्य-गान मे हमारे नाटक का आदिमूल छिपा है।"

भरत[1] मुनि के कथन के अनुसार यह प्रमाणित होता है कि नाटकों का आविर्भाव आर्यों की वर्ण-व्यवस्था के पूर्ण विकास काल मे हुआ।

नाटक के विशेष तत्व

अनुकरण साम्य होने पर भी इन रूपकों मे भेद किया ही जाता है। इस भेद के कारण ही एक रूपक दूसरे रूपको मे भिन्न होता है। भरत नाट्य-शास्त्र मे रूपक के दशरूप विकल्प निर्देशन मे नाम, कर्म तथा प्रयोग तीन[2] तत्त्व माने है। यहाँ नाम से हम किसी भी रूपक का नाम उसकी कथावस्तु की चरितार्थता के आधार पर ही अवगत करते है जैसे भास के नाटक वासवदत्ता आदि मे पात्र-विशेष के नाम का प्राधान्य है। यही कालिदास के शाकुन्तलम् मे पाते हैं। कर्म से रूपकों मे वर्णित प्रधान पात्र नायक के क्रिया-कलापों से है। जिस प्रकार का नायक होगा उसी प्रकार की क्रियाओं का प्राधान्य होगा। प्रयोग से इन रूपको की व्यावहारिकता का अभिप्राय है। जनमनोरंजन मे इन रूपको के योग की ओर ध्यान दिया जाता है कि उनमें किस प्रकार के आनन्द की उत्पत्ति होती है, क्योंकि भरत[3] ने रूपक को दुःखित, थके हुए, शोक से संतप्त तपस्वियों के विश्रान्ति देने के हेतु तथा विनोदार्थ रचा है।

भारतीय नाट्यशास्त्र मे रूपक के वस्तु, नेता तथा रस तीन तत्त्वो के आधार पर किसी भी रूपक की आलोचना करने का निर्देश किया गया है। पाश्चात्य पद्धति कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली, उद्देश्य — इन छः तत्त्वों को मानती है तथा उसके साथ रंगमंच की अभिनेयता नामक सातवें तत्त्व को भी समाविष्ट करती है। किन्तु भारतीय तत्त्वो मे पाश्चात्य सात तत्त्व अन्तर्विलीन हो जाते है। चरित्र-चित्रण का नेता में, क्योकि भारतीय काव्य एवं नाटको के रस-परक होने के कारण केवल चरित्र-चित्रण अथवा शीलवैचित्र्य मात्र कवि या नाटककार का लक्ष्य नही होता। नायक शब्द मे भारतीय नाट्यशास्त्र नायक के अतिरिक्त नायिका, पीठमर्द आदि सभी पात्रो का समावेश करते है। कथोपकथन का समावेश भारतीय पद्धति मे वस्तु के अन्तर्गत हो जाता है, किन्तु यह रस का व्यंजक होने के कारण उसका भी अंग माना जा सकता है। देश-काल व शैली व उद्देश्य तीनों का समावेश

---

१. न वेद व्यवहारोऽयं सं श्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकं।

२. कथयिष्याम्यहं विप्रा दशरूपविकल्पनम्।
नामतः कर्मतश्चैव तथा चैवप्रयोगतः ।। ना० शा० ११२,१८

३. दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानांतपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम् ।। ना० शा० ११११४
विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।। ना० शा० ११२०

रस मे हो जाता है। अभिनेयता तो नाटक की विशेष प्रकृति है अत. उसे अलग से तत्त्व मानना उचित न होगा, पुन: वाचिक, आगिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनय के द्वारा उनका भी उपादान भारतीय नाट्य पद्धति मे किया गया है।

दशरूपककार धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ मे रूपक भेद पर स्पष्टतया 'वस्तु नेता रसस्तेषा भेदक:' कहकर वस्तु, नेता तथा रस को भेदक तत्त्व कहा है। इन्होने रूपको मे कथावस्तु की प्रधानता एव रस पोषण मे सहायिका होने के कारण इसे भेद का प्रधान आधार माना है तथा नेता की प्रकृति तथा गुणो की भिन्नता के आधार का भी विशेष स्थान रखा है। रस जिसे स्वय भरत के नाट्यशास्त्र से ही अन्य व्याख्याकारों ने लिया है, प्रयोग का रूप दिया है और इन्होने पूर्णरूप मे 'रस' आनन्दातिरेक के प्रवाह को भी रूपक भेद का एक निर्णायक तत्त्व स्वीकार किया है।

नाटक की परिभाषा—

प्रख्यात[1] वस्तु के विषय मे प्रख्यात तथा उदात्त नायक, राजर्षि वश तथा दिव्याश्रय अनेक विभूतियो, विलास समृद्धि आदि गुणो से युक्त नाटक कहा जाता है। साहित्यदर्पणकार[2] ने प्रसिद्ध कथावस्तु के साथ पंच सन्धियों से युक्त रूपक को नाटक कहा है।

रूपक के सभी भेदों में प्राधान्य नाटक का है, क्योकि नाटक सभी अन्य रूपक भेदो की मूल प्रकृति है। इसी मे वस्तु, नेता और रस के परिवर्तन करने से प्रकरणादि रूपको की सृष्टि होती है। नाटक मे ही रस का पूर्ण परिपाक अनेक प्रकार से प्राप्त होता है। इसमे शृंगार या वीर कोई भी रस अगीरस हो सकता है। अन्य रस अग रूप मे प्रयुक्त होते हैं। सर्वलक्षण-सम्पन्न वस्तु तथा नेता भी हमे नाटक मे ही प्राप्त होते हैं।

अन्य ग्रन्थो मे नाटक के सम्बन्ध मे नायक का 'दिव्याश्रयोपेतम्' विशेषण दिया गया है जो कि भरत ने नाट्य-शास्त्र में उद्धृत किया है, विभिन्न रूप मे अपनाया गया है। दशरूपककार ने राजर्षि अथवा दिव्य दिया' है। नाट्यशास्त्र के इस विशेषण का अभिनवगुप्ताचार्य ने अर्थ दैवी पुरुष लिया है। हेमचन्द्र[3] ने अभिनवगुप्त के मत का खण्डन करते हुए दैवी पुरुष का नहीं, अपितु दैवी सहायता का अर्थ लगाया है। शारदातनय के भावप्रकाश का मत भिन्न है, उसने सुबन्धु का आश्रय लिया है।

प्रकरण—पंचसन्धियुक्त कल्पित वस्तु, पाँच से दश अक की, धीर प्रशान्त नायक, शृंगार रस, कैशिकी वृत्ति वाली रचना कही जाती है।

---

१. प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
राजर्षिवंशचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥ ना० शा० १८।१०

२. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम्। स० दर्पण ६।७

३. हेमचन्द्र काव्यानुशासन पृ० ३१७

भाण धूर्त चरित-विषयक कल्पित वस्तु, एक अक कलाविद् नटनायक एक ही पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति तथा वीर एवं शृंगार रस युक्त होता है।

प्रहसन कल्पित वस्तु, एक अक, पाखण्डी, कामुक, धूर्त आदि पात्र, हास्य रसयुक्त होता है।

डिम पौराणिक वस्तु, चार अंक, विमर्श रहित चार सधियो मे विभक्त वस्तु. धीरोद्धत नायक, हास्य तथा शृगाराभिन्न रस, सात्वती, आरभटी वृत्ति।

व्यायोग में प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, गर्भ तथा विमर्शरहित तीन सन्धिया, एक अक स्त्री पात्र कम तथा पुरुष पात्र अधिक होते है।

समवकार देव-दैत्यों से सम्बद्ध, प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, विमर्श सन्धि का अभाव, तीन अक, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत्त प्रकृति के एक या दो नायक वीर-रसयुक्त तथा सात्वती एवं आरभटी वृत्ति वाला होता है।

वीथी कल्पित वस्तु, एक अक, शृगार रस प्रिय नायक वाला होता है।

अंक प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, एक अक, प्राकृत पुरुष नायक, करुण रस, सात्वती वृत्ति वाला होता है।

ईहामृग मिश्रित कथावस्तु, चार अक, गर्भ व विमर्श से रहित, तीन सन्धियाँ, धीरोद्धत्त नायक तथा शृगार रस वाला होता है।

कथा वस्तु

इतिवृत्त को नाट्य का शरीर कहा गया है। जैसे किसी भी प्राणी को हम शरीर के बिना जीवित नही देख पाते है उसी प्रकार इतिवृत्त के बिना नाट्य का रूप सम्मुख आ ही नही सकता। इतिवृत्त के आधिकारिक तथा प्रासगिक दो भेद कहे गये हैं। फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है, उस फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है, उस फल या फलभोक्ता के द्वारा फलप्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त कथा आधिकारिक वस्तु कहलाती है। यथा राक्षसवध, सीताप्राप्ति, रामराज्य, रामायण कथा का फल, स्वामी राम है अतः अभिषेक नाटक में आरम्भ मे रावण-वध सीता-प्राप्ति तथा राज्याभिषेक तक की कथा आधिकारिक है।

प्रासंगिक जो कथा या वृत्त दूसरे "आधिकारिक" के प्रयोजन के लिए होती है किन्तु प्रसंग से जिसका स्वय का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासगिक इतिवृत्त है। प्रासगिक कथा का प्रमुख ध्येय आधिकारिक वृत्त की फल निर्वहणता प्रतिपादित करना है किन्तु स्वय भी उसका फल होता है; जैसे सुग्रीव कथा का प्रयोजन बालिवध तथा राज्य-लाभ तथा विभीषणकथा का प्रयोजन लंका-राज्य है। इस प्रासगिक इतिवृत्त के भी पताका तथा प्रकरी दो भेद है। प्रासगिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपक मे दूर तक चलती रहती है, यह पताका कही जाती है। जैसे रामायण की कथा मे सुग्रीव विभीषण का वृत्तान्त पताका है; वह दूर तक चलती है, वह

मुख्य नायक के पताकाचिह्न की तरह आधिकारिक कथा तथा मुख्य नायक की पोषिव होती है, पताका का नायक भिन्न होता है वह पताकानायक कहलाता है। रामायर की संक्षिप्त कथाएँ शबरी, आदि भी प्रकरी है।

अवस्थाओं तथा अर्थ प्रकृति के क्रम मे नाट्यशास्त्रकार भरत ने अवस्थाअ का विवेचन पूर्व में किया है और अर्थ प्रकृतियों का बाद में। उन्होने साधक के फर प्राप्ति के व्यापार तक प्रारम्भ से लेकर अन्त तक के व्यापार की पाच अवस्थाएँ क है। आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलयोग—इन अवस्थाओ के ना है। प्रयोजन सिद्धि के हेतु रूप अर्थ प्रकृतियो को भी पाँच प्रकार का बतलाया गर है। जो कि बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नाम से जाने जाते है। भा के नाटकों का सन्धियों, सन्ध्यगो का विवेचन इस अध्याय में आगे किया जायेग वहाँ हमने प्रत्येक सन्ध्यग तथा उनके भेद की परिभाषा तथा भास के सभी नाटव में उसकी चरितार्थता का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसी कारण से इ सन्ध्यगो की परिभाषा के वर्णन की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नही होती।

नेता—रूपको मे परस्पर भेद का कारण नेता भी निर्दिष्ट किया गया है यह धीर ललित, धीर शान्त, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत भेद से चार प्रकार का मान गया है। विस्तार के लिए देखिए—दश रूपक।

रस

रस सूत्र के विवेचन से पूर्व रस के विकास पर सक्षिप्त दृष्टिपात कर आवश्यक होगा। सभी समालोचकों ने यह एक स्वर से स्वीकार किया है कि समर भाषा साहित्यों का उद्गम स्रोत यह संस्कृत वाङ्मय है जिसका साहित्य अना और अन्तस्तलस्पर्शी साहित्यकारों की गम्भीरतम विवेचनाओं से क्रमशः मार्मिक की चरम सीमा पर पहुँच चुका है। प्राचीन आलंकारिको ने "रुचिरार्थक" शब्दो समुचित सन्निवेश रूप काव्य का सहृदयो के हृदयावर्जन करने में उपयोगिता है अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। इस विवेचन को हम तीन श्रेणियों मे प्रा करते है।

सर्वप्रथम "विच्छित्ति" विशेषवतीपद रचना को ही आलकारिक काव्य आत्मा मानते थे और काव्य के शरीर स्थानीय शब्द तथा अर्थ मे परिलक्षित हे वाले अलकारों को ही काव्य मे चमत्कार का कारण बतलाते थे। भामह आ कतिपय विद्वानो की दृष्टि वाच्य से भी आगे गई और उन्होने व्यग्य को भी समभ किन्तु वह व्यग्य अर्थ भी वाच्य का पोषक ही रहा। अतः व्यग्य भी अलकार श्रेर में ही रह गया आगे विकसित न हो पाया। रुद्रट आदि ने रसभाव आदि पदा का अन्वेषण तो किया किन्तु वाच्यार्थ का ही पोषक मानकर रसभावादि को रसवत् प्रेय ऊर्जस्वी आदि अलकार ही समझा।

अलकार के विकास में परिवर्तन आया और अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य इन तीन वृत्तियो के अतिरिक्त व्यञ्जना वृत्ति की स्थापना करने वाले आचार्य आनन्दवर्धन के द्वारा वाच्य और लक्ष्य अर्थ से भिन्न व्यग्य अर्थ अनेक वाद-विवाद के बाद निश्चित किया गया। वही व्यग्य अर्थ विश्रान्तिधाम होने के कारण सर्वप्रधान समझा गया तथा उत्तम सज्ञक ध्वनि-काव्य का कारण कहलाया तथा इसी काल में आनन्दवर्धन का यह प्रभाव हुआ कि इस स्वारस्य के अनुसार मम्मट आदि आलकारिक वस्तु, अलकार और रस तीनो प्रकार की ध्वनियों को काव्य की आत्मा मानने लगे।

आज यह स्थिति आ पहुँची है कि तीनो ध्वनियो को काव्य की आत्मा न मान कर केवल रसगत ध्वनि को ही काव्य की आत्मा कहा जाता है। इस परम आनन्दमय स्थान रस को पाकर सभी साहित्यिक आनन्द-विभोर है। विकास का यह रूप पण्डितराज जगन्नाथ तक आकर विरत हो गया। रसगगाधर के बाद कोई भी ग्रन्थ रसमीमासा के विषय में नही आया। इन्होने युग के अनुकूल नव्यन्याय की भाषा मे इस विषय का अव्याप्ति, अतिव्याप्ति आदि दोषो से रहित लक्षण प्रतिपादित किया है जिससे अलकारशास्त्र को सामान्यशास्त्र के रूप मे उपेक्षित नही किया जा सकता।

तर्कमनीषियो ने इस आनन्द ही की परिभाषा 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' कहा। पश्चात् उन्होने नट अथवा नटी को अभिनय करते देखकर जिस प्रेमी अथवा प्रेमिका का स्मरण दर्शको को हो आता है और उन स्मृति-पथारूढ़ प्रेमी-प्रेमिकाओं के बार-बार अनुसन्धान करने से एक प्रकार का आनन्द अनुभूत होने लगता है वह प्रेम का अवलम्बन साहित्यिक परिभाषा मे 'विभाव ही रस' है (भाव्यमान विभाव एव रस)। कुछ समय तक आस्वाद्यमान विभाव ही रस है, ऐसा माना गया। आलोचको ने पुनः विचारा कि यदि आलम्बन विभाव ही रस रूप हो, तब उस आलम्बन विभाव स्थानीय नट में रति आदि का अनुकूल चेष्टाओं के न रहने पर उसके दर्शन मे आनन्द का अनुभव होना चाहिए परन्तु ऐसा नही होता। अतः विभाव रस नही है, प्रत्युत उसकी वे चेष्टाएँ अर्थात् अनुभाव ही रस है जो पुनः पुनः भाव्यमान होकर आनन्द देता है। अत. पुन पुनः अनुसधीयमान अनुभाव ही रस है। कालान्तर मे आलम्बन विभाव की चित्तवृत्तियों को ही आनन्ददायिनी समझा जाने लगा, विभाव अथवा उनकी चेष्टाओं को नही; क्योकि नट अथवा नटी नाना प्रकार की प्रेम-पात्रीय चेष्टाओं का प्रदर्शन करके भी तब तक दर्शकों को आनन्दानुभूति नही करा पाते जब तक कि वे प्रेमी को हर्ष, आवेग आदि चित्तवृत्तियों का सफल प्रदर्शन नही करते। अत पुनःपुनः अनुसन्धान के द्वारा व्यभिचारी भाव ही रस रूप मे परिणत होते है। विचार होते-होते विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव इन तीनों में से नियमतः किसी एक को आनन्द देने वाला मानना उचित नही क्योंकि किसी-किसी

से रमणीय रूप माधुर्यमेदुर नट को देखकर ही आनन्द का अनुभव होता है तो किसी नाटक मे नट के आंगिक अभिनयो को देखकर दर्शक मुग्ध हो उठते हैं तथा किसी नाटक मे नट के द्वारा किया गया मनोभावो का रुचिर चित्रण ही लोगों को चमत्कृत कर देता है। अतः इन तीनो भावो मे जो जहाँ चमत्कारी हो वहाँ वही रस है और चमत्कारहीन होने पर कोई रस नही है, इस प्रकार की भावना ने स्थान पा लिया।

इसके अनन्तर विभाव अनुभाव की अपेक्षा चित्तवृत्त्यात्मक व्यभिचारी भाव प्रधान है और उनसे भी रति, शोक, उत्साह, रोष, भय, विस्मय, जुगुप्सा, निर्वेद ये भाव प्रधान हैं। इनकी प्रधानता के आधार पर ही विद्वानो ने भावो का नाम स्थायी भाव रखा, जो सम्पूर्ण नाटक मे प्रतीयमान थे। इसी तरह के भाव व्यभिचारी कहलाये जो कभी-कभी अनुभूत होते थे। स्थायी भावो के ज्ञान के आधार पर ही विद्वानो ने वीर, करुण, हास्य, भयानक, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत, शृंगार और शान्त भेद से नौ प्रकार का रस को स्वीकार किया है।

रस की प्रामाणिक परिभाषा भरत ने अपने सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्ति.' के द्वारा व्यवस्थित रूप मे की; जिसका आशय यह है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग अर्थात् मिश्रण से स्थायी भाव रस रूप में परिणत हो जाता है। उन्होंने इसकी व्याख्या में दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरण दिया है जिससे भाव हृदय मे सुगमता से भर जाता है।[1] जिस प्रकार नानाविध व्यञ्जनो के मिश्रण से भात में एक विलक्षण आस्वाद का अनुभव किया जाता है इसी प्रकार विद्वज्जन भावो और अभिनयो से सम्बद्ध स्थायी भावो का आस्वादन करते है। भरत के इस सूत्र की व्याख्या विभिन्न विद्वानो ने अपने-अपने ढग से की है जिसे काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थो में देखा जा सकता है।

कतिपय अर्वाचीन विद्वान् इस प्रकार की धारणा रखते है कि काव्यश्रवण अथवा-नाटक दर्शन से विभावादिको के ज्ञान हो जाने पर सहृदय पुरुष व्यञ्जना वृत्ति के द्वारा रामादिनिष्ठ सीता-विषयक रति का ज्ञान करते है, तदनन्तर सहृदयता सहकृत पुन.पुनः अनुसन्धान रूप भावनात्मक दोष से सामाजिकों अथवा श्रोताओं की अन्तरात्मा अज्ञानावृत हो जाती है और उस अज्ञानावृत आत्मा मे उस समय सीप मे चाँदी के समान अनिर्वचनीय रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न हो जाते हैं और उनका

---

१. यथा बहुद्रव्ययुतैर्व्यंजनैर्बहुभिर्युतम्। आस्वादयन्ति भुञ्जाना भक्तं भक्तविदो जनाः। भावाभिनय-सम्बद्धान् स्थायिभावांस्तथा बुधाः। आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः। ना० शा०

यों को आत्म-चैतन्य के साथ अनुभव होता है उन्ही रति आदि का नाम रस है। विद्वानो के विचार इस प्रकार है कि राम आदि को रत्यादि ज्ञान करने के लिए ञना की आवश्यकता नही है, न अनिर्वचनीय रति आदि की कल्पना की ही। नेयता अथवा पाठको की चेष्टा आदि से सीता आदि की रत्यादि राम आदि मे मति होती है और तदनन्तर उक्त भावनात्मक दोष से अपने को राम आदि समझने सहृदयो मे एक भ्रम उत्पन्न होता है कि मै सीताविषयक रति वाला राम हूँ, भ्रम को रस अवगत करना चाहिए। इस प्रकार लोल्लट के उत्पत्तिवाद, शकुक नुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद की अपेक्षा अभिनवगुप्त का व्यक्तिवाद ही ान्य सिद्धान्त निश्चित होता है जिसमे रस 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहलाया।

भारतीय आलकारिकों की दृष्टि मे रस आनन्दात्मक ही होता है परन्तु कतिपय ान् रस को दु:खात्मक मानने के पक्ष में है। नाट्यदर्पण के रचयिता रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इस मत का विस्तृत रूप से विवेचन किया है। उनका सिद्धान्त है 'सुख-दु:खात्मको रस:' अर्थात् रस मे सुख और दु:ख दोनो होते हैं। रौद्र, भयानक, त्स तथा करुण रस के वर्णन, श्रवण तथा दर्शन से श्रोता तथा दर्शकों के चित्त मे विचित्र प्रकार का क्लेश होता है और इसी कारण इन रसो के अभिनय से दर्शक ग्नता का अनुभव करते है। आनन्द मे उद्वेग उत्पन्न नही होता। इन रसो की ात्मक अनुभूति के अभाव के कारण दु:खात्मक अनुभूति होती है। रस-कलिका के क रुद्रभट्ट भी इसी मत का समर्थन करते हैं। प्रसिद्ध अद्वैतवादी मधूसूदन सरस्वती इस मत का आशिक रूप से समर्थन करते है। तैत्तिरीय श्रुति के अनुसार 'रसो वै। रसं ह्यवाय लब्ध्वा आनन्दी भवति।" वह रस रूप है। रस को ही पाकर ससार प्राणी आनन्दयुक्त होता है। पण्डितराज जगन्नाथ और अभिनवगुप्त के द्वारा की मीमासा प्रामाणिक मानी गई है। इनमे भी अभिनवगुप्त का मत सर्वमान्य है। कहते है कि आनन्द ही रस है। रस एक है, अनेक नही। रस, रस ही है। उसके ए किसी अन्य पर्यायवाची शब्द की आवश्यकता नही है। रससदृश कोई वस्तु नही जिस प्रकार ब्रह्म की एकमात्र सत्यता है और नानात्मक विकृतियाँ असत्य हैं, ी प्रकार शृगार, हास्य आदि रस की अनेकता तथा पार्थक्य वस्तुत: असत्य है। ार आदि रस उसके अशमात्र है। अभिनवगुप्त ने रस को महारस शब्द से व्यवहृत या है तथा अशभूत रसो को केवल 'रस' कहा है। कवि कर्णपूर ने अलकारकौस्तुभ आनन्दमय रस को ही 'महारस' कहा है। कर्णपूर द्वारा 'अलकार कौस्तुभ' मे वर्णित मूल महारस के ही विकारमात्र अन्य रस है। अत: भवभूति के शब्दो में 'एको :' तथा उसकी एकरूपता की सिद्धि के लिए भरत ने स्वय भी एकवचनान्त प्रयोग या है। 'न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते।' मूलत: रस एक ही है और स्थायी व की भिन्नता के कारण उसी से नाना रसों का उदय होता है। उस प्रकृत रस के

विषय में भवभूति[1] ने करुण रस को प्रधानता दी है। **भोजराज** शृंगार रस को प्रकृत रस मानते हैं; उन्होने इसका प्रतिपादन शृंगार[2]-प्रकाश मे किया है। प्रो० बलदेव उपाध्याय ने आलोचनाशास्त्र मे लिखा है कि **नारायण पंडित**[3] प्रत्येक रस मे विस्मय की ही भावना प्रधान रहने के कारण अद्‌भुत रस मानते हैं क्योंकि जब तक द्रष्टाओ के आकर्षण हेतु कोई विस्मयकारी दृश्य नही होता तब तक रस की अनुभूति नही होती। **रूपगोस्वामी** श्रीकृष्ण के प्रति उपासना के द्वारा रतिभाव के स्थायी भाव होने के कारण उनसे पुष्ट मधुर रस का ही प्राधान्य मानते है। अभिनवगुप्त ने शान्त रस की प्रधानता मे अपना मत व्यक्त किया है कि रस आनन्द रूप होता है और शृंगार आदि रसो मे यह आनन्द रत्यादिको के द्वारा व्यवच्छिन्न होता है। रसानन्द की स्थिति मे द्रष्टा शान्ति की अनुभूति करता है जिसका स्थायी भाव शम है। अतः उनके विचार मे शान्त रस ही प्रधान रस है जो कि समीचीन प्रतीत होता है।

(ख) बाण द्वारा निर्दिष्ट भास की नाटकीय विशेषताएँ

बाण ने हर्षचरित मे भास के लिए निम्नांकित प्रशस्ति लिखी है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।।

इसके विवेचन-क्रम मे प्रबन्ध मे निम्नांकित रूपरेखा अपनाई है।

(क) सूत्रधार की परिभाषा और भास द्वारा उसके प्रयोग का रूप।
(ख) बहुभूमिकैः का अर्थ तथा भास की रचनाओ मे प्रयोग।
(ग) सपताकैः—पताका की परिभाषा तथा भास की रचनाओ मे प्रयोग।

बाण की प्रशस्ति में भास के नाटको की विशेषता का मूल्यांकन किया गया है और वह भी सामान्य रूप से नही अपितु नाटकीय वैशिष्ट्य के द्वारा। बाण ने भास की रचनाओ के लिए सूत्रधारकृतारम्भ, बहूभूमिक, पताकायुक्त विशेषण तथा देवकुल शब्द उपमा के रूप मे प्रयुक्त किये है। प्रशस्ति का सामान्य अर्थ यही है कि

---

१. एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्‌बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम् ।। उत्तररामचरित ३।४७

२. शृंगार वीर-करुणाद्‌भुतरौद्रहास्यबीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दश रसान् सुधियो वयं तु शृंगारमेव रसनाद् रसमामनामः ।।
शृंगारप्रकाश वी० राघवन् पृ० ५०१।

३. रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्‌भुतो रसः।
तस्मादद्‌भुतमेवाह कृती नारायणो रसम् ।।

सूत्रधार (नाटक का मैनेजर अथवा कारीगर), बहूभूमिकै: (पार्टियाँ या आगन) बहुत पात्रों वाले, पताकै: (पताका प्रासगिक कथा) तथा ध्वजाओ से मण्डित मन्दिरो की भाँति भास ने अपने नाटको से ख्याति की उपलब्धि की। वस्तुत: भास के नाटको मे पात्रों की सख्या अत्यधिक है।

भास की नाटकारम्भ की विशेष शैली है। ये 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशति सूत्रधार:' कहकर नाटक आरम्भ करते है। अत: सूत्रधार की परिभाषा से पूर्व नान्दी पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा। भास के प्राय: सभी नाटको मे आरम्भ की उपर्युक्त शैली है; अन्य साहित्यकारो द्वारा नान्दी सर्वत: प्रथम, तदुपरात सूत्रधार का रगमच पर आ गमन प्रयुक्त किया गया है। प्रत्येक नाटक का आरम्भ सामान्यतया नान्दी से ही होता है। कतिपय विद्वान् नान्दी को नाटक की कथावस्तु के सार का सक्षिप्त निदर्शन भी बतलाते हैं। सूत्रधार कभी-कभी केवल नान्दी कथन के उपरान्त रगमच से चला जाता है और किन्ही अवसरो पर उसका स्थान स्थापक ग्रहण कर लेता है। प्रस्तावना में सूत्रधार नाटककार की ख्याति और वशावली आदि की ओर सक्षेप मे सकेत करता है तथा स्थापक अथवा सूत्रधार बीज के रूप मे विषय को प्रतिपादित करता है अथवा आने वाले पात्र का नाम लेता है, यथा शकुन्तला नाटक मे। किन्तु भास की शैली पृथक् है।

नान्दी की व्याख्या—'नन्दयति स्तुत्या देवादीनानन्दयतीति नान्दी' 'टुनदि समृद्धौ' धातु से पचादित्वात् अच् प्रत्यय तदनन्तर स्वार्थ मे अण्, अणन्त होने से 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि से ङीप्। वह नान्दी[1] नटो के द्वारा नाटकारम्भ मे देवद्विजनृपादिको की स्तुति कही गई है जो कि नाटको की निर्विघ्न शान्तिहेतु परमावश्यक है। और वह नान्दी मगल द्योतक शख, चन्द्र, अब्ज, कोक, चक्रवाक, कैरव, श्वेतकमल आदि को द्योतित करती है तथा बारह अथवा आठ पदों से युक्त होती है।

नाट्यदर्पण[2] मे नान्दी की परिभाषा इस प्रकार है—जिसमे अभिधेय वस्तु के बीज का विन्यास श्लेष अथवा समासोक्ति द्वारा किया जाय उसे नान्दी कहते है। तथा उसका उदाहरण शाकुन्तलम् मे 'या सृष्टि:०' दिया है। अन्य के मत में 'रगविघ्नोपशान्तये' ही केवल नान्दी के विषय मे कहा गया है। वस्तुत: पूर्वरगस्य रगद्वारमभिधानमगम्। रगद्वार पूर्वरग का ही अग कहा गया है इसी कारण सर्वप्रथम अभिनय होने के कारण 'वागगाभिनयात्मक रंगद्वारम्' कहा गया है। नान्दी रगद्वार से पूर्व ही नटो के द्वारा अभिनीत होनी चाहिए।

---

१. आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नांदीति सज्ञिता॥ साहित्यदर्पण ६।२४

२. यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावली तु सा॥ नाट्यदर्पण

भरत[1] मुनि ने रगद्वार रूप नान्दी को ही स्वीकृत किया है। नान्दी के विवेचन मे जहाँ नान्दी है, रगद्वार नही है, वहाँ नान्दी को ही रगद्वार मानकर तथा जहाँ रगद्वार है नान्दी नही है, वहाँ फलाकाक्षा के कारण उसका भी बलपूर्वक अनुमान कर लेने का विधान अवगत किया जाता है। **काव्येन्दुप्रकाश**[2] मे नान्दी के नीली तथा शुद्धा दो भेद किए है। पुष्प के समान उपादान के कारण यथा 'या सृष्टिः०' शाकुन्तलम् तथा अनर्घराघव मे निष्प्रत्यूहम् मे नीली तथा वेदान्तेषु आदि मे शुद्धा कही गई है।

सूत्रधार—नाट्य के उपकरण को सूत्र कहा गया है और जो उस सूत्र को धारण करे वह सूत्रधार कहलाता है। रगभूमि में आकर सर्वप्रथम जो नाटकीय कथावस्तु की सूचना देता है उसे सूत्रधार कहते हैं। मातृगुप्त[3] ने सूत्रधार को अनेक भूषावृत्त नानाभाषणतत्वज्ञ, नीतिविशारद, शिल्पी, रस-भाव-ताल आदि अनेक गुणगणमण्डित व्यक्ति को सूत्रधार नाम दिया है। भरत ने नाटकारम्भ मे सूत्रधार के गुणो वाले स्थापक के प्रवेश का वर्णन किया है। सूत्रधार के सदृश ही स्थापक को भी सूत्रधार कहा जाता है। सूत्रधार का अनुचर पारिपार्श्विक तथा इससे गुणो में न्यून को नट कहते है। इनके द्वारा पूर्वरग के अनन्तर नाटक की प्रस्तावना का आरम्भ होता है इसे आमुख भी कहा गया है।

बहुभूमिक शब्द से कवि का अभिप्राय किसी भी नाटक मे नाटक की सफलता के लिए विविध प्रकार की भूमिकाओ (पार्टियों) अत्यधिक पात्रो से है। भूमिक शब्द की व्याख्या सामान्यत: किसी भी वस्तु की आधारशिला अथवा आरम्भिक रूप को कहते है। यह भूमिक शब्द भी भूमि शब्द से क प्रत्यय होने से बना है जिस कारण इसका अर्थ भी विभिन्न प्रकार के स्थल अथवा अवसरो से गृहीत किया जा सकता है। भास ने अपने नाटको मे कथावस्तु की सफलता के लिए अनेक भूमिकाओ, सांयोगिक परिस्थितियो का अकन किया है। भास की रचनाओ मे भूमिकाओ का निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है।

स्वप्नवासवदत्ता मे ब्रह्मचारी का प्रवेश, पद्मावती के समीप वासवदत्ता का न्यास रूप में सरक्षण, धात्री के द्वारा प्राचीन चित्र का राजा के समीप भेजना।

---

१. नान्दी शुष्कावकृष्टा च रगद्वारम्। भरत नाट्यशास्त्र

२. नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः।
नाटकीयकथासूत्र प्रथम येन सूच्यते। रंगभूमि समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥
चतुरातोद्यनिष्णातोऽनेकभूषासमावृतः। नानाभाषणतत्वज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्ववित् ॥
नानागति-प्रचारज्ञोरसभावविशारदः। नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वितः।
छन्दोविधानतत्वज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः। तत्तद्गीतानुगलयकलातालावधारणः।
अवधाय प्रयोक्ता च योक्तृणामुपदेशकः। एव गुणगणोपेतः सूत्रधारोऽभिधीयते ॥
साहित्यदर्पण १ परि० टीका

३. नीलीशुद्धेति भेदेन सा नान्दी द्विविधा भवेत्। उपादानं वर्णन वा भवेद्यत्रेन्दुसूर्ययोः।
सा नीली स्यात्तदन्या तु शुद्धेति परिगीयते।—काव्येन्दुप्रकाश

प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे लकडी के हाथी के निर्माण की स्थिति, महासेन के परिचारक को स्वर्णशतप्रदान, यौगन्धरायण का अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु सन्यासी बनना।

अविमारक मे मन्त्री कौञ्जायन द्वारा एक विशेष व्यक्ति के प्रकाश मे लाने की उद्घोषणा तथा हाथी को कथा का केन्द्र बिन्दु बनाना।

चारुदत्त मे परिव्राजक की हाथी से रक्षा तथा उसे प्रावारक का प्रदान।

प्रतिमा मे दशरथ के पूर्वजो के प्रतिमा-मन्दिर की स्थापना।

अभिषेक मे रावण द्वारा प्रेषित शंकुकर्ण का गमन।

दूतवाक्य में दुर्योधन का राजाओ से कृष्ण के आने पर न उठने देना।

दूतघटोत्कच मे घटोत्कच का प्रणाम-क्रम का भूलना तथा उसे ठीक करना।

मध्यमव्यायोग मे मध्यम द्वारा ब्राह्मण पुत्र के स्थान मे भीम का आगमन।

कर्णभार मे शकुनि का कर्ण को अनुत्साहित करना तथा कर्ण की अर्जुन के समीप जाने की उत्कट कामना।

उरुभंग मे तीन भटो का प्रवेश।

बालचरित मे पचायुधों तथा गरुड़ का प्रवेश।

पंचरात्र मे शकुनि और दुर्योधन का आलाप तथा द्रोण का भिक्षा के लिए आग्रह।

उपर्युक्त नाटको मे मैने अपनी दृष्टि से भूमिकाओ को नये रूप से रखने का प्रयास किया है। इनके अनुसन्धान मे मेरी दृष्टि मे भूमिकाओ का आशय उन विभिन्न रोचक परिस्थितियो के सुन्दर समावेश से है जो नाटकीय कुतूहल का अभिन्न अग बन गई है तथा वे रस-परिपाक में पूर्णतया सहायक है। भास की रचनाओ में इस प्रकार की अवस्थाओ का अकन किया गया है। इस विषय मे और भी स्थलो को चुना जा सकता है। बाण की दृष्टि मे उस काल में प्राप्त रचनाओं मे भास को महत्व देना समुचित ही प्रतीत होता है।

सपताकैः—प्रधान कथा की उपकारिणी प्रासगिक कथा को पताका कहा गया है। पताका की परिभाषा हम प्रशस्तियो वाले अध्याय में दे चुके है। भास की रचनाओं मे पताका का प्रयोग प्राप्त होता है जिसका विवरण निम्न प्रकार है।

स्वप्नवासवदत्ता मे अग्निप्रसग मे वासवदत्ता की मृत्यु का विवरण जो कि नाटक की प्रधान कथा के साथ अन्त तक चलता है, पताका के अन्तर्गत आ सकता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन का अपनी कन्या के विवाह का वार्तालाप और उदयन के गृहीत होने की चिन्ता नाटक में पर्याप्त आगे तक चली है। इसे हम पताका के अन्तर्गत रख सकते हैं।

इस प्रकार अन्य नाटको मे भी पताका का अनुसन्धान किया जा सकता है। बाण ने देवकुल शब्द प्रतिमा मे वर्णित देवमन्दिर के आधार पर प्रयुक्त किया प्रतीत होता है। सम्भवतः उस समय मन्दिरो मे देवकुल रखने की प्रथा प्रचलित हो। दण्डी की प्रशस्ति "सुविभक्त मुखाद्यकैः" भी उचित जान पडती है क्योकि इनके नाटको मे विभिन्न सन्ध्यंगो की उपयुक्तता का विवेचन हम आगे करेगे।

(ग) भास की नाटकीय विशेषताओं का अपना अध्ययन

वस्तु, नेता, रस, वृत्ति तथा अभिनय सम्बन्धी

'स्वप्नवासवदत्तम्'

रूपक भेद	—	नाटक
कथा-स्रोत	—	गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित
सन्धियाँ	—	पञ्चसन्धि समन्वित
अङ्क-सख्या	—	छ
नायक	—	उदयन (धीरललित)
नायिका	—	वासवदत्ता
रस	—	विप्रलम्भ शृगार
वृत्ति	—	भारती

गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित कथावस्तु भास के लोकपरम्परा के अनुयायी नाटककार होने का प्रमाण है। इन्होने अपनी रचनाओ मे सामाजिक चित्रण मे सामयिक परिस्थितियो का पर्याप्तरूपेण अकन किया है। स्वप्नवासवदत्ता नाटक मे स्वप्न मे वासवदत्ता के देखने का वर्णन कौतूहलोत्पादक है और इसी स्थल पर नायक तथा नायिका के प्रेम की चरम सीमा परिलक्षित होती है कि अग्नि-प्रदग्धा वासवदत्ता राजा के हृदय पर अपना आधिपत्य किए है इसी कारण महाकवि भास ने इस नाटक को वासवदत्ता अभिधान दिया, जो समीचीन है।

कथावस्तु—गुणाढ्य की बृहत्कथा से प्रसिद्ध उदयन वासवदत्ता की कथा को कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा अभिनेय रूप प्रदान किया। उ यन की कथा उस समय लोक-प्रसिद्ध थी और इसे अन्य साहित्यकारो ने भी अपनी रचनाओ में स्थान दिया है।

प्रस्तुत नाटक मे 'उदयनवेन्दु ··· ·· पाताम्' श्लोक में नाटक के प्रधान पात्र उदयन वासवदत्ता, पद्मावती तथा वसन्तक का मुद्रालकार[1] द्वारा निर्देश किया गया है और श्लोक में वासवदत्ता द्वारा उपकृत पद्मावती के विवाह लाभ से बलशाली उदयन की भुजाये रक्षा करे जिसमें शत्रु द्वारा अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति की अन्तिम

१. सूच्यार्थसूचन मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः। स्वप्न० टीका पृष्ठ १०

कामना स्पष्ट लक्षित होती है । भगवान् कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी की स्तुति नाटकारम्भ में की गई है । मुद्रालकार का यह प्रयोग कवि की प्रौढ प्रतिभा का परिचायक है । मुद्रालकार की स्तुति के अनन्तर आर्यमिश्रान्[1] विज्ञापयामि कहकर सभ्य व्यक्तियो की ओर सकेत किया गया है । भरत ने भी अच्छे वश वाले व्यक्तियो को आर्य कहा है । मिश्र शब्द भी पूज्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और नित्य बहुवचनान्त है ।

सन्धियों का विवेचन

मुखसन्धि—नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति जिसमें निहित रहती हो वह मुखसन्धि कहलाती है ।

उपक्षेप—रूपक के प्रारम्भ मे कवि द्वारा बीज के न्यास को उपक्षेप कहते है ।

स्वप्नवासवदत्ता में वत्सराज के पद्मावती-प्राप्ति-हेतु यौगन्धरायण का प्रयत्न ही बीज है, जिस पर कि अपहृत राज्य की प्राप्ति सम्भव है ।

"न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधि· सुपरीक्षितानि"

स्वप्नवासवदत्ता के प्रथमाक मे यौगन्धरायण, पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियो की उक्ति को प्रबल प्रमाण मानकर कहता है कि विधि भी विद्वानो के सुपरीक्षित वाक्यो का उल्लघन नही करता है । अत उस बीज के वपन हेतु यहाँ ब्रह्मचारी का प्रवेश नाटकीय योजना मे महत्व रखता है । पद्मावती के विवाह के प्रधानभूत लक्ष्य को दृष्टि मे रखकर ही उदयन के गुणो का सकीर्तन ब्रह्मचारी द्वारा पद्मावती के मन मे अभीष्ट वर की प्राप्ति की अभिलाषा की उत्पत्ति मे सहायक होता है । अतः यही स्थल बीज माना जा सकता है जैसा कि रत्नावली मे प्रयुक्त 'द्वीपादन्यस्मात्, मे उपक्षेप की सत्ता प्रदर्शित की गई है ।

परिकर—जिस स्थल पर बीजन्यास का बाहुल्य पाया जाये वहाँ परिकर होता है ।

'श्लाघ्य गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तु.' (१.४) मे सुवपित बीज की प्राप्ति में यौगन्धरायण वासवदत्ता को कष्ट सहने मे क्षमता प्रदान करते है कि पुनः स्वामी की विजय होने पर श्लाघ्य पद को प्राप्त होगी ।

परिन्यास—बीजन्यास की परिपक्व दशा को परिन्यास कहते है ।

'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपक्तिः' (१.४) उसी बीज की पुष्टि मे सुख-दुःख परिवर्तनशील है तथा पुनः राज्य-प्राप्ति होने से भावी सुख की प्राप्ति की अवश्यभाविता दर्शायी है ।

---

१. मरीचिमिश्रै दक्षेण । विष्णुपुराण
आर्यसभ्यसज्जन साधवः इत्यमरः ।
कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता ।
अद्रोह इति येष्वेतत्तानार्यान् प्रचक्षते ॥ भरत ना॰ शा॰

विलोभनम् —जहाँ फल से सम्बद्ध किसी वस्तु के गुणों का आख्यान हो।

'ब्रह्मचारी' द्वारा पद्मावती के सम्मुख राजा उदयन का अपनी प्रिया वासवदत्ता के प्रगाढ प्रेम के कारण उसके वियोग की दशा का चित्रण विलोभन है।

ब्रह्मचारी—'ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तातं श्रुत्वा·······हा वासवदत्ते ! हा प्रिये ! धन्या सा स्त्री ·······सा हि दग्धाप्यदग्धा। (१।१३)

युक्ति—राजा के गुणों के कीर्तन के कारण पात्र के इच्छित तथ्यों का समर्थन किया जाये, वहाँ युक्ति होती है।

यौगन्धरायण की अभीष्ट वस्तु वासवदत्ता का पद्मावती के समीप न्यास रूप में रखने की समर्थता मे 'यद् यस्यास्ति··· कस्याद्य कि दीयताम्' (१।८) मे युक्ति है।

प्राप्ति —जहाँ फल की प्राप्ति में सुखागम हो।

कंचुकी द्वारा उपर्युक्त 'कस्याद्य कि दीयताम्' को सुनकर यौगन्धरायण के अभीप्टसिद्धि सुख के अनुभव मे 'दिष्टया सफल' मे तपोवनाभिगमनम्' कहना प्राप्ति नामक मुखांग है।

समाधान— बीज का युक्ति द्वारा पुनः व्यवस्थापन समाधान कहलाता है।

प्रथमांक मे तापसी तथा चेटी की वार्तालाप मे तापसी के द्वारा राजा को गुणवान् कहना तथा पद्मावती का अपने मन में अपरा स्त्री के प्रत्युत्तर मे 'मम हृदयेनैव सह मंत्रितम्' कहना समाधान है। यहाँ पद्मावती की उदयन के गुणो पर मुग्ध होकर विवाह की कामना रूपी बीज का युक्ति द्वारा व्यवस्थापन होने से समाधान नामक अग उचित ठहरता है।

विधानम्—जिस स्थल पर नायक आदि पात्रो के हृदय में सुख-दुःख की उत्पत्ति हो।

ब्रह्मचारी द्वारा राजा उदयन की दशा के वर्णन को सुनकर पद्मावती का दुःखित होना। यथा:—चेटी-रोदिति खल्वियमार्या।' वासवदत्ता रोती है।

उद्भेद—जहाँ गूढ़ बीज को प्रकट कर दिया जाये उसे उद्भेद कहते है।

तापसी पद्मावती को आशीर्वाद देती है। 'तापसी—जाते ! तव सदृश भर्तारं लभस्व।' यहाँ उदयन की प्राप्ति रूपी गूढ बीज का भेदन किया गया है।

भेद—जहाँ पात्र को बीज के प्रति प्रोत्साहित किया जाये।

वासवदत्ता को 'त्वमप्यचिरेण भर्तार लभस्व' कहकर प्रोत्साहित किया गया है।

मुखसन्धि के बारह अगो मे यहाँ केवल करण को छोड़कर शेष सभी अग प्राप्त होते है। दशरूपक के मत मे केवल उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद तथा समाधान का होना ही आवश्यक बतलाया गया है।

प्रतिमुख सन्धि—बीज के अकुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप मे उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि कहलाता है। इसमे विन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण होता है। इसके तेरह अग है।

विलास - रति की इच्छा को विलास कहते है । नायिका का नायक के प्रति प्रेमांकुर का स्फुरण भी रति ही है ।

पद्मावती स्वयं अपने सौन्दर्य की सफलता उदयन की अनुकूलता में आँकती है और इसे ही 'सर्वजनमनोऽभिराम''''''''सौभाग्य' कहती है ।

परिसर्प —एक बार बीज दिखलाई देकर नष्ट हो जाये और पुनः उसकी खोज की जाये वहाँ पर परिसर्प होता है ।

वासवदत्ता तथा धात्री के वार्तालाप मे पद्मावती वत्सराज उदयन को दिए जाने का॰सन्देश सुनाकर विवाह रूपी बीज को पुन· लक्षित करती है ।

नर्म — परिहासपूर्ण वचनो को नर्म कहते हैं ।

वासवदत्ता पद्मावती के मुख को क्रीड़ा के कारण रक्तिम आभा से आभासित पाकर "अभित इव तेऽद्य वरमुख पश्यामि" कहकर हास्य करती है ।

नर्मद्युतिः—पात्र में धैर्य के सचार की स्थिति में यह होती है ।

वासवदत्ता 'विवाहामोदसकुलसमय मे व्यथित है किन्तु आर्यपुत्र को देखकर ही जीवित रहने में धैर्य प्रकट करती है ।

प्रगमनम् —पात्रो के पारस्परिक उत्तरप्रत्युत्तरयुक्त वार्तालाप को कहते है । जिनसे बीज में सहायता की प्राप्ति होती है ।

पद्मावती-उदयन विवाह के समय चेटी वासवदत्ता से माला के गूँथने का वार्तालाप करती है जो नाटक के बीज रूप विवाह की सहायिका है ।

पुष्पम् —जहाँ विशिष्ट वाक्यों के द्वारा बीज का उद्घाटन हो ।

चतुर्थांक मे विदूषक हर्ष के साथ "भो दिष्टचा तत्रभवतो वत्सराजस्य अभिप्रेत विवाहमंगलरमणीयकालो दृष्टः" कहता है ।

वज्र—नायिकादि के प्रति प्रत्यक्ष कठोर वाक्यो के कथन को कहते हैं ।

तृतीयांक के अन्त मे यह क्या औषधि है, यह पूछने पर उसका उत्तर चेटी "सपत्नीमर्दनं नाम" कहकर वासवदत्ता के प्रति कठोर वाक्य कहती है ।

विधूतम् —जहाँ किसी पात्र के हृदय में अरति का भाव आए ।

वासवदत्ता राजा उदयन के पद्मावती को स्वयं बोलने पर 'अरति' की अनुभूति करती है । वासवदत्ता—'अत्याहितम् । स्वयमेव तेन वरिता' ।

शमः—उस अरति के भाव का उपशमन हो जाना शम, कहलाता है ।

धात्री वासवदत्ता से पद्मावती के पिता द्वारा स्वय देने को कहती है ।

उपन्यास — उपाय युक्त अथवा हेतु-प्रदर्शक वाक्य उपन्यास कहलाता है ।

धात्री द्वितीयांक में "आगमप्रधानानि सुलभपर्यावस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति" वाक्य कहकर उदयन का पद्मावती को अपने हृदय की विशालता के कारण वरण करने का निश्चय द्योतित करती है । प्रतिमुख सधि के परिसर्प, प्रशम, वज्र, उपन्यास तथा पुष्प प्रधान अगो के अतिरिक्त भी अग यहाँ उपलब्ध है ।

गर्भसन्धि—'बीज के दिखाई देने के उपरान्त पुनः नष्ट हो जाने पर जब उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है तो गर्भसन्धि होती है। इसमे पताका हो अथवा न हो, किन्तु प्राप्ति सम्भव का होना आवश्यक है।

"अनतिक्रमणीयो हि विधि." वाक्य के द्वारा गर्भसन्धि का आभास प्राप्त हुआ।

अभूताहरणम्—जहाँ कपट पाया जाये वहाँ यह होता है।

वासवदत्ता पद्मावती से उदयन के सौन्दर्य को कहती हुई कपटयुक्त वार्तालाप करती है। वासवदत्ता—'अतोऽप्यधिकम्' कहती है। वासवदत्ता के नेत्र राजा उदयन को शिलातल पर बैठा हुआ देखकर अश्रुयुक्त हो जाते है किन्तु वह काशकुसुमरेणु का बहाना बनाकर कपटता दर्शाती है। राजा भी इसी प्रकार अपने आँसुओ को छिपाने के लिए कपटता दर्शाता है।

अनुमान—जहाँ किन्ही तर्को के द्वारा अनुमान लगाया जाये।

पद्मावती के विषय मे राजा विदूषक से शिलातल को गर्म अनुभव करता हुआ कहता है कि वह अभी यही थी। "पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेद शिलातलम्, नून काचिदिहासीना मा दृष्ट्वा सहसा गता" (४।४) से पद्मावती का शिलातल पर बैठने का अनुमान सिद्ध हो जाता है।

अधिवलम्—जहाँ किन्ही पात्रो के द्वारा नायिकादि का भाव जान लिया जाये।

चतुर्थांक मे पद्मावती के द्वारा राजा के नेत्रो को अश्रुयुक्त देखकर 'यावन्निष्क्रामाम.' कहते हुए बाहर जाते है। वासवदत्ता उसके भाव को समझकर स्वय बाहर चली जाती है।

मार्ग—जहाँ निश्चित तत्व अर्थप्राप्ति की सूचना दी जाये। नायकादि के प्रति किसी शुभ चिन्तक पात्र द्वारा प्राप्ति के मार्ग की सूचना देना।

चतुर्थ अक मे विदूषक राजा उदयन को मगध के राजा द्वारा अन्य मित्रो से परिचय हेतु ध्यान दिलाकर उठा लेता है इससे भावी राज्योपलब्धि मे सहायता का हेतु प्रतीत होने से यहाँ मार्ग हुआ।

रूपम्—जहाँ प्राप्ति की प्रतीक्षा करते समय नायकादि तर्क-वितर्कमय वाक्य बोले।

विदूषक तथा उदयन का पद्मावती तथा वासवदत्ता दोनो मे कौन किसको अधिक चाहता है, विषयक वार्तालाप राजा की अभिलषित वस्तु की प्राप्ति में, वासवदत्ता व नवोढ़ा पद्मावती दोनों के लिए आनन्ददायक है और इसके द्वारा भावी राज्यप्राप्ति की प्रतीक्षा में वासवदत्ता को कष्ट सहने मे बल मिल रहा है। राजा के "पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यै.। वासवदत्ताबद्ध न तु तावन्मे मनो हरति।" कह देने पर वासवदत्ता को कष्ट मे सुख का अनुभव होता है।

तोटक—क्रोधपूर्वक वचनो को कहते है । अन्य के मत में उद्विग्नतापूर्ण वचनों को भी तोटक कहा गया है ।

राजा विदूषक से वार्तालाप में वैधेय कहकर उससे बलपूर्वक आवृत्ति करने को कहता है ।

आक्षेप – जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकट किया जाय ।

विदूषक के द्वारा मगध के राजा[1] के साथ अन्य राजाओं के सत्कार की प्राप्ति तथा उन्हीं की सहायता से पुनः राज्यप्राप्ति रूपी बीज का विशेपरूपेण उद्भेद यहाँ किया गया है । गुणों के किए जाने पर भी उनको पहचानने वाला कठिनता से प्राप्त होता है, ऐसा कहना राजा के प्रति किए गए मगधनरेश के गुणों का आख्यान दर्शाता है और इससे राज्यप्राप्ति रूपी बीज का विशेष रूप से प्रकटन भी हो जाता है ।

अवमर्श सन्धि—जहाँ क्रोध से, व्यसन से या लोभ से फलप्राप्ति की पर्यालोचना की जाय तथा जहाँ गर्भसन्धि के द्वारा बीज का प्रकटन कर दिया गया हो । पचमांक की समाप्ति पर कांचुकीय द्वारा मंत्री रुमण्वान् के राजा आरुणि पर चढ़ाई के वर्णन मे राज्यप्राप्ति का लोभ होने से यहाँ अवमर्श सन्धि है ।

अपवाद—किसी भी पात्र के दोषो का वर्णन करने मे अपवाद होता है ।

राजा का 'उपेत्य नागेन्द्र' इत्यादि मे अपने शत्रु राजा आरुणि को दारुण कर्मदक्ष कहकर उसके दोषो का आख्यान होने से यहाँ अपवाद हुआ ।

शक्ति—विरोध का शमन होना शक्ति कहलाता है ।

पचमाक के अन्त में कचुकी[2] का उदयन से शत्रु के विनाश की सूचना देना ।

व्यवसाय—जहाँ कोई पात्र अपनी सामर्थ्य के विषय मे कहे जिससे स्वशक्ति का आभास मिले वहाँ व्यवसाय नामक सन्ध्यंग होता है ।

राजा[3] अपने कथन मे अपने शत्रु के नाश की घोषणा करता है ।

प्रसग—जहाँ पूज्य व्यक्तियों गुरु, माता-पिता आदि का सकीर्तन हो वहाँ प्रसग नामक सन्ध्यग होता है ।

छठे अंक के आरम्भ में महासेन के समीप से रैभ्यस गोत्र के कचुकी के आने पर राजा[4] उदयन का महासेन के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना तथा अंगारवती की

---

१. गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ स्वप्न० ४।६

२. भिन्नान्ते रिपवो भवद्गुणरताः '' ''वत्साश्च हरते तव । स्वप्न० ५।१२

३. उपेत्य नागेन्द्रतुरगतीर्णे '' ''युधि नाशयामि । स्वप्न० ५।१३

४. अहमवजितः पूर्वं तावत्''' ''प्रप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् । स्वप्न० ६।८

कुशल पूछना। राजा उदयन अपने पूर्व ससुर तथा सास (वासवदत्ता के माता-पिता) के प्रति अपना आदर प्रकट करता है।

विचलनम्—जहाँ कोई पात्र आत्म-श्लाघा करे वहाँ विचलन नामक विमर्शांग होता है। राजा अपने को 'भाग्यैश्चलैर्महदवाप्त गुणोपघातः' से अपने अनेक गुणों की उपलब्धि में आत्मश्लाघा को व्यंजित करता है।

द्युतिः—किसी पात्र का तर्जन तथा उद्वेजन करना द्युति कहलाता है।

कञ्चुकी[1] द्वारा नरेन्द्रश्री का उपभोग उत्साहयुक्त व्यक्ति ही करते हैं, ऐसा कहने से राजा का विलासी होना और उत्साह से हीन होना प्रदर्शित हुआ, इस कारण इस कथन में तर्जना की अन्तर्निहित झलक हमें प्राप्त होती है।

प्ररोचना—जब किसी स्थल पर कोई पात्र अपने वचनों के द्वारा भावी घटना की सूचना सिद्ध मनुष्यों के वचनों की भाँति देता है तो वहाँ प्ररोचना नामक अविमर्शांग होता है।

छठे अंक में कंचुकी 'किं नाम दैव' के कथन से देव से अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति तथा वासवदत्ता की सकुशल प्राप्ति की आशा करते हुए सिद्ध व्यक्तियों के समान भविष्य की घटनाओं की सूचना देता है।

आदानम्—जब नाटककार नाटक के उपसंहार की ओर बढ़ने की कामना से नाटक या रूपक की वस्तु के कार्य को सगृहीत करता है अर्थात् समेटने की चेष्टा करता है वहाँ आदान नामक अवमर्शांग होता है।

छठे अक मे कंचुकी 'दिष्टया परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतम्' कथन से शत्रु द्वारा अपहृत राज्य की प्राप्ति हो गई किन्तु वासवदत्ता की सकुशल प्राप्ति अभी शेष है, यह कह कर नाटककार कथावस्तु को समेट रहा है। इस प्रकार अवमर्शांग सन्धि के आवश्यक अंग अपवाद, शक्ति, व्यवसाय, द्युति, प्रसंग, प्ररोचना तथा आदान यहाँ है।

निर्वहण सन्धि

रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो अब तक इधर-उधर बिखरे हुए हों, जब एक अर्थ के लिए एक साथ समेटे जाते हैं, या एकत्र किए जाते हैं, जहाँ कार्य और फलागम मिलते हैं अर्थात् प्रयोजन की पूर्ण सिद्धि होती है वहाँ निर्वहण सन्धि कही जाती है।

रूपक की कथावस्तु 'वासवदत्ता'-विषयक वार्ता जो अभी तक इधर-उधर अवकीर्ण थी, उदयन उसे केन्द्रीभूत करता हुआ बीज की उद्भावना करता है। उदयन[2]

---

१. किं ···· भाग्यैश्चलै ‍्हदवाप्त······इवाग्मि भीतः। स्वप्न० ६।४

२. महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि॥ स्वप्न० ६।११

वासवदत्ता की स्मृति में "नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य" की उद्भावना करता है क्योंकि वह उसे अपनी शिष्या और देहान्तर मे भी विस्मरण करने की कल्पना नही करता। इस कारण यहाँ बीज की उद्भावना की गई है।

विबोध— जहाँ नायक अब तक छिपे हुए अपने कार्य की पुन. खोज करने लगता है वहाँ विबोध नामक अग होता है।

छठे अक में ग्यारहवे श्लोक के वर्णन में तथा उसके समीप के गद्य मे वासवदत्ता की धात्री वासवदत्ता का चित्र राजा को देती है और पद्मावती उस चित्र में न्यासरूप मे आवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता की समानता देखकर उसकी प्रतिकृति का आभास समझकर मन में वासवदत्ता का सन्देह करती है और राजा भी आकृति सादृश्य के कारण सन्देह में हो जाता है।

ग्रथनम्—कार्य का उपक्षेप (उपसंहार) ग्रथन कहलाता है। यौगन्धरायण राजा से वासवदत्ता के अलग करने मे अपराध की स्वीकृति पर क्षमा याचना करता है और राजा उससे धरोहर के रूप मे पद्मावती के पास रखने में कारण को जानने का प्रयास करता है। इस प्रकार यहाँ कथावस्तु का ग्रथन विद्यमान है।

निर्णय—जब नायक आदि अपने द्वारा विचारित या सम्पादित कार्य के विषय में वर्णन करते है तो निर्णय नामक अंग होता है।

यौगन्धरायण[1] रानी वासवदत्ता के छिपाने मे राजा के हित तथा पद्मावती के पास धरोहर रूप में रखने मे पुष्पक भद्र आदि ज्योतिषियों की भविष्य वाणी में आस्था की योजना को प्रकट करता है।

परिभाषणम्—पात्रों मे परस्पर भाषण को परिभाषण कहते हैं।

छठे अक में पद्मावती, धात्री, राजा परस्पर वार्तालाप करते है।

प्रसाद—किसी पात्र के द्वारा नायक आदि का प्रसन्न करना पाया जाय वहाँ प्रसाद नामक अग होता है।

पद्मावती वासवदत्ता से 'तच्छीर्षेण प्रसादयामि' कहती है, अतः यहाँ प्रसाद है।

आनन्द—वांछित वस्तु की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है।

धात्री के द्वारा चित्रफलक को पाने पर राजा का महासेन के वाक्य को सौ राज्यो की प्राप्ति से भी बढकर मानने मे हर्ष का प्रकट करना।

पूर्वभावोपगूहन— नायकादि को अद्भुत वस्तु की प्राप्ति उपगूहन कहलाता है तथा कार्य के दर्शन को पूर्वभाव कहते है।

---

१. प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं।······परिशङ्कितं मे॥ स्वप्न० ६।१५
यौग० —पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति।
भा० ना० च० पृ० ५५

स्वप्नवासवदत्ता मे राजा के समक्ष वासवदत्ता तथा यौगन्धरायण के आने पर रूप की समानता के कारण जब राजा यौगन्धरायण तथा वासवदत्ता को पहचान लेता है और कहता है कि अरे! क्या यह यौगन्धरायण तथा ये महासेनपुत्री है तथा इस प्राप्ति को भी स्वप्न की भाँति कहता हुआ दृष्टिदोष का भय करता है।

कृति—लब्ध अर्थ के शमन करने को कृति कहते है। राजा उदयन[1] यौगन्धरायण के क्षमा माँगने पर उसे प्रसन्न करने के लिए कहता है कि हम तुम्हारे प्रयत्नो से ही अपने कार्य मे सफल हुए है।

भाषणम्—नायकादि के मान का व्यजक वाक्य जहाँ हो, वहाँ भाषण अंग होता है।

यौगन्धरायण[2] ने राजा द्वारा उपकृति प्रदर्शन के उपरान्त अपने को स्वामी के भाग्य के अनुगामी होने का वर्णन किया है।

प्रशस्ति—शुभ (कल्याण) की आशंसा प्रशस्ति कहलाती है। इस प्रशस्ति को भरतवाक्य भी कहते हैं। "देवद्विजनृपादीना प्रशस्तिः स्यात्प्रशंसनम्।"

नाटक के अन्त मे 'इमा ……राजसिंहः प्रशास्तु नः' कहकर प्रशस्ति का उद्घोष किया गया है।

समस्त कथावस्तु के पुनः दो विभाग हो जाते हैं, कुछ अश तो केवल सूच्य होते है उनकी केवल सूचना दी जाती है, उन्हे मञ्च पर दिखाया नही जाता। दूसरे अश दृश्य तथा श्रव्य होते है, उन्हे मञ्च पर दिखाया और सुनाया भी जाता है। मच पर दिखाये और सुनाये जाने वाले अंश को अर्थोपक्षेपक कहा गया है। वह विष्कम्भक, चूलिका, अकास्य, अकावतार तथा प्रवेश पाँच प्रकार का है।

वासवदत्ता में इनकी प्रयुक्तता

प्रवेशक—द्वितीयाकारम्भ में परिचारिकाओ तथा वासवदत्ता के साथ गेद से खेलती हुई पद्मावती के आने की सूचना दी गई है।

पुनः चतुर्थांक मे परिवार सहित पद्मावती तथा आवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता के आगमन की सूचना दी गई है।

पुन पचमांकारम्भ मे ही राजा के आगमन की सूचना प्रवेशक द्वारा दी गई है।

मिश्रविष्कम्भक का प्रयोग छठे अक के आरम्भ में राजा तथा विदूषक के आने की सूचना देने में होता है।

---

१. मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥ स्वप्न० ६.१८

२. यौग०—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम्। भा० ना० च० पृ० ५५

रस

इसमे शृंगार रस का प्राधान्य है। शृंगार के दोनो पक्षो का सुन्दर चित्रण है। विप्रलम्भ शृंगार सजीव एव मनोहारी रूप मे चित्रित किया गया है। अपनी प्रेयसी वासवदत्ता के दग्ध होने पर उदयन के दुःख-दैन्य के दृश्यो का अकन इसका उचित उदाहरण है। यथा —"इह तया सह हसितम्, इह तया सह कुपितम्, शयितम्, इत्येव विलपन्तम्" इत्यादि वर्णन मे चित्रण की मार्मिकता स्पृहणीय है। विप्रलम्भ शृंगार के साथ करुण रस का सुन्दर समन्वय इस नाटक मे मिलता है। उदयन की पुनः राज्यप्राप्ति के अन्तर्निहित लक्ष्य के कारण अर्थशृंगार भी विप्रलम्भ शृंगार का सहायक है। कवि ने वासवदत्ता के द्वारा पद्मावती के विवाह के लिए कौतुकमाला के गुम्फन मे अद्भुत व्यग्य का सन्निवेश करके रूपक मे सजीवता लाने का सफल प्रयास किया है तथा अविधवा करण, सपत्नी-मर्दन नामक औषधियो के सुगुम्फन मे अनुपम प्रतिभा दर्शाई है।

वृत्ति

इस नाटक मे भारती वृत्ति है।

अभिनेयता

नाटक की अभिनेयता मे कथावस्तु की योजना का स्थान प्रमुख है। कथा-वस्तु में भास ने उच्चतम साफल्य प्राप्त किया है। यथा नाटक की समाप्ति मे वासवदत्ता के पूर्ण परिचय तथा परिज्ञानहेतु चित्रफलक का देना, उसकी धात्री का आगमन, चरित्र की साक्षिणी उदयन की नवोढाहा पद्मावती स्वय तथा यौगन्धरायण की उपस्थिति नाटक की कथा की पूर्णता को द्योतित करते है। यौगन्धरायण का अपूर्व त्याग, वासवदत्ता की अपने प्रिय की हितैषणा ही नाटक का मूलाधार है। इस प्रकार के चित्रण मे अपनी सुख-सुविधा का सदैव के लिए बलिदान, सपत्नी का आह्वान, परिचारिका रूप मे कालयापन आदि अपूर्व घटनाओ से वासवदत्ता ही इस नाटक के पात्रों में अनुकरणीय आदर्श नारी जनसमूह के समक्ष उपस्थित होती है। अभिनेयता के लिए नाटक की द्रुत गति आवश्यक है। वह भी इस नाटक मे पूर्ण-रूपेण प्राप्त होती है। नाटक का नायक उदयन उत्तम चरित्र का राजा है, वह हर्ष की रत्नावली नाटिका के नायक के समान विलासी तथा अदक्ष नहीं है। भास ने इस नाटक मे पात्रो का सुयोजन उनके वर्णनो का उपयुक्त विस्तार, तथा चित्रण की सुगमता और दृश्यो के साधारणीकरण द्वारा इसको पूर्णतया अभिनेय बनाने में सफलता प्राप्त की है।

नाटकीय कथावस्तु की तीव्रगति दर्शको एवं पाठको की कौतूहल वृत्ति को सजग और सचेष्ट रखने के लिए "निष्क्रम्य प्रविश्य" की अभिनव योजना अभिनेयता

से विदलित अवस्थाओं मे शान्ति प्रदान करने के लिए भाग्य को चक्र के अरे के समान उन्नत और अवनत होता हुआ अंकित किया है। इसी नाटक मे कष्ट की स्थिति मे रोकर उऋण होने तथा सुख की अनुभूति करने का विधान है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[1] मे उदयन के निकल जाने पर जनजीवन-सुलभ सदुक्ति द्वारा भावों को व्यक्त किया गया है। जैसे रत्न को ले जाने पर कोई व्यक्ति यदि रिक्त पात्र की रक्षा करे तो वह व्यर्थ ही है तथा चारुदत्त[2] मे चौरकर्म मे मनुष्य को अपने कर्म पर स्वय ही सशंकित होता हुआ अंकित किया है। कर्णभार[3] में कर्ण से रण की चरितार्थता मे सन्देश गाम्भीर्य की झलक आभासित होती है।

शैली की मौलिकता में पद्य की अन्तिम पक्ति की रचना एक विशेष प्रकार के भाषा-प्रवाह को लेकर उपस्थित होती है। अविमारक[4] मे स्वयं अविमारक कुरंगी के विषय मे संकेत की इच्छा करने अथवा न करने का वर्णन करता है। इसी नाटक मे प्रसन्न होकर हर्षित और मोहित[5] होने का वर्णन एक ही स्थल पर किया गया है। चारुदत्त[6] मे चौरकर्म के विषय मे सज्जलक चोरी भी करता है और निन्दा भी। प्रतिमा नाटक में राम[7] ऐसे धर्म को करना चाहते है जो किसी राजा ने नही किया हो। प्रतिमा मे ही भर्तृद्रोह[8] के कारण माता को अमाता तथा वासवदत्ता नाटक मे भर्ता के स्नेह के कारण दग्धा स्त्री को भी अदग्धा कहा गया है। प्रतिमा नाटक मे ही भरत[9] अपने जाने और रुकने मे सुन्दर प्रकार की उक्ति कहते है इसी प्रकार पञ्चरात्र[10] में राजा अभिमन्यु को जाने अथवा ठहरने का विधान करता है।

इनकी ओजस्विनी वाणी अपनी घोषणा का रव उच्च स्वर से उद्-घोषित करती है। जिसमे हृदय की शुद्धता, अनुभूति तथा वस्तुस्थिति की स्पष्टता स्वभावतः बोधगम्य हो जाती है। इनकी उक्ति[11] कलत्रहीन पुरुष के लिए कान्तार-प्रवेश तथा धार्मिक व्यक्तियों की मृत्यु के विषय मे पश्चात्ताप के अभाव को प्रकट करती है।

---

१. नीते रत्ने भाजने को निरोधः। प्रतिज्ञा० ४।११
२. स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः। चारु० ४।६
३. हतेषु देहेषु गुणाः धरन्ते। कर्ण १।१७
४. संकेतमिच्छति च नेच्छति चाभिगन्तुम्। अवि० ३।८
५. हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा। अवि० ३।१७
६. यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च। चारु० ३।१४
७. करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्। १।२४
८. भर्तृद्रोहादस्तु माताप्यमाता। ३।१८
   भर्तृस्नेहात सा हि दग्धाप्यदग्धा। स्वप्न १।१३
९. भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति। प्रतिमा० ४।५
१०. किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठति यात्विति। पंच० २।५८
११. भो सुखं खलु निष्कलत्राणां कान्तारप्रवेशः···संचितधर्माणां मृत्युः। भा० ना० च० पृ० १०१

उपमा-साम्य तथा कतिपय मौलिक उपमाओं का निदर्शन—

उपमा के क्षेत्र में यद्यपि कालिदास की प्रसिद्धि साहित्य मे सर्वमान्य है किन्तु काव्य के आरम्भिक काल को दृष्टि मे रखकर जिन सरल, सुबोध उपमाओ का उपयोग भास ने किया है वे साधारण मानवों के लिए शीघ्र ही अवगत करने तथा अनुभूति करने मे अत्यन्त सहायक होती है। स्वप्नवासवदत्तम्[1] मे विदूषक के आकाश मे उड़ती हुई सारसपंक्ति को देखने का संकेत करने पर राजा ने उसे आकाश को दो भागो मे विभक्त करती हुई बतलाया है। इसी प्रकार का वर्णन अविमारक[2] सूर्यास्त होने पर सान्ध्य अरुणिमा से आकाश को दो भागो मे विभक्त कहता है तथा अविमारक[3] ही अपने हृदय मे सुख और दुःख की अनुभूति के कारण शरीर को दो भागों मे विभक्त हुआ बतलाता है। बालचरित[4] में वसुदेव देवकी को दो अंगो मे विभक्त जैसा वर्णन करते हैं। अभिषेक[5] मे भी राम सागर को दो भागो में विभक्त जैसा ही वर्णन करते हैं।

भास की मौलिक उपमा यही है कि इन्होंने नायक को चन्द्रमा के समान बतलाकर कष्ट पहुँचाने वाले को राहु के समान बतलाया है जिसका वर्णन कई नाटकों मे इस प्रकार मिलता है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे यौगन्धरायण उदयन के मुक्ति-हेतु राहु से ग्रसित चन्द्रमा की भाँति उदयन को वर्णित करता है, ऐसा कई स्थलों पर प्राप्य है। भास की उपमाये कठिन कार्यो को मन्दर पर्वत[6] को हाथ से उठाने के समान तथा मृग के द्वारा[7] सिंह के विनाश की समानता को प्रकट करती हुई वर्णित की गई है। इन्होंने दशरथ की उपमा जीर्ण गजेन्द्र की भाँति प्रयुक्त की है। कई स्थलो पर स्कन्द द्वारा क्रौंच वध की उपमा दर्शनीय है। अन्धकार का वर्णन अपूर्व ढग से किया गया है। सान्ध्य अरुणिमा[8] मे आकाश को अर्द्धनारीश्वर की उपमा की है।

---

१. निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम ॥ स्वप्न० ४।२

२. द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम ॥ अवि० २ १२

३. महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥ अवि० ४.२१

४. हृदयेनेह तत्रांगैर्द्विधामूर्तेव गच्छति ।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता ॥ बाल० १।१३

५. विभीषण—देव ! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः । भा० ना० च० पृ० ३५१

६. बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती । बाल० १।६
व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य । प्रतिज्ञा २।९

७. सिंह-दर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते । अभिषेक २।१३
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते । अभि० ३।२०

८. पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता यात्यर्धनारीश्वर-रूपशोभाम् । अवि० २ १२
गर्भस्था इव मोह…अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् । अवि० ३।३
तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः…प्लवतरणीय इवायमन्धकारः । अवि० ३।४

परिसर्प—यौगन्धरायण साधु के वेष को राजा के छुड़ाने तथा अपने को गुप्त रूप मे रखने का वर्णन करके नष्ट हुए बीज का अन्वेषण कर रहा है, अतः इस स्थल पर परिसर्प नामक सन्ध्यग है।

प्रगमनम्—राजा तथा कचुकी का उदयन के गृहीत होने के समाचार का वार्तालाप प्रगमन के अन्तर्गत है।

पुष्पम्—राजा उदयन के पकडे जाने पर वत्सराज के विषय मे महासेन कहता है कि मेरे शत्रु को स्वच्छन्दता से मेरे पुर-निवासी देखे, इत्यादि वाक्यो द्वारा भी यौगन्धरायण की भावी प्रतिज्ञा का आभास मिलने से पुष्पम् हो सकता है।

नर्म—तृतीयांक के आरम्भ मे विदूषक का मोदक सम्बन्धी वार्तालाप नर्म है।

उपन्यास—राजा प्रद्योत उदयन की सुख-सुविधा के लिए कञ्चुकी को "काल सवादिना स्तवेनार्च्य" कहकर हर्ष का प्रदर्शन करता है। यह उपन्यास नामक सन्ध्यग की कोटि मे आता है।

वज्र—राजा प्रद्योत का देवी से उदयन के विषय मे "दर्पयत्येन" इत्यादि कथन वाक्यो द्वारा उसके गन्धर्व शिक्षण ज्ञान के विषय मे रोष प्रकट करता है।

गर्भ सन्धि

तृतीयांकारम्भ मे विदूषक तथा यौगन्धरायण उदयन के गृहीत हो जाने से बीज के नष्ट रूप के अन्वेषण मे तत्पर प्रतीत होते है, इस सन्धि में प्राप्त्याशा का होना आवश्यक है. प्रकरी का नहीं।

अभूताहरणम्—विदूषक वसन्तक का डिण्डिक वेष मे तथा यौगन्धरायण का उन्मत्तक के वेष मे मोदक, मोदक कह कर व्यस्त रखना अपने प्राप्तव्य का प्रयत्न अभूताहरण नामक अग के अन्तर्गत आता है।

मार्ग—यौगन्धरायण विदूषक से राजा उदयन की शृखलाओ की ध्वनि की तुलना पूजा के समय के घण्टो के साथ करता है तथा अगले दिन के लिए हाथी के द्वारा नगर निर्गमन की वेला की स्मृति दिलाने मे वस्तु-स्थिति का संकीर्तन किया जाने से यहाँ मार्ग नामक सन्ध्यग है।

संग्रह—विदूषक का यौगन्धरायण से शिवक नामक परिरक्षक को प्रसन्न करने की वार्ता करना सग्रह नामक सन्ध्यग है।

रूपम्—वसन्तक का यौगन्धरायण के राजा उदयन को छुडाने के प्रयत्न में तर्क-वितर्कमय वाक्य रूपक सन्ध्यग की कोटि मे आता है।

अधिवलम्—विदूषक तथा यौगन्धरायण का वासवदत्ता विषयक प्रेम वार्ता का भाव जान लेना अधिवलम् है।

तोटक—यौगन्धरायण का वसन्तक से राजा उदयन की प्रेमवार्ता पर कटाक्ष करना तोटक के अन्तर्गत आता है।

आक्षेप—विदूषक उदयन का समाचार यौगन्धरायण ... है जिसमे उसकी मुक्ति की चिन्ता व्यक्त की गई है जो कि नाटक का बीज है, अत उसका उद्भेद होने से आक्षेप नामक सन्ध्यग हुआ।

अवमर्श सन्धि

यौगन्धरायण विदूषक से राजा उदयन के असमय मे राग मे लिप्त होने की आलोचना मे फलप्राप्ति के विषय मे पर्यालोचना करने से संदिग्ध मन है और वह फलप्राप्ति की आकाक्षा करता है, अतः यहाँ अवमर्श सन्धि है।

अपवाद—यौगन्धरायण द्वारा राजा के दोषो का (आख्यान) इसके अन्तर्गत आता है।

प्ररोचना—विदूषक का तृतीयाक मे भावी घटना को सिद्ध पुरुष की भाँति कहना प्ररोचना के अन्तर्गत आता है।

व्यवसाय—यौगन्धरायण का "सुभद्रामिव गाण्डीवी....नास्मि यौगन्धरायण." कहना जिसमें अर्जुन की भाँति सुभद्राहरण के समान यदि वह राजा उदयन को नही छोडता है तो वह यौगन्धरायण नहीं है, अपने शौर्य के प्रदर्शन के कारण व्यवसाय नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

विकत्थना—यौगन्धरायण[1] का राजा तथा पद्मावती को हरने की पुनः प्रतिज्ञा करना आत्मश्लाघा होने के कारण विकत्थना कहलाता है।

आदानम्-नाटककार विभिन्न पात्रो द्वारा कथावस्तु को सगृहीत करने की दृष्टि से "भिद्यतामरिसघातः स्वकार्यमनुष्ठीयताम्" शत्रुओ का सघ नाश को प्राप्त हो और हम अपने कार्य को करे, इस प्रकार का कहना नाटक की कथावस्तु को सगृहीत करते हुए लक्ष्य की ओर अग्रसर होने से आदानम् नामक सन्ध्यग का बोधक होता है।

निर्वहण सन्धि

चतुर्थाक में भट तथा गात्रसेवक का वार्तालाप रूपक की कथावस्तु को एक अर्थ के लिए एकत्र करता है। अतः यहाँ निर्वहण सन्धि है।

सन्धि—भट के द्वारा वत्सराज का वासवदत्ता को लेकर हाथी के बहाने निकल जाना वर्णित है, इस कथन से बीज की उद्भावना की गई है, अतः यहाँ सन्धि नामक सन्ध्यग का बोध होता है।

विबोध—रूपक का नायक यौगन्धरायण अपने स्वामी की भक्ति प्रदर्शन मे कहता है कि जो व्यक्ति राजा के लिए उत्सर्ग नहीं करते वे नरकगामी होते है, अतः इस कथन से उसका अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होना विबोध है।

---

१. यौग०—यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः॥ प्रतिज्ञा० ३।९

ग्रथन—नाटककार यौगन्धरायण[1] के मुख से राजा उदयन का साल वृक्षों मे रचित कृत्रिम हाथी द्वारा गृहीत होने का वृत्तान्त पुनः स्मरण कराकर तथा पहले छद्म के प्रतिकार मे अन्य छद्म उचित होगा ऐसा कहकर रूपक की कथावस्तु को समाहृत कर रहा है कि अब शीघ्र ही उसकी प्रतिकार-क्रिया सम्भव है इस कारण से यहाँ ग्रथन नामक सन्ध्यग हुआ ।

भाषण—भरत रोहक तथा यौगन्धरायण का परस्पर "दिष्ट्या भवान् वर्धते" कथन दोनो के सम्मान को भाषण के अन्तर्गत रख देता है ।

कृति—यौगन्धरायण भट से उदयन के निकल जाने के समय की अनवधानता का वर्णन करता है और अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति मे हर्षित होकर "अहो हास्याभिधानम्" तथा "नीते रत्ने भाजने को निरोधः" कहता है । इस कथन में कृति नामक सन्ध्यग है ।

प्रसाद—कञ्चुकी के कथन मे महासेन की अगारवती के प्रति उक्ति कि "हर्ष के समय क्यो कष्ट का अनुभव करती हो" प्रसाद के अन्तर्गत आती है ।

वराप्ति—भरत राहक का यौगन्धरायण से यह पूछना कि "महासेन तुम्हारा और क्या हित करे" वराप्ति नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत आता है ।

प्रशस्ति—कवि भरतवाक्य में शत्रु राजा के चक्र के शमन तथा राजसिह के शासन की कामना करता है । अतः यहाँ प्रशस्ति है ।

कथावस्तु— गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित

अक—चार

नायक—यौगन्धरायण

रस—वीर रस

वृत्ति—आरभटी

प्रवेशक—चतुर्थाक मे दो व्यक्तियो के आने की घोषणा करता है ।

विष्कम्भक—द्वितीयाक के आरम्भ में राजा के सपरिवार आने को कहता है ।

अविमारक

कथावस्तु—गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित

अक—छः

नायक—अविमारक

नायिका—कुरगी

रस—शृगार

वृत्ति—कौशिकी

---

१. या सा मल्लिकसालवृक्षरचिता · · · नैवापराधो मम । प्रतिज्ञा० ४।१६

'नान्द्यंते तत. प्रविशति सूत्रधार.' के अनन्तर प्रस्तुत नाटक का आरम्भ भगवान् नारायण की स्तुति से होता है जिसमें भगवान् के वाराहावतार रूप मे पृथ्वी के उद्धार का वर्णन है।

मुख सन्धि

नाटककार का उद्देश्य अविमारक तथा कुरगी का विवाह सम्पन्न करना है। नाट्य रस की परिणति मे नाटक का अर्थ विविध बाधाओ को उपस्थित करता हुआ सघर्ष सकुलता से सोत्साह निस्तीर्ण कर अविमारक के साफल्य का सफल अकन करता है। अत कन्या के विवाह की चिन्ता से राजा चिन्तित है यही नाटक का बीज है।

उपक्षेप—स्थापना के अनन्तर सपरिवार राजा[1] अपने राज्य में ब्राह्मणों को सतुष्ट कर चुका है तथा यज्ञ सम्पन्न करने पर भी उसके मन मे उल्लास नही है और वह कन्या के विवाह के विषय मे चिन्तित है, अतः इस स्थल पर उपक्षेप है।

परिकर—राजा देवी से कहता है कि कुरगी के विवाह-हेतु अनेक राजदूत आए है किन्तु विवाह अनेक परीक्षणों के उपरान्त किया जाना चाहिए। अतः यहाँ कुरगी के विवाह रूपी बीज का बाहुल्य पाया जाने से परिकर नामक सन्ध्यग है।

परिन्यास—कौञ्जायन[2] ने कुरंगी के अभियान पर हाथी के आक्रमण से रक्षा के समाचार को देने मे अविमारक को प्रकाश में ला दिया। अतः विवाहरूपी बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की परिपक्वावस्था दर्शाने से परिन्यास हुआ।

युक्ति—राजा के द्वारा कौञ्जायन से यह पूछने पर कि कुरगी को किसने सनाथ किया, पात्रो के अभीष्ट तथ्यों का समर्थन हुआ तथा राजा के इस कथन से कि वह किस वश का है, अविमारक के विषय मे उत्सुकता की प्राप्ति हुई। अत. पात्रों के इच्छित तथ्यो के समर्थन से यहाँ युक्ति नामक सन्ध्यग है।

विलोभनम्—कौञ्जायन के द्वारा अविमारक को दर्शनीय, अनहकारी, शूर तथा तरुण आदि कहने से गुणों का संकीर्तन वर्णित होने से यहाँ विलोभन है।

विधानम्—कौञ्जायन के द्वारा राजा (अन्त्यजः) ऐसा सुनकर दुःखित होता है तथा पृ०[3] ११४ पर भूतिक भी शान्त शान्त पापम् कह कर कष्ट को प्रकट करता है। अतः दुःखोत्पत्ति के कारण यहाँ विधानम् नामक सन्ध्यग हुआ।

परिभाव—भूतिक आश्चर्य के साथ निम्नांकित वाक्य कहता है। "सविस्मितम् अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्या." कथन मे आश्चर्य की भावना प्रकट होने से परिभाव नामक सन्ध्यग का बोध होता है।

करणम्—भूतिक का कुरगी के विवाह के निश्चय मे जातिविषयक शास्त्रीय

१. "कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम्"। अवि० १।२

२. स्वामिसचिवना वक्तव्यं जनयितुकाम इवैकपुरुषविशेष प्रकाशयितु"। भा० ना० च० पृ० ११२

३. भा० ना० च०

परम्पराविषयक चिन्ता की उपेक्षा करना रूपक की कथा के अनुरूप प्रकृत कार्य में प्रगति प्रदायक होने के कारण यहाँ करण नामक तत्व है।

उद्भेद—भूतिक[1] के कथन में "कि दीर्घसूत्रता को छोड़कर अपना कार्य सिद्ध करो" इतना कहने पर तथा राजा के द्वारा अपने वचन का समर्थन पाने में इस स्थल पर अब तक छिपे हुए कुरंगी, अविमारक विवाह रूपी गूढ बीज को प्रकट किया गया है, इस कारण से यहाँ उद्भेद नामक सन्ध्यंग है।

भेद—राजा भूतिक से काशीराज के दूत के प्रति क्या करना है, कहता है। इसके उत्तर मे भूतिक, अनेक राजदूत आये हैं, और आयेंगे, कह कर अविमारक के प्रति राजा के ध्यान को आकृष्ट करता है और राजा भी कन्या के पितृत्व को बहुवन्दनीय कहता हुआ सुनता है। इस कथन से अविमारक के प्रति प्रोत्साहन पाया जाने से भेद नामक सन्ध्यंग हुआ।

प्रतिमुख सन्धि

कौंजायन राजा से कुरंगी के विवाह के लिए बहुत से क्षत्रियों में अपने सम्बन्ध के योग्य विचारने को कहता है और सौवीर राजा के द्वारा भी अपने पुत्र के कारण दूत भेजने का वर्णन करता है तथा बलाबल के विचार में राजा को स्वयं निश्चय करने के लिए प्रमाण मानता है। राजा भी 'तुम्हारा कहना ठीक है' ऐसा कहकर कौंजायन के कथन का समर्थन करता है। इस कारण यहाँ बीज का कुछ-कुछ दिखाई देना और कुछ न दिखाई देना प्रतिमुख सन्धि का विषय है, इसमे बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति और प्रयत्न नामक अवस्था व्याप्त है।

परिसर्प—राजा भूतिक से कहता है कि सौवीरेन्द्र ने अपना दूत नहीं भेजा। इसके उत्तर में भूतिक अपना सन्देह प्रकट करता है कौञ्जायन भी विवाह को बहुमुख कहकर प्रयत्न की चेष्टा बतलाता है। इस स्थल पर इस कथन के द्वारा बीज की खोज होने से परिसर्प नामक सन्ध्यंग है।

विधूतम्—भूतिक राजा से कहता है कि स्नान का समय बीत रहा है, देवी प्रतीक्षा में हैं, इसके उत्तर में राजा राज्य और रोष को प्रच्छन्न रखने के लिए कहता है—"अहो महद्भारो राज्य नाम' इस उक्ति में अरति का भाव प्रकट होता है। अतः यहाँ विधूत है।

नर्म—विदूषक कुरंगी दर्शन के उपरान्त अविमारक की स्थिति और ही प्रकार की हो गई है, कहता है तथा अपने लिए अक्षर और अर्थ जानने वाला ब्राह्मण मिलना कठिन है, इस प्रकार के कथन में परिहास वचन होने के कारण नर्म सन्ध्यंग है।

१. सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम्... साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः।
राजा—युक्तमभिहितं भूतिकेन। भा० ना० च० पृ० ११५

प्रगमनम्—धात्री तथा नलिनिका परस्पर वार्तालाप में अविमारक को अकुलीन तथा अपने वश को छिपाने के प्रसंग मे बीज साहाय्य सम्बन्धी वार्तालाप के कारण प्रगमन नामक सन्ध्यंग है।

पुष्पम्—नेपथ्य में किसी के द्वारा अविमारक के रूप, गुण युक्त होने पर कुलगत शंका छोडकर स्वकार्य सिद्धि हेतु प्रेरणा देने में विशेष वाक्यो से बीज के उद्घाटन होने के कारण इस स्थल में पुष्प नामक सन्ध्यग हुआ।

उपन्यास—नलिनिका के कथन में कुल सन्देह दूर हुआ, वह पुरुष भी धन्य है जिसके कारण कुरगी इतनी पीडित है, इतनी ही नही स्वय वह पुरुष भी कुरंगी के कारण अत्यन्त कष्ट में है, इत्यादि वाक्य हेतुप्रदर्शक होने मे इस स्थल पर उपन्यास नामक सन्ध्यंग है।

गर्भ सन्धि

अभूताहरणम्—धात्री तथा नलिनिका का गुप्त रूप मे अविमारक के निवास-स्थान पर जाना तथा परस्पर वार्तालाप करने मे अभूताहरणम् नामक सन्ध्यग है।

मार्ग—धात्री[1] द्वारा अविमारक को कुरगी की प्राप्ति का कीर्तन तथा मार्ग निर्दिष्ट किया जाना तथा धात्री नायक एवं नायिका की हितैषिणी है। अत वार्तालाप में तत्वार्थ निवेदन होने से उक्त स्थल पर मार्ग नामक गर्भांग है।

रूपम्—विघ्न के वैविध्य के आभास मे हमारा इस कार्य मे कौन विश्वास करेगा, इत्यादि कथन से अविमारक का तर्क-वितर्क प्रकट होने से यहाँ रूपम् है।

अनुमान—विदूषक अविमारक से कहता है कि तुम किस उपाय से वहाँ जाकर प्राणी को प्राप्त करना चाहते हो, कुन्तीभोज के मत्री विषम चरित्र वाले हैं, इस प्रकार के कथन मे अनुमान नामक सन्ध्यंग का बोध होता है।

तोटक—अविमारक विदूषक को यह कहकर फटकारता है कि तुम शास्त्र को नहीं जानते, इत्यादि कथन मे रोष प्रकट होने के कारण तोटक है।

अधिवलम्—विदूषक अविमारक के वार्तालाप मे उसके मन के भावों को समझ जाता है और कहता है क्या ऋषिशाप समाप्त हो गया, इस स्थल पर मन के भावो का बोध होने से अधिवलम् नामक सन्ध्यग है।

अवमर्श सन्धि—इस स्थल पर व्यसन द्वारा (अविमारक को कुरगी के मिलने के बिना अशान्ति अनुभव) अवमर्श होने से फलप्राप्ति की पर्यालोचना की गई है, अतः अवमर्श सन्धि है।

विद्रव—अविमारक का कुरगी के वियोग मे अग्नि मे जलना तथा मरुत्प्रपात को सब सिद्धियों का साधक कहना तथा कुरगी का अपने उत्तरीय से मरने का प्रयास

---

१. धात्री - आर्येण योग इति, तत्रापि कोऽपि जनोऽधिकतर योग। मा० ना० चा० पृ० १२६

करना, नायक और नायिका दोनों के इस प्रकार प्रयत्न के कारण यहाँ विद्रव नामक सन्ध्यंग उपयुक्त ठहरता है।

आदानम्—छठे अंक के आरम्भ मे धात्री के कथन 'अथ चेदानीं काशिराज पुत्री जयवर्मा····राजकुलं प्रविष्टः' कर देने पर नाटककार कथा के कार्य को सगृहीत करना है, अतः यहाँ आदानम् नामक सन्ध्यग है।

निर्वहण सन्धि

सन्धि—नाटककार नलिनिका के द्वारा कहलाता है कि सौवीरराज के मंत्रियों ने दूत भेजे है कि हमारे स्वामी (अविमारक) प्रच्छन्न रूप से नगर में रहते हैं। इस कथन में अविमारक की प्राप्ति हो जाने से विवाह की निकटता रूपी बीज की उद्भावना की गई है, अतः यहाँ सन्धि नामक सन्ध्यग है।

उपक्षेप—अविमारक के निवास-स्थान की खोज आरम्भ होती है तथा सौवीरराज भी स्नेह से विह्वल है। इन दोनों स्थलों में उपक्षेप नामक अग है।

परिभाषण—कुन्तीभोज सौवीरराज आदि पात्रों का परस्पर आलाप परिभाषण है।

प्रसाद—सौवीरराज[1] द्वारा शाप से क्षुभित होकर ऋषि का बाद में प्रसन्न होने का वर्णन प्रसाद नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

भाषणम्—कुन्तीभोज की सौवीरराज के प्रति 'दिष्ट्या भवान् वर्धते' वाली उक्ति में मानवृद्धि होने से भाषण नामक सन्ध्यग का बोध होता है।

पूर्वभावोपगूहन—नारद के इस कथन मे कि सौवीरराज तुम्हारे गृह मे अविमारक के जाने से कुरगी का सम्बन्ध हुआ है, सौवीरराज लज्जित हो जाता है।

इस लज्जा में उसका आश्चर्य प्रकट होने से पूर्वभाव तथा नारद के द्वारा 'दत्ता सा विधिना ···मायया पुनः' कहने पर कार्य का दर्शन होने से उपगूहन नामक सन्ध्यंग हुआ।

वराप्ति—नारद कुन्तीभोज से कि ते भूयः प्रियमुपहरामि' के द्वारा अभीष्ट कार्यसिद्धि तथा कार्य का उपसहार करता है, इस कारण यहाँ वराप्ति नामक सन्ध्यग उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रशस्ति—नाटककार सम्पूर्ण पृथ्वी पर राजसिह के शासन तथा शत्रु के चक्र शमन की कामना भरतवाक्य मे करता है।

---

१. सौवीर०—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा मया सुचिरमनुनीयमानः।

भा० ना० च० पृ० १७८

चारुदत्त

कथावस्तु	—	गुणाढ्य की वृहत्कथा पर आधारित
अंक	—	चार
नायक	—	चारुदत्त
नायिका	—	वसन्तसेना
रस	—	शृगार तथा करुण
वृत्ति	—	कौशिकी
सन्धि	—	पंच सन्धि किन्तु पचम के अंग अल्प सख्या में।

मुख सन्धि

प्रस्तुत प्रकरण में सूत्रधार का कथन 'कुत्र न खलु दरिद्रब्राह्मणं लभेय' में चारुदत्त की प्राप्ति हेतु बीज का वपन किया गया है।

परिकर—विदूषक का 'योऽहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गेहे' इत्यादि कथन चारुदत्त के घर की ओर सकेत करता है। यहाँ नाटक के बीजरूप का बाहुल्य है अतः इस स्थल पर परिकर नामक सन्ध्यंग है।

परिन्यास—विदूषक के कथन से चारुदत्त के इसी ओर आगमन के सन्देश मे परिकर की सिद्धि की परिपक्वावस्था होने से यहाँ परिन्यास नामक अग है।

विधानम्—नायक का दीर्घ श्वास लेकर 'भोः दारिद्रयं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासमरणम्' कहने में कष्ट की अनुभूति होने से इस स्थल पर विधान नामक सन्ध्यग है।

करणम्– रूपक के अनुरूप कार्य की प्रगति में गणिका वसन्तसेना का आर्य चारुदत्त के शील से ही सन्तुष्ट होकर उस पर मुग्ध हो जाना, अपने को समर्पित करना करणम् नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

उद्भेद—शकार[1] ने अपने कथन द्वारा वसन्तसेना के चारुदत्त के प्रति भावरूपी बीज का उद्भेद वसन्तसेना की चारुदत्त के प्रति इच्छा से कर दिया है, अत यहाँ उद्भेद नामक अग है।

भेद—गणिका का यह कथन कि भगवान् की कृपा से शत्रुओ के निरोध के कारण मैं अपने प्रियजन के समीप आ गई, वचन से बीज के प्रति प्रोत्साहन पाया जाने के कारण यहाँ भेद नामक सन्ध्यग है।

---

१. शकार—अ। कामदेवानुयानात् प्रभृति चारुदत्तवद्धकं कामयत एपा।
भा० ना० च० पृ० २०३

प्रतिमुख सन्धि

विदूषक का नायक के प्रति गणिका वसन्तसेना के विचारो को बीज के लक्ष्यालक्ष्य रूप मे फूट पडने के कारण प्रतिमुख सन्धि हो गई ।

परिसर्प— वसन्तसेना के प्रति चारुदत्त के हृदय की पीडा की अनुभूति का वर्णन अलक्ष्य बीज का पुनः अन्वेषण करता है, इस कारण यहाँ परिसर्प नामक सन्ध्यग है।

नर्म—गणिका की उक्ति 'आर्य शीर्षेण प्रसादयामि' में परिहास की विद्यमानता के कारण तथा विदूषक के गणिका के प्रति दीपिका की भान्ति स्नेह-रहित हो गई, कथन नर्म सन्ध्यग के अन्तर्गत आता है ।

उपन्यास—गणिका के चारुदत्त के प्रति इस कथन से कि मैं आपके द्वारा रक्षित होकर घर जाना चाहती हूँ, मे आर्य की प्रसन्नता प्रकट होने से उपन्यास नामक सन्ध्यग प्राप्त होता है ।

पुष्पम्—गणिका वसन्तसेना सार्थवाह चारुदत्त का नाम लेती है । चेटी उसके उत्तर मे वही चारुदत्त जिसने तुझ शरणागत की रक्षा की, कह कर विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन होने से पुष्प नामक सन्ध्यग है ।

विलास—गणिका 'रन्तुमिच्छामि न सेवितुम्' कहकर विलास प्रकट करती है ।

गर्भ सन्धि

द्वितीय अक मे चेटी द्वारा 'हा धिक्, दरिद्रः खलु सः' कथन मे कथा के बीज के नष्ट हो जाने पर पुनः गणिका द्वारा 'अतः खलु कामयते' कथन में पुन. बीज का अन्वेषण किया जाने के कारण इस स्थल पर गर्भ नामक सन्धि है ।

मार्ग—गणिका का चेटी से चारुदत्त के प्रति 'नन्वहं त कामये' कथन मे मार्ग नामक सन्ध्यंग है ।

रूपम्—चारुदत्त की प्राप्ति की सम्भावना में गणिका तथा चेटी के तर्क-वितर्कमय वाक्यों मे रूप नामक सन्ध्यंग है ।

क्रमः—गणिका का अपने प्रियतम चारुदत्त (अभीष्ट वस्तु) के विपय मे सम्वाहक कथन से चिन्तन किया गया होने के कारण यहाँ क्रम नामक अग है ।

अधिवलम्—गणिका तथा चेटी के वार्तालाप मे गणिका द्वारा 'केनापि साधुना पुरुषेण भवितव्यम्' कहना उसके मन के भावों को प्रकट करता है अतः गणिका के भावों को चारुदत्त के प्रति प्रेम की भावना को समझने के कारण इस स्थल पर अधिवलम् नामक सन्ध्यंग है ।

आक्षेप—गणिका[1] का चारुदत्त को देखना बीज का विशेष रूप से प्रकट करना कहा जा सकता है, अतः इस स्थल पर आक्षेप नामक सन्ध्यंग है ।

---

१. गणिका—एष हि-स आर्यचारुदत्त एव प्रावारको गच्छति, पश्यामः ।
भा० ना० च० पृ० २२३

अवमर्श सन्धि

तृतीयांक के आरम्भ मे विदूषक तथा नायक परस्पर आलाप करते है। निंद्रा का न आना और भयभीत होकर विदूषक का स्वर्ण-भांड को दे देना ही अवमर्श सन्धि के अन्तर्गत है क्योंकि इसी के द्वारा बीज को प्रकट किया गया है।

अपवाद—नायक[1] वीणा के दोषों का वर्णन करता है अतः यहाँ अपवाद की सम्भावना की जा सकती है।

प्ररोचना—सज्जलक[2] का यज्ञोपवीत के प्रति कथन भावी सन्धि-विच्छेद के द्वारा चौर कर्म को प्रकट करता है। इस कारण यहाँ प्ररोचना नामक सन्ध्यग हो सकता है।

आदानम्—इस स्थल पर नाटककार सुवर्ण-भाण्ड को शपथ के द्वारा विदूषक[3] के देने के कथन से रूपक की कथावस्तु के कार्य को सगृहीत करता है इस कारण यहाँ आदान अंग है।

निर्वहण सन्धि

नाटककार स्वर्णभाण्ड के अपहृत हो जाने पर चारुदत्त[4] के द्वारा वसन्तसेना के समीप मुक्तावली को भेजता है। वसन्तक मुक्तावली को लेकर वसन्तसेना के पास जाता है। इस कथन से बीज से युक्त मुख आदि अर्थ को एकत्र करने के कारण ही यहाँ निर्वहण नामक सन्ध्यंग प्राप्त होता है।

सन्धि—गणिका[5] वसन्तसेना चारुदत्त की प्राप्ति के विषय में उसके अभिसार के उपरान्त ही अपने मण्डन को कहती है कि इस कथन में चारुदत्त की प्राप्ति रूपी बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक सन्ध्यग है।

विबोध—गणिका चेटी से अलंकारों को लेकर चारुदत्त के साथ अभिसार को कहती है, इस कथन में चारुदत्त की प्राप्ति रूपी बीज का अन्वेषण होने से विबोध नामक अग है।

यह प्रकरण अपूर्ण प्रतीत होता है अतः इसमें अंग अल्प ही हैं।

---

१. नायकः—उत्कण्ठितस्य'''स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी। चा० ३।१

२. सज्जलकः—नन्विदं दिवा ब्रह्मसूत्रं रात्रौ कर्मसूत्रं भविष्यति। चा० ३।१० से पूर्व

३. विदूषकः—भोश्चारुदत्त ''ब्रह्मत्वेन शापितोऽसि, यदि न गृह्णासि। चा० ३।१४ से पूर्व

४. नायकः—वयस्य, इमा मुक्तावली ''सकाशं गच्छ। चारुदत्त ३।१८ से पूर्व

५. गणिक —भणाम्यां'''यदार्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यः। भा० ना० च० पृ० २३८

प्रतिमा

कथावस्तु	—	रामायण से उद्धृत
अङ्क	—	सात
सन्धि	—	पञ्च सन्धि समन्वित
नायक	—	राम (धीरोदात्त)
		पताका नायक पीठमर्द भरत
नायिका	—	सीता
रस	—	करुण तथा वीर, किन्तु करुणरस का प्राधान्य
वृत्ति	—	कैशिकी

नाटक का इतिवृत्त प्रख्यात है, रामायण से उद्धृत राजर्षि वंशचरित्र है, दिव्याश्रय, अनेक विलास ऋद्धि आदि गुणगणो से मण्डित है। इस नाटक की कथा राम से सम्बन्धित है जिसमें सुख-दुःख का समन्वय है। कथा पर पौराणिक कथाओ का प्रभाव नही प्रतीत होता है। यह सूत्र तथा स्मृतिकाल से सम्बन्धित वर्णनो से प्रभावित है।

नाटककार 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' से नाटक का आरम्भ करके मुद्रालकार द्वारा भगवान् राम का स्तवन[1] करता है और भावी सृष्टियों मे जन्म लेने पर भी राम से रक्षा करने की कामना करता है। इस श्लोक मे सीता, सुमन्त्र, सुग्रीव, लक्ष्मण, रावण तथा विभीषण आदि पात्रो के नाम श्लिष्टत्वेन प्रयुक्त किये गए हैं। कवि शुद्ध वैष्णव परम्परा का पोषण करता है।

कवि की मौलिक कल्पना प्रतिमा का प्रसग रामायण आदि कथा-स्रोत ग्रन्थो मे उपलब्ध नही होता है। नाटक के नाम प्रतिमा से यह पुष्ट होता है कि कवि को इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की प्रतिमा मन्दिर की कल्पना अभीष्ट है। कनिष्क के समय से तो प्रतिमाओ की प्राप्ति के दृढ प्रमाण उपलब्ध होते है। उससे पूर्व बुद्ध की प्रतिमाओ तथा चैत्यो मे बुद्ध के जीवन की विभिन्न प्रतिमाओं के अकन शिलाओ पर यत्र-तत्र प्राप्त हुए है।

राम का राज्याभिषेक ही नाटकारम्भ मे दर्शाकर उसमे विघ्न प्रदर्शित कर वल्कल की घटना को मौलिक ढग से वर्णन करने में नाटकीय कला का प्रदर्शन किया है। राम का राज्याभिषेक नाटक का बीज है। पूर्व मे प्रतिमा मन्दिर की स्थापना हेतु राम का वनवास नाटककार को अभीष्ट है। इस कारण सीता के वल्कल धारण का प्रसंग बीज रूप मे उपक्षेप का कार्य करता है।

---

१. सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्॥
प्रतिमा० प्रथम श्लोक

मुख सन्धि

उपक्षेप—अवदातिका[1] वल्कल लेकर प्रवेश करती है और अपने मन में परिहास में लाए हुए इस वल्कल पर संकुचित होती है तथा लोभवश चुरायी हुई वस्तुओं के प्रति भय प्रकट करती है। इस वर्णन में कैकेयी द्वारा राम के राज्यापहरण की कथा का हमे सकेत मिल जाता है क्योंकि यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

परिकर—अवदातिका वल्कल के पहनने पर सीता की शोभा का वर्णन करती है। इससे बीज का प्रोत्साहन प्राप्त होता है अतः यहाँ परिकर सन्ध्यग है।

परिन्यास—लक्ष्मण[2] द्वारा राम के वनवास के चौदह वर्ष वहाँ रहने की पुष्टि होती है तथा दशरथ प्रतिमा रूपी भावी कल्पना का आभास मिलता है।

विलोभनम्—राम[3] मैथिली से वल्कल याचना करने में अपने को सभी राजाओं से विशेष कार्य करने में अपनी विशेषता प्रदर्शित करते हैं कि मैं अन्य राजाओ से विशेष धर्म का पालन कर रहा हूँ। 'अन्यैः नृपैः' शब्द में राम के स्वगुणों का आख्यान होने से विलोभन नामक सन्ध्यग है। राम की इष्टादि प्राप्ति के लोभ के कारण यह तत्व विलोभन हुआ।

• **युक्ति**—राम अपने राज्याभिषेक में देव द्वारा किए हुए प्रकोप को 'मूलं दैवेन ताडितम्' कहकर पुष्टि करते है जिससे उनका वनगमन सिद्ध होता है। इस कारण यहाँ युक्ति नामक सन्ध्यग है।

भेद—राम के सीता को वन चलने के लिए मना करने पर लक्ष्मण[4] उसे जाने के लिए प्रेरित करते हैं और कहते हैं कि ऐसे श्लाघनीय अवसर पर उसे मना करना उचित नही है तथा स्वामी ही स्त्रियों के सर्वस्व होते है ऐसा कहने से वनवास गमन में बीज के सहायक कार्य में प्रोत्साहन मिला।

विधानम्—राम का सीता से यह पूछना कि तुम आभूषणहीन क्यों हो तथा स्वयं पिता के अश्रु बहाने और कष्ट प्रकट करने को कहने में राम के द्वारा दुःख प्रकट हुआ, अतः दुःख के स्थल पर विधान नामक सन्ध्यंग हुआ।

परिभावना - लक्ष्मण राम से वल्कल माँगते हैं और इस कथन मे अपने आश्चर्य को प्रकट करते है कि सब वस्तुओं में से आधा देकर इस चीरधारण में आप

---

१. अवदातिका—अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। भा० ना० च० पृ० २५१
एतेन कैकेयीकर्तृकरामराज्यापहरणकथा इंगितेन सूचिता।

२. लक्ष्मणः—यत्कृते ... वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया। प्रतिमा० १।२३

३. रामः—मगलार्थेऽनया ... करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्। प्रतिमा० १।२४

४. लक्ष्मणः—आर्य नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्र भवतीम्।
अनुचरति ... ... भर्तृनाथा हि नार्यः। प्रतिमा० १।२५

मत्सरी क्यों है ? अतः आश्चर्य प्रकट होने से परिभावना नामक सन्ध्यंग है। राम[1] का वनगमन मे कोई विशेष कार्य का न मानना और केवल इसे पिता की आज्ञा का पालन ही कहना आश्चर्य प्रकट करता है।

उद्भेद[2]—कचुकी वनगमन से पूर्व कहता है कि 'कुमार को नहीं जाना चाहिए, ये महाराज दशरथ हैं जो कि भूमि पर लेटते हुए जीर्ण हाथी की भाँति जाते है, इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि चीरधारी वनवासियों के पास दर्शनीय वस्तु कोई नही है और राम भी इसी समय कहते है कि हमारे चले जाने पर राजा प्रमुख स्थलों को देखे। इस प्रकार कह देने से वनगमन रूपी बीज का उद्भेद प्राप्त होने से यहाँ उद्भेद नामक सन्ध्यंग अनुमानित किया जा सकता है।

समाधान—कचुकी राम से उनकी सरलता के विषय में कहता है कि आपका अभिषेक कैकेयी के कथन के द्वारा ही नही हुआ, इससे राम को उत्तेजित होना चाहिए था किन्तु ऐसा नही होता है। राम[2] अपने वनगमन से भाइयों तथा प्रजा के लाभ का चिन्तन करते हैं और अपने वनगमन को 'गुण' कहकर श्रेयस्कर बतलाते हैं अतः यहाँ समाधान नामक तत्व है।

प्रतिमुख सन्धि

दशरथ का राम के वियोग से दुःखित होना तथा पश्चात् में दशरथ का मरण होना इत्यादि लक्ष्यालक्ष्य रूप से दशरथ-मरण का उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि का विषय अनुमानित किया जा सकता है।

परिसर्प कचुकी राम के वनगमन के पश्चात् अयोध्या को शून्य की भाँति बतलाता है जिससे राम वनगमन की ओर स्पष्ट सकेत मिलता है जिसकी स्मृति दशरथ के लिए अत्यन्त कष्टकारक है। अतः यहाँ परिसर्प सन्ध्यग है।

शम—कौशल्या का राजा दशरथ की कष्ट की दशा में 'महाराज अत्यन्त दुःखित न होइये', इत्यादि कहकर सान्त्वना देना, राम, लक्ष्मण तथा सीता के वियोग से दुःखित दशरथ के शमन हेतु प्रयास शम के अन्तर्गत आता है।

वज्रम् – राजा को शोक से सन्तप्त देखकर भृत्यगण उसके प्रति 'विक्रोशन्तम् पार्थिव गर्हयन्ति' आदि कठोर वचन कहते हैं। इस प्रकार कठोर वचनों को युक्तिपूर्वक कहने मे रोष की अभिव्यञ्जना होने से यहाँ वज्र नामक सन्ध्यंग है।

पुष्पम्—राम के कथित वर्णन के श्रवण से राजा की उत्सुकता और विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन हुआ कि वे वन चले गए, इस कारण यहाँ पुष्प नामक सन्ध्यग बनता है।

---

१. रामः—राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः।
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भोः विस्मयः॥ प्रतिमा० १।५

२. रामः—वनगमननिवृत्तिः ·····भ्रातरो मे। प्रतिमा० १।१४

उपन्यास—राजा दशरथ[1] द्वारा राम का विभिन्न प्रकार से अनुनय करके कैकेयी के अतिरिक्त अपना दोष मानने मे संतोष-श्वास का सवास चाहना तथा सुमित्रा से लक्ष्मण की प्रशंसा करके उसके पुत्र की श्लाघा करना उपन्यास नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत जाता है।

गर्भ सन्धि

प्रतिमा की मौलिक कल्पना भास की अनुपम प्रतिभा का परिचय देती है। यहाँ भरत की प्रासगिक कथा सानुबन्ध प्रकरी है। प्राप्तिसम्भव तथा पताका का मिश्रण स्पष्ट है क्योकि प्रतिमा स्थापन की सफलता नाटककार को यहाँ उपलब्ध हो जाती है और प्राप्ति-सम्भव के गर्भ सन्धि के आवश्यक अग होने के कारण नाटक के नामकरण की चरितार्थता की पुष्टि भी इस स्थल पर हो जाती है। राम के राज्याभिषेक रूपी बीज के लक्षित होने पर पुन अलक्षित हो जाने से उसकी बार-बार खोज की जाती है। भरत द्वारा उस ओर प्रवृत्ति होने से फल का ऐकान्तिक निश्चय हो जाता है अतः यहाँ गर्भ सन्धि का अनुमान उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

अभूताहरण—दशरथ की मृत्यु हो जाने पर सूत भरत के पूछने के उत्तर मे बतलाते है कि आपके पिता को महान् हृदय-परिताप है। इस स्थल पर सूत द्वारा कपट रूप मे दशरथ की मृत्यु का समाचार गुप्त रखने से यहाँ अभूताहरण है।

मार्ग—पिता के दर्शन की लालसा के मुख का भरत[2] द्वारा कीर्तन तथा अनुभूति मार्ग नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आती है।

अनुमान—भरत प्रतिमा मन्दिर के विषय में विभिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करते है और उसे "चतुर्दैवतोऽय स्तोमः" का अनुमान लगाने से यहाँ अनुमान है।

तोटकम्—देवकुलिक द्वारा दशरथ के लिए इस प्रकार का कथन है कि जिसने स्त्री-शुल्क के लिए प्राण दे दिए, दशरथ की उस प्रतिमा के लिए तुम क्यों नही पूछते हो। अतः इस स्थल पर उद्विग्नतापूर्ण स्थल होने से तोटक है।

आक्षेप—देवकुलिक के द्वारा भरत को राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी के कथन से अभिषेक न होने देने तथा राम के वन-गमन से बीज का उद्भेद हुआ है, अतः यहाँ आक्षेप नामक अंग है।

उदाहृति—भरत के राज्याभिषेक के लिए "एतौ वसिष्ठवामदेव्यौ सह" इत्यादि कहना भरत के उत्कर्ष का द्योतक होने से उदाहृति नामक अग हुआ।

अवमर्श सन्धि

राम अपने पिता के द्वारा किये गये कार्य को "पित्रा दुष्करं कृतम्" कह कर दोष बतलाते हैं। इस प्रकार कार्य के फल के विषय में लोभवश पर्यालोचन होने से यहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया है।

---

१. दशरथः—राज्ये त्वामभिषिच्य ··एकक्षणे। प्रतिमा० २।१६

२. भरतः—पतितमिव शिरः ··वेषं च भाषां च सौमित्रिणा। प्रतिमा० ३।३

अपवाद—भरत अपने लिए राज्यलुब्धा कैकेयीपुत्र तथा ब्रह्मघ्न कहकर अपने दोषों का आख्यान करते हैं, इस कारण से यहाँ अपवाद नामक अंग है।

संफेट—भरत[1] अपने आगमन का निवेदन राम से रोषयुक्त वाणी में करते हैं। अतः रोष का वर्णन होने से यहाँ संफेट नामक सन्ध्यंग हुआ।

प्रसंग—राम[2] भरत[3] के शब्द की समानता अपने पिता के स्वर से तथा लक्ष्मण भरत के वक्षःस्थल की समानता अपने पिता के वक्षःस्थल से करते हैं। इस प्रकार गुरु कीर्तन से प्रसंग नामक तत्व का प्रयोग माना जा सकता है।

व्यवसाय—राम ने अपने पिता की शक्ति[4] तथा अपनी शक्ति का वर्णन किया है। अतः यहाँ व्यवसाय नामक सन्ध्यंग है।

आदानम्—सुमन्त्र के द्वारा इस कथन में 'कि अभिषेक के लिए जल कहाँ है?' कार्य की शीघ्रता दर्शाकर नाटककार कथावस्तु के कार्य को संगृहीत करना चाहता है अतः इस स्थल पर आदान नामक सन्ध्यंग है।

विचलनम्—भरत[5] द्वारा अपने को स्वर्गस्थ राजा का शीलयुक्त पुत्र कहना आत्मश्लाघा का व्यंजक होने से यह स्थल विचलन के लिए उपयुक्त हुआ।

प्ररोचना—राम[6] का सिद्ध पुरुषों की भांति यह कहना कि ऐसे महान् व्यक्ति भी समय से प्रभावित होते है, और इसी कारण मेरे पिता भी झूठ बोलने वाले हो जायँ। राम ने भरत को लौट जाने के लिए इतनी बलशाली उक्ति इस प्रकार कही कि भरत जैसे पुत्र को उत्पन्न करके उनके पिता मिथ्याभिधायी नही हो सकते। कथावस्तु मे इस कथन से भरत के प्रतिनिवर्तन की भावी घटना का आभास हो जाता है।

निर्वहण

परिभाषा—कैकेयी, भरत तथा सुमन्त्र का परस्पर आलाप परिभाषा नामक अंग है।

पर्युपासनम्—सुमन्त्र का भरत से यह कहना कि हम तुम्हारे ही कारण राम के दर्शन के लिए यहाँ आए और तुम्हारे बिना कैसे लौटेंगे, इस प्रकार कथन में भरत का प्रसादन प्रकट होता है अतः यहाँ पर्युपासन है।

उपगूहन—सुमन्त्र का यह कहना कि 'पक्षी भी उपकृत होना चाहते हैं,' वे कहते है कि सुग्रीव का लाभ राम द्वारा हुआ और सुग्रीव द्वारा राम का लाभ हुआ इस प्रकार सीताहरण का वृत्तान्त जानकर भरत आश्चर्य का अनुभव करते हैं।

१. भरतः—निर्घृणश्च कृतघ्नश्च.. तिष्ठतु यात्विति। प्रतिमा० ४।५
२. रामः—कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे। प्रतिमा० ४।६
३. लक्ष्मणः—मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्। प्रतिमा० ४।८
४. रामः—गत्वा पूर्वं.. नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः। प्रतिमा० ४।१७
५. भरतः—स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य . शीलान्वितोऽहं सुतः। प्रतिमा० ४।२७
६. रामः—किञ्चोत्पाद्य...भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता। प्रतिमा० ४।२३

समय —राम[1] रावण के विनाश के पश्चात् अपने कष्ट की समाप्ति पर सुख का अनुभव करते है अत: यहाँ समय नामक सन्ध्यग है।

कृति —राम[2] तथा भरत[3] दोनों का परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न करने के आलाप को कृति नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत रख सकते हैं।

पूर्वभावोपगूहन —भरत के द्वारा राम से राज्याभिषेक कराये जाने और राज्य भार ग्रहण करने के स्थलों पर 'आर्य प्रतिगृह्यता राज्यभार:' स्थल मे उपगूहन तथा 'तीर्थोदकेन"'सलिलसिक्तमिवारविन्दम्' मे राज्याभिषेक रूपी कार्य का दर्शन होने मे पूर्वभाव नामक सन्ध्यग हुआ।

काव्यसंहार - नेपथ्य[4] में सर्व प्राणियों मे सुन्दर राम पृथ्वी को विजित करते हैं ऐसा कहने से काव्य का उपसहार होता है।

भाषण—लक्ष्मण द्वारा 'दिष्ट्या भवान् वर्धते' तथा कचुकीय के द्वारा भी इसी वाक्य की आवृत्ति होने से राम के मान की वृद्धि होती है अत: इस स्थल पर भाषण नामक सन्ध्यग है।

प्रशस्ति – नाटककार सीता, लक्ष्मण और बन्धुओ सहित राजा राम के भूमि पर शासन करने की कामना से भरतवाक्य द्वारा प्रशस्ति-पाठ करता हुआ यह कामना करता है कि इसी प्रकार हमारे राजा लक्ष्मी से युक्त होकर भूमि का शासन करे।

प्रतिमा नाटक के अभिधान के सम्बन्ध में विवेचन—प्रो० ध्रुवा प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण के समान प्रतिमा नाटक को भी भरत को करुण रस की प्रतिमा सिद्ध करके नाम का उचित रूप दर्शाते हैं। मेरे विचार मे प्रतिमा नाम से यह आभासित होता है कि नाटककार दिवगत इक्ष्वाकु राजाओ की प्रतिमाओं के स्मारकगृह-प्रतिष्ठापन द्वारा भरत के करुण रस की आधार शिला को सवारते हैं क्योंकि करुण रस का उद्रेक भरत के हृदय में सूत के वार्तालाप से आरम्भ हुआ दृष्टिगत होता है। इस करुण रस का उन्नयन शनै: शनै: वृद्धिगत होता गया है, दिवंगत राजाओं की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती है 'धरमाणानाम्' जीवित व्यक्तियों की नहीं। देवकुलिक के इस उत्तर से दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत के हृदय में मार्मिक आघात पहुँचता है और वह मूर्छित हो जाता है। प्रतिमा-स्थापन नाटक के तृतीयांक मे ही समाप्त हो जाता है उसके लिए दशरथ-मरण तथा दशरथ-मरण के लिए राम-वनगमन का क्रम इस सिद्धि के साधन है। राम के समीप पहुँचने पर भरत का

१. राम:—समुदितबलवीर्यं रावणं "प्राप्तवानस्मि भूय:। प्रतिमा० ७।२
२. वत्स: प्रसारय' 'प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्। प्रतिमा० ७।७
३. भरत:—प्राप्तोऽस्मि तृष्टहृदय: स्वजनानुबद्ध:। प्रतिमा० ७।६
४. हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं। "
रामो मही जयति सर्वजनाभिराम:॥ प्रतिमा० ७।१०

अपने लिए निर्घृण कहना उस करुण रस की चरम चूड़ा के दर्शन कराता है कि उसके मानस दर्पण की विमलता तथा निर्मलता का प्रतिबिम्ब उसमें प्रतिबिम्बित होती हुआ लक्षित होता है और अन्त में 'शत्रुघ्न द्वारा आर्य के अभिषेक से मेरा कुल कल्मपरहित हो गया,' ऐसा कहलाना हृदय की पावनता का प्रतीक है।

नाटक का आरम्भ भी राम के राज्याभिषेक के द्वारा होता है तथा "सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे (१।७)" मन्थरा के द्वारा कैकेयी के सन्देश को दशरथ के कहने से उस राज्याभिषेक में विघ्न होता है। नाटक की समाप्ति मे भी कैकेयी की आज्ञा के द्वारा राम का राज्याभिषेक सम्पन्न होता है। अतः नाटककार ने प्रतिमा मन्दिर की स्थापना का लक्ष्य रखकर प्रतिमा नाटक की रचना की है और उसमें करुण रस के परिपाक के लिए भरत को करुण रस की प्रतिमा के रूप में अंकित करना भी लक्ष्य रहा है।

प्रवेशक—तृतीयांकारम्भ में प्रवेशक सूत के साथ भरत के आने का सदेश देता है। पुनः चतुर्थांक मे भरत के ही आने की सूचना देता है।

विष्कम्भक—छठे अंक में कञ्चुकी प्रवेश करता है, ऐसा कहता है।

मिश्रविष्कम्भक—द्वितीयांकारम्भ मे राजा और देवियों के आने की सूचना देता है। सप्तमांकारम्भ में राम के आने की सूचना देता है।

दशरूपककार प्रवेशक के सस्कृत मे भाषण पर विरोध का विधान करता है।

अभिषेक

कथावस्तु	—	रामायण से उद्धृत
अङ्क	—	छः
सन्धि	—	पाँच
नायक	—	राम
नायिका	—	सीता
रस	—	वीर
वृत्ति	—	सात्वती

नाटककार ने किष्किन्धा, सुन्दर तथा युद्धकाण्डगत रामचरित का वर्णन इस नाटक मे किया है तथा नाटक की समाप्ति[१] में दशरथ की अनुमति से यम, वरुण, कुबेर आदि से अभिसंवृत होकर इन्द्र की भांति राम का राज्याभिषेक होता है।

नाटककार 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' के अनन्तर भगवान् राम के शौर्य का स्तवन करता है कि गाधिपुत्र के मख में विघ्नकारियों के विनाशक युद्ध में विराध खरदूषण आदि के संहारक तथा निशाचरेन्द्र कुल (रावणवंश) के संहारक

१. लक्ष्मणः—यमवरुणकुबेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिसंवृत्तो विभाति।
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव॥ अभि० ६।३३

राम से रक्षा करने की कामना की गई है। विशेष रूप से नाटकीय कथावस्तु के प्रधान पात्र 'बाली के विनाश तथा रावण के संहार' का वर्णन इस श्लोक में किया गया है तथा कपीन्द्र बाली तथा निशाचरेन्द्र रावण पात्रों का भी सन्निवेश किया है।

नाटक का शीर्षक अभिषेक दोनों प्रसंगों में उपयुक्त है यथा बाली का निधन करके सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा रावण विनाश पर राम का राज्याभिषेक।

नाटककार नाटकारम्भ में सुग्रीव के अभिषेक के लिए समुद्योग रूपी बीज का वपन करता है। वस्तुस्थिति यह है कि अन्तिम लक्ष्य राम के राज्याभिषेक की स्थिति के लिए प्रथम सुग्रीव की सहायता अपेक्षित है। राम तथा सुग्रीव पारस्परिक सहायता के लिए कृतप्रतिज्ञ है। इस कारण सर्वप्रथम राम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए बाली के वध करने का समुद्योग करते है। यह समुद्योग ही इस नाटक का बीज है। अतः इस स्थल पर मुख सन्धि का प्रयोग है।

मुख सन्धि

उपक्षेप—सुग्रीव तथा रावण का परस्पर कृतप्रतिज्ञ होना बीजन्यास का विधायक है अतः यह उपक्षेप के अन्तर्गत आता है।

परिकर—परस्पर उपकार के लिए कृतप्रतिज्ञ होने में राम[1] का सुग्रीव के प्रति बाली के मारने में अपने बाणों द्वारा वर्णन में बीजन्यास की पुष्टि होने से इस स्थल पर परिकर नामक सन्ध्यंग है।

विलोभनम्—बाली[2] का अपनी स्त्री तारा से अपने पराक्रम का आख्यान करना विलोभन है।

विधानम्—बाली-सुग्रीव-युद्ध में राम का 'हन्त पतितो बाली' तथा हनूमान् का "हा धिक् अस्यैषावस्था" तथा बाली का "हन्त अनुत्तरा वयम्" कहना कष्ट के भावों को व्यक्त करने के कारण विधान नामक सन्ध्यंग का बोध कराता है।

युक्ति—हनूमान् का राम के समीप जाकर बाली के लिए बलवान् कहना तथा सुग्रीव को दुर्बल कहना एवं राम का बाली को बाण द्वारा मारना अभीष्ट तथ्यों के समर्थन के कारण युक्ति नामक अंग के अन्तर्गत आता है।

समाधान—बाली सुग्रीव से अपनी मृत्यु के अवसर पर विषाद करने पर 'अलमलं विषादेन ईदृशो लोकधर्मः" कहता है। इस स्थल पर लोकधर्म की स्थापना तथा उसके प्रति सचेष्ट रहना नाटककार का लक्ष्य है। इसी के द्वारा बीज का युक्ति द्वारा व्यवस्थापन होने से यहाँ समाधान नामक सन्ध्यंग हुआ।

---

१. रामः—मत्सायकाग्निहत 'समरे निहतः स बाली। अभिषेक० १।४

२. बाली—शक्रो वा ' विष्णुर्वा विकसित-पुण्डरीकनेत्रः। अभि० १।१०
तारे! मया ····सुविस्मितास्ते। अभिषेक० १।११
इन्द्रो वा·· ····नैव यारयसि। अभिषेक० १।१२

भेद—बाली[1] का सुग्रीव से अगद को सम्हालने के लिए प्रार्थना करना कथा-वस्तु के हेतु मे प्रोत्साहन प्रदर्शित करता है। अतः यहाँ भेद सन्ध्यग है।

करणम्—बाली का सुग्रीव को अपनी कुल धन रूपी हेममाला के प्रदान से सुग्रीव के राज्याभिषेक मे रूपक की कथा के अनुरूप प्रकृत कार्य का आरम्भ होने से यहाँ करण नामक सन्ध्यग है।

उद्भेद—लक्ष्मण के सुग्रीव के लिए 'अभिषेकः कल्प्यताम्' कहने से बीज का उद्भेद होने से यहाँ उद्भेद नामक सन्ध्यग सिद्ध हुआ।

प्रतिमुख सन्धि

परिसर्प—विलमुख के द्वारा परस्पर की गई प्रतिज्ञा का स्मरण कराने से यहाँ प्रतिज्ञा रूपी बीज का अन्वेषण द्वितीयाकारम्भ में पुनः प्राप्त होता है। अतः इस स्थल पर परिसर्प नामक सन्ध्यग है।

प्रगमन—ककुभ[2] तथा विलमुख का आलाप जो कि नाटक के बीज का सहायक है। प्रगमन सन्ध्यग के अन्तर्गत आता है।

पुष्पम्—आज ही मैं समुद्र पार करके सीता के वृत्तान्त को लाऊँगा, हनूमान् का यह वचन विशेष रूप से बीजोद्घाटनकारी है। अतः यहाँ पुष्प है।

उपन्यास—हनूमान्[3] के द्वारा राक्षसियो से परिवृत सीता की स्थिति का वर्णन करने से उनके कष्ट का हेतु प्रकटकर बीज का उद्भेद होने से उपन्यास है।

गर्भ सन्धि

नष्ट बीज का पुनः अन्वेषण इस सन्धि का विषय है।

मार्ग—हनूमान् का सीता से राम के विषय में बाली आदि के मारने के वृत्तान्त को कहना तथा सीता अन्वेषण में बन्दरो का सब दिशाओं मे घूमना और इसी प्रसग मे मेरा यहाँ आना इत्यादि कथन निश्चित तत्व का प्रदर्शन करने से मार्ग नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

क्रमः—हनूमान्[4] के द्वारा राम की अभीष्ट वस्तु रावण के दर्प विनाश का चिन्तन क्रम नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत आता है।

तोटक—हनूमान् से रावण[5] का क्रोधयुक्त वचन तोटक सन्ध्यंग के अन्तर्गत है।

उद्वेग—शंकुकर्ण अशोकवाटिका को हनूमान् द्वारा भग्न देखकर तथा भय-

---

१. बाली—मया कृतं…कुलप्रवालं परिगृह्यतां न। अभिषेक० १।२६
२. ककुभः—किं न जानीषे निष्ठितमर्थं कार्यस्य। अभिषेक० २।१ से पूर्व
३. हनूमान्—राक्षसीभिः परिवृता…शोभते। अभिषेक० २।७
४. हनूमान्—परभृतगणजुष्टं…राक्षसेशं करोमि। अभिषेक० २।२६
५. रावणः—युधि जगत्त्रय…समुद्भवम्। अभिषेक० ३।४

भीत होकर प्रतिहारी से शीघ्र निवेदन करने मे अपनी उद्विग्नता को प्रकट करता है और 'अतिपाति कार्य' कहकर उद्वेग प्रस्फुरण के कारण यहाँ उद्वेग है।

आक्षेप—विभीषण[1] का रावण के प्रति कहा गया वचन कि मेरे कहने से तुम मैथिली को राम को दे दो किन्तु उसने शोक के कारण मित्रों का वचन न सुना। विभीषण के इस कथन मे ही गर्भ एवं बीज का उद्भेद हुआ क्योंकि रावण का सीता को न देने का आशय ही उसकी मृत्यु है तभी विभीषण का लकेश्वर होना सम्भव है।

अवमर्श सन्धि

विभीषण तथा रावण के वार्तालाप मे विभीषण महाराज के बुद्धिवैपरीत्य तथा सीता-प्रदान का विमर्शन करता है अत. यहा अवमर्श सन्धि का आरम्भ है।

संफेट—रावण तथा हनूमान् के वार्तालाप में रावण के द्वारा यह कहने पर कि उस मनुष्य ने क्या कहा है, हनूमान्[2] राम के लिए ऐसे शव्द सुनकर रोषयुक्त वचन कहते हैं। अत इस स्थल पर संफेट नामक सन्ध्यंग है।

व्यवसाय—रावण[3] की अपनी सामर्थ्य के विषय में उक्ति व्यवसाय के अन्तर्गत है।

अपवाद—हनूमान् रावण के पराक्रम के पश्चात् विभीषण के समर्थन से कहते है तब आपने प्रच्छन्न रूप से सीता का अपहरण क्यो किया। हनूमान् के इस कथन मे रावण के दोषो का वर्णन है तथा रावण राम की उपमा मृग और शृगाल से देता है। अतः इस स्थल पर दोषो के वर्णन से अपवाद सन्ध्यंग है।

छलनम्—रावण हनूमान् तथा विभीषण का निर्वास्यताम् तथा निरस्यताम् कहकर अपमान करता है। अतः यहाँ छलन नामक सन्ध्यंग है।

द्रवः—रावण के राम के लिए 'अभिधीयतां मद्वचनात् स मानुष.' कथन में राम का तिरस्कार प्रदर्शित होने से यहाँ द्रव नामक सन्ध्यंग है।

प्ररोचना—हनूमान् के 'अचिराद् द्रक्ष्यसि' कथन में रावण के भावी विनाश की सूचना सिद्ध पुरुषों की भाँति प्रस्फुटित होने से प्ररोचना सन्ध्यंग है।

आदानम्—नाटककार विभीषण[4] के द्वारा राम को प्रोत्साहित करने और रावण के विनाश करने के लिए कथावस्तु को संगृहीतकारी वचन कहलाता है। अतः यहाँ आदान नामक सन्ध्यग है।

निर्वहण सन्धि

चतुर्थांक के आरम्भ मे कंचुकी का यह कथन 'भो भो बलाध्यक्ष ! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम्' रूपक की कथावस्तु को एक अर्थ (युद्ध के लिए) संगृहीत करने से यहाँ निर्वहण सन्धि हुई।

---

१. विभीषणः—मयोक्तो मैथिली ' शोककारणात्। अभि० ३।१३
२. हनूमान्—वरशरणमुपैहि'' प्रतियापयाम्यहं त्वाम्। अभिषेक० ३।१६
३. रावणः—दिव्यास्त्रैः'''मानुषो माम्। अभिषेक० ३।१७
४. विभीषणः—अद्यैव तं'''पुनरुद्धरिष्ये। अभिषेक० ३।२७

सन्धि—कञ्चुकी द्वारा सेना को युद्ध के लिए समुद्यत करना तथा राम[1] का वानर-सेना के सहित बेला तट पर आने की घोषणा करना बीज की उद्भावना को प्रकट करने के कारण सन्धि नामक निर्वहणाग है।

विबोध—राम का युद्ध के लिए प्रयाण करते समय समुद्र के मार्ग न देने पर अपने कार्य का पुनः अन्वेषण करने से विबोध नामक सन्ध्यग यहाँ सम्भव है क्योकि इस कथन से रावण-वध रूपी कार्य की खोज की गई है।

ग्रथन—राम[2] रावण के लिए यह सन्देश देते है कि उस राक्षसेन्द्र से कह देना कि मेरी स्त्री के अपहरण के कारण उसने स्वय ही युद्ध मोल लिया है। अतः इस स्थल पर नाटककार समस्त कार्य को एक स्थान पर समाहृत करता है, इसलिए यहाँ ग्रथन नामक सन्ध्यग है।

प्रसाद—रावण का सीता से 'प्रसीदतु' कहना प्रसाद सन्ध्यग के अन्तर्गत है।

आनन्द—राम[3] का रावण के विनाश के पश्चात् आनन्द का अनुभव आनन्द अग है।

पूर्वभावोपगूहन—लक्ष्मण का 'आश्चर्यमाश्चर्यम्' कहना उपगूहन तथा सीता को 'विकसित''''पद्मवन यथैव हंसी' की उपमा देना और उसका अग्नि से निर्विकार निकलना पूर्वभाव नामक सन्ध्यंग है।

वराप्ति—अग्नि के द्वारा राम को भद्रमुख कहकर यह पूछना कि 'और आपका क्या प्रिय किया जाये,' कथन वराप्ति नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत है।

प्रशस्ति—नाटककार शत्रु के शमन तथा राजसिंह के शासन की कामना भरत वाक्य मे करता है।

विष्कम्भक—पचम अक के आरम्भ में राक्षसियों से परिवृत सीता के प्रवेश की सूचना देता है तथा पचम अक में ही अन्त मे 'सर्वे निष्क्रान्ताः' की सूचना देता है।

पञ्चरात्र

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अङ्क	—	तीन
सन्धि	—	पच
नायक	—	दुर्योधन
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	सात्वती

१. रामः—आक्रान्ताः'' साम्प्रतम्। अभिषेक० ४।२

२. रामः—मम दारापहारेण स्वयंग्राहितविग्रहः। भा० ना० च० पृष्ठ ३५५

३. रामः—हत्वा रावणमाहवे'' समाश्वासितुम्। अभि० ६।१८

पञ्चरात्र समवकार की कथावस्तु से यह ज्ञात होता है कि दुर्योधन द्रोण की प्रसन्नता हेतु उसके कहने से पाण्डवो को आधा राज्य देने को प्रस्तुत हो जाता है, किन्तु पाण्डवों की प्राप्ति पाँच रात्रियो के अन्तर्गत ही हो जानी चाहिए। द्रोण इसे स्वीकार कर लेते है और पाण्डवो के मिलने से आधा राज्य उन्हे दे दिया जाता है। नाटककार ने महाभारत ग्रन्थ की सत्ता को ही लुप्त कर दिया है। युद्ध आदि के प्रश्न के लिए अवकाश ही कहाँ, जब कि आधा राज्य पाण्डवो को दे दिया गया। अतः यहां कवि अपनी प्रतिभा का उपयोग करके नाटकीय कथावस्तु को स्वेच्छा से परिवर्तित कर देता है।

नाटक के आरम्भ में मुद्रालकार के द्वारा नाटक के पात्र द्रोण, अर्जुन, भीम, कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, युधिष्ठिर, विराट् तथा अभिमन्यु पात्रो के नामों का निर्देश किया गया है।

मुख सन्धि

पाण्डवों का आधा राज्य दिलाना ही भास को अभीष्ट है। अतः यज्ञ की समृद्धि द्वारा दुर्योधन की प्रसन्नता से नाटक का आरम्भ किया जाता है।

उपक्षेप—कुरु राजा के यज्ञ की समृद्धि से उसकी प्रसन्नता तथा ऐश्वर्य वृद्धि े वातावरण उत्पन्न करने के कारण उपक्षेप नामक सन्ध्यग है।

परिकर—भीष्म दुर्योधन की बुद्धि की स्वस्थता के लिए द्रोण के प्रस्ताव का समर्थन करते है। अतः पाण्डवो के आधा राज्य दिलाने मे यह कथन सहायक होगा इस कारण से यहाँ परिकर नामक सन्ध्यग हुआ।

परिन्यास—दुर्योधन द्वारा द्रोण की इच्छित वस्तु को ज्ञात करना जो कि नाटक के बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि तथा परिपक्वावस्था को दर्शाने के कारण इस स्थल पर परिन्यास नामक सन्ध्यग है।

विलोभनम्—दुर्योधन[१] के द्वारा अपनी गणना वीर पुरुषो में करने के वर्णन तथा युधिष्ठिर के लिए राजा होने से ऊसर भूमि पर भी अन्न होने आदि के द्वारा प्रशसा करने के कारण यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यग हुआ।

उद्भेद—द्रोण[२] के कथन मे दुर्योधन के लिए पाडवो को राज्यार्ध देने का कथन अब तक छिपे हुए भेद का उद्भेद करता है। अतः यहाँ उद्भेद है।

करणम्—द्रोण के कथन के पश्चात् दुर्योधन उसका समर्थन करना चाहता है। अतः रूपक की कथा 'पाडवो को आधा राज्य दिलाना' के अनुरूप प्रकृतकार्य के समर्थन का आरम्भ इस स्थल पर होने से करण नामक सन्ध्यग हुआ।

---

१ दुर्योधनः—शूरेषु यामि गणनां कृतसाहसोऽस्मि। पञ्चरात्र १।२९
ऊषरेष्वपि शस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ पञ्च० १।४४

२. द्रोणः—त्वं पाण्डवाना कुरु संविभागमेषा ''दक्षिणा च। पञ्च० १।३१

विधानम्—द्रोण[1] जब दुर्योधन को शकुनि द्वारा समर्थन न करने की बात सुनते हैं, तो उन्हे कष्ट का अनुभव होता है। अतः पीडित होने के कारण यहाँ विधान है।

भेद—द्रोण द्वारा पाण्डवो के प्रस्ताव का शकुनि से समर्थन न पाने पर क्रोधी द्रोण से दुर्योधन[2] क्षमा की प्रार्थना करता है। अतः यहाँ भेद सन्ध्यंग है।

प्रतिमुख सन्धि

शकुनि तथा कर्ण द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देने का विरोध पाकर दुर्योधन उनसे परामर्श करता है, वे उत्तर में कहते हैं कि राज्य के देने में हम से क्या पूछना है, हम तो सग्राम के समय तुम्हारे सहायक हैं। इस कथन में दुर्योधन पुनः "जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम्" कहकर पाण्डवों को आधा राज्य देने रूपी बीज का दर्शन करा देता है अतः बीज के दृष्टिगत होने से यहाँ प्रतिमुख सन्धि है।

परिसर्प—पाण्डवो को आधा राज्य देने मे कोई समर्थन प्राप्त न हुआ, अतः बीज नष्ट हो गया किन्तु फिर पाँच रात्रि मे पाण्डव मिल जाय तो राज्य दे दिया जाय, इस कारण से यहाँ परिसर्प हुआ।

विधूतम्—दुर्योधन के शकुनि से पूछने पर पाँच रात्रियों में पाण्डवों की प्राप्ति का बन्धन हो जाने से द्रोण[3] के मन मे अरति हुई, अतः यहाँ विधूत अग है।

शमः—भीष्म द्वारा द्रोण को पाँच रात्रियों की स्वीकृति करने में शम है।

पुष्पम्—दुर्योधन अपने मन में आधा राज्य देने का निश्चय करता है, इस कारण बीज पल्लवित होकर इस अग में पुष्पोत्पत्ति करता है।

उपन्यास—भीष्म[4] के "पाँच रात्रियों को मान लीजिए" ऐसा कहना उपाय-युक्त तथा हेतु प्रदर्शन करने के कारण इस स्थल पर उपन्यास नामक सन्ध्यग हुआ।

गर्भ सन्धि

पाँच रात्रियो मे पाण्डवों की प्राप्ति में सन्दिहान होने से बीज के पुनः नष्ट होने के कारण पाण्डवों के अन्वेषणार्थ विराट की गौओं के अपहरण हेतु कौरवों का आक्रमण होने से यहाँ गर्भ सन्धि है।

अभूताहरण—छद्म वेष मे कौरवों का विराट की गौओं का अपहरण इसमें आता है।

तोटक - राजा का 'अवधूत मे क्षत्रियत्वम्' रोषयुक्त भाषण तोटक है।

---

१. द्रोणः—शकुनिना! हन्त विपन्नं कार्यम्। पञ्चरात्र प्रथम अंक श्लोक ४० के समीप
२. दुर्योधन —न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः। पञ्च० प्र० अं०
३. द्रोणः ये कर्तु ......वरं ह्यदत्तं विशदाक्षरेण। पञ्च० १।४६
४. भीष्मः भीमसेनस्य......तस्मिन् फलितः शते। पञ्च० १।५०

अनुमान—विराट का दुर्योधन द्वारा पाण्डवों का प्रिय कहे जाने में अपने पर आक्रमण का अनुमान इसके अन्तर्गत आता है।

क्रमः—भगवान् 'युधिष्ठिर' कौरवों के आक्रामक के रूप मे आने तथा विरोधी होने से युद्ध की निश्चलता के कारण कष्ट की अनुभूति होने एव युधिष्ठिर के अभीष्ट वस्तु के चिन्तन के कारण यहाँ क्रम नामक सन्ध्यग है।

रूपम्—राजा का सूत से उत्तर के सारथी न होकर जाने के विषय मे पूछने में तर्क-वितर्क-मय भाषण में रूप नामक सन्ध्यग है।

मार्ग—युधिष्ठिर बृहन्नला के सारथी होकर जाने पर वह बिना शस्त्र के ही जीतेगा ऐसी कल्पना करना तत्त्वार्थ के कीर्तन से मार्ग नामक सन्ध्यंग है।

उद्वेग—भट के द्वारा कौरवो के आक्रमण के समाचार से राजा विराट् उद्विग्न होकर नया रथ तैयार करने के कथन में उद्वेग नामक सन्ध्यग है।

अवमर्श सन्धि

अर्जुन[1] बृहन्नला के रूप में दुःशासन आदि को युद्ध मे मारने की वार्ता में रोष प्रकट करना है तथा राज्य के लोभ की इच्छा होने से यहाँ अवमर्श सन्धि है।

विद्रव.—युद्ध में अभिमन्यु का पकडा जाना कष्ट का कारण होने से विद्रव है।

द्रव.—अभिमन्यु[2] का नाम लेकर अर्जुन के तिरस्कार की वार्ता द्रव के अन्तर्गत है।

शक्ति—कौरवो से गौओ को जीतकर विजय-प्राप्ति से विरोध की शान्ति के कारण शक्ति नामक अग का समावेश हुआ।

व्यवसाय—राजा विराट् का 'उत्तर' के शौर्य के वर्णन में व्यवसाय नामक अग है।

छलनम्–अभिमन्यु बृहन्नला के कथन में अपमान की अनुभूति करता है इस कारण 'सावज्ञमिव मा हस्यते' कथन मे छलन है।

प्रसंग—बृहन्नला का अभिमन्यु से उसके पिता तथा मामा विषयक वार्तालाप है।

विचलनम्—भीमसेन[3] का अपनी भुजाओं को शस्त्र बतलाने मे आत्मश्लाघा वर्णन करने मे विचलन नामक सन्ध्यंग है।

आदानम्—नाटककार 'उत्तर' के द्वारा पाण्डवो के विषय में परिचय-प्राप्ति से कथावस्तु को सगृहीत करता है अतः यहाँ आदान सन्ध्यग है।

---

१. बृहन्नला—जित्वा'' ''विराटपुर प्रविष्टः। पञ्च० २।३१
२. अभिमन्युः—नीचैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः '' परिभूयते। पञ्च० २।४७
३. भीमः—सहजौ मे प्रहरण ''दुर्बलैर्गृह्यते धनु'। पञ्च० २।५५

प्ररोचना—राजा विराट[1] का अपने लिए कन्यापितृत्व कहना उत्तरा अभिमन्यु विवाह की भावी घटना की झलक होने से यहाँ प्ररोचना है।

निर्वहण सन्धि

पाण्डवों के अभिज्ञान से पञ्चरात्र नाटक की कथावस्तु के विकीर्ण तत्वों को एकत्र करता हुआ नाटककार निर्वहण सन्धि का प्रयोग करता है।

सन्धि—राजा विराट् पाण्डवों के अपने यहाँ रहने से अपने कुल को पाप-रहित कहता है, इस कारण पाण्डवों के निवास के पहचाने जाने से यहाँ बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक निर्वहणाग हुआ।

विबोध—राजा विराट गोग्रहण शुल्क मे उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से करने को कहता है और युधिष्ठिर अभिमन्यु के विवाह की सूचना पितामह को देते हैं अतः छिपे हुए कार्य की पुनः खोज की जाने से यहाँ विबोध नामक अग है।

परिभाषण—अभिमन्यु के पकडे जाने पर सभी परस्पर में वार्तालाप करते है।

पूर्वभावोपगूहन—पैदल तथा निःशस्त्र भीम द्वारा अभिमन्यु के पकड़े जाने पर उसका परिज्ञान होना आश्चर्य प्रकट करने के कारण निगूहन तथा बाण पर अर्जुन का नाम लिखा होने से पाण्डवों के समाचार प्राप्ति से कार्य के दर्शन की सम्भावना के कारण पूर्वभाव नामक सन्ध्यग है।

प्रसाद—अभिमन्यु का भीम से अपने किये गये व्यवहार के प्रति क्षमा याचना तथा 'प्रसाद कर्तुमर्हसि' कहना प्रसाद नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत है।

ग्रथनम्—दुर्योधन द्वारा 'युधिष्ठिर के मिलने पर आधा राज्य दे दूँगा,' ऐसे कथन मे कार्य के उपसहार के दर्शन हम करते है, इस कारण यहाँ ग्रथन अग है।

वराप्ति—दुर्योधन के द्वारा 'मैंने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया,' कथन में वराप्ति नामक सन्ध्यग है।

प्रशस्ति—नाटककार अन्त मे कुल की वृद्धि से सभी प्रसन्न है, तथा राजसिह की सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करने को कामना से प्रशस्ति करता है।

प्रवेशक—द्वितीयाक में भट के प्रवेश की सूचना देता है।

मिश्र विष्कम्भक—प्रथम अंक मे सभी के निकल जाने की सूचना देता है।

मध्यम व्यायोग

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अक	—	एक
सन्धि	—	तीन
नायक	—	भीम
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	सात्वती

१. राजा—जामातृ बमदूरतोऽपि च भवेत् कन्यापितृत्वं हि नः। पञ्च० २।३९

'व्यायुज्यन्ते अस्मिन् बहवः पुरुषाः' जिसमें अनेक पुरुष प्रयुक्त हों। व्यायोग की कथावस्तु ऐतिहासिक होती है तथा कोई प्रसिद्ध उद्धत व्यक्ति पर आश्रित होती है। इसमें गर्भ तथा विमर्श सन्धियाँ नहीं होती। रस भी हास्य व शृंगार से भिन्न इसमें हो सकते हैं। स्त्री के आश्रय से भिन्न युद्ध का वर्णन होता है। इसकी कथा-वस्तु एक ही दिन की होती है तथा उसमें एक ही अंग होता है। पुरुष पात्रों की संख्या अधिक तथा कैशिकी के अतिरिक्त अन्य वृत्तियां होती हैं।

व्यायोग के आरम्भ में नाटककार हरि के चरणों की वंदना करता है और उनसे रक्षा की कामना करता है।

मुख सन्धि

सूत्रधार[1] ने ब्राह्मण तथा उसके पुत्रों को पाण्डव मध्यमात्मज घटोत्कच द्वारा वित्रासित होना प्रदर्शित किया है तथा मध्यम पाण्डव व्यायोग के नायक का नाम जो कि अग्रिम में इनकी रक्षा भी करता है, नाटक के आरम्भ में ही प्रयोग करके बीज का वपन किया है। अतः यहाँ मुख सन्धि है।

उपक्षेप—सूत्रधार ब्राह्मण पुत्रों को पीडा पहुँचाने वाला कौन है, ऐसा कहने में बीजन्यास का बोध होता है अतः यहाँ उपक्षेप है।

परिकर—तृतीय पुत्र घटोत्कच को देख करके मृत्यु के समान कष्ट पहुँचाने वाला कहने से बीजन्यास का बाहुल्य पाया जाने के कारण यहाँ परिकर है।

परिन्यास—वृद्ध ब्राह्मण का यह कथन "शंके नातिदूरेण पाण्डवाश्रमेण भवितव्यम्" से त्राण रूप बीज की परिपक्वावस्था होने से परिन्यास नामक अंग है।

विलोभन—वृद्ध ब्राह्मण पाण्डवों को युद्धप्रिय तथा शरणागतवत्सल कहकर उनके गुणों का वर्णन किया जाने से यहाँ विलोभन है।

विधानम्—वृद्ध ब्राह्मण 'हन्त हताः स्मः' कहकर कष्ट का अनुभव करता है इस कारण यहाँ विधान नामक सन्ध्यंग है।

परिभावना—घटोत्कच का, ब्राह्मणपुत्र का अपने जन के प्रति अगाध स्नेह जानकर आश्चर्य प्रकट करना परिभावना के अन्तर्गत आता है।

करणम्—रूपक की कथा के अनुरूप घटोत्कच मध्यम को 'पिपासाप्रतीकार हेतु जाने तथा शीघ्र लौट आने का आदेश देता है। अतः यहाँ करण है।

उद्भेद—वृद्ध ब्राह्मण अपने तृतीय पुत्र को मध्यम शृंग का विनाश बतलाता है, तथा घटोत्कच भी मध्यम कहकर बुलाता है अतः अब तक छिपे हुए मध्यम पाण्डव भीम का आगमन बीज के उद्भेद होने से उद्भेद नामक सन्ध्यंग हुआ।

भेद—भीम का यह कथन कि इस वन मे मुझे मध्यम कहकर कौन बुलाता है, बीज के प्रति प्रोत्साहन होने से भेद नामक अंग है।

---

१. सूत्रधार—त्रायते निर्विशंकेन केनचित्पापचेतसा। मध्यमव्यायोग० १।२

प्रतिमुख सन्धि

ब्राह्मणपुत्र के जलाशय चले जाने पर बीज के अलक्षित होने के पश्चात् पुन. अन्वेषणार्थं 'आह्वान' के कारण यहाँ प्रतिमुख सन्धि है।

परिसर्प—घटोत्कच ब्राह्मण पुत्र को देर करते हुए उच्च स्वर से मध्यम कहकर बुलाता है, इस प्रकार नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प नामक सन्ध्यंग है।

पुष्पम्—घटोत्कच[1] का भीम को आते हुए देखकर सिंह की आकृति के सम कोई बन्धु आता है ऐसा विशेषण युक्त कथन बीजोद्घाटन करने से पुष्प अंग है।

प्रगमनम्—भीम[2] तथा घटोत्कच का पारस्परिक वार्तालाप प्रगमन नामक सन्ध्यंग है।

उपन्यास— वृद्ध ब्राह्मण[3] सुरक्षा हेतु प्रदर्शन वाक्य उपन्यास है।

पर्युपासनम् —वृद्ध ब्राह्मण[4] का मध्यम पाण्डव भीम से रक्षा का निवेदन पर्युपासन है।

निर्वहण सन्धि

भीम का वृद्ध ब्राह्मण द्वारा परिवार सहित पीड़ित होने की बात सुनने के पश्चात् नाटककार कथावस्तु को सगृहीत करता है अतः यहाँ निर्वहण सन्धि है।

सन्धि—भीम का घटोत्कच ने ब्राह्मण के मार्ग में विघ्न किया, इस कारण इसे पकडता हूँ, कहना बीज के उद्भेद मे सहायक होने से सन्धि अग है।

विबोध —घटोत्कच भीम के 'मुच्यताम्' कहने पर उत्तर देता है कि मैं पिता के आदेश पर भी ब्राह्मण बालक को नही छोड़ सकता। इस कथन में नायक अब तक छिपे हुए अपने सम्बन्ध रूपी कार्य की खोज पुन· करता है अतः यहाँ विबोध नामक निर्वहण अंक है।

ग्रथनम्—घटोत्कच का अपनी माता तथा पाण्डवों के वर्णन के द्वारा समस्त कार्य को एक स्थान पर समाहृत कर देने के कारण ग्रथन का द्योतक है।

परिभाषणम्—भीम घटोत्कच तथा ब्राह्मण का वार्तालाप परिभाषण के अन्तर्गत है।

प्रसाद—घटोत्कच का भीम से प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करना प्रसाद है।

प्राप्ति - ब्राह्मण का भीम से अपने कुल तथा पाण्डव-कुल की रक्षा का कथन है।

प्रशस्ति--नाटककार यहाँ भगवान् उपेन्द्र की उपासना से भरतवाक्य को कहता है।

---

१. घटो०—सिंहाकृतिः "बन्धुरिवागतोऽयम्। मध्यमव्यायोग १।२७
२. भीमः—मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्ताना च मध्यमः।
मध्यमोऽहं क्षितौ भद्र भ्रातॄणामपि मध्यमः॥ मध्यम० १।२८
३ वृद्धः—मध्यमस्त्विति संप्रोक्ते अस्मान्मोक्त मिहायातो। मध्यम० १।३०
४. वृद्धः—भो मध्यम! परित्रायस्व ब्राह्मणकुलम्। भा० ना० च० पृ० ४३०

दूत

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अंक	—	एक
सन्धि	—	तीन
नायक	—	वासुदेव
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	सात्वती

प्रस्तुत एक अंक व्यायोग रूपक में दुर्योधन अपने सभी सहायक वीरो को बुलाकर अक्षौहिणी सेना के सेनापति का निर्वाचन का अभिलाषी है तथा भृत्यवर्ग को मंत्रशाला की सुसज्जा के हेतु आदेश देता है जहाँ कृष्ण भी पाण्डवों के दूत के रूप में आते हैं अतः मन्त्रशाला[1] की सुव्यवस्था से व्यायोग का आरम्भ होता है और इसी स्थल पर मुख सन्धि का आरम्भ रूप बीज वपन होता है।

मुख सन्धि

उपक्षेप—कञ्चुकी दुर्योधन की आज्ञा का सन्देश इस प्रकार देता है कि आज राजा अपने सभी साथी वीर राजाओं से मन्त्रणा करना चाहता है अतः मन्त्रशाला गमन में ही बीज का उपक्षेप प्राप्त होता है।

परिकर—दुर्योधन का राजाओ को बैठने का आदेश देना परिकर है।

परिन्यास—कञ्चुकी के द्वारा कृष्ण का दूत रूप में आगमन का वृत्तान्त कहना बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि का विधायक परिन्यास हुआ।

समाधानम्—दुर्योधन के कर्ण से कृष्ण को कृष्णमति तथा युधिष्ठिर के वचनों को स्त्रियों के समान कोमल कहा है और कृष्ण के दूत रूप में आगमन रूपी बीज का व्यवस्थापन होने से यहाँ समाधान नामक सन्ध्यंग है।

उद्भेद—वासुदेव का गर्वित दुर्योधन के समीप दूतरूप में आने के विचार से बीज का उद्भेद होता है अतः यहाँ उद्भेद सन्ध्यंग है।

करणम्—वासुदेव[2] का पाण्डवों के दायाद्य भाग के लिए कथन रूप के अनुरूप कार्य के आरम्भ को प्रकट करने से करण नामक सन्ध्यंग हुआ।

भेद—दुर्योधन का कृष्ण के प्रति यह वचन कि हे दूत ! तू राज्य व्यवहार नहीं जानता है कार्य में प्रोत्साहन प्रदान करने से भेद नामक अंक है।

प्रतिमुख सन्धि

कृष्ण तथा दुर्योधन का वार्तालाप जिसमें दुर्योधन की उक्ति तुमने कंस के प्रति

---

१. सूत्रधारः—उत्पन्ने...मंत्रशालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया। दू० वा० १।२

२. वासुदेवः—अनुभूतं...दायाद्यं तद् विभज्यताम्। दू० वा० १।२०

क्या नही किया तथा वासुदेव का अपनी माता के कष्ट का वर्णन करने से वास्तविक लक्ष्य अलक्षित हो जाने से यहाँ प्रतिमुख सन्धि है।

परिसर्प—वासुदेव के कथन, कि अपने बन्धुओ के साथ सम्बन्ध ही श्रेयस्कर होता है, से पुनः दूतकार्य आरम्भ हो जाने के कारण यहाँ परिसर्प है।

नर्म—वासुदेव तथा दुर्योधन के वार्तालाप में देश-काल की स्थिति-विषयक वार्तालाप परिहास्य होने से नर्म सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

प्रगमनम्—वासुदेव का दुर्योधन से उसका तथा पाण्डवों के लिए उपकारो तथा शौर्य का वर्णन प्रगमन अग के अन्तर्गत है।

पुष्पम्—वासुदेव[1] का दुर्योधन को पाण्डवों के लिए आधा राज्य देने का कथन विशिष्ट वाक्यो द्वारा बीज का उद्घाटन होने से पुष्प है।

वज्र—वासुदेव का दुर्योधन के लिए कुरुकुल-कलक, निर्लज्ज आदि का कथन वज्र है।

निर्वहण सन्धि

नाटककार वासुदेव तथा दुर्योधन के वार्तालाप में रोषयुक्त वचनों का प्रयोग करते हुए 'आः अभाष्यस्त्वम्' कथन के द्वारा कथा के उपसहार से यहाँ निर्वहण नामक सन्धि का विषय है।

सन्धि—वासुदेव दुर्योधन से 'तेरे कारण वंश का नाश होगा' इस कथन में पुनः दूतकार्य रूपी बीज की उद्भावना होने से सन्धि नामक अग है।

विबोध—वासुदेव दुर्योधन के 'अहमेव पाशैर्बध्नामि' के अनन्तर दूत कार्य की पुनः खोज करने लगते है इस कारण यहाँ विबोध अग है।

ग्रथन—वासुदेव पाण्डवो के कार्य को स्वय ही सिद्ध करने की इच्छा करते हैं, इस स्थल पर नाटककार ने अपने समस्त कार्य को एक स्थान पर समाहृत कर दिया है अतः यहाँ ग्रथन नामक निर्वहणाग है।

भाषणम्—वासुदेव का सुदर्शन से समय पर आने का वार्तालाप है।

निर्णय—वासुदेव[2] का पृथ्वी के भार को दूर करने हेतु आगमन आदि पर विचार करने के कारण यहाँ निर्णय नामक अग हुआ।

प्रसाद—वासुदेव का सुदर्शन से 'सुयोधन हतक' तथा सुदर्शन का वासुदेव से प्रसीदतु भगवान् नारायणः' कहने से प्रसाद नामक अग है।

---

१. वासुदेवः—दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रजः।
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः॥ दू० वा० १।३४

२. सुदर्शनः—महीभारापनयनं ...... विफलः श्रमः॥ दूत० वा० १।४६
वासुदेवः—यदि लवणजल ...... कालचक्रं तवाद्य॥ दूत० वा० १।४५

वराप्ति—धृतराष्ट्र द्वारा अर्घ्य से प्रसन्न होकर वासुदेव का 'सर्वं गृह्णामि 'कि ने भूयः प्रियमुपकरोमि' कथन वराप्ति नामक अग है।

प्रशस्ति—भास राजसिंह के एकच्छत्र राज्य की कामना भरतवाक्य करते है।

दूतघटोत्कचम्

कथावस्तु	—	महाभारत से भिन्न
अक	—	एक
सन्धि	—	दो
नायक	—	घटोत्कच
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	भारती

यह रूपक उत्सृष्टिकारक है। नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रहसन, वीथी, अक, तथा भाण में मुख तथा निर्वहण सन्धि तथा भारती वृत्ति होती है। इतिवृत्त इतिहास-प्रसिद्ध होता है तथा अपनी बुद्धि के अनुकूल नाटक का परिवर्तन कर सकता है। इसका स्थायी रस करुण होता है। नेता सामान्य पुरुष, सन्धि वृत्ति व अक भाण के समान होते है। इसमे केवल मुख तथा निर्वहण सन्धिया होती है। करुण रस होने के कारण इनमे स्त्रियो का रुदन, पात्रो मे वाग्युद्ध तथा जय-पराजय का वर्णन होना चाहिए।

उत्सृष्टाक के आरम्भ मे नाटककार सूत्रधार के द्वारा भगवान् के भी विशेषण नाटकीय सूत्रधार की प्रस्तावना समापन क्रियाओ को सृजन, पालन तथा सहार रूप में दर्शाते हुए भगवान् को भी सूत्रधार (नारायण) रूप से वर्णित करता हुआ रक्षा के हेतु स्तवन करता है।

मुख सन्धि

दूतघटोत्कच में कवि की यह अभिनव कल्पना है कि उसने दूत घटोत्कच को दूत रूप में भेजने के लिए अभिमन्यु-वध के प्रसग को आवश्यक समझा है क्योकि इसके अनन्तर ही पाण्डवो के सन्देश को लेकर घटोत्कच जाता है अतः इस स्थल पर नाटककार बीज का वपन करता है।

उपक्षेप— अभिमन्यु का वध ही घटोत्कच को दूत रूप में प्रेषित करने में बीज का कार्य करता है। सूत्रधार कहता है कि भीष्म-वध से क्रोधित कौरवों ने मिलकर अभिमन्यु का वध किया। इस स्थल पर उपक्षेप नामक अक है।

परिकर—भट के द्वारा अभिमन्यु का पितामह इन्द्र की गोद मे पहुँचने का वर्णन बीजन्यास के बाहुल्य को प्रकट करने से परिकर नामक अग है।

उपन्यास—धृतराष्ट्र अभिमन्यु वध से अपने वंशक्षय निवेदन मे घटोत्कच के कथन की प्रामाणिकता सिद्ध करता है अत. यहाँ उपन्यास नामक अग है।

विधानम्—गान्धारी का अभिमन्यु-विषयक पीड़ाहारी वचन विधान के अन्तर्गत है।

उपभेद—दु:शला गांधारी से कहती है कि हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ? जो अर्जुन के सहायक कृष्ण के होने से जयद्रथ की रक्षा कर सके। इस कथन में नाटक के बीज का उद्‌भेद हुआ अत: यहाँ उद्‌भेद नामक अग है।

विलोभन—धृतराष्ट्र[1] के द्वारा अभिमन्यु की विशेषताओं का आख्यान विलोभन नामक अग है।

करणम्—भट[2] का यह निवेदन है कि पाण्डव अभिमन्यु को चिता पर नही रखते है और वे अर्जुन की प्रतीक्षा मे है। रूपक की कथा के अनुरूप कार्य का आरभ प्रदर्शित करने से इस स्थल पर करण नामक सन्ध्यग है।

भेद—धृतराष्ट्र[3] का कथन कि 'अभिमन्यु के वध पर भी तुम जीने की आशा करते हो' दुर्योधन के लिए उत्तेजना प्रदायक होने से भेद नामक सन्ध्यग है।

निर्वहण सन्धि

धृतराष्ट्र दुर्योधन से दु.शासन द्वारा अभिमन्यु-वध का वर्णन करते हुए दु.शला की वैधव्य-प्राप्ति मे नाटककार कथा का उपसंहार करता है।

सन्धि—धृतराष्ट्र कहता है कि 'जब अकेले अभिमन्यु ने ऐसा किया तो उसका पुत्रशोक से सतप्त पिता क्या करेगा' कथन भावी दु:शासनवध रूपी बीज का उद्‌भेद स्थल होने से सन्धि नामक सन्ध्यग का विषय हुआ।

ग्रथनम्—धृतराष्ट्र द्वारा अर्जुन के पराक्रम-वर्णन में रूपककार समस्त कार्य को एक स्थान पर समाहृत करता है। अतः यहाँ ग्रथन है।

परिभाषण—धृतराष्ट्र का शकुनि के प्रति यह कथन कि तुम्हारे द्वारा जलायी गई द्यूत रूपी अग्नि कौरववंश के बालकों के विनाश से भी शान्त होती है तथा घटोत्कच का उत्तर-प्रत्युत्तर परिभाषण के अन्तर्गत है।

प्रशस्ति—नाटककार भरतवाक्य मे यहाँ पृथक् रूप से वर्णन करता है। वस्तुत: यहाँ भरतवाक्य नही दिया गया, किन्तु अन्त में 'पश्चिमः सन्देशः' में धर्म के आचरण के प्रति उद्‌बोधन प्रदर्शित किया गया है।

---

१. धृतराष्ट्रः—कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते···स्वैदुष्कृतैर्जीवितम्। दूतघटो० १।८

२. भटः—चितां न तावत्स्वमस्य ··प्रहृतं नरेन्द्रैः। दूतघटो० १।९

३. धृतराष्ट्रः—सौभद्रे निहते· ·कथमाशीः प्रयुज्यते। दूतघटो० १।१५

कर्णभार

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अंक	—	एक
सन्धि	—	दो
नायक	—	कर्ण
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	भारती

कर्णभार नाटक मे 'कर्णस्य भार: इति कर्णभार:' भार शब्द का अर्थ वहन करने वाले भार की ओर सकेत करता है। भास ने अपनी रचनाओं में इस शब्द का कतिपय स्थलो पर प्रयोग किया है। इस भार शब्द के विवेचन को हमने कथा-वस्तु वाले भाग में वर्णित किया है।

मुख सन्धि

कर्णभार मे दानी कर्ण के कवच-कुण्डल रूपी भार के अपनयनार्थ ही कर्ण-भार शीर्षक की चरितार्थता है। युद्ध के अवसर पर कवच-कुण्डलो का धारण अपे-क्षित है। अत: युद्ध की सूचना रूपी बीज से उत्सृष्टाक आरम्भ होता है।

उपन्यास—भट अंगराज को युद्धकाल की सूचना देता है। इस कथन से युद्ध की तैयारी में कवच-कुण्डल धारण रूपी बीज के उपन्यास द्वारा उपक्षेप का सवर्द्धन हुआ।

परिकर—अगराज का समरोचित वेषभूषा मे अपने भवन से निकलने का वर्णन परिकर है।

परिन्यास—कर्ण की पाण्डवो के प्रिय न करने की इच्छा अर्जुन के विरोध मे इस प्रकार प्रकट होती है कि यह शकुनि से अपने रथ को वहीं ले जाने के लिए कहता है जहाँ कि अर्जुन विद्यमान है। अतः इस उक्ति मे नाटककार की अभीष्ट वस्तु निहित होने से बीज के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि प्राप्त होती है।

विलोभन—कर्ण का अपने पराक्रम तथा युधिष्ठिर को प्रथित गुणशाली कह-कर उसके गुणों का कीर्तन करना विलोभन है।

विधानम्—कर्ण[1] की युद्ध के लिए जाते समय कुन्ती का स्मरण करके उक्ति ।धान है।

परिभावना—कर्ण के द्वारा अस्त्रों की विफलता को जानकर शकुनि आश्चर्य ो भावना प्रकट करता है। अत. इस स्थल पर परिभावना नामक सन्ध्यग है।

उद्भेद—कर्ण[2] का युद्ध की दोनों दशाओं में निष्फलता न होने से युद्ध-हेतु

१. कर्णः—कृते ··· कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति। कर्ण० १।१०

२. कर्णः—हतोऽपि ''''नास्ति निष्फलता रणे। कर्णभार० १।१२

प्रयाण तथा कुण्डल कवच दान पर कोई प्रभाव नहीं पडता और वह युद्ध की भावना से प्रेरित होकर आगे बढता है। अत बीज के उद्भेद होने से यहाँ उद्भेद नामक अंग है।

करणम्—नाटककार कर्ण का-युद्ध हेतु प्रयाण कथा के अनुरूप कार्य के वर्णन से इस स्थल पर करण नामक सन्ध्यंग है।

भेद—कर्ण को अपने अश्वो के बल पर स्वरक्षा करने का कथन युद्ध के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने से भेद नामक अग के अन्तर्गत है।

समाधान—कर्ण का शकुनि से अपने रथ को पुनः अर्जुन के समीप जाने के कारण बीज का पुनः व्यवस्थापन होने से समाधान नामक अंग है।

निर्वहण सन्धि

शक्र तथा कर्ण का आलाप विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के देने के विषय मे होता है किन्तु शक्र किसी भी वस्तु को लेने को तैयार नहीं है तब नाटककार कथावस्तु के उपसंहार की कामना से कवच-कुण्डल ही देने के कथन द्वारा कथावस्तु को एकत्र समाहृत करता है। अतः इस स्थल पर निर्वहण सन्धि है।

सन्धि—कर्ण का कवच-कुण्डलों के शरीर के साथ उत्पन्न होने पर भी देने की निश्चित भावना मे सन्धि नामक अंग का सन्निवेश है।

विबोध—शल्यराज के निषेध करने पर भी 'हुत च दत्त च तथैव तिष्ठति' के कथन मे पुन अपने लक्ष्य की पुष्टि करने से विबोध नामक अंग है।

ग्रथनम्—कर्ण द्वारा 'निकृत्य ददाति' उतार कर दे देने पर नाटककार ने कथा का उपक्षेप कर लेने से ग्रथन नामक निर्वहणाग है।

परिभाषा—शकुनि तथा कर्ण का पारस्परिक जल्प इस अग मे आता है।

निर्णय—कर्ण[1] अपने कवच-कुण्डल देकर इन्द्र को कृतार्थ हुआ कहने का निर्णय करता है, इस कारण यहाँ निर्णय नामक अंग है।

प्रसाद—कर्ण का शक्र के प्रति 'न भेतव्यम्, प्रसीदतु भवान्' में शक्र को प्रसन्न करने के कारण प्रसाद नामक सन्ध्यग है।

प्रशस्ति—रूपककार सर्वत्र सम्पदाओ की कामना से प्रशस्ति का कथन करता है।

उरुभंग

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अक	—	एक
सन्धि	—	दो
नायक	—	भीम
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	भारती

१. कर्णः—अनेक ''मया कृतार्थः खलु पाकशासनः। कर्णभार १।२३

भीम द्वारा दुर्योधन की जघाओ का गदा से भग्न होना ही रूपक की कथा-वस्तु है। रूपककार नान्द्यन्ते के पश्चात् मुद्रालकार से नाटकारम्भ करता है तथा नायक में प्रयुक्त पात्र (भीष्म, द्रोण, जयद्रथ आदि) का श्लिष्टत्वेन प्रयोग करता है। केशव की स्तुति से आरम्भ होता है।

मुख सन्धि

दुर्योधन की उरुभग द्वारा मृत्यु ही इस रूपक की कथावस्तु है। अत भीम, दुर्योधन युद्ध का आरम्भ ही इस रूपक की कथावस्तु है। अत भीम का युद्ध-हेतु प्रयाण और उसका दर्शको द्वारा वर्णन आरम्भ मे है।

उपक्षेप—भीम दुर्योधन का गदा युद्ध का आरम्भ बीजन्यास होने से उपक्षेप है।

परिकर—युद्ध मे भीम दुर्योधन जैसे वीरो की स्थिति का वर्णन परिकर है।

परिन्यास—द्वितीय तथा तृतीय व्यक्तियो द्वारा 'ईदृशानामपि क्षत्रियाणा मृत्युः प्रभवतीति' कथन से 'बीजन्यास' (भीम-दुर्योधन-युद्ध) के बाहुल्य रूप परिकर (भीम द्वारा दुर्योधन की उरुभंग से मृत्यु) की सिद्धि होने से इस स्थल पर परिन्यास नामक मुखाग है।

विलोभनम्—द्वितीय के द्वारा अर्जुन के शस्त्र बल की प्रशसा विलोभन है।

उद्भेद—भीम दुर्योधन के युद्धारम्भ मे बीज के उद्भेद का सन्निवेश है।

विधानम्—प्रथम तथा द्वितीय व्यक्ति भीमसेन दुर्योधन के कष्ट का अनुभव करते है और 'दैन्य याति युधिष्ठिरोऽत्र' कथन में विधान है।

करणम्—अर्जुन गाडीव का छूकर आकाश मे कृष्ण को देखकर भीम को सकेत का प्रदर्शन करते हुए रूपक की कथा के अनुरूप प्रगति से यहाँ करण है।

निर्वहण सन्धि

रूपककार कथा को सगृहीत करने की दृष्टि से अर्जुन कृष्ण द्वारा भीम को तथा बलराम द्वारा दुर्योधन को सकेत करते हुए दर्शाता है। सकेत पाकर भीम दुर्योधन की उरु में गदाघात करता है। अतः यहाँ निर्वहण सन्धि है।

सन्धि—दूसरे व्यक्ति के कथन में भीम के लिए जनार्दन का सकेत दुर्योधन के वध रूपी बीज का उद्भावक होने से सन्धि नामक अग है।

विबोध—प्रथम व्यक्ति के द्वारा भीम दुर्योधन युद्ध का पुनः आरम्भ विबोध नामक सन्धि के अन्तर्गत है।

ग्रथनम्—नाटककार प्रथम व्यक्ति के द्वारा भीम का गदाघात दर्शाकर कथा को एकत्र समाहृत करता है अतः इस स्थल पर ग्रथन नामक सन्धि है।

परिभाषण—बलदेव का दूसरे राजाओं से भीम की गदा के आघात को अनुचित दर्शाना जल्प के अन्तर्गत होने से परिभाषण है।

प्रसाद— दुर्योधन द्वारा बलराम के लिए 'प्रसीदतु प्रसीदतु' कहना प्रसाद है।

निर्णय—दुर्योधन[1] का अपने विचारित कार्य के विषय मे वर्णन निर्णय है।

प्रशस्ति—नाटककार शत्रुओं के शमन तथा गौओ की रक्षा की कामना से प्रशस्ति-वाचन करता हुआ रूपक को समाप्त करता है।

बालचरित

कथावस्तु	—	महाभारत से उद्धृत
अङ्क	—	पाँच
सन्धि	—	पॉच
नायक	—	कृष्ण
रस	—	वीर रस
वृत्ति	—	आरभटी

बालचरित ही ऐसा नाटक है जिसमे कवि ने नाटक का नाम निर्देश किया है। यह काव्य वीर काव्य-परम्परा का पोषक है। नाटक के आरम्भ मे 'नान्द्यन्ते' के बाद भगवान् विष्णु के स्वरूप की स्तुति की गई है। नाटक के प्रथम अक[2] मे वर्णित शंख, चक्र, गदा और नन्दक आदि मनुष्यलोक मे अवतीर्ण विष्णु के बाल-चरित को देखने के लिए गोपवेष मे गोप-बस्ती मे आते है।

मुख सन्धि

भगवान् कृष्ण का कस के वध के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होना ही रूपक का बीज है।

उपक्षेप—नारद का भगवान् कृष्ण के दर्शनार्थ आना उपक्षेप है।

परिकर— कसहननार्थ बीज के बाहुल्यार्थ मे देवकी की उक्ति परिकर है जिसमे कृष्ण को कस की मृत्यु के समान दर्शाया है।

परिन्यास—वसुदेव के द्वारा कस की मृत्यु की घोषणा मे परिन्यास है।

विलोभन—नन्द गोप का वसुदेव तथा अपने गुणों का कीर्तन विलोभन है।

युक्ति—कृष्ण की रक्षा के लिए नन्द गोप के वचन 'कि यशोदा भी नही जानती कि पुत्र है अथवा पुत्री' इत्यादि कथन मे पात्र के अभीष्ट तथ्यों का समर्थन करने से युक्ति नामक सन्ध्यग है।

विधानम्—नन्द गोप का कन्या की मृत्यु पर शोक विधान सन्ध्यग है।

परिभावना—नन्द गोप का 'आश्चर्यं भर्तः' कथन परिभावना है।

समाधान—वसुदेव का नन्द से कृष्ण की रक्षा करने में यादवों के बीजन्यासन के कथन से बीज का युक्ति द्वारा व्यवस्थापन समाधान है।

---

१. दुर्योधनः—प्रतिज्ञावसिते···विग्रहः कि करिष्यति । उरुभंग १।३३

२. चक्रः —वयमपि ··विष्णोर्बालचरितमनुचरितुम् । बाल० १।२७ के पास

उद्भेद—वसुदेव का कन्या को देवकी के समीप रखकर कस को वचित का कथन अब तक छिपे हुए गूढ भेद का उद्घाटन करने से उद्भेद है।

करणम्—वसुदेव का 'मथुरा मे सभी सोये है इत्यादि कथन' रूपक की कथा के अनुरूप कार्य के आरम्भ होने से इस स्थल पर करण नामक सन्ध्यंग है।

भेद—नन्द गोप के 'ईश्वराः स्वस्ति कुर्वन्तु' कथन से कार्य मे प्रोत्साहन की प्राप्ति भेद नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आती है।

प्रतिमुख सन्धि

परिसर्प—दृष्ट बीज के तिरोहित होने पर कस का पृथ्वी के चलने आदि के अनुभव से भविष्य में आने वाली आपत्ति का बोध होने से कस-वध रूपी बीज का अन्वेषण होता है। अतः यहाँ परिसर्प नामक सन्ध्यंग है।

पुष्पम्—शाप[1] का कंस से उसके विनाश का कथन पुष्प सन्ध्यंग है।

उपन्यास—राजा का रात्रि मे देवप्रतिमाओं का आभास करना बीज के उद्‌ेद करने के कारण उपन्यास नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत आता है।

गर्भ सन्धि

अभूताहरणम्—वसुदेव का कृष्ण को छिपाकर कस से कन्या बतलाना अभूताहरण है।

संभ्रम—राजा के द्वारा बुलाये जाने पर वसुदेव[2] का भयभीत होना संभ्रम है।

तोटक—राजा के प्रति वसुदेव का अकरुण कहना तोटक सन्ध्यंग है।

क्रमः—कस के द्वारा देवकी के सप्तम गर्भ के विनाश के पश्चात् चिन्ता का विनाश घोषित करना क्रम के अन्तर्गत है।

उदाहरणम्—राजा का अपने उत्कर्ष की कामना को 'मम शान्तिर्भविष्यति' कह कर अभिव्यक्त करना उदाहरण के अन्तर्गत है।

संग्रह—कंस का वसुदेव से मधूक ऋषि के शाप का स्मरण दिलाना तथा अनुनययुक्त वार्तालाप करना संग्रह नामक सन्ध्यंग के अन्तर्गत है।

अवमर्श सन्धि

बालकृष्ण का क्रोध से फलप्राप्ति के विषय में परिनिरीक्षण करना अवमर्श सन्धि का विषय है।

अपवाद—कालिय कृत दोषों का आख्यान अपवाद है।

संफेट—दामोदर का गोवृषाधम से रोषयुक्त कथन सफेट है।

---

१. शापः—परिष्वजामि······त्वामचिरान्नाशमेष्यसि। बाल० २।६

२. वसुदेवः—स्मरतापि भयं······अभयादपि। बाल० २।१३

व्यवसाय—दामोदर की 'गिरितटकठिनांसावेव' उक्ति जिसमे गोवृषाधम के विनाश की सूचना दी गई है, व्यवसाय नामक सन्ध्यग के अन्तर्गत है।

द्युति—दामोदर का अरिष्टर्षभ से अपनी शक्ति प्रदर्शन के साथ तर्जनयुक्त वार्तालाप तथा कालिय का कृष्ण के प्रति आलाप द्युति नामक सन्ध्यग में है।

प्रसंग—अरिष्टर्षभ का कृष्ण को रुद्र अथवा विष्णु कहना प्रसग है।

विद्रवः—गोवृपाधम की मृत्यु का प्रदर्शन ही विद्रव है।

शक्ति—कृष्ण द्वारा कालिय के दर्प का शमन शक्ति के अन्तर्गत आता है।

विरोधनम्—अरिष्टर्षभ तथा कृष्ण का वार्तालाप तथा स्वशक्ति का प्रकटीकरण विरोधन नामक अवमर्शांग है।

प्ररोचना—दामोदर[1] की उक्ति जिसमें कस के भावी वध तथा प्रजाहित को वर्णित किया गया है, प्ररोचना के अन्तर्गत आती है।

विकत्थना—कालिय[2] का आत्मश्लाघा युक्त वचन विकत्थना है।

आदानम्—दामोदर[3] का कस को आज हो मारने की प्रतिज्ञा करना ही रूपक की कथावस्तु को सगृहीत करने का प्रयास होने से आदान नामक सन्ध्यग है।

निर्वहण सधि

कस द्वारा कृष्ण का स्मरण अपनी मृत्यु का आह्वान कराता है। नाटककार यहाँ कथावस्तु के विकीर्णांगों को सगृहीत करता है।

सन्धि—दामोदर का कसवध रूपी बीज की उद्भावना करने मे सन्धि अग है।

विबोध—भट के 'सर्वस्य जगतोऽस्माक च' महाराज कहने पर दामोदर का कथन 'अद्यप्रभृति न भविष्यति' पुनः कार्य का अन्वेषक होने से विबोध है।

ग्रथन—दामोदर की कसासुर को यमलोक पहुँचाने की उक्ति कार्य का उपसहार करने वाली होने के कारण यहाँ ग्रथन नामक सन्ध्यग होता है।

आनन्द—कस की मृत्यु ही नाटक की वांछित वस्तु है, अतः उसकी प्राप्ति आनन्द नामक सन्ध्यग है।

कृति—वसुदेव[4] कंस की मृत्यु पर सत्पुत्रजन्म के फललाभ का वर्णन करते हैं, अतः यहाँ कृति नामक सन्ध्यंग है।

समय—उग्रसेन[5] भगवान् के प्रसाद से दुःख के विनाश का अनुभव करते हैं अतः इस स्थल पर समय नामक सन्ध्यंग है।

---

१. दामोदरः—सर्वप्रजा-हितार्थं इततरं नागं मे वशं करोमि। भा० न.० च० ५४५

२. कालियः—लोकालोक······सम्प्रेषयामि क्षणात्। बाल० ४।७

३. दामोदरः—प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं···आकृष्य कंसमहमद्य निहन्मि। बाल० ४।१३

४. वसुदेवः—सत्पुत्रजन्मफलमद्य प्राप्तवानस्मि। बाल० पृ० ५५५

५. उग्रसेनः—चिरोपरोध······शतक्रतुः। बाल० च० ५।१६

भगवत्प्रसादाद् व्यसनार्णवादुत्तारितोऽस्मि। बाल० च० पृ० ५५६

भाषण—सभी व्यक्ति 'प्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम्' कहकर कृष्ण का सम्मान प्रदर्शित करते हैं अतः यहाँ भाषण नामक सन्ध्यग है।

वराप्ति—दामोदर का देवर्षि नारद से 'कि ते भूय' प्रियमुपहरामि' कहना वराप्ति नामक सन्ध्यग है।

प्रशस्ति—नाटककार राजसिंह के एकच्छत्र राज्य की कामना प्रशस्ति में करता है।

प्रवेशक—तृतीयाक मे दामक तथा वृद्ध गोपालक के जाने की सूचना देता है।

भास के नाटको में सन्ध्यंगों का विवेचन का परिणाम मेरी दृष्टि में भास की नाट्यशास्त्र की रचना का पूर्णतया पोषण सिद्ध करता है क्योंकि नाटकों में सन्ध्यगों का सुगुम्फन सुचारु रूप से किया गया है। सम्भवतः इन सन्ध्यंगों के घटित करने मे मतभेद हो, किन्तु ऐसे स्थल विवादास्पद होने पर भी गुरुवर्ग से आज्ञप्त हैं।

चतुर्थ अध्याय

पौराणिक कथाओं के विवरण का रूप

(क) पौराणिक कथाओ को किस प्रकार का रूप दिया गया ?

(ख) धार्मिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ (पञ्चरात्र का प्रभाव)।

(ग) सामाजिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ।

(घ) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ।

चतुर्थ अध्याय

पौराणिक कथाओं के विवरण का रूप

(क) पौराणिक कथाओं को किस प्रकार का रूप दिया गया :—

महाकवि भास रामायण तथा महाभारत से पूर्णतया प्रभावित हैं। रामायण आदिकाव्य है। बौद्ध तथा जैन साहित्य मे भी रामायण का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। जातक कथाओ (त्रिपिटकों) में रामायण के भावों को परिवर्तित रूप में हम देखते हैं। वाल्मीकि की (यावत्स्थास्यन्ति गिरयः) वाली उक्ति पर पाश्चात्य विद्वानों को आश्चर्य होता है। रामायण में केवल राम-कथा में आदर्श पुरुष तथा आदर्श राजा का ही चित्रण नही किया गया है, अपितु तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक स्थितियों का भी विशद वर्णन प्राप्त होता है।

रामायण का प्रभाव—सर्वतः प्रथम महाभारत के आरण्यक पर्व में रामोपाख्यान के वर्णन में साथ-साथ नलोपाख्यान में अनेक पद्यो की आवृत्ति-सी ही दृष्टिगोचर होती है। वनपर्व मे १४६वें श्लोक मे रामायण का नाम निर्दिष्ट है। राजशेखर ने अपने नाटक प्रचण्डपाण्डव मे व्यास द्वारा वाल्मीकि के ऋणी होने का आख्यान किया है।

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में भास की ख्याति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यह पूर्व कवियो द्वारा किये गए प्रशस्त पन्था का अनुकरण प्रतीत होता है। कालिदास आदिकवि वाल्मीकि की क्रौञ्चवध वाली घटना से ही परिचित हों, ऐसा नही है अपितु उन्होने रामायण का पारायण किया है यह उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है।

बौद्ध कवि अश्वघोष[1] ने बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द में दो पद्यो में वाल्मीकि और रामायण तथा महाभारत का संकेत किया है और महाकाव्यों की पौराणिक कथाओं में भिन्नता दर्शायी है। बुद्ध-चरित में सोती हुई स्त्री का चित्रण वाल्मीकि रामायण से समानता रखता है।

कवि भट्टि ने अपने भट्टिकाव्य की भाँति रावणवध ग्रन्थ में ६०० ए० डी० मे व्याकरण के नियमो की व्याख्या हेतु रामकथा को अपनाया है। कुमारदास के ग्रन्थ जानकीहरण की कथावस्तु रामायण पर आधारित है किन्तु कालिदास से वह विषयवस्तु के प्रतिपादन तथा शैली में भी अत्यन्त प्रभावित हुआ है। करुण रस के महान् कवि भवभूति ने भी रामकथा पर आधारित दो रचनाएँ महावीरचरित तथा उत्तररामचरित नाम से लिखी है। इन दोनों नाटकों के उज्जैन के महाकाली के

---

१. रामकथा का विकास, पृ० ११, फादर कामिलबुल्के।

मन्दिर मे अभिनीत होने के प्रमाण मिले है। किन्तु कथावस्तु मे परिवर्तन तो कवि-प्रतिभा का परिचायक होता है।

अनर्घराघव नामक नाटक के रचयिता कवि मुरारि वाल्मीकि से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने को बाल वाल्मीकि कहने मे गर्व का अनुभव किया। इनके नाटक की कथावस्तु रामायण पर आधारित है। परन्तु महावीरचरित तथा शक्तिभद्र के आश्चर्यचूड़ामणि की भाँति यह शूर्पणखा की कथा से आरम्भ होता है।

क्षत्रियकुलोद्भव राजशेखर ने प्रतिहार राजाओं के संरक्षण में बाल-रामायण की रचना की और अपने को वाल्मीकि का अवतार प्रदर्शित किया। यह नाटक पद्य-बहुल १० अंको में वर्णित है।

बौद्धकवि दिङ्नाग द्वारा रचित करुण रस नाटक कुन्दमाला भवभूति के उत्तररामचरित की भाँति रामायण के उत्तर काण्ड पर आधारित है।

हनुमन्नाटक के दो सस्करण प्राप्त होते है जिनमें मधुसूदन मिश्र वाले नाटक में १० अक हैं तथा दामोदर मिश्र वाले नाटक को १४ अंकों से युक्त पाते हैं। आनन्दवर्धन ८५० ए० डी० द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण यह नाटक नवी शताब्दी के पूर्व भाग में प्रचलित हो चुका था। पुनः भोज के समय (१००५-१०५८) मे नाटक की अपूर्ण प्रतिलिपि होने का पता चलता है। इसका हिन्दी संस्करण भी पजाब के प० हृदयनारायण द्वारा सपादित किया गया है।

महादेव १७०० ए० डी० द्वारा रचित अवधूतदर्पण में अंगद के दूत रूप में रावण की सभा में गमन से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का वर्णन है। इसमें हास्य दर्शनीय है।

गुणाढ्य ने भी विवाह के पश्चात् पत्नी के चुराये जाने की कथा का संकेत रामायण से लिया है।

आठवी शती के जैन कवि स्वयम्भू ने अपनी रचना 'पुम्मचरित' में रामकथा तथा रामायण दोनों को जिन का भक्त दर्शाया है किन्तु रावण को उसके कृत्यो द्वारा नष्ट होता हुआ अकित किया है।

महाभारत का प्रभाव—महाभारत की कथाओं के बीज डॉ० मेकडानल ने अपने ग्रथ 'हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर' में यजुर्वेद में वर्णित कुरु तथा पाचाल जातियों में प्राप्त किए है तथा यजुर्वेद के कथ्थक राजाओं में धृतराष्ट्र का एक पुरुष के रूप में प्रसिद्ध होना बतलाया है। उन्होने ई० पूर्व शती १० में महाभारत की घटनाओं का अनुमान लगाया है। महाभारत के बृहदाकार में मेकडानल ३ बार प्रक्षिप्तांश की कल्पना करते हैं। महाभारत को शतसाहस्री सहिता का अभिधान महाराजा सर्वनाथ ५०० ए० डी० के ताम्बे के पत्रो पर लिखित प्रमाणित होता है।

भारत के आर्कियॉलॉजी विभाग के डायरेक्टर जनरल डॉ० वी० सी० छाबरा ने महाभारत अनुशासनपर्व में वर्णित विष्णुसहस्रनाम की मुद्रा को गुप्तकालीन सिक्कों पर अंकित होना बतलाया है। पाणिनि, पतञ्जलि तथा कात्यायन, भास, कालिदास, वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण ७०० ए० डी० राजशेखर के प्रचण्डपाण्डव, बालभारत तथा कुलशेखर वर्मन लिखित सुभद्राधनञ्जय तथा ताप्तीस्वयवर की कथावस्तु भी महाभारत से उद्धृत है।

भारतीय सभ्यता का प्रभाव—ईसा की पाँचवी शती में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता दक्षिणपूर्व एशिया के देशों में फैली—इसका प्रमाण जावा, सुमात्रा, बाली, कम्बोज, इण्डोनेशिया तथा इण्डोचाइना में प्राप्त भारतीय भाषा संस्कृत में प्राप्त शिलालेख ही है। मनुष्यों तथा नगरों के नाम आज भी संस्कृत में ही हैं तथा भारतीय पर्वो, उत्सवों का प्रचलन वहाँ इस समय भी है। राजपुरी, प्राचीनपुरी, अरण्य प्रदेश तथा स्याम अयोध्या नाम के नगर वहाँ हैं। यह विश्वास किया जाता है कि राम के अश्वमेध का घोड़ा, जो लवकुश के द्वारा रोका गया था, अवश्य स्याम देश की अयोध्या तक घूमा था। सन् १७६७ तक यह नगर अयोध्या स्याम की राजधानी था। हिन्दू धर्म के साथ बुद्धधर्म भी इन देशों में फैला जिसके चिन्ह इस समय भी प्राप्त होते है। बुद्ध के मन्दिरों में भी राम तथा सीता की मूर्तियों से दोनों धर्मो में आस्था स्पष्ट झलकती है। इण्डोनेशियावासी १६वीं शती के अन्त तक भारतीय थे। जावा, सुमात्रा तथा बाली द्वीप के निवासी आज भी विष्णु, शिव, तारा, बुद्ध तथा बोधिसत्व की पूजा करते हैं। बाली द्वीप में आज भी चार जातियाँ हैं, जिनमें तीन द्विज तथा एक जात्य कहलाते हैं शूद्र नहीं। इनके द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता। महाभारत का पठन वहाँ अब भी प्राप्त है। जावा के मध्य में (बराबूदर) विशाल तथा भव्य मन्दिर है जिनके ३ मील लम्बे क्षेत्र में पौराणिक तथा जातक कथाओं के चित्रों के पत्थर पर अंकन से तत्कालीन वास्तुकला की उत्कर्षता पर आश्चर्य होता है।

भास ने, साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसी क्षेत्र का दिग्दर्शन अपने नाटकों में प्रस्तुत नही किया, अपितु साहित्यकार समाज को अभिनव तथा उचित दिशा के मनोरम दर्शन कराकर स्वराजभक्ति का आदर्श भी उपस्थित किया है। भास के नाटक केवल साहित्यिक नही हैं, अपितु ये लोक-परम्परा के प्रतिनिधित्व करने वाले नाटक है। इनके नाटक लोक-नाटक हैं, जिनकी प्रधान विशेषता अभिनेयता ही है भले ही साहित्यिक उपयुक्तता में उनमें दोष भी हो। मूलत: वे पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। हास्य अथवा प्रहसन के साथ-साथ काव्यत्व का सन्निवेश इनमे रहता है। भास ने इसी उद्देश्य से लोककथाओं को अपने नाटकों का विषय चुना जिससे जनमनोरजन तथा नाटकों का प्रसार सुगमता से प्राप्त हो सके। यह अनुमानत:

उचित ही होगा कि स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञा नाटक के नायक उदयन भी उस समय के केवल ऐतिहासिक नायक ही न रहकर लोककथाओं के रोमाण्टिक हीरो के रूप मे ख्यात रहे होगे। भास के समय में उदयन, अविमारक और दरिद्र चारुदत्त की कथाये राजकुमारो की कहानियों के अनुरूप सामाजिक मनोरजन का साधन अवश्य रही होगी। यह तो स्वय सिद्ध है कि प्रत्येक समय में इस प्रकार की कतिपय कथाएँ अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं जिनके माध्यम से कवि सृष्टिकर्ता अपनी सृष्टि का सृजन करता है। उदयन की लोककथा का आधार ऐतिहासिक घटना भी है। अतः भास ने तत्कालीन उपादेय कथासामग्री का नाटकीय उपयोग कर अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है कि इतना दीर्घ समय होने पर भी आदि नाटककार अपना उन्नत स्थान बनाये हैं।

स्वप्नवासवदत्तम्—भास की कृतियो में सर्वोत्तम स्थान पर सुशोभित होने वाला यह सुखान्त नाटक संस्कृत वाङ्मय की अनुपम निधि है। कौशाम्बी के राजा उदयन का अपनी प्रियतमा में अत्यन्त आसक्त होकर राज्य की उपेक्षा करने से उसके अधिकतर राज्य का भाग नष्ट हो गया। उसके राजभक्त मन्त्री यौगन्धरायण ने रानी वासवदत्ता की मन्त्रणा से लावाणक ग्राम में दोनों के जलने का मिथ्या समाचार फैलाकर और रानी को छिपाकर आवन्तिका वेष में पद्मावती के पास धरोहर रूप में रखकर उदयन का विवाह मगध के राजा दर्शक की बहन पद्मावती से होने का अवसर दिया। पद्मावती के शयनगृह मे सुप्त उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है वह स्वप्न यथार्थ हो जाता है और अन्त में यौगन्धरायण पुनः समय से वासवदत्ता को लेने के लिए आ जाता है। इस प्रकार रहस्योद्घाटन के साथ तथा आरुणि पर युद्ध करके राज्यप्राप्ति होने के हर्ष में नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में शुद्ध प्रेम का चित्रण है तथा एक पत्नी का आदर्श जीवन अपने पति के हित में उपस्थित किया गया है।

स्रोत—गुणाढ्य की बृहत्कथा से है, जो कि इस समय अप्राप्य है, उसी के आधार पर क्षेमेन्द्र[1] द्वारा रचित बृहत्कथा-मञ्जरी में निम्नांकित प्रसग प्राप्त होता है।

वत्सराज उदयन—यह पाण्डु-वश के अर्जुन से २६वे पुरुष कथासरित् सागर तथा पुराणों के आधार पर प्रतीत होते हैं। गंगा के जल में हस्तिनापुर के निमग्न होने पर अर्जुन से नवम राजा वत्स देश मे कौशाम्बो मे निवास करता था ऐसी पौराणिक कथा है। अतएव 'आसीदर्जुनात्षष्ठ.' सहस्रानीको नाम राज

१. मंत्रिवृद्धद्विजाकारः प्रविश्य मगधाधिपते कन्यामन्तःपुरं प्राह प्रौढः पद्मावती शनैः।
राजपुत्रीसुतेयं मे रूपिणी तनयो यस्म् अन्वेष्टुमस्याः गच्छामि च्चिरप्रोषितं पतिम्॥
बृहत्कथामञ्जरी, क्षेमेन्द्र, पृ० ७५२, श्लोक ७५ व ७६।

'कौशाम्व्याम्' ऐसा प्रियदर्शिका के टीकाकार श्रीकृष्ण सूरी का कथन भ्रान्त ही प्रतीत होता है। प्रतिज्ञा मे भास भी शतानीक के पुत्र तथा सहस्रानीक के नप्ता कहते हैं। भागवत मे अर्जुनवश मे कतिपय राजाओ के उल्लेख के पश्चात् २५ वे शतानीक के पुत्र तथा उनके पुत्र का दुर्दमन ऐसा नाम उल्लिखित है इसी को उदयन वत्सराज कहा जा सकता है किन्तु इस शतानीक के पिता का नाम सहस्रानीक नही मिलता। अतः भास के द्वारा वर्णित सहस्रानीक के नप्ता होने का दृढ़तर प्रमाण प्राप्त नही होता है।

भागवत के नवम स्कन्ध में २३ वे अध्याय मे अर्जुनवश का क्रम इस प्रकार है :—

१. अर्जुन	२. अभिमन्यु	३. परीक्षित
४. जनमेजय	५. शतानीक	६. सहस्रानीक
७. अश्वमेधज	८. असीम कृष्ण	९. नेमिचक्र (कौशाम्बीवासी)
१०. चित्ररथ	११. कविरथ	१२. वृष्णिमान्
१३. सुषेण	१४. सुनीथ	१५. नृचक्षु
१६. सुखीनल	१७. पारिपल्लव	१८. सुनय
१९. मेधावी	२०. नृपञ्जय	२१. ईर्ष
२२. निमि	२३. बृहद्रथ	२४. सुदाय
२५. शतानीक	२६. दुर्दमन (उदयन)	२७. वहीनर (नरवाहनदत्त)
२८. दण्डपाणि	२९. निमि	३०. क्षेमक

ये वत्सराज उदयन ईसा से ४७४ वर्ष से ४४९ वर्ष पूर्व मगध मे सिहासनारूढ़ होकर दर्शक की भगिनी पद्मावती के साथ विवाह करके राज्य पर बैठे। अतः निःसन्देह ही ये इस समय के प्रतीत होते है। वत्स की राजधानी कौशाम्बी के दुर्ग का भग्नावशेष यमुना नदी के किनारे आज भी कौशल नाम से प्रसिद्ध है।

शारदातनय के भावप्रकाश[1] में लेखक ने स्वप्न को प्रशान्त नाटक बताया है जो कि सुबन्धु द्वारा वर्णित प्रशान्त नाटक की पंच सन्धियों के समान है। इस नाटक के विवेचन से यह प्रकट होता है कि शारदातनय के समय में स्वप्नवासवदत्त नामक नाटक था। यद्यपि वह नाटक हमारे प्राप्त नाटक से भिन्न है क्योंकि उसमें

१. प्रशान्तरसभूयिष्ठं प्रशान्तं नाम नाटकम्।
न्यासो न्यास समुद्भेदो बीजोक्तिर्बीजदर्शनम्॥
ततोऽनुदिष्टसंहारः प्रशान्ते पंचसंधयः।
स्वप्नवासवदत्ताख्यमुदाहरणमत्र तु॥ भावप्रकाश, शारदातनय

वासवदत्ता[1] जीवित है, पद्मावती को एक विशेष तिलक द्वारा सुसज्जित देखकर उदय उसकी जीवित रहने की वार्ता को समझ लेता है किन्तु यह प्रसग उपलब्ध नाटक मे नही दिया है । कथासरित्सागर से ज्ञात होता है कि वासवदत्ता ने आवन्तिका वेश में एक बार पद्मावती की सहायता की थी और एक विशेष तिलक से उसे मण्डित किया था जो कि उसने स्वयं वत्सराज से सीखा था ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक भी उदयनकथा पर आधारित है इसे स्वप्न वासवदत्ता का पूर्व भाग ही कहा जा सकता है । इसमें महासेन अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह राजा उदयन से करना चाहता है किन्तु वह इनसे वार्तालाप ही नहीं करता । अतः महाराजा उदयन को मृगया में व्यस्त देख महासेन ने अपने राज्य मे एक छद्म हाथी का निर्माण किया और उस हाथी में सौ सैनिकों को छिपा दिया। इस प्रकार हाथी के बहाने उदयन को पकड़ लिया गया । उदयन के गृहीत होने पर यौगन्धरायण का उन्हें छुड़ाने की प्रतिज्ञा को सफलता का सुन्दर वर्णन है । उदयन महासेन की पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देता है और उसी समय परस्पर प्रेमासक्ति हो जाती है । यौगन्धरायण अपने कई साथियो के साथ गुप्त वेष में हस्ति-सम्भ्रम योजना के द्वारा वासवदत्ता के साथ उन्हें वहाँ से मुक्त कराने में सफल होता है और स्वयं युद्ध करता हुआ पकड़ा जाने पर महासेन द्वारा अभीष्ट सिद्धि होने पर पुरस्कार पाता है और छोड़ दिया जाता है । इस नाटक में यौगन्धरायण दो बार प्रतिज्ञा करना है और उस प्रतिज्ञा की पूर्ति में सफल हो जाता है । इसी कारण नाटक का नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण पड़ा है । भामह ने ७०० ई० में इस नाटक की कथावस्तु की कटु आलोचना की । इसके आरम्भ में प्रकरण निर्दिष्ट किया है यह चार अको का सफल नाटक है ।

स्रोत—गुणाढ्य की बृहत्कथा से है किन्तु वह अप्राप्य है, उसी के आधार पर रचित क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा[2] मञ्जरी से उद्धृत अश निम्न प्रकार है जिसमें कहा गया है कि उदयन यौगन्धरायण पर राज्यभार सौंप कर वीणाविनोद में कालयापन करता था । अतः शिथिल जानकर चण्डमहासेन ने उसकी विजय की इच्छा की और अपनी कन्या वासवदत्ता का विवाह करने की इच्छा की किन्तु वह मानी इस प्रकार की याचना हेतु दूत नहीं भेजता है ।

---

१. स्वप्नवासवदत्तारयाश्चक्रे देव्यः प्रसंगतः ।
अम्लानमालातिलकौ वत्सेशात्पूर्वशिक्षितौ ॥ कथासरित्सागर
स्वप्नवासवदत्तम् भूमिका, विजयानन्द त्रिपाठी, १९३२, चतुर्थ संस्करण

२. यौगन्धरायणन्यस्तराज्यचिन्तापरोऽनयत्, कालं वीणाविनोदेन स मृगव्यामसेवत ।
कन्यावासवदत्तेयम् तदयोग्यैव सुता मम, निसर्गशत्रुर्नान्यो मे मानी स च न याचते ॥
बृहत्कथामञ्जरी क्षेमेन्द्र, पृ० ४५, द्वितीयगुच्छ श्लोक १।६६ ।

कल्पना के आधार पर लिखे रूपक : अविमारक

इस नाटक में 'अविमारक तथा महाराजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रणयकथा अंकित है। सम्भवतः अविमारक की कथा भास के समय की लोक-कथाओं मे प्रसिद्ध रही हो। इस नाटक में प्रणय का मनोरम चित्रण किया गया है। अविमारक हाथी से कुरंगी की रक्षा करता है तथा उस पर अनुरक्त हो जाता है किन्तु वह शापवश अपने पिता महाराज सौवीर के साथ निम्न जाति के पुरुष के समान रहता है तथा चोर की भांति कुरंगी से प्रेम करने महल मे पहुँचता है। वहां से आने पर पुनः वियोग से व्यथित हो आत्महत्या को समुद्यत होता है। पर्वत से गिरते समय वह विद्याधर द्वारा गुप्तविद्या तथा मुद्रिकाप्राप्ति से सुखपूर्वक अन्तः-पुर में वास करता है। नारदागमन से इस रहस्य का उद्घाटन होता है तथा उसके शाप के रहस्य को स्पष्ट करके उसको विवाह की अनुमति दे देते हैं और विवाह सम्पन्न हो जाता है।

स्रोत—गुणाढ्य की बृहत्कथा से अवतरित है किन्तु यहाँ क्षेमेन्द्र[1] कथा-मञ्जरी में पद्मावती की माता यौगन्धरायण के द्वारा प्रोषितभर्तृका वासवदत्ता के धरोहर रूप में छोड कर उसे अपने पति पाने के सन्दर्भ में एक कथा-प्रसंगवश कुरंगी का वर्णन करती है कि पूर्वकाल में कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी ने पिता के आदेश से दुर्वासा मुनि की सेवा से अभीष्ट-वर की प्राप्ति की थी।

अविमारक की कथा जातक कथाओं तथा वात्स्यायन कामसूत्र मे मिलती है।

चारुदत्त—इस अपूर्ण नाटक की कथावस्तु में चारुदत्त तथा गणिका वसन्त-सेना की प्रेमकथा वर्णित है। चारुदत्त गणिका के प्रति आसक्त है और राजा का श्यालक शकार भी उसके प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी है। वसन्तसेना अपने आभूषण चारुदत्त के समीप धरोहर के रूप में रखती है जिनको सज्जलक चारुदत्त के घर में सेंध लगा कर चुरा कर ले जाता है। यह आभूषण चुराने का कार्य वह वसन्तसेना की सेविका मदनिका के लिए करता है। इस नाटक की कथा उज्जयिनी के सार्थवाह चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रेम को लेकर निबद्ध की गई है। मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक ने निश्चय ही इस नाटक की कथा का आधार लेकर अपने प्रकरण का पल्लवन किया है। इस कथा का आधार लोककथा है। ऐसा आभासित होता है कि ब्राह्मण तथा गणिका के प्रणय की कथाये गुणाढ्य की बृहत्कथा मे रही होगी जो आज अनुपलब्ध है।

---

१. ततः पद्मावती माता तां दृष्ट्वा विस्मितावदत्।
कुन्तिभोजस्य तनया पुरा दुर्वाससं मुनिम्
आराध्य पितुरादेशादवाप प्रवरं वरम्॥
तस्मादवन्तिका पुत्री दिव्योचितमना सती।
यत्नादाराधनीयेयं सत्सेवा हि महाफला॥
बृहत्कथामञ्जरी, क्षेमेन्द्र, द्वि० गु० श्लोक ८१-८३

रामायण के आधार पर लिखे रूपक : प्रतिमा

नाटककार ने प्रतिमा नाटक मे राम के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित दर्शा-कर राम-वनवास के पश्चात् प्रतिमा-स्थापन की मौलिक कल्पना द्वारा नाटकान्त में राम का कैकेयी की आज्ञा से राज्याभिषेक अंकित किया है। भरत ने अपने मामा के यहाँ से लौटने पर दिवगत पूर्वजों की प्रतिमा देवमन्दिर मे स्थापित देखी। देव-मन्दिर की भाँति इस प्रतिमा मन्दिर मे भी वह प्रणाम करने के लिए प्रतिमाओं के सामने झुकता है किन्तु देवकुलिक ऐसा करने से निषेध करता है। उसी स्थल पर दशरथ की प्रतिमा देख कर पिता का मरण और भाई के वनगमन का समाचार उन्हे मिलता है। राम के रावण से युद्ध करने के अवसर पर भरत भी सेना द्वारा सहायता के लिए समुद्यत है। यह घटना रामायण से भिन्न है।

कथा में भास का मौलिक परिवर्तन तथा वाल्मीकि रामायण से उसकी तुलना :—

भास महाकवि वाल्मीकि से प्रभावित हैं। उन्होंने रामायण की कथावस्तु में मौलिक उद्भावनाओं के सन्निवेश से नाटकीय कौतूहल को उचित स्थान दिया है तथा सजीव कल्पनाएँ अंकित की हैं। वाल्मीकि के वर्णन के समान ही भास ने प्रतिमा नाटक में राम के राज्याभिषेक का वर्णन किया है। भास 'अभिषेकसम्भाराः आनीयन्ताम्" कहते हैं। वाल्मीकि ने भी अयोध्याकाण्ड में "अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः" कहा है। अतः इस स्थल पर समानता स्पष्ट आभासित होती है।

रामायण में राज्याभिषेक के अवसर पर भरत तथा शत्रुघ्न दोनों को अनु-पस्थित दर्शाया है किन्तु प्रतिमा[1] में शत्रुघ्न अयोध्या में उपस्थित है।

भास द्वारा वल्कल घटना का सुगुम्फन रामायण से परिवर्तित करके राम के अभिनव गृहस्थ जीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करता है जिसमें मनोरंजन युक्त हास्य में भी सीता ने पतिव्रतोचित लज्जा एव शील का सजीव रूप प्रदर्शित किया है। परिहास-निमित्त लाये हुए वल्कल को भी 'पापकम् कृतम्' कहती है तथा स्वयमेव वल्कल को सौवर्णिकम् कह कर मनोविनोद करती है। राम के राज्याभिषेक का हर्ष तो उचित है किन्तु राजा दशरथ के वनगमन[2] की झलक पाकर वह उस अभिषेक के जल को मुखोदक कहती है और वल्कल के अमंगल कहने पर राम से सान्त्वना पाती है।

वाल्मीकि रामायण में मन्थरा से प्रेरित कैकेयी स्वयं दशरथ से भरताभिषेक तथा राम-वनगमन को कहती है किन्तु प्रतिमा[3] में मन्थरा ही का कथन है।

---

१. राम:—शत्रुघ्नलक्ष्मण-गृहीतघटेऽभिषेके। प्रतिमा—१।७

२. चेटी—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति। भा० ना० च० पृष्ठ २५४

३. रामः—सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे। प्रतिमा—१।७

द्वितीयांक में दशरथ की मृत्यु के समय उनके पूर्वजों का आना नई कल्पना है। तृतीयाक में प्रतिमा मन्दिर की स्थापना तत्कालीन परम्परा को दर्शाती है। रामायण में इन दोनो प्रसंगो का अभाव है।

पंचमांक मे राम रावण के मिलन मे क्षत्रिय ब्राह्मण की उचित परम्परा दर्शायी है। ब्राह्मणो के सत्कार की स्थिति रावण के लिए भगवान् शब्द से प्रकट होती है। वाल्मीकि ने मृग का वर्णन किया है किन्तु भास ने काञ्चनपार्श्व नामक मृग जो कि मृगया के लिए नही अपितु श्राद्ध के लिए आवश्यक दर्शाया है। बाल्मीकि ने मनोविनोद दर्शाया है, यहाँ श्राद्ध की आवश्यकता हेतु मृग का पाना आवश्यक है।

षष्ठांक मे सुमन्त्र दण्डकारण्य में जाकर सीता के अपहरण के वृत्तान्त को भरत से सुन कर अपनी अधिक आयु के दोषो का वर्णन करके दु:खित होते है। भरत भी कैकेयी से 'पर्याप्तस्ते मनोरथः' कह कर पीड़ा पहुँचाते है। राम की सहायता के लिए भरत का समुद्योग नाटककार की अभिनव कल्पना है।

सप्तमाक मे राम का राज्याभिषेक जनस्थान मे होता है जहाँ के तपस्वियों का सम्मिलित होना आवश्यक है और कैकेयी की आज्ञा से राम का राज्याभिषेक होता है।

प्रतिमा नाटक मे भास की दृष्टि करुणरस-प्रधान रूपक की ओर रही है इसी कारण कतिपय विद्वान् भरत को करुण रस की प्रतिमा कहते हुए नाटक के शीर्षक की चरितार्थता बतलाते है।

प्रतिमा के पात्रो के चरित्र-चित्रण मे रामायण से भिन्नता :—

राम[1]—वनगमन के समय सहिष्णुता तथा वनगमन को पिता की आज्ञा पालन मात्र कह कर भाइयों और जनता के लिए श्रेयस्कर बतलाते हैं। राम दशरथ के प्रति इस नाटक में कोमल भाव वाले दर्शाये गए हैं किन्तु रामायण में कठोर भाव वाले। राम[2] कैकेयी के प्रति रामायण में क्षोभ प्रकट करते हैं किन्तु प्रतिमा में उसका कोई दोष नहीं बतलाते है।

सीता—वाल्मीकि ने वनवास के अवसर पर सीता को रुष्ट तथा राम के द्वारा सन्तुष्ट करते हुए दर्शाया है किन्तु प्रतिमा में वह सहनशीलता अकित की गई है। यहाँ राज्याभिषेक तथा वनगमन में प्रसाद तथा अवसाद दोनों की स्थितियों का आभास नही होता।

कैकेयी—वाल्मीकि रामायण में भरत द्वारा कैकेयी को कालरात्रि, पापदर्शिनी, दुर्वृत्त, राज्यकामुका आदि शब्दो से कहा गया है किन्तु प्रतिमा में भरत

१. रामः—स्वपुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो! विस्मयः। प्रतिमा १.५
अथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे। प्रतिमा १।१४

२. रामः—यस्याः 'येनाकार्यं करिष्यति॥ प्रतिमा १।१
वनगमननिवृत्तिः···भ्रातरो मे॥ प्रतिमा १।१

ऋषि शाप की पूर्ति आवश्यक समझकर शान्त रहते है तथा 'वधूप्रधर्षण प्राप्तम्' तथा कुंनदी कहकर सन्तोष कर लेते है।

सुमन्त्र—रामायण मे सुमन्त्र ने कैकेयी को ही मूल कारण समझ कर मर्मान्तिक वाक्य कहे है किन्तु प्रतिमा मे सुमन्त्र अत्यन्त सौम्य और दीर्घ आयु को दोषी ठहराने वाला अकित किया गया है। कैकेयी के दोष के स्थान मे ऋषि शाप के कारण दैव-दुर्विपाक को ही इसका निमित्त घोषित किया है। इन उपर्युक्त परिवर्तनो मे हम भास की मौलिक प्रतिभा को पाते हैं और वाल्मीकि की छाया के स्पष्ट दर्शन करते हैं।

अभिषेक—इस नाटक मे बाली के वध से राम के राज्याभिषेक तक का वर्णन है तथा हनूमान् का लका मे जाकर सीता को सान्त्वना देने और लका के उद्यानो के विनाश तथा दहन का विस्तृत वर्णन है। रावण ने सीता के सम्मुख राम-लक्ष्मण के कटे हुए मस्तक दिखाकर छल का भी प्रदर्शन किया है।

कथा में भास का मौलिक परिवर्तन तथा वाल्मीकि रामायण से उसकी तुलना :—

इस नाटक की कथावस्तु भी वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा तथा सुन्दर काण्ड से उद्धृत है। नाटकारम्भ मे राम-सुग्रीव-मैत्री तथा सुग्रीव द्वारा बाली की हत्या और राम का प्रच्छन्न रूप से उसकी सहायता करना वर्णित है। सुग्रीव[1] बाली को गर्जन करता हुआ युद्ध-हेतु आमन्त्रित करता है। वाल्मीकि[2] ने भी इसी प्रकार निनाद करता हुआ अकित किया है।

प्रतिमा मे बाली की स्त्री तारा का सुग्रीव से युद्ध न करने का निवेदन, युद्ध में बाली को राम का प्रताड़न तथा बाली का बाण पर रामनाम पढ़कर राम को दोष देना किन्तु राम का बाली को ही दण्ड्य निश्चित करना।

द्वितीयांक में गगा आदि नदियो तथा अप्सराओं से युक्त हंस सहित विमान का आना नाटककार की अद्भुत कल्पना है। रामायण में वर्णित राम का बाली की प्रिया को समझाने का प्रसग प्रतिमा मे नही है। रावण के प्रमद वन का वर्णन है जिसमें सीता[3] को राक्षसियो से घिरा हुआ बतलाया है और वाल्मीकि[4] रामायण मे भी राक्षसियों से घिरी हुई मलिन वस्त्र वाली कहा है।

विभीषण का हनूमान् के शौर्य का वर्णन, रावण द्वारा हनूमान् को मारने की आज्ञा देना किन्तु दूत अवध्य है कह कर छोड़ देना, हनूमान् द्वारा सीता के हरण

---

१. सुग्रीवः—सम्प्राप्ता···नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम्। अभिषेक० १।७
२. सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं बालिनोह्वानकारणात्। वा० रामा० किष्किन्धा का० ४।५५० ०
३. राक्षसीभिः परिवृता ··विद्युल्लेखेव शोभते। अभिषेक० २।७
४. ततो मलिनसवीतां राक्षसीभिः समावृताम्।। वा० रामा० सुन्दर का० १५।१८

को छल कहना तथा रावण के आने पर सीता को अपने शरीर को सकुचित करने का वर्णन भास ने प्रयुक्त किया है। वाल्मीकि रामायण मे भी सीता के अग-सकोच का वर्णन समान रूप से किया है। रावण और सीता के वार्तालाप को वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णित किया है किन्तु यहाँ वर्णन अत्यन्त अल्प है। वाल्मीकि रामायण मे सीता राम का गुणगान सुनकर हनूमान् को भी रावण समझकर कष्ट का अनुभव करती है और प्रतिमा में भी 'यह वानर रूप मुझे ठगना चाहता है', कहती है।

चतुर्थांक मे वरुण से मार्ग याचन करने का नया रूप है। राम के कहते ही वरुण शीघ्र उपस्थित होकर मार्ग प्रदान करते हैं किन्तु वाल्मीकि रामायण मे राम महाबाण छोडने के लिए स्थल-विशेष पूछते हैं।

पञ्चमाक विद्युज्जिह्व के द्वारा राम और लक्ष्मण के शिरो की प्रतिकृति सीता के सम्मुख रखी जाती है किन्तु उसी समय मेघनाद की मृत्यु का समाचार मिलने से रावण सीता को मारने की इच्छा करता है किन्तु स्त्रियाँ वधयोग्य नही है, ऐसा ध्यान आने से छोड़ देता है। वाल्मीकि रामायण मे भी स्त्रियों को अवध्य कहा है। युद्ध मे लक्ष्मण के शक्ति लगने का वर्णन यहाँ नहीं है अपितु छठे अंक में सीता की अग्निशुद्धि तथा देवताओ की स्तुति और दशरथ वचन से राम का राज्याभिषेक होना वर्णित किया गया है।

महाभारत कथा पर आधारित नाटक : पञ्चरात्र

पञ्चरात्र की घटना मे नाटककार ने महाभारत के युद्ध को ही समाप्त कर दिया है। कथा में मौलिक प्रतिभा के द्वारा परिवर्तन अभिनन्दनीय वस्तु होती है किन्तु आमूल-चूल ऐतिहासिक तथ्य को तिरोहित करने में अपवाद का दोष आ जाता है। पञ्चरात्रकथा मे गुरु द्रोणाचार्य अपनी गुरुदक्षिणा के रूप में पाण्डवों को आधा राज्य दिलाने का सफल प्रयास करते हैं। पाण्डवों का निवास विराट के यहाँ अज्ञात रूप से होने का रोचक वर्णन इन्होंने किया है। उनके विराट के यहाँ अज्ञातवास काल में कीचकवध आदि प्रसग से दुर्योधन के पाँच रात्रियों में पाण्डवो की उपलब्धि की शर्त भी द्रोण भीष्म के संकेत को पाकर स्वीकार कर लेते हैं। कौरव विराट पर आक्रमण करके उसकी गौओ को छीनना चाहते है किन्तु गुप्त रूप से पाण्डव सहायता करते हैं और भीम अभिमन्यु को पकड़ कर विराट के यहाँ ले जाते हैं। इस विजय के उपलक्ष में विराट उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से कर देते है। इस प्रकार पाण्डव पाँच रात्रियों में मिल जाते है और आधा राज्य भी पाण्डवों को मिल जाता है।

स्रोत—उपर्युक्त कथा महाभारत[1] के विराट पर्व से उद्धृत है। किन्तु इसमें परिवर्तन का रूप आश्चर्यजनक है।

१. अतः परं निबोधेदं वैराटं पर्व विस्तरम्, विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुला शमीम्।
दृष्ट्वा सन्निदधुस्तत्र पाण्डवाह्यायुधान्युत, यत्र प्रविश्य नगरं छद्मनान्यवसंस्तु ते।
महाभारत वि० पर्व० २०६, २१४

नाटककार द्वारा परिवर्तन तथा आलोचना :—

भासरचित पञ्चरात्र नाटक भास पर वैष्णवधर्म के पञ्चरात्र सिद्धान्त का इतना अधिक प्रभाव दर्शाता है कि उन्होंने पञ्चरात्र नामक नाटक लिखकर सिद्धान्त के नाम प्रसारण में प्रर्याप्त योग दिया है। यद्यपि इस नाटक की कथावस्तु महाभारत के युद्ध को ही विलीन कर देती है जो कि भास के अन्य ग्रन्थो की कथावस्तु का आधार है। कतिपय व्यक्ति नाटकों की एक नाटककार द्वारा रचना में सन्देह करते है जो अनुचित है।

इस नाटक में नाटककार ने कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ की हैं, यथा दुर्योधन द्वारा यज्ञ करना तथा अभिमन्यु का युद्ध मे भीम द्वारा गृहीत होना। महाभारत देखने से घोषयात्रापर्व मे राजसूययज्ञ से महत्त्वशाली वैष्णवयज्ञ के किये जाने का विधान है जो कि कर्ण ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने की इच्छा से दुर्योधन की ओर से किया है और अभिमन्यु को यज्ञ मे कृष्ण का प्रतिनिधि माना है। अभिमन्यु कौरवो की ओर से अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करता है। उत्तर का रथ बृहन्नला के रूप मे अर्जुन चलाता है। विराट अपना जन्म-दिन मनाता है और युद्ध की सूचना भी राजमहल में पाता है। कथा की मौलिकता मे मृदुता है। कीचक का द्रौपदी के प्रति व्यवहार तथा युधिष्ठिर की नासिका से रक्त बहने की कथा को छिपा दिया है।

दुर्योधन के चरित्र को अत्यन्त विनम्रता, गुरुभक्तियुक्त तथा सत्य मे निष्ठा रखने वाले पुरुष के रूप मे अकित किया है किन्तु पाण्डवो के प्रति उसका दृष्टिबिंदु शकुनि के निर्देश पर परिवर्तित हो जाता है। शकुनि एक दुष्ट परामर्शदाता के रूप में तथा कर्ण जो कि महाभारत में रोषयुक्त तथा दुष्प्रकृति है, यहाँ उदार तथा शाति का इच्छुक अकित किया गया है। महाभारत में गुप्त वेश को पाण्डवों ने तीन दिन के बाद छोड़ा था किन्तु यहाँ उसी दिन छोड़ देने का वर्णन है।

उत्तर का विचित्र चरित्र महाभारत जैसे वीर नायक की भाँति नहीं है अपितु यहाँ हास्य का पात्र अंकित किया गया है। अभिमन्यु का अपने पिता को न पहचानना हास्य का व्यञ्जक है। अर्जुन का वर्ष भर अन्त.पुर में उत्तरा के शिक्षण के लिए रखना तथा विराट का समर्पण करना अर्जुन का उत्तरा को अभिमन्यु के लिए विवाह हेतु स्वीकार करना वर्णित है।

नाटक मे दया, विनम्रता तथा उदारता का वातावरण दर्शाया गया है जिसमें द्रोणाचार्य का प्रभाव पूर्ण है। यह ब्राह्मण-धर्म का ही प्रभाव है। डॉ० विंटरनिट्ज़ के विचार मे इन यज्ञो के विवरण का सन्निवेश नाटककार ने ब्राह्मण-धर्म के प्रभाव दर्शाने के लिए किया है। उनका यह कथन समीचीन है; क्योकि श्लोक १ से ६ में चैत्याग्नि को लौकिकाग्नि से सामीप्य का निषेध इस प्रकार से वर्णित किया है जैसे कि द्विज वृषल की समीपता को स्वीकार नही करता है।

इन्होंने क्षत्रियो की सपत्ति केवल बाणाधीन बतलाई है तथा उसे अपना सभी धन ब्राह्मणों को देकर पुत्र को धनुष मात्र देने का विधान किया है।

पचरात्र मे कतिपय आलोचकों ने जो केवल तीन पाण्डवों के ही वर्णन का आक्षेप किया है वह निराधार है। क्योंकि द्वितीय अध्याय[1] के ७०वे श्लोक मे पाँचों पाण्डवो के विषय मे कहा गया है। डॉ० पुशाल्कर ने अपने "भास ए स्टडी" ग्रन्थ में इस नाटक को किसी पर्वहेतु अभिनीतार्थ रचित लिखा है तथा प्रो० बूलर ने किसी राजसी परिवार के मनोरजन हेतु रचित कहा है किन्तु यह भास की अन्य रचनाओं के समान ही उसकी मौलिक प्रतिभा का परिचायक है।

मध्यम व्यायोग—इस रूपक की कथावस्तु हिडिम्बा और भीम के विवाह के सस्मरण पर आधारित है। घटोत्कच अपनी माता के आहार के लिए वन में भ्रमण करने गया है। मार्ग मे तीन पुत्र तथा कलत्र सहित ब्राह्मण को पीड़ित करते हुए तथा उससे एक पुत्र माँगने का वर्णन है। पारिवारिक वार्तालाप मे मध्यम पुत्र को देने का निश्चय किया जाता है। वह जल पीने को जाता है तथा उसे मध्यम कहकर पुकारने में भीम वहाँ आता है और घटोत्कच के साथ उसकी माता के पास पहुँचकर ब्राह्मण परिवार का त्राण करता है तथा हिडिम्बा, भीम और घटोत्कच तीनों मिलते हैं जो कि नाटककार को अभीष्ट है।

स्रोत—यह महाभारत के हिडिम्बावधपर्व तथा बकवधपर्व से सगृहीत है। महाभारत में भीम-हिडिम्बा मिलन वर्णित नही है, जबकि पाण्डव वनवास में घूमते हैं। महाभारत की कथा तथा मध्यम की कथा में पर्याप्त परिवर्तन है। मध्यम में भास ने तीन पुत्रों तथा स्त्री सहित ब्राह्मण को दर्शाया है। महाभारत में पिता, माता तथा भगिनी वाले ब्राह्मण के लिए प्रयास करते है। अत: यह महाभारत की कथा की स्पष्ट छाया है। भीम-हिडिम्बा मिलन भी प्रधान कथा तथा ब्राह्मण के पुत्रों की मध्यम सम्बन्धी कथा पताका समझी गई है किन्तु प्रस्तुत व्यायोग में मध्यम ही प्रधान पात्र है तथा उसी को प्रकाश में लाने के लिए नाटककार ने मध्यम नाम रखा है।

दूतघटोत्कच—यह व्यायोग दुर्योधन तथा घटोत्कच के वीररससिक्त संलाप से युक्त है। जयद्रथ द्वारा अभिमन्युवध के उपरान्त हिडिम्बापुत्र घटोत्कच का जयद्रथ के समीप जाकर अर्जुन द्वारा उसके भावी नाश की सूचना देना तथा कौरवों का अभिमन्युवध से उल्लसित होना प्रदर्शित किया गया है।

स्रोत—कथा महाभारत द्रोणपर्व के सशप्तकवधपर्व से गृहीत है किन्तु घटोत्कच के दूतत्व का वर्णन महाभारत में नही है। यहाँ कवि की मौलिक उद्भावना है। इस नाटक के अन्त में भरतवाक्य का अभाव है किन्तु इसमें धृतराष्ट्र, दुर्योधन

१. राजा—यौधिष्ठिरं कृष्णस्य जगत्प्रियस्य। पंच० २।७०

तथा दुःशला के लिए घटोत्कच सन्देश लाता है और अन्तिम श्लोक मे नाटककार पश्चिम सन्देश देता हुआ नाटक की समाप्ति करता है। अतः यह अन्तिम पद्य ही भरतवाक्य का स्थानापन्न स्वीकृत किया जा सकता है। कौरवों के लिए मृत्यु स्वय पाण्डवो के रूप मे सूर्य की किरणो के साथ आयेगी, ऐसा कथन कर अपनी अभीष्ट वस्तु को नाटककार अन्त में निर्दिष्ट करता है।

दूतवाक्य—केशव का पाण्डवो को दायाद भाग देने का प्रस्ताव लेकर दूत रूप मे दुर्योधन के समीप आना इसमें वर्णित है। दुर्योधन द्रौपदी के अपमान के चित्र को देखते हुए सभी राजाओ को कृष्ण के सम्मान मे खडे न होने का आदेश देता है किन्तु सभी राजा कृष्ण के आने पर सम्भ्रमित हो जाते है। कृष्ण द्रौपदी प्रघर्षण के चित्र को देखकर दुर्योधन की निन्दा करते है। पारस्परिक आलाप मे अर्जुन के शौर्य का वर्णन तथा दुर्योधन का पाण्डवो को देवात्मज कहकर कुछ भी न देने की प्रतिज्ञा के कारण मनोरथसिद्धि के बिना ही कृष्ण का वापिस लौट आना इसमें वर्णित किया गया है।

स्रोत—प्रस्तुत कथांश महाभारत के भगवद्यानपर्व से संगृहीत है। उत्तरा-अभिमन्यु विवाहोपरान्त कौरव-पाण्डवों में सन्धि प्रस्ताव के सम्बन्ध में युधिष्ठिर ने कृष्ण से कौरवो के समीप जाकर सन्धि करने का निवेदन किया। धृतराष्ट्र ने यह सुनकर राजकीय सत्कार का आयोजन किया किन्तु यहाँ ऐसा नही है।

भास का मौलिक परिवर्तन—महाभारत मे धृतराष्ट्र ही सम्राट् है किन्तु दूतवाक्य में दुर्योधन स्वय सम्राट् के समान आचरण करता है तथा शकुनि और दुर्योधन विधुर के घर जाते है जहाँ कि कृष्ण ठहरे हैं और उनके आग्रह पर वे राज-सभा में आते हैं। कृष्ण पाण्डवो का सन्देश सुनाते हैं और प्रत्येक का मत स्वतन्त्र रूप से जाना जाता है। महाभारत में कृष्ण को पकड़ने का प्रयास वस्तुतः नही किया जाता किन्तु नाटककार ने यहॉ यह दृश्य मार्मिक ढंग से अंकित किया है तथा भगवान् के दैविक शस्त्रों का अनुपम वर्णन किया है। महाभारत में कृष्ण तथा दुर्योधन का वार्तालाप निष्प्राण-सा है किन्तु यहॉ रोषपूर्ण और कौतूहल उत्पादक है।

आलोचना—यह सफल एकाकी नाटक है केवल कल्पित नही कहा जा सकता। कतिपय पाश्चात्य विद्वान् दैविक अस्त्रों को इसमें प्रक्षिप्त अश कहते हैं, किन्तु ऐसा विचार उचित नही है। डॉ० विन्टरनिट्ज की यह धारणा कि द्रौपदी की साड़ी खीचने का चित्र तथा अन्य पाण्डवो की मनोदशाओं का चित्रण कृष्ण की सहायता करने से दुर्योधन का अपमान था अतः यह चित्र दिखाना उचित न था। इसका कारण उनके मत में यही है कि सम्भवतः नाटककार को यह तथ्य ज्ञात न हो किन्तु ऐसा नही है। नाटकीय दृष्टिकोण से दुर्योधन अपने अहं भाव की सन्तुष्टि

के लिए तथा पाण्डवो का अपमान दर्शाने के लिए राज्यसभा में ऐसे चित्र को मँगवा कर दिखाता है, नाटकीय सजीवता में इसका पूर्ण योग है।

कर्णभार—कर्ण के कवचकुण्डल दान को 'भार' शब्द से अभिहित करता हुआ नाटककार कर्ण के परशुराम द्वारा प्राप्त दिव्यकर्णाभूषणों की विफलता का वर्णन शल्य से करता है और शक्र ब्राह्मण के रूप मे कर्णभूषण कर्ण से प्राप्त कर लेता है। दान में कर्ण भी अनुपम आस्था प्रदर्शित कर उसे भीषण क्षति सहिष्णु बना देता है इसमे कर्ण के दानशील चरित्र की उदात्तता प्रदर्शित करना ही नाटककार का लक्ष्य रहा है।

स्रोत—महाभारत के वनपर्व, कवचकुण्डल-हरणपर्व तथा शान्तिपर्व, कर्णपर्व से इसका कथानक लिया है। इसमे महाभारत की कथावस्तु से भिन्नता है।

भास में मौलिक परिवर्तन—इन्द्र की ब्राह्मणवेष मे कर्ण से कवचकुण्डल माँगने की घटना महाभारत मे पर्याप्त पूर्व में है जबकि पाण्डव वन में है न कि युद्ध के समय, सूर्य का स्वप्न मे कर्ण को शक्र से सावधान करने का वर्णन यहाँ नही है।

महाभारत मे कर्ण कवचकुण्डल के बदले में इन्द्र से शक्ति की याचना करता है, प्रस्तुत नाटक मे इन्द्र पश्चात्ताप से युक्त होने पर उससे प्रदत्त शक्ति तभी स्वीकार करता है जब उसे ब्राह्मण का आदेश कहा जाता है जिसे वह निषेध नही कर सकता, अन्यथा पहले वह ग्रहण करने से निषेध करता रहा।

महाभारत मे शल्य का चरित्र कर्णभार से भिन्न है। वहाँ शल्य विनम्र है तथा सहानुभूति प्रदर्शित करता है यहाँ वह परुष वचनों का प्रयोग करते हुए उसके विरोधी अर्जुन का शौर्य प्रदर्शित कर उसे हतोत्साहित करने का प्रयास करता है।

अन्य नाटकों की अपेक्षा भास ने इस नाटक में ब्राह्मण वेषधारी शक्र से भी सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत मे वार्तालाप कराया है।

समालोचना—भास की दृष्टि में चरित्र का विशेष महत्त्व है और वह इसमें मिथ्या का सन्निवेश तनिक भी सहन नही करता है जहाँ एक ओर दानशीलता के उदात्त दर्शन होते हैं वहाँ क्षत्रिय से ब्राह्मण बनकर शिक्षाप्राप्ति का वैफल्य भी स्वयं उन्मुख हो उठता है और कर्ण स्वयं अपने इस दोष का प्रायश्चित्त कवचकुण्डल दान द्वारा करने में ही सन्तुष्ट होता है और जब तक यह चरित्रसम्बन्धी दोष (भार) का निराकरण नही होता तब तक वह अशान्त है, इसी कारण भास ने इसका शीर्षक कर्णभार रखा है। प्राय. यह पूर्वाभासित ही है कि कर्ण-अर्जुन-युद्ध मे कर्ण की पराजय ही होगी क्योकि अर्जुन के हेतु इन्द्र स्वय कवच तथा कुण्डल की याचना करता है। ब्राह्मण के शाप के कारण तथा परशुराम के आदेश से उसके अस्त्र विफल होने की संम्भावना के कारण, कुन्ती की वरदान देने के कारण से तथा सारथी शल्य

के हतोत्साहित करने के कारणों से वह अपने भविष्य को अधिक उज्ज्वल न समझते हुए भी युद्ध का दोनों दृष्टियों से लाभ समझता है। मृत्यु होने पर स्वर्ग की प्राप्ति तथा विजयी होने पर यशप्राप्ति का लक्ष्य उसके समक्ष है। कौरव सेनापति के पद पर उसे यह भी स्मृतियाँ आती हैं किन्तु वह उतना बल नहीं पाता है क्योंकि यह समय उसके जीवन का स्वर्णिम क्षण है जबकि वह अपने अभीष्ट शत्रु अर्जुन से युद्ध करने के लिए प्रस्थान करता है।

भास ने अपनी मौलिक प्रतिभा से कथावस्तु में मौलिकता लाने का प्रयास किया है। इस नाटक में कर्ण रंगमंच पर एक निराश व्यक्ति की भाँति अवतरित होता है और परशुराम से अस्त्र शिक्षा में क्षत्रिय होने पर ब्राह्मण के रूप में शिक्षित होकर तथा 'कालविफलानि अस्त्राणि' के शाप से दुःखित होता है किन्तु वह इससे भी हतोत्साहित होकर "हतोऽपि लभते स्वर्ग, नास्ति निष्फलता रणे" से अन्तिम स्थिति तक युद्ध करता है। विमला शक्ति की अस्वीकृति में कर्ण की दानशीलता चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है क्योंकि वह अपनी दी हुई वस्तु के बदले मे कोई वस्तु नही चाहता। भावी अनिष्ट की आशका से युक्त कर्ण अपने लक्ष्य में उद्यत है। सम्पूर्ण नाटक मे करुणरस का वातावरण व्याप्त है। भास ने नाटकीय कला की पूर्णता तथा सफलता इस रचना में की है। मनोविज्ञान के अकन में भास ने कर्ण के द्वारा इन्द्र के ठगने का[१] विचार व्यक्त किया है। यह आत्मसन्तोष की उत्कृष्ट भावना है

कर्णभार में प्रयुक्त 'भार' शब्द का विभिन्न रूपों में प्रयोग

डॉ० जी० के० भट्ट के शब्दों मे 'भार शब्द केवल भार के अर्थ में प्रयुक्त किय गया है क्योंकि कौरव सेनापति के पद पर आसीन होने से उसका भार (उत्तर दायित्व) बढ़ा और उसी के लिए भार शब्द प्रयुक्त हुआ है ठीक उसी प्रकार जब पूर्व में भीष्म कौरव सेनापति के पद को संभालते हैं तो वे स्वयं (समुद्यतोऽय भारो मे सुमहान् सागरोपम.) भार को सागर के समान स्वीकार करते हैं ऐसा उद्योग पर्व में है।

म० म० गणपति शास्त्री[२], बूलर तथा सरुप उपर्युक्त मत की इस प्रकार आलोचना करते है कि यदि भार शब्द से केवल उत्तरदायित्व का ही बोध होता है तो इस नाटक में कर्ण बलप्रदर्शन हेतु एक अक का योग और होना चाहिए था। श्री देवधर इस विषय मे कहते हैं कि नाटक अपने में पूर्ण है और इसमे एक अंक की वृद्धि का विश्लेषण उचित नहीं। एकांकी का नायक कर्ण विभिन्न निराशाओं के साथ भी अपने उत्तरदायित्व के निर्वहण में किस प्रकार प्रयत्नशील है इसी से उसके उत्तरदायित्व को बोध हो जाता है। डॉ० ए० डी० पुशाल्कर 'भार' शब्द से कर्णयोर्भरभूतानि कुण्डलानि' कहकर यह पुष्टि देते हैं कि कुण्डल की प्राप्ति तथा दान के

---

१. कर्णः - न खलु। शक्र' खलु मया वञ्चितः। भा० ना० च० पृ० ४-५

२. "प्रावलेम आफ कर्णभार" डॉ० जी० के० भट्ट।

मध्य समय में ये उसके कानों के लिए भारभूत रहे अतः भार का अर्थ भार ही रहा किन्तु पुशाल्कर का यह अर्थ उचित नहीं है क्योंकि यह कवच के विषय में कोई प्रकाश नहीं देता है जो कि कर्ण के लिए कुण्डलों की अपेक्षा अधिक सुरक्षा प्रदान करने वाला था। डॉ० मैक्सलिण्डन भार शब्द को कवच के अर्थ में लेते हैं जो कि प्रत्यक्षतः उचित शीर्षक प्रतीत होता है क्योंकि एक हस्तलिखित प्रति में कवचांनक नाम भी दिया है। शब्द के परिवर्तन से इस प्रकार के अर्थ का बोध हो सकता है।

डॉ० लिण्डन के मत में कर्ण द्वारा 'भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः' से कवचकुण्डल भार वहन के लिए रथ को उद्यत कहने से अर्थ कवच-कुण्डल के भार की ओर स्पष्ट संकेत है।

डॉ० विन्टरनित्ज, भार का अर्थ 'कवच' है, इससे सहमत नही हैं। उन्होंने इस पंक्ति का अर्थ भार-वहनार्थं समुद्यत घोडों से युक्त रथ है ऐसा बतलाया है। वह कर्णभार शीर्षक को कर्ण के कठिन कार्य जैसा अर्थ करते हैं जो कि उसकी ब्राह्मण को किसी वस्तु के निषेध न करने की प्रतिज्ञा की ओर संकेत करता है। उनके मत में भार का अर्थ कठिन कार्य बतलाया गया है।

प्रो० जी० सी० झाला[1] ने इस गद्यभाग को इस प्रकार अर्थ से निर्दिष्ट किया है कि कर्ण तथा भारार्थम् शब्द के प्रयुक्त होने का विशिष्ट महत्व है। इन शब्दों को नाटककार द्रोण द्वारा भी अभिहित करा सकता था किन्तु ऐसा नही किया गया। कर्ण स्वयं सुविज्ञात रूप में व्यक्त करता है कि यह सांयोगिक प्रयोग नही है। इस व्यक्ति के प्रयोग करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पञ्चरात्र के निर्माण से पूर्व नाटककार ने 'कर्णभार' की रचना की थी। नाटककार स्वय 'कर्णभार' शीर्षक एकाकी को लिखकर 'भार' शब्द के महत्व को दर्शाना चाहता है। कर्णभार तथा पञ्चरात्र दोनों में ही ऐसा प्रयोग किया है। कर्ण शत्रु के विरुद्ध अभियान के लिए समुद्यत है। पञ्चरात्र में कर्ण रथ के लिए बुलाता है और कर्णभार में वह स्वयं रथ के समीप पहुँचता है। पञ्चरात्र में कर्ण का भाषण उसका युद्ध के लिए 'प्रस्थान' घोषित करता है। यही कर्णभार में भार शब्द का अर्थ उचित प्रतीत होता है।

प्रो० वूलर ने पूर्व मे जैसा कहा है कि यह नाटक एक दुःखान्त घटना रखता है, यह कर्ण का कष्ट कि 'मृत्यु के लिए किस प्रकार प्रस्थान किया' भी कहा जा सकता है क्योंकि कर्ण ने इस एकांकी[2] में तीन स्थलो पर अपने सारथी शल्य को अर्जुन के समीप रथ ले जाने का आदेश दिया है।

नाटक का यह शीर्षक सन्तुष्टिप्रद हो सकता है किन्तु "भार" शब्द का अर्थ साहित्य के कोष मे कही युद्ध के लिए प्रस्थान का अर्थ अनुमोदित नही करता। ए० आप्टे[3] के कोष में जो अर्थ भार शब्द के दिए हैं वे इस अर्थ के निकट प्रतीत होते

१. रायल एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका, वाॅल्यूम २८, भाग प्रथम, पृ० ९३-९७
२. यत्रार्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः। भा० ना० च० पृ० ४८२
३. 'Brunt of battle, the thick fight.' Apte Dictionary P. 403

है। प्रो० ओ० एच० डी० ए० विजेसेकर[1] ने भार शब्द का विश्लेषण किया है जो इसी अर्थ मे ऋग्वेद में विभिन्न स्थलो मे लभ्य होता है। भृ धातु से निर्मित भार शब्द आक्रमण युद्ध के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है तथा भारत शब्द का अर्थ वीर योद्धा होता है अतः प्रो० देवधर का भार शब्द का अर्थ शत्रु युद्ध के लिए प्रयाण भी समीचीन सम्भव हो सकता है।

भास की रचनाओं में अन्यत्र भार शब्द का प्रयोग—भास ने अपनी अन्य रचनाओ में भार शब्द का प्रयोग किया है जिससे भास के दृष्टिकोण का कुछ परिज्ञान हो सकेगा।

भास ने अविमारक[2] नाटक मे अविमारक को कुरगी से मिलने जाते समय मार्ग मे रक्षि पुरुष 'पुलिस' को देखकर भारभूत शब्द का उनके लिए प्रयोग कराया है।

प्रतिमा[3] नाटक में राम दशरथ के द्वारा राज्याभिषक के समय राज्य को "भार" शब्द से व्यवहृत करते हैं तथा प्रतिमा में ही भरत[4] राम से राज्य भार सम्भालने का निवेदन करते हैं।

घटोत्कच मे घटोत्कच[5] अर्जुन के भार का वर्णन शकुनि से करता है।

दूतवाक्य में सुदर्शन[6] भगवान् कृष्ण से मही के भारापनयन का निवेदन करता है

इन उपर्युक्त स्थलो मे भास के प्रयोग से "भार" शब्द का अर्थ उत्तरदायित्व ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। दूतवाक्य[7] में ही भास ने "भार" शब्द का 'सुवर्णभारेण दण्ड्यः' कह कर भार का अर्थ सुवर्ण भार (द्रव्य) के अर्थ में प्रयुक्त किया है। अविमारक[8] मे राजा राज्य को महान् भार कहता है।

महाभारत में उद्योग पर्व[9] में भार शब्द का प्रयोग तथा द्रोणपर्व[10] में भार शब्द का गुरु भार के अर्थ मे प्रयोग किया गया है।

उरुभंग—भास की नाटकीय रचना की विविधता तथा पाश्चात्य विपश्चितो की आलोचना को निर्मूल सिद्ध करने वाला यह विषादान्त नाटक भारतीय नाट्य-परम्परा में सुखान्त तथा विषादान्त की शृंखला का सफल संयोग करता है।

१. ऋग्वैदिक भारत, यूनिवर्सिटी ऑफ सीलोन रिव्यू, वोल्यूम ७, संख्या ३, जुलाई १९४।
२. नैते तु रक्षिपुरुषाः जम भारभूताः। अवि० ३।१०
३. रामः—विसर्जितन्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। भा० ना० च० पृ० २५५
४. भरतः—आर्य प्रतिगृह्यता राज्यभारः। भा० ना० च० पृ० ३१४
५. सनरशिरसि कश्चित्फल्गुनस्यातिभारः। भा० ना० च० पृ० ४७२
६. सुदर्शनः—महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले। दू० वा० १।४६
७. दुर्योधनः—योऽत्र केशवस्य "स मया द्वादशसुवर्णभारेण दण्ड्यः। भा० ना० च० पृ० ४४
८. राजा—अहो महद्भारो राज्यं नाम। भा० ना० च० पृ० ११७
९. प्रसादितं "ममैष भारः। उद्योगपर्व ५।२१८
पितामह "ममैष भारः। उद्योगपर्व ५।२२०
१०. गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत। द्रोणपर्व ३५।१२

इसकी कथा में कौरव पाण्डवो के संघर्ष की अन्तिम दशा का सुन्दर चित्रण है। भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध इसमें वर्णित है जिसकी समाप्ति दुर्योधन के उरुभंग में निहित है। दुर्योधन की मृत्यु पर उसके पुत्र तथा स्त्रियो का रुदन करुणा की उत्पत्ति करता है। दोनो के युद्ध का वर्णन सजीव है।

स्रोत—महाभारत के शल्यपर्व के गदायुद्धपर्व भाग से यह कथांश उद्धृत है।

भास का मौलिक परिवर्तन—महाभारत में दुर्योधन भीम गदायुद्ध में भीम को अर्जुन संकेत देता है यहाँ कृष्ण स्वयं।

प्रस्तुत नाटक में द्वैपायन (व्यास) तथा विदुर स्वय द्वन्द्व युद्ध के द्रष्टा हैं, महाभारत में नही।

प्रस्तुत नाटक मे धृतराष्ट्र, गान्धारी दुर्योधनपुत्र दुर्जय के द्वारा सामन्त पञ्चक में ले जाये जाते हैं और युद्धोपरान्त दुर्योधन की पत्नी भी वहाँ जाती है किन्तु महाभारत में यह सब हस्तिनापुर में ही वर्णित है।

समालोचना—इस नाटक में दुर्योधन[1] का चरित्र भास ने परिवर्तित करके उदात्त अंकित किया है यहाँ वे सभी दोष कृष्ण को न देकर अपने दुष्कर्मो का फल कहकर सहन करता है तथा बलदेव से पाण्डवों को न मारने का निवेदन करता है। वह इस बात से परम सन्तुष्ट होता है कि उसे छद्म द्वारा मारा गया है। वास्तव में वह पराजित नहीं हुआ है। वह अश्वत्थामा की पाण्डवो के नाश की प्रतिज्ञा से प्रसन्न नही होता है अपितु उसे निषेधित करता है और वह अश्वत्थामा के आक्रमण से पूर्व ही दिवंगत हो जाता है जब कि महाभारत में बाद में। इसमें करुण रस का सचार इसे विषादान्त एकांकी बनाने में भास की प्रतिभा का अपूर्व योग दर्शाता है।

बालचरित—इस नाटक में कृष्ण-जन्म से लेकर, पूतना, कालिय, अरिष्टर्षभ आदि राक्षसों के वध के वर्णन से कृष्ण वृन्दावनवासियों के प्रिय हो जाते हैं। कंस को कृष्ण-विषयक सत्यता ज्ञात हो जाती है और वह कृष्ण का हाथी से युद्ध तथा मुष्टिका का युद्ध आदि व्यवस्थित करता है। कृष्ण इन सबका संहार करके तदनन्तर कंस की मृत्यु दर्शाकर राजा उग्रसेन को बन्दीगृह से मुक्त कर उसे सिंहासन पर बैठा देते हैं।

स्रोत—बालचरित नाटक की रचना श्रीमद्भागवत के कथानक पर आधारित है। क्योकि कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन विष्णुपुराण, हरिवशपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण तथा ब्रह्मपुराण मे लभ्य होता है। पुराण-काल में वैष्णव धर्म का प्रचार था। पुराणो के कोषकार प्रो० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने तामिल महाकाव्य 'मणिभैरवलै' के उद्धरणों से विष्णुपुराण की ईसा से दो सौ वर्ष से प्राचीन रचना का प्रमाण दिया है। इसके प्रचार तथा प्रसार में भी २ या ३ शताब्दी

---

१. राजा—येनैव मानेन समं प्रसूतस्तेनैव मानेन दिवं प्रयामि। उरु० १।४७
मानशरीरा राजानः। मानार्थमेव मया विग्रहो गृहीतः। भा० ना० च० पृ० ५०७

का समय लगने के कारण यह ईसा पूर्व ४ या ५ वीं शती . विष्णुपुराण का समय आता है। भास भी वैष्णव धर्मानुयायी है तथा राम एवं कृष्ण चरित्र सम्बन्धी नाटकों का उन्होने प्रणयन किया है।

भास का मौलिक परिवर्तन—इस नाटक में कृष्ण को वसुदेव का सातवाँ पुत्र कहा है। राधा कृष्ण की प्रिया के रूप में वर्णित है किन्तु इस नाटक में राधा का उल्लेख नही है। कृष्ण जीवन से सम्बद्ध बाद के ग्रन्थों में जो श्रृंगार और अश्लीलता प्राप्त होती है यहाँ उसका नितान्त अभाव है। भरत-परम्परा के विरुद्ध भास ने रंगमंच पर श्रीकृष्ण और अरिष्ट नामक राक्षस का युद्ध तथा कंस की मृत्यु का वर्णन किया है। इसके तृतीयांक मे हल्लीशक नृत्य का वर्णन भी प्राप्त होता है। कृष्ण के बालचरित्र की घटनाओं का वर्णन भी अत्यन्त दीर्घ रूप मे एक साथ ही वृद्ध गोपालक द्वारा किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार दर्शकों की रुचि की अवहेलना कर रहा है। अच्छा होता, यह दो विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त किया जाता तथापि यह नाटक अभिनेय तथा रोचक है।

(ख) धार्मिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ

भास के धार्मिक दृष्टिकोण के चिन्तन से पूर्व उनको प्रभावित करने वाले धार्मिक परिवर्तन स्वरूपो पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा। महात्मा बुद्ध के पूर्व सम्पूर्ण भारत मे ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्थापित था। उनका वर्गीकरण समस्त देश में मान्य था किन्तु बौद्ध धर्म के उत्थान के पश्चात् स्थिति परिवर्तित हुई। उसी समय राजनैतिक सत्ताधीनता में परिवर्तन आया। पश्चिमी भारत मे तो उस समय भी ब्राह्मणों का वही प्रभाव था। सम्पूर्ण जनता ब्राह्मणों, कर्मकाण्ड एवं ब्राह्मण-व्यवस्था का अनुगमन करती थी। ब्राह्मण-विरोध का किसी को साहस न था किन्तु पूर्व भारत में क्षत्रियों का आधिपत्य तथा प्रभाव था। वे ब्राह्मणों को अपने समान समझते थे। ऐसे समय बुद्ध ने अपने उपदेशों से जनता को प्रेरित किया और बौद्धधर्म के अनुयायियो की संख्या बढी। छठी शती ई० पूर्व अनेक धर्म सम्प्रदाय[1] थे।

महाकाव्यों का युग—वैदिक काल की भाँति महाकाव्यो के समय में भी यज्ञो का प्रभाव प्रमुख था और याज्ञिक अनुष्ठानो का विस्तृत रूप से प्रचार करना गौरव की वस्तु थी। जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में संस्कारों का महत्व था उसी प्रकार पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन मे यज्ञो का समादर था। रामायण में राम तथा लक्ष्मण विश्वामित्र मुनि के यज्ञ के लिए दशरथ द्वारा भेजे गये।

अभिनव देवताओ तथा देवियों की पूजा का इस समय प्रचार था। वैदिक-कालीन देवताओं की पूजा अब भी थी किन्तु प्रकृति-पूजा के स्थान पर सूर्य की

१. पाली ग्रन्थ, ब्रह्मजाल

आराधना; ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश, दुर्गा, पार्वती आदि की आराधना का भी आरम्भ हो चुका था।

इस युग में वीरपूजा तथा अवतार मे आस्था की वृद्धि हो चली था। राम तथा कृष्ण के वीर कृत्यो के आधार पर वीरपूजा तथा इनके विष्णु अवतार स्वीकृत होने पर अवतारवाद का प्राबल्य हो गया था।

महाभारत के अनुसार मानव-बलि प्रथा का अन्त हो चुका था क्योंकि इसमें पाण्डवो ने विष्णु अवतार कृष्ण की अध्यक्षता मे गिरिव्रज के दुर्ग में बलिदान होने वाले अनेकों मनुष्यो की रक्षा की।

महाभारत-काल में गीता द्वारा भागवत धर्म का अभ्युदय प्रतीत होता है जिसके द्वारा मानव के कर्म पर बल का विचार पुष्ट होता है तथा जन्म कर्मानुसार ही होता है, इस कारण पुनर्जन्म मे आस्था की वृद्धि हुई। कर्मबन्धन से मुक्ति भगवद्भक्ति द्वारा हो सकती है वह शक्तिशाली भगवान् मानव के कर्मो से विरति प्रदान कर सकता है। गीता मे निष्काम कर्मयोग का उपदेश इन सब के लिए उपयोगी रहा। दर्शन तथा कर्मसिद्धान्त अवतारवाद, भक्तिमार्ग की समीक्षात्मक व्याख्या मानव धर्मशास्त्र जैसे ग्रन्थो मे आचरण तथा नैतिक नियमो के प्रतिपादन की दृष्टि से सगृहीत की गई।

वैदिक काल तथा महाकाव्य काल में धार्मिक क्षेत्र में अन्तर

वैदिक काल में प्रधान शक्तियों के सूचक मरुत्, उषा, वरुण, इन्द्र आदि की पूजा होती थी और प्राकृतिक शक्तियों को ही देवस्वरूप माना जाता था। एकेश्वर-वाद का साम्राज्य था। उपनिषदों के ज्ञान पर बल होते हुए भी कर्मकाण्ड का प्राधान्य था। पशुयज्ञ पर विशेष बल था। निष्काम कर्त्तव्यपालन में आस्था थी। मोक्ष के द्वारा सर्वसाधारण की मुक्ति नही मानी जाती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए यज्ञ और ज्ञान दो ही प्रधान साधन थे।

महाकाव्य-काल में स्कन्ध, वैश्रवण तथा विशाख की पूजा होने लगी। त्रिमूर्तिवाद का अभ्युदय हुआ और इनमें सृजन, पालन तथा संहार के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सत्ता स्वीकार की गई और भक्ति में प्रबलता आई। पशु यज्ञ के स्थान पर आत्मयज्ञ, आत्मसंयम तथा चरित्रशुद्धि पर बल दिया जाने लगा। गीता ने सर्वसाधारण के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। स्त्रियों शूद्रों तथा अन्य व्यक्तियों का धर्म में उचित स्थान समझा गया और निष्काम सेवा तथा कर्त्तव्य-पालन मानव जीवन में प्रसारित हुए। वैदिक, सांख्य तथा ब्रह्म मत का भी महा-भारत मे उल्लेख है किन्तु नैतिक गुणों तथा आचारशुद्धि, व्यावहारिकता मे सत्यता के अनुशीलन पर विशेष बल दिया गया। भक्ति ने मोक्ष के साधन रूप में प्रमुख स्थान ग्रहण किया।

भास की रचनाओ में वर्णित धार्मिक वर्णन से वैष्णव धर्म का पूर्ण प्रभाव

प्रतीत होता है और वह महाकाव्यो के ठीक बाद का धार्मिक काल ठहरता है। भास की रचनाओ में धार्मिक भावना का विश्लेषण इस प्रकार है। धार्मिक भावना में सर्वप्रथम हम नाटककार के किए गए प्रत्येक नाटक मे स्तुति-प्रसंग को उद्धृत करते है जिनमे भगवान् के विभिन्न अवतारो कृष्ण, राम, स्वामी कार्तिकेय आदि की उपासना की गई है।

स्वप्नवासवदत्ता[1] मे बलराम की भुजाओ से रक्षा करने की कामना की गई है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[2] मे शिवपार्वती (युगन्धर) के पुत्र स्वामी कार्तिकेय की उपासना करके रक्षा की कामना की गई है। अविमारक[3] मे भगवान् नारायण के वाराहावतार स्वरूप की उपासना की गई है। प्रतिमा[4] में प्रसन्नवदन राम की उपासना स्वरक्षा हेतु की गई है। अभिषेक[5] मे भगवान् राम के शौर्यस्वरूप से रक्षा की कामना की गई है। पञ्चरात्र[6] मे भगवान् के विराट् स्वरूप का स्तवन है। मध्यम व्यायोग[7] मे असुरविनाशक हरि के चरणो की स्तुति की गई है। दूतवाक्य[8] मे उपेन्द्र के चरणकमलों से रक्षा की कामना की गई है। दूतघटोत्कच[9] में नारायण को ससार रूपी नाटक के सूत्रधार मानकर स्तवन किया गया है। कर्णभार[10] मे सुर-रिपुबलहन्ता' श्रीधर की लक्ष्मीवृद्धि हेतु उपासना की गई है। उरुभग[11] मे केशव की संसार रूपी सागर से उतरने के साधन के लिए प्लव के रूप मे स्तुति की गई है। बालचरित[12] मे दामोदर से कलियुग मे रक्षा करने की अभिलाषा प्रकट की है।

भास की सभी उपलब्ध रचनाओ में स्तुति का क्रम उपर्युक्त प्रकार से वर्णित किया गया है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि नाटककार वैष्णव धर्म का अनुशीलनकर्ता तथा प्रसारक था। उसी में उसकी निस्सीम आस्था प्रकट होती है। बालचरित नाटक मे नारायण का विभिन्न युगो के स्वरूप का वर्णन किया गया है। सतयुग मे जो भगवान् शख तथा दुग्धधवल होने के कारण नारायण नाम

---

१. उदयनवेन्दु···भुजौ पाताम्। वासवदत्ता १
२. पातु···सशाक्तियौगन्धरायणः। प्रतिज्ञा १
३. उत्क्षिप्तां वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम्। अविमारक० १
४. सीताभवः···भरतोऽनुसर्गम्। प्रतिमा १
५. यो गाधिपुत्र···निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता। अभिषेक० १
६. द्रोणः···विराडुत्तरगोऽभिमन्युः। पञ्चरात्र० १
७. पायात्स···इवाम्बरसागरस्य। मध्यम० १
८. पादः···ननुनाम्रनखेन खे। दूतवा० १
९. नारायण···प्रस्तावनप्रतिसमापनसूत्रधारः। दूतघटोत्कच १
१०. नरमृगपति···श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः। कर्णभार १
११. भीष्मद्रोणतटा···प्लव. केशवः। उरुभंग १
१२. शङ्खक्षीरवपुः···पातु दामोदरः। बाल० १

से आख्यात हुए वही त्रेतायुग में स्वर्णप्रभासदृश, जिस विष्णु ने त्रिभुवन को माप लिया, द्वापर युग में दूर्वा के समान श्याम स्वरूप जिस राम ने रावण का वध किया वही दामोदर कलियुग में अजन के समान श्यामवपु में सर्वदा हमारी रक्षा करे। इस प्रकार की भावना का पोषण बालचरित की स्तुति मे किया गया है।

धार्मिक भावना के प्रयोग के अन्य स्थल—वासवदत्ता में शास्त्र-समुदित मार्ग का अनुसरण किया गया है क्योकि दर्शक के नामकरण मे गुरुओं द्वारा सस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। वासवदत्ता को धरोहर रूप मे रखने से पूर्व पद्मावती के आगमन के समय की घोषणा पद्मावती[1] की धर्मपीड़ा की असहिष्णुता को उसके कुल का व्रत कहा गया है। तपस्वियों का उचित सम्मान तथा उनकी अभीष्ट पूर्ति का पूर्ण प्रयास प्राप्त होता है। राजा उदयन[2] वासवदत्ता को अग्रिम जन्म मे भी विस्मरण न करने को कहते है।

प्रतिज्ञा मे यौगन्धरायण का राजा के हेतु उत्सर्ग न करने वाले व्यक्तियों का नरक-गमन तथा सञ्चित धर्मवाले व्यक्तियो की मृत्यु का पश्चात्ताप[3] न करना वर्णित है। देवताओ के प्रणामोपरान्त वीणा का ग्रहण, ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा उदयन की माता का ब्राह्मणों को भोजन कराकर आशीर्वाद प्राप्त करने में वर्णित है। इसी मे चतुर्दशी, कालाष्टमी के स्नान तथा कृतान्त की महत्ता तथा नरक है या नही ऐसा वर्णन भी प्राप्त होता है।

अविमारक में यज्ञादि क्रियाओ का विधान है, द्विजों की प्रसन्नता भी प्राप्त होती है क्योंकि राजा[4] की कन्या के विवाह से पूर्व अविमारक शाप से शप्त है। विवाह के सम्बन्ध में शास्त्रीय परम्परा का शैथिल्य 'व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः' के द्वारा प्राप्त होता है। इसी मे प्रजापति, भगवती कात्यायनी, कृतान्त तथा भगवान् के अर्धनारीश्वर रूप की पूजा का वर्णन मिलता है। राजा[5] द्वारा सब कार्यो से प्रथम धर्म की चिन्ता व्यक्त की गई है।

चारुदत्त में शवपत्तनेश, जनमेजय, बलिप्रथा की प्राप्ति होती है और शकार द्वारा महेश्वर, शंकर तथा ईश्वर का वर्णन मिलता है और भक्ति[6] से देवताओं की प्रसन्नता का समर्थन भी चारुदत्त मे वर्णित है।

प्रतिमा नाटक में कवि ने आरम्भ में ही प्रत्येक सृष्टि में भगवान् राम से

---

१. काञ्चु०—धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीड़ाम्। वासवदत्ता १।६
२. राजा—कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि। स्वप्नवासवदत्ता ६।११
३. यौग—अपश्चात्तापकरः खलु सञ्चितधर्माणां मृत्युः। भा० ना० च० पृ० १०१
४. राजा—शप्तो द्विजैस्त्वमुपेत्य करोति शान्तिं। अवि० १।११
५. राजा—धर्मः प्रागेव चिन्त्यः। अवि० १।१२
६. नामकः—भक्त्या तुष्यन्ति देवतानि। भा० ना० च० २०४

रक्षा की कामना प्रकट की है। राम[१] मैथिली से कहते हैं कि यदि तुम्हे धर्मविघ्न न हो तो इधर आओ, ऐसा कहने मे धर्मविघ्न शब्द वर्तमानकालीन (विस्तार रूप) धर्मसंकट शब्द के अर्थ को प्रकट करता है। रावण[२] का सीता को ले जाते समय अनुचित प्रकार से ले जाने में मन्त्र से रहित आहुति की समानता का विधान करना तथा सीता का भूमि की प्रशसा करते हुए स्वर्ग को धिक्कारना। अगद का बाली से स्वर्ग जाने का वर्णन तथा पार्वण आस्तिक्यम्, ब्रह्मघ्न आदि शब्दों का प्रयोग इसमें प्राप्त होता है। राम धर्मेण लोक-परिरक्षण की घोषणा करते है।

पञ्चरात्र मे स्वर्ग के विषय मे दुर्योधन[३] का कथन इस प्रकार है कि स्वर्ग मरने के अनन्तर प्राप्त नही होता अपितु स्वर्ग यही है, वह परोक्ष नही है वह तो बहुगुण युक्त होकर फलित होता है। यज्ञानुष्ठान द्वारा शरीर की अमरता, राजसूय यज्ञ का महत्व, मरने पर पञ्चेन्द्रियो का अग्नि-परिवेष्टित वल्मीक से सर्पो के समान निकल जाना तथा द्रोण का धर्म से हारी हुई भिक्षा का धर्म से ही देने का निवेदन तथा भक्ति शब्द का प्रयोग यहाँ मिलता है।

मध्यम-व्यायोग मे शतकुम्भ नामक यज्ञ का वर्णन है। ब्रह्मलोक[४] की प्राप्ति मे आस्था दर्शायी गई है। स्वामी कार्तिकेय का दूसरा नाम शक्तिधर वर्णित है। इसमें परलोक का भय तथा मन्त्र जप मे शक्ति का निर्देश है।

कर्णभार मे धर्म[५] को प्रयत्न से धारण करने तथा यज्ञ द्वारा उसकी अमरता में आस्था का वर्णन प्राप्त होता है। ब्राह्मण के आदेश तथा दान के महत्व तथा मरने पर स्वर्गप्राप्ति का निर्देश किया गया है।

कर्णभार मे ही यज्ञ किया हुआ तथा दान दिया हुआ ही केवल अमर होता है, और यही धर्म का रूप है, इसी को कर्ण[६] ने बलपूर्वक शब्दो मे कहा है।

उरुभग[७] में पितरों को जलदान देने तथा वेदोक्त[८] यज्ञों के विधान का वर्णन है।

बालचरित में भगवान् नारायण की प्रदक्षिणा के उपरान्त ब्रह्मलोक का गमन इन्द्रयज्ञ नाम का उत्सव तथा गौ ब्राह्मणों के विषय में अप्रमाद की भावना के

---

१. यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः आरयताम्। प्रतिमा० ५।३
२. अमन्त्रोक्तामिवाहुतिम्। प्रतिमा० ५।१५
३. परोक्षो न स्वर्गो बहुगुणमिहैवैष फलति। पञ्च० १।२१
४. ब्रह्मलोकमवाप्नुहि। मध्यम० १।२१
५. धर्मा हि यत्नैः ''हतेषु देहेषु गुणाः धरन्ते। कर्णभार १।१७
६. हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति। कर्ण० १।२२
७. रिपुसमरविमर्द'''पुत्रदत्तं निवापम्। उरुभंग १।३६
८. वेदोक्तैर्विविधैर्मखैरभिमतैरिष्टं ' स्त्रिय'। उरुभंग १।५२

साथ-साथ जन्मान्तर मे आस्था प्रदर्शित की गई है। बालचरित मे कृष्ण को विष्णु[1] के अवतार के रूप मे सर्वत्र वर्णित किया गया है। यह वैष्णव परम्परा का पूर्णतया पोषण तथा समर्थन करता है। नाटककार ने भक्ति[2] का महत्व और नारायण[3] रूप की प्रशसा की है।

भास की धार्मिक भावना का दृष्टिकोण निश्चितप्राय ही है कि वे वैष्णव भक्त थे, गौ ब्राह्मण हित के साथ-साथ श्रुति, स्मृति-प्रतिपादित वैदिक धर्म का अनुशीलन ही उनका लक्ष्य था। इनकी रचनाएं राम-कथा तथा कृष्ण-कथा पर आधारित हैं।

राम, कृष्ण की वैदिक साहित्य में चर्चा तथा पाञ्चरात्र सिद्धान्त का विवेचन

भारतीय सस्कृत वाङ्मय के ही नही अपितु वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तक स्वीकृत हो चुकी है। उनमे भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। वैदिक साहित्य में रामकथा के अनेक पात्रो का नामोल्लेख सक्षिप्त कथानको के रूप मे उपलब्ध होता है।

इक्ष्वाकु—राम का वश इक्ष्वाकु नाम से प्रसिद्ध है। इसी नाम के राजा का उल्लेख हमे ऋग्वेद[4] मे प्राप्त होता है जिसकी सेवा मे धनवान् और प्रतापवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद[5] में किसी वृक्ष को इक्ष्वाकु के ज्ञात होने का प्रसग प्राप्त होता है जिसको इक्ष्वाकु प्राचीन समय मे जानता था। इस प्रकार इक्ष्वाकु के किसी वीर पुरुष के रूप मे हमें ज्ञान होता है।

रामत्रयी का रूप—राम दाशरथि, परशुराम और बलराम इस रामत्रयी का उल्लेख सर्वतः प्रथम हम आदिग्रंथों रामायण तथा महाभारत मे भी प्राप्त करते है। तैत्तिरीय आरण्यक में राम का प्रयोग पुत्र के अर्थ मे हुआ मिलता है। सायण के मत में राम शब्द का प्रयोग रमणीय अर्थ मे किया गया है जिसकी समीचीनता का समर्थन भी राम के पूर्व में विद्यमानता तथा व्यावहारिकता का द्योतक है। राम ऋग्वेद[6] के एक राजा प्रतीत होते हैं क्योकि एक स्थल पर इनका वर्णन इस प्रकार किया गया है कि 'मैंने दुःशीम पृथवान वेन और राम इन यजमानो के लिए यह लेख गाया है।' इन्होने पाँच सौ घोडे अथवा रथ जुतवाए जिससे उनका

१. भक्तिः परा मम ···प्रिया मे। बाल० १।५
२. भ्रमति नभसि ··असुरसमिति हन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः। बाल० १।६
३. नारायणाय···नमो वराय। बाल० १।८
४. यस्येक्ष्वाकुरुपव्रते रेवान् मरा यूयेधते। ऋग्वेद १०।६०४
५. त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाकोयं। अथर्ववेद १६-३६-६
६. • प्र तद्दःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
येयुक्त्वाय पंच शतास्मयु यथा विश्राव्येपाम्। ऋग्वेद १०-६३-१४

मुझ पर अनुग्रह चारो ओर फैल गया। राम भार्गवेय, श्यापर्णीय ब्राह्मण के रूपों में से हमे ऐतरेय[1] ब्राह्मण मे राम भार्गवे का वर्णन मिलता है। राम औपतस्विनि का वर्णन हमें शतपथ ब्राह्मण[2] मे अंसुग्रह नामक यज्ञ के मत मे अन्य आचार्यों के मत के साथ मिलता है। ये याज्ञवल्क्य के समकालीन तथा उपतस्विन् के पुत्र थे। रामक्रातुजातेय का वर्णन जैमिनीय उपनिषद् के दो स्थलो पर प्राप्त होता है। यह नाम दार्शनिक शिक्षको की नामावली मे परिगणित है। इस वर्णन से राम राजाओं तथा ब्राह्मणों मे एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में प्रयुक्त हुए प्रतीत होते है और तभी से राम नाम का प्रचलन भी प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के समय से लेकर परशुराम और बलराम की कथाएँ प्रचलित हुई हैं। महाकवि भास वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत दोनो से प्रभावित है।

कृष्ण का सर्वप्रथम उल्लेख—यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता से सम्बन्धित छान्दोग्य उपनिषद् मे सर्वप्रथम कृष्ण का उल्लेख लभ्य होता है। उस स्थल पर घोर आंगिरस ऋषि अपने शिष्य कृष्ण से पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर चर्चा करते हैं कि आत्मा का अन्त मृत्यु के साथ नही होता। मृत्यु चक्र से आत्मा अपने जन्म-जन्मान्तर बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह चेतनत्वसयुक्त हो परमात्म तत्व में लीन हो जाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति ही जटिलतम समस्या है। इस घोर आंगिरस ऋषि ने देवकीपुत्र कृष्ण को यह तत्व ज्ञान सुनाकर अन्तिम क्षणों में तीन मन्त्रों "तू अक्षत है, तू अच्युत है, तू अतिसूक्ष्मप्राण है" का जप करने का उपदेश दिया है। इस उपनिषद् का रचनाकाल ई० पू० छठी शती मानते हैं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में नगर मे मन्दिरों की प्रतिष्ठा, पाणिनि साहित्य में कृष्णपूजा के कई उल्लेख मिलते हैं, इससे कृष्णपूजा का बाहुल्य स्पष्ट है। ई० पू० दूसरी तथा तीसरी शती के कृष्णमन्दिर के तीन-तीन शिलालेख केवल उदयपुर में प्राप्त हुए है।

शुंगकाल में ब्राह्मण धर्म के व्यापक प्रभाव ने कृष्णभक्ति के प्रवाह में जनता को आन्दोलित किया और कृष्ण की उपासना को फैलाया।

ई० पू० पाँचवी शताब्दी में जैनमूर्तियो[3] के निर्माण के सुदृढ प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं। इसके कुछ ही समय पश्चात् कृष्ण की मूर्तियो का अस्तित्व मिलता है।

ई० पूर्व के यूनानी ऐतिहासिक क्विन्तस कर्तिय के अनुसार पजाब के एक प्रदेश का स्वतन्त्र चेता राजा पुरु (३२५ ई० पू०) जब सिकन्दर के साथ युद्ध करने

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण ७-२७-२४

२. शतपथ ब्राह्मण ४-६-१-७

३. 'The Age of Emperial Unity' by Mazumdar, Pp. 432-434.

आया तो उसकी सेना के आगे-आगे सैनिक हरक्यूलिस की मूर्ति ले जा रहे थे।[1] ग्रीक लेखक कृष्ण को हरक्यूलिस कहते थे जो मैगस्थनीज के लेख से प्रमाणित होता है। हाथी बाड़ा[2] शिलालेख जो ब्राह्मी लिपि मे प्राप्त हुआ है, यह प्राचीनतम लेख ई० पू० द्वितीय शताब्दी का है जो कि कृष्ण के साथ बलदेव की पूजा का भी पोषण करता है। इस लेख का पठन डो० आर० भण्डारकर ने किया है। हमने इसी काल के लगभग महान् नाटककार भास को रखने का प्रयास किया है क्योंकि भास ने प्रतिमा में प्रतिमाओं की स्थापना का वर्णन किया है तथा यह नाटक रामचरित सम्बन्धी तथा बालचरित कृष्णचरित सम्बन्धी वैष्णव-परम्परा तथा मूर्तिपूजा का पोषक है।

भास पाञ्चरात्र परम्परा से इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने पञ्चरात्र नामक नाटक की रचना की। पाञ्चरात्र धर्म भागवत सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत आता है। अतः भागवत सम्प्रदाय का संक्षिप्त विवेचन पाञ्चरात्र की रूपरेखा से पूर्व कर लेना अनुचित न होगा।

पाणिनि की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लेखक पतञ्जलि का आविर्भाव काल द्वितीय शती ई० पूर्व अनुमानित किया जाता है। उस युग मे भागवत धर्म का उदय हो चुका था। कंसवध तथा बलिबन्धन नाटकों के अभिनय का उल्लेख उन्होने किया है जिसमे विष्णु ने कृष्णरूप में कंस का वध किया तथा दैत्यराज बलि को बाँध पाताल भेज दिया। भागवत तो भगवद्भक्त की संज्ञा है। निश्चय ही भगवत् शब्द विष्णु के लिए व्यवहृत हुआ है। इन नाटकों के खेले जाने से विष्णुभक्तों का सम्प्रदाय वृद्धिगत था और समाज में इसकी प्रतिष्ठा भी अत्यधिक हो चुकी थी कि शिव के उपासक भी अपने लिए इसी शब्द का प्रयोग करते थे। अतः दो शती पूर्व भागवतो की विपुल ख्याति सिद्ध होती है।

नानाघाट के गुहाभिलेखों (प्रथम शताब्दी ई० पू०) के मंगल श्लोक मे अन्य देवताओं के साथ संकर्षण तथा वासुदेव का नाम भी उल्लिखित किया गया है। पराशरी पुत्र राजा सर्वतात ने, जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था, भगवान् संकर्षण तथा वासुदेव के उपासनामन्दिर के लिए पूजा शिला प्राकार का निर्माण कराया था।

---

१. इण्डोनेशियन आर्ट, कुमारस्वामी पृ० ४२।

२. कारितोऽय राज्ञा भागवतेन गाजायनेन पाराशरीपुत्रेण
सर्वतातेन अश्वमेधयाजिना भगवद्भ्यां संकर्षणवासुदेवाभ्यां
अनिहताभ्यां सर्वेश्वराभ्यां पूजाशिलाप्राकारो नारायण वाटिका—
अर्थात् अश्वमेध यज्ञकर्ता पाराशरीपुत्र परमवैष्णव महाराज गाजायन ने सबके ईश्वर भगवान् बलभद्र और कृष्ण की सेवा मे नारायण वाटिका में शिला प्राकार की स्थापना की है।
Epigraphica India, Vol. XXII, No. 37, Pp. 198—205.

इसका पता हमे घोसूण्डी (चित्तौडगढ के समीप नगरी के पास) के शिलालेख से भली भाँति लगता है। वह राजा सर्वतात कण्ववशी माना जाता है। इसका समय प्रथम शती ई० पू० के बाद का नही हो सकता। लखनऊ सग्रहालय की बलराम जी की द्विभुजी मूर्ति दाहिने हाथ मे मूसल तथा बाँये हाथ मे हल लिये हुए है। वह ई० पू०, द्वितीय शती की प्रतीत होती है। इससे सकर्षरा की उपासना तथा पारिणनि का समर्थन प्राप्त होता है। इससे अधिक महत्वपूर्ण वेश नगर का शिलालेख, जो द्वितीय शती ई० पू० का है, हमारे सामने नया प्रकाश देता है। यह लेख भागवत धर्म की उदारता तथा प्राचीनता दिखलाने में नितान्त उपयोगी है। इस शिलालेख का कहना है कि 'हेलियोडोरा' ने देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा में गरुडस्तम्भ का निर्माण किया। हेलियोडोरस अपने को भागवत कहता है। वह 'दिय' का पुत्र था तथा तक्षशिला का निवासी था, वह राजा भागम्भु के दरबार मे अतलिकितस (इडो वैक-ट्रियन राजा अलिकिडस) नामक राजा का दूत बनकर रहता था। वासुदेव उस समय देवताओं के भी देवता माने जाते थे तथा उनके अनुयायी 'भागवत' नाम से प्रसिद्ध थे। भागवत धर्म भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे फैला हुआ था तथा यूनानी मनुष्यो द्वारा स्वीकृत था, यह भागवत धर्म के औदार्य तथा व्यापकता का सूचक है।

मथुरा मे जब शक क्षत्रपों के शासनकाल मे वैष्णव धर्म का विशेष अभ्युत्थान हुआ जिसका पता महाक्षत्रप शौडाश (ई० पू० ८० से ई० पू० ५७) के समकालीन शिलालेख से प्राप्त होता है कि वसु नामक व्यक्ति ने महास्थान (जन्म-स्थान) में भगवान् वासुदेव के एक चतुःशाला मन्दिर तोरण की स्थापना की। मथुरा में वैष्णव मन्दिर निर्माण का यह प्रथम उल्लेख है। पारिणनि ने वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् (४।३।९८) सूत्र से वासुदेव की भक्ति करने वाले व्यक्ति के अर्थ मे वुन् प्रत्यय का निर्देश किया है और उसका नाम वासुदेवक कहा है, इसका अभिप्राय वासुदेव से ही है जो कि यादव कुल के वसुदेव के पुत्र है। इनसे पता चलता है कि पारिणनि के समय भागवत सम्प्रदाय का प्रचार हो चुका था और उससे पूर्व वैष्णव धर्म का उदय। यह समय ई० पूर्व छठी शती के समीप आता है। इस कारण चन्द्रगुप्त मौर्य के समय चतुर्थ ई० पूर्व मे यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के द्वारा वासुदेव कृष्ण के सात्वत मत का परिचय कोई आश्चर्य की बात नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि सौरसेनाइ जाति हेरेक्लीज का विशेष रूप से पूजन करती थी। इस जाति के देश में मैथोरा (मथुरा) 'क्लीसो-पोरा' नामक दो विख्यात नगर हैं जिनसे होकर जेबरोज नदी बहती है। इससे यह पता चलता है कि मथुरा तथा कृष्णपुरा यमुना के तट के निवासी शौरसेन यादवों के वीराग्रगण्य कृष्ण की पूजा का यह उल्लेख है। इन्ही यादवो के द्वारा भागवत सम्प्रदाय का प्रचार हुआ।

वासुदेव नाम तैत्तिरीय आरण्यक में भी आया है। इसमें विष्णु तथा नारा-यण की एकता का वर्णन है। भागवत सम्प्रदाय के अनेक पर्यायो में ऐकान्तिक पर्याय

महत्व रखता है। यही भागवत धर्म सात्वत, ऐकान्तिक तथा पाञ्चरात्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाभारत के नारायणीयोपाख्यानों में पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। यह उपाख्यान शान्तिपर्व का अन्तिम उपाख्यान है। पाञ्चरात्र[1] ग्रन्थों का कथन है कि भागवत धर्म वेद से ही सम्बद्ध है। पाञ्चरात्र का सम्बन्ध वेद की एकायन शाखा से है।

प्रश्नसंहिता[2] मे पाञ्चरात्र का वर्णन मोक्षदायक कहा गया है। ईश्वर-संहिता[3] में वैष्णव सम्प्रदाय को एकायन कहा है। पाञ्चरात्र विद्या के उपासक तथा प्रचारक बतलाये गये हैं। यदि छान्दोग्य उपनिषद् मे निर्दिष्ट एकायन विद्या का यही अभिप्राय हो तो यह वैष्णव मत उपनिषद्कालीन सिद्ध हो जाता है। इतना निश्चित है कि यह पाणिनि से पूर्व प्रचलित था। भारतीय विद्वानों[4] ने इसके विपरीत नारायणीय पर्व की रचना बुद्ध के जन्म (छठी शताब्दी ई० पू०) से भी प्राचीन बतलाई है। डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर[5] के मत में नारायणीय पर्व की रचना बुद्ध से पूर्व युग की घटना है साथ ही भगवद्गीता में जिस भागवतधर्म का विकास प्रस्तुत किया गया उसी का उपबृंहण नारायणीय पर्व में हुआ। चिन्तामणि वैद्य[6] का मत है कि भगवद्गीता विशाल भारत का एक अंग थी और नारायणीय पर्व रचना तक उसकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। नारायणीय गीता पीछे की रचना है इसमे गीता का नाम आदर के कारण जोड़ दिया गया है। लोकमान्य बालगंगाधर[7] ने भी भगवद्-गीता को मूल भारत का ही अंश कहा है और इसकी रचना ईसा से ६०० वर्ष पूर्व के बाद न होने का समर्थन किया है।

पाञ्चरात्र मत का नामान्तर सात्वत मत है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विष्णुसहस्र नाम के एक भाष्यकार ने सात्वतपद से भागवत मतानुयायियों का सामान्य अर्थ निकाला है किन्तु ऐतिहासिकों की दृष्टि मे उत्तरीय भारत के शूरसेन मण्डल की क्षत्रिय जाति ही सात्वत[8] नाम से कही जाती थी।

---

१. एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सर्वतो भुवि। ईश्वर संहिता १।४३

२. वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसिस्थितम्। तदर्थकं पाञ्चरात्रं मोक्षदं तत् क्रियावताम्। प्रश्नसंहिता

३. मोक्षाय नाम वैष्णवा एतदन्यो न विद्यते। तस्मादेकायनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः। ईश्वरसंहिता १।१८

४. डॉ० एस० के० अयंगार।

५. 'Vaishanavism and Shaivism' by Dr. R. K. Bhandarkar, Pp. 8, 12, 26.

६ 'Vaidya History of Sanskrit Literature', Pp. 38 41.

७. तिलक गीतारहस्य, परिशिष्ट ५११-५२५

८. डॉ० एस० के० अयंगार (Sattvatas) Proceedings of the Second Oriental Conference, Calcutta, Pp. 353.

पाञ्चरात्र का विवरण—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तीर्थ तथा तेज षाडगुण्य-विग्रह वासुदेव भगवान् कहे जाते हैं। ऐसा विवरण शान्तिपर्व[1] में प्राप्त होता है।

नारद[2] पाञ्चरात्र के अनुसार रात्र का अर्थ ज्ञान है। यहाँ पर ही परम तत्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय इन पाँच विषयों के निरूपण से इस तन्त्र का नाम पाञ्चरात्र पड़ा है। अहिबुध्न सहिता में इसी मत को स्वीकृत किया गया है। इस संहिता मे पाञ्चरात्र मार्ग के प्रवर्तक तीन ऋषि[3]—शाण्डिल्य, भारद्वाज तथा मौंजायन—माने गये है। इस प्रकार वैष्णव तन्त्रों के मत में एकायन शाखा का ही नामान्तर प्रतीत होता है।

ईश्वरसंहिता द्वारा भगवान् के पाँच आयुधो के अश रूप ऋषियों शाण्डिल्य, औपगायन, मौजायन, कौशिक तथा भारद्वाज ने मिलकर विष्णु की आराधना की इच्छा से तोताद्रि पर्वत के ऊपर कठिन तपस्या की। तप से प्रसन्न वासुदेव ने एकायन वेद का सार उन्हे समझाया, यह उपदेश एक रात्रि मे न होकर मुनियो की संख्या के अनुसार पाँच रात्रियो में हुआ। इस प्रकार इस तन्त्र के उपदेश को पाँच रात्रियो में होने के कारण पाञ्चरात्र कहा गया।

पाद्मतत्र[4] के अनुसार पाञ्चरात्र नाम का रहस्य इस शास्त्र की उत्कृष्टता तथा महनीयता के ऊपर आश्रित है। उसका कहना है कि जिस तन्त्र के सामने अन्य पाँच शास्त्र रात्रि के समान मलिन पड़ जाते हैं वही पाञ्चरात्र है।

विष्णुसहिता[5] का कथन इस विषय में कुछ भिन्न है। उसका कहना है कि पच महाभूत अथवा शब्दादिक पच विषयों का नाम पाञ्चरात्र है। परम तेज को प्राप्त करके ये पञ्च रात्रियाँ जिस शास्त्र के अध्ययन से नष्ट होती हैं, अज्ञान का विनाशक वह शास्त्र इसीलिए पाञ्चरात्र के नाम से अभिहित किया जाता है।

---

१. ज्ञानशक्तिबलैश्वर्य-वीर्य-तेजास्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः॥ शान्तिपर्व अध्याय ३३६

२. रात्रं च ज्ञानवचनं ज्ञानं पंचविधं स्मृतम्। नारद पाञ्चरात्र १।४४

३. पंचायुधांशास्ते पंच शाण्डिल्यश्चौपगायनः।
मौञ्जायनः कौशिकश्च भारद्वाजश्च योगिनः॥
पंचापि पृथगेकैकं दिवारात्रं जगत्प्रभुः।
अध्यापयामास यतस्तदेतन्मुनिपुंगवः।
शास्त्रं सर्वजनैर्लोके पंचरात्रमितीर्यते॥ ईश्वरसंहिता अध्याय २१

४. पञ्चेतराणि शास्त्राणि रात्रीयन्ते महान्त्यपि।
तत्सन्निधौ समाख्यासौ तेन लोके प्रवर्तते॥ पाद्म तन्त्र १

५. रात्रयो गोचराः पञ्च शब्दादिविषयात्मकाः।
महाभूतात्मका वाऽत्र पञ्चरात्रमिदं ततः
अवाप्य तु परं तेजो यत्रैताः पञ्चरात्रयः
नश्यन्ति पञ्चरात्रं तत् सर्वाज्ञानविनाशनम्॥ विष्णुसंहिता १।३९-४०

परम संहिता[1] की व्याख्या इससे मिलती-जुलती है। उसका कथन है कि पञ्च महाभूत, तन्मात्र, अहंकार, बुद्धि तथा अव्यक्त (प्रकृति) में ही पुरुष के रात्र (दान) है। उन्ही के योग अथवा वियोग होने से इस शास्त्र का नाम पञ्चरात्र पड़ा।

इस अनुशीलन से निष्कर्ष यह है कि पञ्चरात्र नाम की उत्पत्ति किसी सुदूर प्राचीन काल में हुई थी जिसकी परम्परा किसी कारण से विच्छिन्न हो गई। यही कारण है कि इस तन्त्र के ग्रन्थों की व्याख्या अपनी रुचि के अनुसार विलक्षण है।

पाञ्चरात्र तथा वेद—शंकराचार्य[2] के अनुसार पाञ्चरात्र सिद्धान्त का कुछ अंश वैदिक सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है परन्तु कुछ अंश वेदविरुद्ध होने से किसी प्रकार भी मान्य नही हो सकता। किन्तु जो अंश वेदानुकूल है वह सर्वथा उपादेय है। उनका कथन इस प्रकार है. --

परमात्मा का केवल अपनी इच्छा से अनेक रूपों को धारण करना, जो चतुर्व्यूहवाद का मूल है।

दीर्घकाल पर्यन्त अनन्यचित होकर भगवान् के भजन करने से क्लेश की निवृत्ति हो जाती है तथा भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्षलाभ हो जाता है। पाञ्चरात्र मतानुसार पाँच व्यापारों से साधक भगवान् को प्रसन्न करता है।

१. अभिगमन (काय, वाक् तथा चित्त को अवहित कर देवगृह मे गमन करना)
२ उपादान – पूजा द्रव्य का अर्जन अथवा संग्रह
३ इज्या — पूजा
४. स्वाध्याय — अष्टाक्षर आदि मन्त्रो का जप तथा आध्यात्मिक ग्रन्थो का अभ्यास
५ योग — ध्यान।

ये पाँचों ईश्वराराधन के रूप के अन्तर्गत है इनका प्रतिषेध कोई भी श्रुति नही करती। क्योकि ईश्वर-प्रणिधान श्रुति स्मृति दोनों मे प्रसिद्ध होने के कारण वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध नही है किन्तु शंकराचार्य की दृष्टि मे पाञ्चरात्र सिद्धान्त का जो अंश वेदविरुद्ध अतएव अनादरणीय है, वह चतुर्व्यूहवाद से सम्बन्ध रखता है। पाञ्चरात्र मत मे वासुदेव नामक प्रथम व्यूह से संकर्षण नामक व्यूह की उत्पत्ति

---

१. महाभूतगणाः पञ्च रात्रयो देहिनः स्मृताः।
तद्योगाद्धि निवृत्तैर्वा पाञ्चरात्रमिति स्मृतम्॥
भूतमात्राणि गर्वश्च बुद्धिरव्यक्तमेव च।
रात्रयः पुरुषस्योक्ता पञ्चरात्र ततः स्मृतम्॥ परमसंहिता १।४०

२. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, २।२।४२—४५।

होती है। वासुदेव परमात्मा का तथा संकर्षण जीवात्मा का नामान्तर है। संकर्षण से उत्पन्न होता है प्रद्युम्न अर्थात् मन, प्रद्युम्न से उत्पन्न होता है अनिरुद्ध अर्था अहंकार। चतुर्व्यूह का यह सिद्धान्त पाञ्चरात्रियों का निजी विशिष्ट सिद्धान्त है इससे सिद्ध होता है कि पाञ्चरात्र मत मे परमात्मा से जीवात्मा की उत्पत्ति होत है परन्तु वैदिक सिद्धान्त के अनुसार जीव के नित्य होने से उसकी उत्पत्ति हो ही नह सकती। उत्पत्ति मानने पर जीव को अनित्य मानना पडेगा अतएव जीवोत्पत्तिवा अवैदिक होने के कारण शिष्टों के ग्रहण योग्य नहीं है। इस प्रकार शङ्कराचार्य मत मे वैष्णव धर्म के कतिपय सिद्धान्त श्रुतिमूलक होने पर भी उसमें कुछ अंश ऐ हैं जो वेदविरुद्ध है।

अप्पय दीक्षित भी वैखानस सहिता को वेदानुकूल मानते हैं क्योकि उनव दृष्टि में वैखानस आगम के सिद्धान्त वेद-प्रतिपाद्य तत्वो के ही आधार पर निर्मि किए गए हैं। वे पाञ्चरात्र मत को वेदानुकूल मानने को तैयार नही हैं। इस भिन्न का कारण यह है कि विष्णु सम्बन्धी होने पर भी दोनों आगमों मे वैखानस प्राची तर है जिसके अनुसार दक्षिण के वैष्णव मन्दिर में पूजा अर्चा का विधान पह होता था। परन्तु रामानुजाचार्य ने इस विधान को हटाकर पाञ्चरात्र पद्धति प्रचार किया जो आज भी अधिकाश मन्दिरों में गृहीत की गई है। अप्पय की आल चना का विषय वैष्णव-पद्धति तथा आचार है।

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने पाञ्चरात्र को वेदानुकूल सिद्ध करने अश्रान्त परिश्रम किया है। रामानुज के मत में ब्रह्मसूत्र का उत्पत्यसम्भवाधिकर (२।२।४२-४५) पाञ्चरात्र मत का मण्डन ही करता है, खण्डन नहीं (जैसा शंक चार्य समझते हैं)। रामानुज से पहले उनके परमगुरु श्री 'यामुनाचार्य ने आगमप्रामा में इस तन्त्र की प्रामाणिकता तथा वैदिकता को प्रबल युक्तियो के आधार पर सि किया है। रामानुज के अनन्तर वेदान्तदेशिक ने पाञ्चरात्र रक्षाग्रन्थ में और भट्टा वेदात्तम ने तन्त्र शुद्ध ग्रन्थ में इस विषय की मीमासा-पद्धति से विचार कर पाञ्च रात्रो को वेदसम्मत सिद्धान्त का ही प्रतिपादक सिद्ध किया है। वैष्णव आचा की सम्मति मे पाञ्चरात्र का सम्बन्ध वेद की एकायन शाखा से है। सब से पह पाञ्चरात्र शब्द शतपथ ब्राह्मण (१३।६।१) मे मिलता है। उसमे पाञ्चरात्र सत्र वर्णन मिलता है जिसको नारायण ने समग्र प्राणियों के ऊपर आधिपत्य प्राप्त क हेतु किया था। महाभारत के नारदीयोपाख्यान के अध्ययन से भी पाञ्चरात्र आच वैदिक आचार के ऊपर ही आश्रित सिद्ध होता है। महाभारत का कहना है चित्रशिखण्डी नामक सात ऋषियों ने वेदों का निष्कर्ष निकाल कर पाञ्चरात्र ना शास्त्र का प्रणयन किया। इस शास्त्र मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों विवेचन है। इसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों भागो की सत्ता प्रतिपादित की गई। राजा उपरिचर वसु ने इस शास्त्र का अध्ययन बृहस्पति से किया। इस विख्य

राजा ने स्वय वैदिक यज्ञ किया जिसमे पशु के स्थान पर तिल यव की बलि दी गई। अतः यज्ञीय हिंसा के विषय में पाञ्चरात्र साख्य योग के ही समकक्ष है। क्योंकि इन दोनों सम्प्रदायों को यज्ञ में पशुहिंसा अमान्य थी। परन्तु वैदिक यज्ञ का आचरण तथा विधान पाञ्चरात्र मत मे सर्वथा मान्य था। श्वेत द्वीप[1] मे भगवान् नारायण के वर्णन से इस मत की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। नारद ऋषि को दर्शन देने वाले भगवान् ने अपने हाथों में वेदि, कमण्डलु, शुभ्रमणि, उपानह, कुश, अजिन, दण्डकाष्ठ तथा ज्वलित हुताशन को धारण किया। पाञ्चरात्रों[2] का कथन है कि उनका शास्त्र वेद की एकायन शाखा से सम्बद्ध है। ईश्वरसंहिता तथा परमेश्वर संहिता का स्पष्ट निर्देश है कि द्वापर के अन्त तथा कलियुग के आदि में शाण्डिल्य मुनि ने अपनी कठोर तपस्या के परिणाम रूप संकर्षण से एकायन वेद प्राप्त किया था, जिसमें सात्वत विधि का विशिष्ट वर्णन था और उसी को उन्होने सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, उपगायन तथा मौञ्जायन नामक मुनियों को पढाया, इसी क्रम से यह फैला।

भास पर पाञ्चरात्र का प्रभाव सिद्ध करने में अपना मौलिक अनुसन्धान

भास पाञ्चरात्र मत के अनुयायी है इन्होंने उसकी ख्याति प्रसार हेतु पञ्चरात्र नामक रूपक की रचना की और उसमें महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ की कथावस्तु को परिवर्तित किया। इस परिवर्तन का कारण मेरी दृष्टि में यही था कि महाभारत जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रसार तथा प्रभाव देशव्यापी था और उसके कथानक का परिवर्तन जिस रचना में किया जाता उसका नाम शीघ्र ही प्रकाश में आ सकता था। इसी कारण पञ्चरात्र नामक नाटक की रचना नाटककार की धर्म प्रचार की भावना की पुष्टि करती है। पाञ्चरात्र के प्रभाव को सिद्ध करने में निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत किए जाते है।

(१) पाञ्चरात्र मत के आरम्भिक रूप में भगवान् के पाँचों आयुधो के अंश रूप ऋषियों—शाण्डिल्य, औपगायन, मौंजायन, कौशिक तथा भारद्वाज—का मिलकर तपस्या करने तथा तपस्या से प्रसन्न होकर वासुदेव का एकायन वेद का रहस्य उन्हें समझाना जो कि एक रात्रि में न होकर मुनियो की संख्या के अनुसार पाँच रात्रियो में हुआ, इस कारण इस तन्त्र का नाम पाञ्चरात्र अभिहित किया गया है।

---

१. वेदिं कमण्डलुं शुभ्रान् मणीन् उपानहौ कुशान्।
अजिनं दण्डकाष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम्॥
धारयामास देवेशो हस्तैर्यज्ञपतिस्तदा ॥ शान्तिपर्व ३३९, अध्याय ९।१०

२. द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च
साक्षात् संकर्षणान् भक्तात् प्राप्त एष महत्तरः।
एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सात्वतो विधिः॥
परमेश्वरसंहिता, प्रथम अध्याय

महाभारत की कथावस्तु में आमूलचूल परिवर्तन कर पञ्चरात्र नाटक में दुर्योधन द्वारा पाण्डवो को आधा राज्य दिलाने में केवल एक यही शर्त रखी गई है कि यदि वे पॉच रात्रि में प्राप्त हो जाते हैं तो उन्हें राज्य दे दिया जायेगा। पॉच रात्रियों का विधान पाञ्चरात्र मत के प्रभाव को स्पष्ट दर्शाता है जिसके कारण नाटककार महाभारत की कथावस्तु में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के लिए बाध्य हुआ।

(२) उपर्युक्त प्रसंग में भगवान् के पाँचों आयुधों के अंश रूप ऋषियों की तपस्या का वर्णन किया गया है। वस्तुतः आयुध निर्जीव हैं किन्तु उनमें सजीवता का सन्निवेश पाञ्चरात्र धर्म की उत्पत्ति में सजीवता का द्योतक रहा है, इसी कारण भास ने इस वर्णन से प्रभावित होकर भगवान् विष्णु के आयुधों का सजीव रूप में अपने नाटकों में अंकन किया है जैसा कि बालचरित नाटक मे भगवान् के आयुधो के आने का वर्णन इस प्रकार सजीव रूप में अंकित किया गया है। "ततः प्रविशन्ति पंचायुधानि गरुडश्च।" यह वर्णन बालचरित प्रथम अंक में श्लोक सं० २२ से २८ तक वर्णित है जिनमें चक्र, शार्ङ्ग, कौमोदकी, शंख तथा नन्दक स्वयं सजीव पात्र के रूप में वार्तालाप करते हैं।

इसी प्रकार का वर्णन दूतवाक्य एकांकी में भी भगवान् कृष्ण के सुदर्शन चक्र शार्ङ्ग, कौमोदकी, पांचजन्य के आने और सजीव रूप में वार्तालाप करने का श्लोक ४४ से ५२ तक प्राप्त होता है।

इसी प्रकार का वर्णन बालचरित नाटक के द्वितीयांक में "ततः प्रविशति कात्यायनी सपरिवारा" में कुण्डोदर, शूल, नील, मनोजव आदि के वार्तालाप में प्राप्त होता है।

इसी प्रभाव से प्रभावित होकर भास ने शाप जैसी निर्जीव वस्तु को भी सजीव पुरुष की भाँति कंस से वार्तालाप करते हुए बालचरित नाटक के द्वितीयांक में अंकित किया है।

(३) पाञ्चरात्र के प्रथम सिद्धान्त "अभिगमन" में काय, वाक्, चित्त को 'अवहित' कर देवगृह मे गमन करना निर्दिष्ट किया गया है। 'अवहित' शब्द से गम्भीर, एकान्त तथा शान्त चिन्तन का आभास स्पष्ट होता है जो कि भगवान् के आराधन के लिए परमावश्यक है। इसी प्रकार का गम्भीर परिस्थितियो मे भास का "अवहित" शब्द का प्रयोग इस प्रभाव की पुष्टि में सहायक हो सकता है।

भास ने प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक में विदूषक तथा यौगन्धरायण के आलाप में जब यौगन्धरायण विदूषक से कहता है कि "कल राजा के मुक्त कराने के प्रयोग का अवसर है।" इस कथन से पूर्व ही इस गम्भीर स्थिति तथा गुप्त समाचार की महत्ता दर्शाने के लिए "अवहित" शब्द का प्रयोग किया है, यथा "उभौ

अवहितौ स्वः"[1] तथा अविमारक नाटक मे अविमारक के पर्वत से गिरने के अवसर पर विद्याधर अविमारक से मुद्रिका देने से पूर्व उसे "अवहितौ भव"[2] कहता है तथा अविमारक भी उत्तर मे "अवहितोऽस्मि" कहता है। यह वर्णन भी गम्भीर परिस्थिति का बोध कराता है। इतना ही नही, अविमारक मे ही छठे अक मे राजा कुन्तिभोज सौवीरराज से वार्तालाप करते समय गम्भीर स्थिति में विद्यमान होने के कारण 'अवहित' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योकि अविमारक का प्रच्छन्न रूप मे उसी नगर में रहना और कुरगी के साथ गुप्त रूप से रमण करना एवं प्रच्छन्न होने का कारण चण्डभार्गव ऋषि का शाप स्थितिगाम्भीर्य का द्योतक है, इस कारण 'अवहित' शब्द का प्रयोग कुन्तिभोज 'वयमवहिताः स्मः'[3] कह कर करते हैं। चारुदत्त में गणिका ने 'अवहितास्मि'[4] कहकर कार्य की गम्भीरता को दर्शाया है।

इन उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर मैने पाञ्चरात्र मत का प्रभाव प्रदर्शित किया है। इतना ही नही, भास की अन्य रचनाओं में धर्म की भावना स्वर्ग का चिन्तन तथा अन्य प्रभावो के अनुसार भी हम पाञ्चरात्र के प्रभाव को प्राप्त कर सकते है। कालिदास के ग्रन्थो में भी 'अवहित' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।

(ग) सामाजिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ

भास के सामाजिक दृष्टिकोण का विवेचन करने से पूर्व महाकाव्यकाल की सामाजिक दशा का संक्षिप्त निर्देश करना आवश्यक होगा। महाकाव्यकाल में वर्ण-व्यवस्था का परिपक्व रूप जातिव्यवस्था के रूप मे समाज में व्याप्त था। द्रोणाचार्य क्षत्रिय वृत्ति को स्वीकृत करने पर भी ब्राह्मण थे। विश्वामित्र ब्राह्मण वृत्ति अपनाने पर भी क्षत्रिय थे। भीष्म क्षत्रिय होने पर भी तत्वज्ञानोपदेशक कहे जाते थे। इस समय वैदिककालीन व्यवसायो मे अव्यवस्था आ चुकी थी। स्त्रियों का वैदिककाल जैसा सम्मान नही था। द्रौपदी का सम्पूर्ण सभा में अपमान इसका प्रमाण है। सतीप्रथा का प्रचलन था क्योंकि माद्री पाण्डु के साथ सती हो गई थी। विवाह अल्पायु में ही हो जाते थे जैसा कि अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विवाह १६ वर्ष की आयु में हुआ था। स्त्रियो के पर्दे में रहने का वर्णन तो नही मिलता किन्तु पर्दे के समान ही पृथक् रहने का प्रमाण महाभारत आदि ग्रन्थों मे मिलता है। राम ने लक्ष्मण से सीता को अग्निपरीक्षा के लिए सब के सम्मुख लाने को कहा तो लक्ष्मण आश्चर्यचकित हो गए। आगे हम भासकालीन सामाजिक चित्रण प्रस्तुत करेगे।

सामाजिक दशा के चित्रण में भास की रचनाओं के अध्ययन से यह अनुभव होता है कि भास का युग सुख-समृद्धि का युग था और सामाजिक व्यवस्था भी पूर्ण-

१. भा० ना० च० पृ० ९१ प्रतिज्ञा तृतीयांक
२. भा० ना० च० पृ० १५५ अविमारक चतुर्थांक
३. भा० ना० च० पृ० १७६ अविमारक छठा अंक
४. भा० ना० च० पृ० २१६ चारुदत्त द्वितीय अंक

रूप से निबद्ध हो चुकी थी जिसमें वर्णाश्रम धर्मव्यवस्था का परिपाक होते हुए भी चरित्र का विशेष महत्व था। कवि पग-पग पर चरित्र पर बल देता चलता है।

धर्मसम्बन्धी स्थूल भावना पर दृष्टिपात करने से हम निम्नांकित तथ्यों की ओर पहुँचते हैं कि भास का युग धर्मप्रधान युग था जिसमें वैष्णव धर्म का विशेष स्थान रहा है। वर्णसम्बन्धी व्यवस्था में समाज में परिव्राजक तथा ब्राह्मण का स्थान महत्वपूर्ण था। बौद्ध सन्यासी को अवैदिक तथा नग्न श्रमणक नाम देकर हास्य किया जाता था; किन्तु समाज में दोनों का सम्मान था। कवि वैष्णव धर्म से प्रभावित है; वेदपरम्परा का पोषक है। इस कारण बौद्ध तथा जैन श्रमणक का हास्य करना स्वाभाविक ही है क्योंकि आज भी समाज में सनातनी तथा आर्यसमाजी आदि अनेक पन्थों के प्रचलन से पारस्परिक कटु आलोचना की जाती है। समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोन्नत था। राजाओं की दृष्टि में भी इनका अपूर्व आदर था। इनकी रचनाओं में ब्राह्मण वचनों के अतिक्रमण[1] न करने का प्रसंग विभिन्न स्थलों पर मिलता है। कर्णभार रूपक में कर्ण विमला नामक शक्ति केवल ब्राह्मण वचन के आधार पर ग्रहण करता है। मध्यमव्यायोग में भीम[2] भो: शब्द कहने से ब्राह्मण का बोध करके उसकी रक्षा के लिए प्रयत्न करता है तथा यह कहता है कि ब्राह्मण जन को कौन पीड़ा पहुँचा रहा है। भीम की दृष्टि में ब्राह्मणों को पूज्यतम दर्शाया गया है। पञ्चरात्र नाटक में दुर्योधन भीष्म से पहले द्रोण को प्रणाम करता है किन्तु द्रोण भीष्म को पहले प्रणाम करने को कहते है। इस पर भीष्म अनेक कारणो से अपने को अपकृष्ट कहता है। इसी रूपक में ब्राह्मण को अनेक अपराध करने पर अवध्य कहा गया है। प्रतिमा नाटक में भरत को ब्राह्मण समझकर क्षत्रियो की प्रतिमा को प्रणाम करने का निषेध करना क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणो की उच्चता दर्शाता है। कवि क्षत्रियो[3] के कर्म के प्रति जागरूक है। वह पञ्चरात्र में उन्हें राज्य वैभव की लोलुपता त्याग कर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति ब्राह्मण को दान कर सन्तान को केवल धनुपमात्र देने का विधान करता है। क्षत्रियों मे वचन पालन तथा शरणागत की रक्षा करने के प्रमाण भी इनकी रचना में प्राप्त होते हैं कि दुर्योधन अपने वचन की सत्यता जल लेकर करता है। मध्यम व्यायोग में पाण्डवों को शरणागत-वत्सल आदि विशेषण से विभूषित किया गया है। वैश्य व्यापारार्थ विदेश गमन भी करते थे।

---

१. कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति न मयातिक्रान्तपूर्वम्। भा० ना० च० ४८६

२. सूत्रधारः—भोः शब्दोच्चारणादस्य ब्राह्मणोऽयं न संशयः। मध्यम० १।२

भीमः—पूज्यतमाः खलु ब्राह्मणः तस्माच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं। भा० ना० च० पृ० ४३२

भीमः—सर्वापराधे वध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः। मध्यम० १।३४

३. कर्णः—बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः, पुत्रापेक्षी वञ्च्यते सन्निधाता।

विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं, राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः॥ पञ्च० १।२२

वेदाध्ययन इनके लिए आज्ञप्त था। शूद्र अन्त्यज नाम से प्रसिद्ध थे जो कृषि तथा सामान्य वस्तुओं का व्यापार करते थे। वेदाध्ययन तथा मन्त्रोच्चारण इनके लिए निषिद्ध था। चाण्डाल और निम्न वर्ण के व्यक्ति नगर के बाहर श्मशान भूमि के समीप आवास बनाते थे। अविमारक नाटक मे ऋषि के शाप से शप्त अविमारक का अन्त्यज के रूप मे रहने का विधान मिलता है।

भास ने अपनी रचनाओं में आश्रम-व्यवस्था का भी सामान्यतया वर्णन किया है जिसे हम ब्रह्मचारी के पात्र रूप में प्रवेश करने पर अवगत करते हैं। अतः ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और इसी समय विद्याध्ययन के लिए गुरु के समीप जाने की प्रथा का परिचय हमें प्राप्त होता है। स्वप्नवासवदत्ता के आरम्भ में ही ब्रह्मचारी का प्रवेश दर्शाया गया है। वह गुरु के समीप से शिक्षा प्राप्त करके वापिस आया है। इसी प्रकरण मे उपनयन सस्कार का वर्णन भी प्राप्त होता है। मध्यमव्यायोग में वृद्ध ब्राह्मण कौशिक गोत्र के यज्ञबन्धु नाम के ब्राह्मण के पुत्र के उपनयन मे सकलत्र जाता है। ब्रह्मचारी के प्रवेश के वर्णन प्रसंगों को हम पहले अध्याय में लिख चुके है। गृहस्थ धर्म के पालन में अतिथिसत्कार का विशेष महत्व रहा है। सन्यास आश्रम के वर्णन में हम दो प्रकार के सन्यासियों को इनकी रचनाओं में प्राप्त करते है। एक तपस्विन् जो तपोवन मे रहते थे तथा अन्य परिव्राजक जो कि भ्रमण करते थे। अन्य तपस्वियों में आजीविका हेतु सन्यास लेने का वर्णन प्राप्त होता है। स्वप्नवासवदत्ता[1] में यौगन्धरायण का कथन कि 'मैंने आजीविका के लिए यह वेष धारण नहीं किया है।' इसका समर्थन करता है। स्त्रियों के भी आश्रम में सन्यासिनी के रूप में वास करने के प्रसंग मिलते हैं। स्वप्नवासवदत्ता में पद्मावती आश्रम में मिलने के लिए अपनी माता से आती है तथा उसकी माता एक संन्यासिनी के रूप मे वहाँ वास करती है। संन्यासी का समाज मे आदर रावण के परिव्राजक वेष मे राम के समीप पहुँचने पर भगवान् शब्द से व्यवहृत करने के कारण प्रतीत होता है तथा राम सीता से 'भगवान् की सेवा करो' ऐसा आदेश देते हैं। इस प्रकार समाज मे परिव्राजक के दो रूप प्राप्त होते है। अविमारक[2] मे यज्ञोपवीत से ब्राह्मण, चीवर से रक्तपट तथा वस्त्ररहित से श्रमणक के परिज्ञान का बोध होता है। यहाँ चेटी[3] विदूषक से उसे अवैदिक कहकर हास्यास्पद ठहराती है।

१. यौग०—नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः। स्वप्न० १।६

२. विदूषकः—यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, चीवरेण रक्तपटः।
यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि। भा० ना० च० पृ० १६६

३. चेटी—त्वं किलावैदिकः। भा० ना० च० पृ० ११६

शिक्षा—स्वप्नवासवदत्ता[1] में लावाणक ग्राम के आए हुए ब्रह्मचारी से यौगन्धरायण का वार्तालाप यह प्रदर्शित करता है कि वहाँ एक विश्वविद्यालय राजकीय स्तर पर अवश्य रहा होगा जहाँ दूर से छात्र विद्याध्ययन हेतु आते होंगे। विद्या-समाप्ति पर गुरुदक्षिणा देने की प्रथा की सत्ता भी स्वप्नवासवदत्ता नाटक के इसी स्थल पर स्पष्ट हो जाती है कि तपोवनवासियों में जिसको जो वस्तु अभीष्ट हो वह अवश्य ग्रहण करे अथवा कोई अपनी दीक्षा[2] को पूर्ण करने पर गुरुदक्षिणार्थ भी देय वस्तु की याचना करे। इस दान मे उदारता की पराकाष्ठा दर्शायी है क्योंकि यह कार्य कुलव्रत के रूप में किया जाता हुआ बतलाया गया है। शिक्षा में रटने का प्राधान्य अवश्य था किन्तु अर्थज्ञ का ही विशेष महत्व तथा आदर होता था। अविमारक[3] मे विदूषक का कथन इस बात का प्रमाण है।

आश्रम—नगर से दूर सर्वतन्त्र स्वतंत्र वातावरण मे वन मे विद्यालय की व्यवस्था आश्रम के रूप मे प्राप्त होती है। वहाँ जल, छाया, अन्न, फलफूल की व्यवस्था भी ज्ञात होती है। राजा का उन स्थलो की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रतीत होता है। आश्रमवासियों के प्रति कठोरता का व्यवहार नहीं किया जाता था। वहाँ के फल[4] आज की भाँति बेचे नही जाते थे अपितु उन्ही के लिए निश्चित रहते थे। पशु-हिंसा का वहाँ नितान्त अभाव था। गौएँ तथा मृग आदि स्वच्छन्द रूप से विचरण करते थे। नित्य हवन-यज्ञ होने से धूम्रबहुल वातावरण का परिचय प्राप्त होता है। पद्मावती के आगमन के समय सामान्यजन के मार्ग से हटाये जाते देख यौगन्धरायण तपोवन को (ग्रामीकरोति) कहता है। तपस्वियों को मान-सम्मान ही प्रिय होता था। राजकन्या पद्मावती आश्रमवासियों के लिए उनकी अभीष्ट वस्तु के प्रदान करने की घोषणा मे अपने अनुग्रह की कामना करती है।

१. ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम्। राजगृहतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि।
यौग०—अथ परिसमाप्ता विद्या।
ब्रह्मचारी—न खलु तावत्। भा० ना० च० पृ० ८

२. काञ्चुकीयः—कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम्॥
स्वप्न० १।८

३. विदूषकः—न केवलं श्लोका एव, तेषामर्थोऽपि ज्ञात। अन्यच्च। अपरो विशेषः, ब्राह्मणो दुर्लभोऽज्ञरज्ञोऽर्थज्ञश्च। भा० ना० च० पृ० ११६

४. यौग०—धीरस्याश्रमसंश्रितस्य ·· ··ग्रामीकरोत्याज्ञया। स्वप्न० १।३
काञ्चुकीयः—तीर्थोदकानि ··· ·कुलव्रतमेतदस्याः। भा० ना० च० पृ० ३
ब्रह्मचारी—विस्रब्धं··· ··धूमो हि बहुश्रियः। स्वप्न० १।१२

अतिथिसत्कार में महती आस्था—स्वप्नवासवदत्ता मे प्रथम अंक मे कञ्चुकी का ब्रह्मचारी से 'प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः' कहना एक आगन्तुक के प्रति सामान्य व्यवहार मे शिष्टता का परिचायक है। इसी नाटक के छठे अंक में यौगन्धरायण के ब्राह्मण वेष मे आने पर राजा उसे 'शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण' कह कर सत्कार प्रदर्शित करते हैं।[1] प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे राजा उदयन के पकड़े जाने पर महासेन कञ्चुकी से उसे उचित सत्कार द्वारा प्रवेश कराने का आदेश देते है। इतना ही नही, महासेन यह कहता है कि सत्कार ऐसा किया जाये, कि वह जाने कि सत्कार किया गया है। इस कथन में कवि की सत्कार के प्रति भावना का बोध होता है। प्रतिमा नाटक[2] मे राम रावण से 'स्वागतमतिथये' कहते हैं तथा ब्राह्मणोचित सत्कार के लिए सीता से 'भगवान् की सेवा करो'—ऐसा कहते है। अभिषेक[3] नाटक में राम विभीषण के आगमन को सुनकर उसे सत्कारपूर्वक प्रवेश करने का आदेश देते हैं। पञ्चरात्र[4] में राजा विराट् युधिष्ठिर वार्तालाप मे अपने धन की सामर्थ्य से अतिथि को पूजार्ह बतलाते है। मध्यमव्यायोग[5] मे वृद्ध ब्राह्मण भीम के द्वारा रक्षा होने पर अन्त में अतिथिसत्कार का वर्णन करते हैं। इन्ही उद्धरणों के द्वारा समाज मे व्याप्त अतिथिसत्कार का हमें परिज्ञान होता है।

चरित्ररक्षा कवि की रचना का प्राण—कवि ने अपनी सभी रचनाओं में विषम से भी विषम परिस्थितियों मे चरित्र रक्षा का पूर्ण ध्यान रखा है। स्वप्नवासवदत्ता में यौगन्धरायण पद्मावती से वासवदत्ता के चरित्र की रक्षा के लिए निवेदन करता है और वासवदत्ता को दृष्टधर्म प्रचारा तथा धीरा कन्या विशेषण देकर पद्मावती से उसके चरित्र-रक्षा[6] की याचना करता है। पद्मावती वासवदत्ता के विषय में अन्य जनों के दर्शन का यह परिहार करती है ऐसा कहती है तथा वासवदत्ता स्वयं भी दूसरे व्यक्ति का सकीर्तन सुनना अनुचित है इस प्रकार के विचार रखती है। उदयन[7] सोने से शीघ्र जागने के पश्चात् क्षणिक दर्शन में वासवदत्ता के चरित्र-रक्षा का प्रमाण उसके वेषविन्यास तथा असंयत बालों को देखकर समझता है। पद्मावती वासवदत्ता के विषय में पति के परदेश होने पर दूसरे पुरुष का दर्शन न

१. राजा—गच्छ, कुमारविधिविशिष्टेन सत्कारेण वत्सराजमग्रतः कृत्वा प्रवेश्यताम्। भा० ना० च० पृ० ७६

२. रामः—शुश्रूषय भगवन्तम्। भा० ना० च० पृ० २६६

३. रामः—सत्कृत्य प्रवेश्यताम्। भा० ना० च० पृ० ३४६

४. राजा—पूजार्होऽप्यतिथिर्भवेत् स्वविभवैरिष्टा हि नः पाण्डवाः। पञ्च० २।३६

५. वृद्धः—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन। भा० ना० च० पृ० ४३८

६. यौग०—धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा, शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः। स्व० १।६

७. उदयनः—चारित्र्यमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम्। स्वप्न० ५।१०

करने का वर्णन करती है। अविमारक में राजा भूतिक से 'स्त्रीदर्शन परिहृतं' कहता है किन्तु कुरंगी के वर्णन में सर्वत्र चरित्र पर दृष्टि का वर्णन मिलता है यद्यपि कुरंगी अविमारक का स्नेह गुप्त रूप से परिपाक को पहुँच चुका है। तथापि वह अविमारक के समीप जाने से पूर्व 'हीन चरित्रम्' कहकर सकुचित होती है। चारुदत्त नाटक मे भी शरीर और चरित्र की रक्षा पर बल देने के उदाहरण हमें प्राप्त होते है। चारुदत्त मे गणिका[1] स्वय चरित्र-भय को अनावश्यक बतलाती है और 'अलं चारित्रभयेन' कहती है किन्तु इसी नाटक मे अज्जुका का वृत्तान्त शरीर और चरित्र दोनों को सशय मे डालने के विषय में प्राप्त होता है। अभिषेक नाटक[2] मे सीता का अपने चरित्र के विषय में बलपूर्वक कथन कुल की लज्जा के लिए आवश्यक प्रतीत होता है और वह राम के अनुसरण मे अपने चरित्र की दृढ़ता के लिए भगवान् से याचना करती है। पञ्चरात्र[3] मे चरित्रहीन पुरुष से कुल के नष्ट होने का वर्णन भास ने किया है। दूतघटोत्कच मे कौरवों से पाण्डवों के प्रति किए गए आचार का वर्णन करने मे पाण्डवों को उग्राचारा कहा है।

विवाह—भास ने गान्धर्व विवाह को ही विशेष महत्व प्रदान किया है। इन्होंने क्षत्रियो के लिए गान्धर्व विवाह को ही ग्रहण किया है। किन्तु उदयन तथा पद्मावती का विवाह ब्राह्म विवाह है। प्रतिज्ञा में कञ्चुकी[4] वासवदत्ता के विवाह को क्षात्र विवाह निर्दिष्ट करता है। उदयन वीणाशिक्षणोपरान्त वासवदत्ता को हस्ति-सम्भ्रम दिवस पर लेकर भाग आता है और यौगन्धरायण[5] उसके भागने पर भी दारस्वीकृति के उपरान्त ही ले जाने का समर्थन करता है। विवाह मे वर्णित प्रसग में अविमारक[6] तथा कुरगी का विवाह गान्धर्व विवाह का ही रूपान्तर है। नारद स्वय इस विवाह को गान्धर्व कहते हैं कि विधि ने हस्तिसम्भ्रम के दिन कुरंगी को दे दिया था। सुमित्रा तथा जयवर्मा का विवाह क्षात्र धर्म के अन्तर्गत आता है।

---

१. गणिका—अलम् चारित्रभयेन। भा० ना० च० पृ० २०५

२. सीता—ईश्वराः। आत्मनः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्यार्यपुत्रम्।
भा० ना० च० पृ० ३६०

३. प्रथमः—शुष्केणैकेन वृक्षेण वन पुष्पितपादपम्।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणेव दह्यते॥ पञ्च० १।१२

४. काञ्चुकीयः—क्षात्रधर्मेणोद्दिष्टस्ते दुहितुर्विवाहः। भा० ना० च० पृ० १०६

५. यौग०—भारतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः।
अकृत्वा दारनिर्देशमुपदेशं करिष्यति॥ प्रतिज्ञा ४।१७

६. नारदः—दत्ता सा विधिना पूर्व द्रष्टा सा गजसम्भ्रमे।
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टौ मायया पुनः॥ अवि० ६।१४
नारदः—निष्ठितो विवाहो ननु गान्धर्वः खसमय एव इदानीम्।
कुन्तिभोजः—अग्निसाक्षिकमिच्छामि।
नारदः—नित्यमग्निसाक्ष्येव। भा० ना० च० पृ० १८२

पञ्चरात्र में उत्तरा अभिमन्यु के विवाह के विषय में केवल सामान्य विवाह का ही संकेत किया है किन्तु यह विधिपूर्वक सम्पन्न होता है। विवाह में अग्नि-साक्षित्व का महत्व है। वासवदत्ता की धात्री जो कि पद्मावती के विवाहोपरान्त उदयन के समीप पहुँचती है तो वह अभीष्ट जामाता को अनग्नि-साक्षित्व[1] के साथ वीणा-व्यपदेश के रूप में देने का निर्देश करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिष्या के साथ विवाह करने की प्रथा भी समाज में व्याप्त थी।

दूत-सम्प्रेषण—विवाह के लिए दूत वर-पक्ष से प्रेषित करने की प्रथा का परिचय प्राप्त होता है। प्रतिज्ञा में महासेन[2] के समीप अनेक राजाओं के दूत आए हैं। राजा उनमें वरोचित गुणों के अन्वेषण के कारण निश्चित करने में अभी असमर्थ है क्योंकि उसकी दृष्टि में वर के गुणों में अच्छे कुल का होना तथा सुन्दर और वीर होना आवश्यक है। अन्य राजाओं के दूत आने पर भी उसके मन की अभिलाषा वत्सराज उदयन के प्रति अतृप्त ही रहती है। उदयन अपना दूत महासेन के यहाँ नहीं भेजता है जिस कारण से महासेन उदयन को हाथी के ज्ञान से गर्वित कहता है।

सपत्नीत्व—बहुपत्नीत्व की प्रथा समाज में अवश्य रही होगी क्योंकि पद्मावती के विवाह के अवसर पर कौतुकमाला में सपत्नीमर्दन नामक औषधि के भी ग्रथित होने का विधान प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष रूप में तो ऐसी प्रथा का प्रचलन नहीं ज्ञात होता; क्योंकि वासवदत्ता के जीवित रहते हुए न तो उदयन ही पद्मावती से विवाह करता और न महासेन ही इस प्रकार के आडम्बर को रचता तथा नाटककार को वासवदत्ता के दग्ध होने की कथा के प्रसार की आवश्यकता ही न होती तथापि पद्मावती तथा वासवदत्ता दोनों के उदयन के समीप आ जाने पर भी नाटककार ने समाज के पक्ष तथा विपक्ष की आलोचना का कोई प्रसंग नहीं दिया है। इससे किसी न किसी रूप में इस प्रथा का रूप प्राप्त होता है।

वैधव्य—समाज में विधवाओं को कोई स्थान नहीं था, अपितु शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति वर्जित थी। विवाह सदृश उत्सवों पर सौभाग्यवती स्त्रियों को ही सम्मिलित करना शुभ अभिहित किया गया है। पद्मावती[3] के विवाह में जो कौतुकमाला ग्रथित की गई, उसमें अविधवाकरण नामक औषधि के भी गुम्फन का वर्णन स्वप्नवासवदत्ता में प्राप्त होता है। वासवदत्ता स्वयं भी पद्मावती को अविधवा[4]

---

१. धात्री—अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। भा० ना० च० पृ० ५०

२. काञ्चुकीयः—आभीरक! एवं नामाहन्यहनि गोत्रानुकूलेभ्यो राजकुलेभ्यः कन्याप्रदानं प्रति दूतसम्प्रेषणा वर्तते। भा० ना० च० पृ० ७३

३. चेटी—(अविधवाकरणं नाम),(सपत्नीमर्दनं नाम), एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरच्तुःशालं प्रवेश्यते। भा० ना० च० पृ० १६

४. वासवदत्ता—उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे! उत्तिष्ठ। भा० ना० च० पृ० ५५

कहती है। पञ्चरात्र मे भी वृद्धगोपालक[1] ऐसा ही कहता है।

समाज मे विवाह के बन्धन कठोर प्रतीत होते है क्योकि विभिन्न स्थलो में विवाह के प्रसग मे महासेन को तथा कुन्तिभोज को हम अत्यन्त चिन्तित पाते हैं। अविमारक में प्रेमासक्ति ही विवाह मे परिणत होती दिखाई गई है जिसमें माता-पिता का कोई महत्व नही रहा है। इसमें स्वच्छन्दता की झलक तो अवश्य मिलती है किन्तु कुरंगी का पग-पग पर 'हीन चारित्रम्' का कथन उसके समाज-भय को प्रदर्शित करता है। प्रतिज्ञा मे कन्या का पिता अत्यन्त चिन्तित है किन्तु वहाँ भी वीणा-शिक्षण के माध्यम से पारस्परिक अनुरक्ति ही विवाह में परिणत होती अंकित की गई है। विवाह के लिए बहुश. परीक्ष्य कहना अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क की भावना को व्यक्त करता है। इनकी रचनाओं मे कन्या-पितृत्व के दोनो रूप प्राप्त होते है, जिसमे एक स्थल पर वे "कन्या-पितृत्व बहु चिन्तनीयम्" तथा "कन्या-पितृत्वं बहु वन्दनीयम्" का वर्णन करते है।

कवि के समय मे अपराध की स्वीकृति तथा उसके प्रति क्षमायाचना के स्थलों का निर्देशन हम प्रथम अध्याय में कर चुके है किन्तु इस वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि इनके समय में पुत्र को पिता के रोष का पर्याप्त भय था क्योकि उदयन ने दो स्थलो पर "कि वक्ष्यतीति हृदय परिशकित मे" तथा "पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीत." कहकर स्वीकार किया है। दूतघटोत्कच में घटोत्कच ने भीम से अपराध की क्षमा प्रार्थना की है।

माता की आज्ञा पालन मे विशेष श्रद्धा का प्रदर्शन किया गया है। कर्णभार[2] नाटक में कर्ण माता के कहने के कारण ही युद्ध से विरति की आशंका मन मे लाता है तथा घटोत्कच[3] अपनी माता के आहार के लिए अत्यन्त उद्विग्न है।

शपथ तथा शाप का विशेष प्रभाव भास के समय में प्रतीत होता है। कवि ने प्रायः सभी नाटकों में इस प्रकार के स्थलों का सन्निवेश किया है जिसका विस्तृत वर्णन हम प्रथम अध्याय में कर चुके हैं। इस समय शाप के भय का प्रभाव नही है।

धरोहर – भास की रचनाओ मे कतिपय स्थलों पर धरोहर के प्रसग से हम समाज में व्याप्त धरोहर प्रथा का अनुमान लगाते हैं और उसके देने में साक्षी के होने की आवश्यकता का वर्णन भी उन्हीं स्थलो पर प्राप्त करते हैं। यह स्वाभाविक है कि समाज में ऐसा विवरण व्याप्त रहा होगा और आज भी व्याप्त है। स्वप्न-वासवदत्ता मे यौगन्धरायण वासवदत्ता को न्यास रूप में रख जाता है। अन्त में

---

१. वृद्धगोपालकः—अविधवाश्च गोपयुवतयोः भवन्तु। भा० ना० च० पृ० ३८९

२. कर्णः—अयं स कालः "पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः। कर्णभार १।८

३. घटोत्कचः—अतिक्रामति मातुराहारकालः। भा० ना० च० पृ० ४२८

जब वह लेने के लिए आता है, तो राजा पद्मावती[1] से साक्षी के सामने उस धरोहर के देने को कहते है। पद्मावती ने पहले न्यास के संरक्षण में अपनी अत्यन्त कठिनाई को भी व्यक्त किया है।

उत्कोच— समाज मे उत्कोच की भी प्रथा की झलक हमें प्राप्त होती है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में उदयन विदेशी राजा के व्यक्ति को सुवर्ण की सौ[2] मुद्राएँ देकर अपने कार्य की सिद्धि करता है तथा जेल में रहने के समय राजसेवक शिवक[3] को प्रसन्न करने का वर्णन प्राप्त होता है जिसके द्वारा उदयन वासवदत्ता से वार्तालाप करने में सफलता प्राप्त करता है।

जलपान—जल माँगने का प्रयोग भास की अपनी मौलिक प्रतिभा है। इस प्रकार का प्रयोग पश्चाद्वर्ती नाटककारो ने नही किया है। विषम परिस्थितियों में नाटकों में पात्रों द्वारा जल माँगने के तथा तत्काल जल की प्राप्ति के उद्धरण अनेक स्थलो पर प्राप्त होते हैं।

उत्सव -राजा के जन्मदिन के उत्सव को सोल्लास आयोजित करने का वर्णन पञ्चरात्र[4] में प्राप्त होता है। अन्य नाटक बालचरित में भी हल्लीशक नृत्य का वर्णन मिलता है। इन्द्रध्वज नामक उत्सव के आयोजन की भी सूचना पात्र द्वारा दी जाती है। इन अवसरों पर नृत्य-गीतादिकों का आयोजन किया जाता था।

संगीत—वीणावादन का विशेष प्रचार इनकी रचनाओ में प्राप्त होता है। कन्याओं को वीणावादन शिक्षण के लिए शिक्षकों को नियुक्त किया जाता था। स्वय उदयन घोषवतीवीणावादन में निपुण था जो हाथियों को भी अपने अधीन कर लेता था। वीणावादक को सर्वकालसुखी कहा गया है।

हस्तिशिक्षा – इनके समय में हस्तिशिक्षा का विशेष प्रचार रहा होगा और इसके विशेषज्ञ भी मिलते होंगे क्योंकि उदयन को केवल वीणा के आधार पर नील-कुवलय हाथी के पकड़ने के लिए कहते हुए प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में वर्णित किया गया है। किन्तु हस्तिशिक्षा पर इस समय कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नही होता है।

अश्व—अश्वों का युद्ध मे प्रयोग कर्णभार मे काम्बोज अश्वो का वर्णन मिलता है। कर्ण दान देने के लिए कम्बोज (पारसीक) प्रदेश के घोड़ों का नाम लेता है। सम्भवतः उस समय कम्बोज के घोड़े ही विशेष रूप मे प्रसिद्ध रहे हों।

१. राजा—साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। भा० ना० च० पृ० ५४

२. हंसकः—ततः सुवर्णशतप्रदानेन तं नृशंस प्रतिपूज्य भर्त्रोक्तम्। भा० ना० च० पृ० ६२

३. विदूषकः—अभ्यन्तरबन्धनपरिरक्षकं शिवक नाम राजदासमनुमान्य। भा० ना० च० पृ० ६१

४. काञ्चुकीयः—जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य तावत्काल-निवेदनम्। भा० ना० च० पृ० ३९२

चौरकर्म—भास के नाटको मे वर्णित राजकीय शासन-व्यवस्था पर तो कोई विशेष प्रकाश नही मिलता किन्तु चारुदत्त नाटक मे चोर द्वारा सेंध लगाने तथा अविमारक नाटक मे चोर रूप मे कन्यान्त पुर मे अविमारक के प्रवेश के उदाहरण मिलते है। किन्तु इन वर्णनो मे भी चौर को अन्तस्तल मे कष्ट[1] की अनुभूति करते हुए पाते है।

रक्षिपुरुषों (पुलिस) की व्यवस्था—अविमारक[2] नाटक मे जब अविमारक कुरगी से मिलने के लिए राजप्रासाद की ओर बढता है तो मार्ग मे वह सिपाहियों को देखता है। यह समय अर्धरात्रि का है और सिपाही के उसके परिचित होने के कारण वह निर्भय होकर अपने अभीष्ट मार्ग की ओर चला जाता है।

गुप्तचर व्यवस्था—भास के नाटकों के अध्ययन से गुप्तचर व्यवस्था के सुप्रबन्ध की पुष्टि हो जाती है, विभिन्न देशो के राजा अपने राज्य की सुरक्षा तथा आंतरिक सुव्यवस्था हेतु गुप्तचरों की सुयोजना रखते थे। इतना ही नही, इससे पूर्व युग में भी राजनीति एव शासन प्रबन्ध के सचालन मे गुप्तचर व्यवस्था से सहायता ली जाती थी। वाल्मीकि-रामायण के अध्ययन से विदित है कि रावण ने अपने राज्य का विस्तार करने और अपने शत्रुओं के विनाश हेतु चतुर गुप्तचर दल का संगठन कर रखा था जिसका प्रधान सचालक शार्दूल था। मर्यादापुरुषोत्तम राम के राज्य मे भी सामाजिक स्थिति की सुदृढ़ता के लिए सत्यवादी एव कर्त्तव्यपरायण गुप्तचर दल सक्रिय था।

गुप्तचरो को एक विशेष प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी, जिससे वे शत्रुपक्ष के पुरुषों को मुखाकृति, बोलचाल, कण्ठ, तालु और मूर्धा के उच्चारण से ज्ञात कर लेते थे। रावण के समीप से विभीषण जब राम के सेना-शिविर मे आते हैं, तो विभिन्न प्रकार की शंकाएँ की जाती हैं तथा गुप्तचर विभाग के अधिकारी, सुग्रीव ने उसे रावण का गुप्तचर कहा है। अतः परस्पर मे भेद करने के कारण उसके भेजने मे आशका की जाती है। जाम्बवान् ने भी सशकित रहने की मंत्रणा दी। महान् राजनीतिज्ञ मैन्द ने उसके मन की बात जानकर ही साधु अथवा दुष्ट धारणा के लिए विचार रखने का निर्णय दिया। मैन्द ने विभीषण के कण्ठ, तालु, मूर्धा के उच्चारणभेद से मानव की मुखाकृति तथा उसके अन्तर्भावों के अध्ययन से विभीषण को प्रसन्न पाकर वार्तालाप करने का तथा विश्वास-योग्य समझने का विचार प्रस्तुत किया। रावण की सेना के गुप्तचर बहुमायावादी थे। सुग्रीव ने सुबेल गिरि

---

१. सज्जलकः—हन्त अवसितं कर्म ! धिक्, सज्जलकः खल्वहम्।
मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने। चारु० ३।१ ?

२. अविमारक—नगरपरिचितोऽहं रक्षिणो ज्ञातसाराः। अविमारक ३।२
आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां, नैते तु रक्षिपुरुषा मम भारभूताः।
अविमारक ३।१०

र पहुँचते ही रामचन्द्र जी को गुप्तचर की नियुक्ति के लिए सावधान कर दिया था। नूमान् जी ने लका मे प्रवेश करते ही गुप्तचरों को सन्यासी, जटाधारी तथा अन्य श मे कुशा, मृगचर्म आदि ओढ़े हुए आते देखा। युद्ध के समय में ही नही पितु शान्ति के समय भी गुप्तचरो के सावधान रहने का प्रसंग है। लंका-विजय के नन्तर राम ने अपने विजय, मद्यमत्त, कालिय, भद्रदत्त, वक्र तथा सुमागध नामक प्तचरो को सामाजिक स्थिति का पता लगाने का आदेश दिया था।

महाभारत काल में भी गुप्तचर व्यवस्था सुसस्कृत रूप मे प्राप्त होती है। तिज्ञाबद्ध अम्बा ने भीष्म के विरुद्ध तपस्या की। उसकी गतिविधियों को जानने के ाए भीष्म ने गुप्तचरों को नियुक्त किया। पाण्डवों की द्यूत[1] मे पराजय होने के चात् जब वे कृष्ण से परामर्श करने गए तो उस परामर्श का विवरण दुर्योधन को प्तचरो द्वारा ज्ञात हो गया। पाण्डवो[2] ने भी कर्ण के विचारों को जानने के लिए त्तचरो की नियुक्ति की और उन्हे भी कर्ण द्वारा अर्जुनवध की प्रतिज्ञा का ज्ञान तचरों के द्वारा प्राप्त हो जाने के कारण ही उन्होंने इस विषय मे सावधानी का ोग किया।

गुप्तचरों की नियुक्ति के विषय में यह पता चलता है कि उन्हे विश्वासयुक्त, यवादी तथा विज्ञ होना चाहिए। आचार्य द्रोण ने पाण्डवों की खोज में विज्ञ, यवादी तथा ब्राह्मणों को गुप्तचर के रूप में नियुक्त करने का परामर्श दिया। इस कार महाकाव्यों में गुप्तचर व्यवस्था का बोध हमें होता है। इनमे पूर्व काल में भी रवंश पुराण के बाणासुर प्रसग मे उषा-अनिरुद्ध-मिलन का पता गुप्तचरो द्वारा णासुर को मिलने का आभास मिलता है।

भास की रचनाओं में गुप्तचर प्रयोग के संकेत स्थल—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण टक मे यौगन्धरायण को राजा उदयन के कृत्रिम हाथी द्वारा पकडने के समाचार ज्ञान गुप्तचरों द्वारा चल जाता है। जिसके कारण वह हंसक को राजा के ीप भेजना चाहता है। अविमारक[3] नाटक मे अविमारक गुप्तचरो का वर्णन ता है तथा उन्हे रात्रिचर कहता है। इसी नाटक मे अविमारक की खोज के ए गुप्तचरों को नियुक्त करने का विवरण मिलता है।

---

१. तयोश्च य कथितं राजन् दृष्ट्वा पार्थान् पराजितान्।
चारेण विदितं सर्व तन्मयावेदितं च ते॥ महा० व० पृ० १५०।२८१

२. भूयश्च चारैः राजेन्द्र! प्रवृत्तिरुपपादिता।
प्रतिज्ञा सूतपुत्रस्य विजयस्य वधं प्रति॥ महा० वन०

३. अवि०—इह तु पुरुषकारसारसाक्षी
बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः॥ अवि० ३।११
भूतिक—न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः॥ अवि० ६।१०

आयुर्वेद का विकास – पद्मावती के सिरदर्द मे शीषानुलेपन, तथा प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में उदयन को स्कन्ध शयन (स्ट्रेचर) पर लेटाकर ले जाना तथा उसके व्रण का उपचार करना इसमे प्रमाण कहा जा सकता है।

ज्योतिष में आस्था – नाटककार ने सभी रचनाओं मे अच्छे नक्षत्र का महत्व स्वीकार किया है तथा विवाह के अवसर को "अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्" कह कर शीघ्रता के साथ शुभ घोषित किया है। प्रतिमा नाटक मे भरत के अयोध्या मे प्रवेश से पूर्व कृतिका नक्षत्र की एक घडी अवशेष रहने के कारण उन्हें नगर से बाहर प्रतिमा मन्दिर मे प्रतीक्षा करनी पड़ती है और वे रोहिणी नक्षत्र के आरम्भ मे नगर में प्रवेश करते है। पुष्य नक्षत्र की श्रेष्ठता का परिचय भी उनकी रचना में प्राप्त होता है। पुष्य नक्षत्र का महत्व तो वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत में भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने शकुन पर भी बल दिया है, यथा—छींकना अच्छा नहीं, काक तथा उल्लूक के बोलने को विस्वर कहकर अपशकुन माना है।

कला का विकास—भास की रचनाओ में प्रतिमा नाटक में वर्णित प्रतिमा-मन्दिर की स्थापना मे हम इस काल मे भी पत्थरो पर खुदाई के विकास को प्राप्त करते हैं। इस काल के इस कला के विकास के विषय मे निर्णय करने से पूर्व हमे ऐतिहासिकों से प्राप्त सभी तथ्यो पर विचार करना होगा। अशोक[1] से पूर्व भारत की वास्तुकला में लकड़ी का अत्यधिक उपयोग हुआ है। मैगस्थनीज ने लिखा है कि 'पाटलिपुत्र के चारों ओर एक दीवार थी जिसमे तीर छोडने के लिए छिद्र बने थे' चन्द्रगुप्त की राजधानी के लकडी के खम्भों से घिरी होने का वर्णन मिलता है। जातकों मे भी लकडी के मकानों का उल्लेख है। ईटो के मकान का कही वर्णन नही मिलता किन्तु जातको मे पाषाणकला का अभाव नही है। अशोक के समय से पूर्व की एक प्रस्तर मूर्ति जो परर्डम मे मिली है जिसका निर्माण राजशिल्पियो ने नहीं किया था। राजपूताने के नगरी स्थान मे हमे वासुदेव, संकर्षण को समर्पित एक समाधि के अतिप्राचीन पाषाणमय घेरे के अवशेष मिले हैं जिनका समय भी अशोक से पूर्व है। एक और पाषाणभवन जो राजगिरि मे है जिसे जरासंध की बैठक कहते हैं, फर्गुसन के अनुसार यह निश्चय ही मौर्य काल से पूर्व की है। पिपरखा स्तूप सलेटी रंग के बलुआ पत्थर का विशालकाय पाषाण है। जो उच्चकोटि की कला का आदर्श है। अत: विदेशियो का यह कथन कि भारत की यह निजी कला नही थी निर्मूल है अपितु यह विकसित थी और अशोक ने भी इसे अपनाया। सेनार्ट का विचार यह था कि एकिमीनियन राजा देरिअस की आज्ञप्तियों को देख कर ही मौर्य सम्राट् के विचार मे भी शिलाओ पर उत्कीर्ण कराकर धार्मिक विज्ञापन प्रसारित करने का ध्यान आया हो। स्मिथ का कथन है कि डेरिअस के नक्शे रुस्तम वाले

१. अशोक, आर० के० भण्डारकर से उद्धृत।

शिलालेख के आधार पर ही उत्कीर्ण क्रिया आरम्भ की गई है। कतिपय भारतीय शिल्पियों को इरानी शिल्पी बन्धुओं से प्रभावित ठहराते है किन्तु ईरान मे स्तूपो का अभाव सा ही है। स्तम्भों के निर्माण का उद्गम भारत मे ही स्वतन्त्र रूप से हुआ। ऐसे स्तम्भ जो किसी भवन के आँगन हों, पश्चिमी एशिया या यूरोप मे रोमन सम्राटो से पहले अप्राप्य थे।

भास की रचना मे अविमारक[1] नाटक मे लकडी के बने हुए स्तम्भों का वर्णन आया है जो कन्यापुर प्रासाद के काष्ठकर्मबहुल होने से तथा जाली लगी होने से चढने मे सुगम बतलाया गया है।

प्रतिमा नाटक[2] मे पत्थर की प्रतिमाओ मे भाव, गति, भावभंगिमओ का अंकन अतीव मनोहारी रूप मे अंकित किया गया है। अतः इस समय से पूर्व ही पाषाण उत्कीर्ण कला का विकास रहा होगा। इसी नाटक मे कुन्तिभोज के राजमहल[3] के वर्णन मे मणिदीपो मे सामान्य दीपों की कान्ति अप्रतिभ तथा मणि-रत्नजटित शिलातलो के द्वारा स्वर्ग के सदृश बतलाया गया है।

पर्दे पर चित्र-निर्माण कला—इस कला का विकास भी पूर्ण रूप से विकसित था क्योंकि वासवदत्ता[4] मे धात्री राजा से उदयन तथा वासवदत्ता की प्रतिकृति चित्र-फलक मे आलिखित करवा कर विवाह करने का वर्णन प्रस्तुत करती है तथा पद्मावती उस चित्र में गुरुजनो को अंकित देखकर प्रणाम करना चाहती है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[5] मे कञ्चुकी चित्रफलक में चित्रित वत्सराज तथा वासवदत्ता के विवाह करने के लिए महासेन से कहता है। दूतवाक्य[6] मे दुर्योधन उस चित्र को मँगवाता है जिसमे दुःशासन ने द्रौपदी के केश हाथ से पकडे थे तथा जिसमें भीम, युधिष्ठिर आदि सभी के चित्र अंकित किये गये हैं। उरुभग मे भी दो स्थलो पर 'संकीर्णलेख्य-

---

१. अवि०—असौ दारुपर्वतक······ अयं कन्यापुरप्रासादः। एष तु काष्ठकर्मबहुलतया समासन्नजालत्वाच्च सुखमारोढुम्। भा० ना० च० पृ० १४२

२. भरतः—अहो क्रियामाधुर्य पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्।
दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासां प्रतिमानाम्। भा० ना० च० पृ० २७६

३. अवि०—हंसाः स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु।······
मन्दीभवन्ति मणिदीपहता. प्रदीपा॥ अवि० ३।१६

४. धात्री—अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृति चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। भा० ना० च० पृ० ५१
पद्मा०—आर्यपुत्र! चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि। ,, ,, पृ० ५१

५. काञ्चुकीयः—तच्चित्रफलकन्यथयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्।
भा० ना० च० पृ० १०६

६ दुर्योधनः—सुव्यक्तं प्राप्त एव केशवः।
वासुदेव.- अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। मा तावत्। द्रौपदीकेशधर्षणमत्रालिखितम्।
भा० ना० च० पृ० ४४७

मिव चित्रपटं'[1] का प्रयोग किया है जिससे चित्रपट पर चित्र अंकित करने का आभास मिलता है।

(घ) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी विशेषताएँ

महान् नाटककार भास के सवाद नाटकीय नैपुण्य से आपूरित हैं, इनके पात्र सजीवना के साथ-साथ कौतूहल वृत्ति को सजग तथा सचेष्ट रखने में दक्ष है। भास भावी घटना को दर्पण दर्शन की भान्ति पृच्छक पात्र से स्वय कहलवा देते हैं, जैसे वह आकृति-विशेषज्ञ हो और मुखाकृति को देख कर अन्तस्तल के भावों की प्रतिच्छाया का आभास पाकर शीघ्रता से कहते है कि 'किमपि वक्तुकामासि' इत्यादि।

स्वप्नवासवदत्ता[2] मे प्रथम अंक में वासवदत्ता सभी व्यक्तियों को पद्मावती के भृत्य द्वारा हटाया जाता हुआ देखकर कहती है कि 'क्या मैं भी हटाई जाऊँगी?' इस स्थिति मे यौगन्धरायण का उत्तर कितना समीचीन है कि 'अज्ञात रूप में देवताओं का भी अपमान हो जाता है।' वासवदत्ता के गुप्त रूप में पद्मावती के पास रहते हुए विदूषक और उदयन के वार्तालाप में अपने विषय में राजा के विचार सुनकर 'दत्तं वेतनं परिखेदस्य' कहती है तथा कष्टमय जीवन में सुख सन्तोषरूपी रज्जु का सम्बल लेकर आगे बढ़ती है। यौगन्धरायण का सन्यासी वेप मे दूसरे व्यक्ति द्वारा तपस्वी कहने पर इस प्रकार के विचार व्यक्त करना कि तपस्वी शब्द तो गुणवान् है, किन्तु मेरे से अपरिचित होने के कारण मुझे अच्छा नही लगता है। पद्मावती की रुग्णना में शय्या की स्थिति का वर्णन, कि रोगाक्रान्त प्राणी शय्या को शीघ्र नही छोडता है तथा वासवदत्ता पद्मावती से उदयन के विवाह के समाचार को जानकर धात्री से यह पूछती है कि क्या राजा ने स्वयं उसे वरण कर लिया जो कि उसकी मानसिक स्थिति को उद्वेलित किए हुए है किन्तु धात्री द्वारा पद्मावती के पिना का स्वय उदयन से विवाह करने का समाचार सुनकर शान्ति का अनुभव करती है। वासवदत्ता की मृत्यु के समाचार के पश्चात् उसकी स्मृति मे अश्रुधारा बहाकर उन अश्रुओ का ऋण से छुटकारा दिलाने के प्रयोग में मनोवैज्ञानिक चित्रण है। पद्मावती के सिरदर्द हो जाने पर उदयन[3] का वासवदत्ता की भाति वियुक्त होने की कल्पना करना मानसिक दशा का सुन्दर चित्रण है। उदयन के विवरण में मनोवैज्ञानिक चित्रण की पराकाष्ठा तथा प्रौढता हम तब पाते है जब कि वह वासवदत्ता के हरण करने पर उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहने के कारण दो

---

१. सूत्रधार—एतद्रणं 'संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम, क्षिपामि। उरु० १।३ व ६०

२ वास०—अहमपि नामोत्सारयितव्या • भवामि।

यौग०—भवति! एवमनिर्ज्ञातानि देवतान्यवधूयन्ते। भा० ना० च० पृ० २

३. राजा—रूपश्रिया ''पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि। स्वप्न० ५।२

स्थलों पर 'कि राजा क्या कहेगा इस विषय मे मेरा मन सशंकित है' कहे बिना अपने आप को नही सम्भाल पाता है। इसमें उदयन[1] की अपराध-स्वीकृति की भावना व्यञ्जित है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण[2] नाटक मे अकेले हंसक के लौटने पर यौगन्धरायण अत्यन्त चिन्तित है और उसकी मानसिक स्थिति का अध्ययन किसी आकुल व्यक्ति के विदेश से आने पर घर के प्रिय अथवा अप्रिय समाचार जानने की इच्छा की समानता यहाँ व्यक्त की गई है। राजा बादरायण से 'वक्तुकाममिव त्वा लक्षये' कहकर उसके विचारो को जानना चाहते है। राजा उदयन का महासेन की पुत्री के विषय में विदूषक का यह कथन कि राजा इस समय उसके प्रेम मे आसक्त है ऐसी दशा में यौगन्धरायण[3] का यह कहना कि 'स्वामी अनुचित समय मे विलास में व्यस्त है', मानो वह राजा के इस कृत्य के प्रति रोषयुक्त होकर छटपटा रहा है और ऐसे व्यक्ति को छोड़ देने के उद्गार प्रकट करता है। नाटककार का विभिन्न मनोदशाओ का इतना सूक्ष्म अकन उसके मनोवैज्ञानिक ज्ञान का पोषण करता है। यौगन्धरायण के मन्त्री पद पर कार्य करने का श्रेय इसी मे है, कि वह राजा को मुक्ति दिलाये, इसी कारण वह दो बार राजा को छुडाने की प्रतिज्ञा करता है। अपने गृहीत[4] होने पर वह जनसाधारण को मन्त्री होने की दशा को देखने के लिए उच्चस्वर में घोषणा करता है। यौगन्धरायण विदूषक से गुप्त वेष मे रात्रि व्यतीत होने पर अपनी मानसिक स्थिति को अनुपम ढग से व्यक्त करता है जिससे हम उसके मन मे राजा-विषयक चिन्ता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकते है। वह[5] कहता है कि दिवस बीतने पर निशा की प्रतीक्षा की जाती है, प्रभात होने पर दिवस की चिन्ता की जाती है, भावी आशाओ की चिन्ता मे समय को बीतता देखकर हम सन्तुष्ट होते हैं।

अविमारक नाटक मे सूत्रधार नटी से 'ननु किंचिद् वक्तुकामासि' कहता है। कौञ्जायन द्वारा राजा की कुरंगी के विवाह के विषय मे चिन्ता का वर्णन राजा की कन्या के विवाह की मनोवैज्ञानिक स्थिति को दर्शाता है। इससे पूर्व ही कुरंगी

---

१. राजा—किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितं मे। स्वप्न० ६।४ व ५५

२. यौग०—यथा नरस्याकुलबान्धवस्य प्रियमप्रियं वा। प्रतिज्ञा० १।५

३. यौग०—अहो निरपत्रपता खलु बुद्धेः ... अदेशकाले ललितं कामयते।
भा० ना० च० पृ० ९२

४. यौग०—पश्य तु मां ...... तेषां स्थिरीभवतु नश्यतु वाभिलापः। प्र० ४।७

५. यौग०—अह समुत्तीर्य निशा प्रतीक्ष्यते
शुभे प्रभाते दिवसोऽनुचिन्त्यते।
अनागतार्थान्यशुभानि पश्यता
गतं गतं कालमवेक्ष्य निर्वृतिः॥ प्रतिज्ञा० ३।२

के यान पर हाथी के द्वारा होने वाले आक्रमण का समाचार जान कर ही राजा[१] ने शीघ्र कहा कि विस्तार छोडो, कुरंगी कुशल तो है इत्यादि कथन मानसिक उद्विग्नता तथा शीघ्रता का उद्‌बोधक है। नलिनिका[२] सुख के विषय मे कहती है कि सुख में बड़े विघ्न होते हैं। विद्याधर अविमारक को अँगूठी देने से पूर्व उसके उचित पात्र मे दिये जाने से बडा सन्तुष्ट है इस मानसिक हर्ष मे उसकी मनोवैज्ञानिकता का स्पष्ट चित्रण है। अविमारक[३] ने कुरगी के विरोधी उत्तरो को सुनकर स्त्री-स्वभाव प्रतिकूल ही होता है, ऐसा अनुमान लगाया।

चारुदत्त नाटक मे स्त्री से गहनों को पृथक् करने की चारुदत्त की उक्ति अपूर्व मनोवैज्ञानिकता को दर्शाती है। विट माला से पुष्प अलग करने की उपमा देते हुए स्त्री से गहने अलग करने का निषेध करता है। सज्जलक का अलकारो को चुराना तथा उसी स्थान पर उनका पहुँच जाना उसके अपने कृत्य पर दोषों की स्वीकृति तथा आत्मग्लानि का वर्णन मनोवैज्ञानिक रूप मे सफल है। चोर को कोई न देखे तथापि वह अपने दोषों से स्वयं सशंकित रहता है। परोपकारी मनुष्य के अन्तिम लाभ की स्वीकृति के विषय में सज्जलक[४] के मनोभावों का चित्रण मनोवैज्ञानिक है।

प्रतिमा नाटक मे अवदातिका की भावनाओं का चित्रण कि हास्य में भी वल्कल को लाने मे वह भयभीत है, तो चुराने वालों की मानसिक दशा की क्या स्थिति होगी', इस कथन मे उसके मनोवैज्ञानिक रूप को हम उज्ज्वल पाते है। सीता द्वारा चेटी से 'दर्पण रहने दो, मैं तुम्हें कुछ कहती हुई[५]....' हर्ष की व्यजना शरीर के पुलकित होने से स्पष्ट हो जाती है। सीता पटह शब्द को शान्त हुआ समझकर राम के अभिषेक में विघ्न की आशका से राजकुल में अनेक वृत्तान्त होते है, ऐसा कहती है और राम के राज्याभिषेक न होने पर भी वही सीता वल्कलों को अमंगल की भाति राम से कहती है। किन्तु राम मेरे आधे शरीर ने पहन लिये, तब क्रोध क्यो, ऐसा परिहास दर्शा कर मनोवैज्ञानिक रूप में उसका निर्वाह कर देते है। राम के वनवास का परिचय प्राप्त होने पर राम और सीता के मनस्तोष की झलक प्राप्त होती है और राम रोषयुक्त हुए बिना ही इसे कल्याणकारी तथा पिता के वचनों का पालन और भाइयों के लिए श्रेयस्कर बतलाते है। कैकेयी को निर्दोष सिद्ध करते

१. राजा —तिष्ठतु विस्तरः। ननु कुशलिनी कुरंगी। भा० ना० च० पृ० ११२
२. नलिनिका—बहुविघ्नानि सुखानीति। भा० ना० च० पृ० १४८
३. अविमारकः—स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव। अवि० ३।७
४. सज्जलकः—स्वै र्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः। चारु० ४।६
५. चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते।
सीता—बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। भा० ना० च० पृ० २५३ व २५५
रामः—शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया। प्रतिमा० १।१०

रहने पर लक्ष्मण[1] की मानसिक स्थिति का सन्तुलन शिथिल हो जाता है और वे कायरता का नाम शान्ति नहीं, ऐसा कह देते है। कवि ने यहाँ लक्ष्मण के मनोवैज्ञानिक चित्रण मे पूर्ण स्वाभाविकता प्रदर्शित की है।

लक्ष्मण के रोषयुक्त आलाप पर राम के मनोवैज्ञानिक चित्रण को निहारिये, कवि ने इस स्थल पर राम[2] से कहलवाया है कि यह स्थिति विचारणीय है और यदि तुम्हे अपने धनुष-बाण पर गर्व है तो तुम भरत की सहायता करो। मानसिक द्वन्द्व का सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण जैसा इस स्थल पर प्राप्त होता है अन्यत्र दुर्लभ है। सुमन्त्र[3] का शोक सन्तप्त होकर अपने दीर्घायुत्व को दोष देने में उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति को दर्शाया है। सुमन्त्र के वन से लौटने पर दशरथ के पूछने पर उसके उत्तर में केवल कि 'बिना कहे ही राम वन चले गए' मानसिक स्थिति का वास्तविक और चेतोहारी चित्रण यहाँ प्राप्त होता है।

अभिषेक नाटक में बाली की स्त्री तारा[4] बाली से सुग्रीव के साथ युद्ध करने को इस कारण से निषेध करती है कि वह यह जानती है कि सुग्रीव अकेला कभी युद्ध करने नही आ सकता। मनोदशा का परिज्ञान मनोहारी है। सीता[5] हनूमान् के विषय में सन्दिहान है तथा राम-विषयक परिश्रम को अवगत कर सुख-दुःख के मध्य में उसका मन दोलायमान है। सीता वानर का सहसा विश्वास नही करती है। वह पूछती है कि तुम्हारा किस प्रकार राम से सम्पर्क हुआ। इस स्थल पर भी सीता की मनोदशा का चित्रण आकर्षक है। रावण तथा विभीषण वार्तालाप मे विभीषण के 'अधर्मश्च' कहने पर 'च' शब्द से रावण का बल विग्रह का आभास उसकी मनोदशा को अभिव्यञ्जित करता है। विभीषण राम की सेना में जाने से पहले राम मुझे क्या कहेगे, इस प्रकार की शका करना उसके भावों को दर्शाता है। राम[6] का सुग्रीव से पूछना कि तुम कुछ कहना चाहते हो, मनोवैज्ञानिक चित्रण के अन्तर्गत आता है।

पञ्चरात्र मे राजा के धर्म में दीक्षित होने पर सम्पूर्ण प्रजा का उसी धर्म का अनुयायी होना मानसिक दशा को दर्शाता है। युधिष्ठिर[7] के राजा होने पर ऊसर भूमि मे अन्न की उत्पत्ति वर्णित करने से दुर्योधन के सत्य का प्रभाव कौरवों पर

---

१. लक्ष्मणः - क्रमप्राप्ते'''कि क्षमा निर्मनस्विता। प्रतिमा० १।१९
२. राम'—भरतो वा'' स राजा परिपाल्यताम्। प्रतिमा० १।२०
३. सुमन्त्रः—बह्वपराद्धमायुषा मे। प्रतिमा ४।१८, व ६।८
४. तारा—अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीव'। भा० ना० च० पृ० ३२३
५. सीता—सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम्। भा० ना० च० पृ० ३३६
६. रामः—सुग्रीव वक्तुकाममिव त्वां लक्षये। भा० ना० च० पृ० ३४९
७. शकुनि'—ऊषरेष्वपि सस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः। पञ्च० १।४४

उनकी मनःदशा के अध्ययन का व्यंजक है। द्रोणाचार्य का शिष्य के दोषों को भी अपने ही दोष मानना उसको प्रसन्न करने की भावना की ओर संकेत करता है। कर्ण[1] का दुर्योधन से पाण्डवों को राज्य देने का स्पष्ट विरोध न करके केवल इतना कहना कि युद्ध में तो हम सहायक है उसके निषेधात्मक उत्तर को ध्वनित करता है। दुर्योधन के आधा राज्य देने के विचारों को जानकर कर्ण का उसे धनुष त्याग कर वल्कल धारण करने का परामर्श उस की युद्ध—प्रेरणा का पोषक है। युधिष्ठिर का कौरवों के विषय में यह कहना कि 'धृतराष्ट्र-पुत्र[2] जहाँ रहेंगे वहाँ श्मशान हो जायेगा' कौरवों के प्रति रोष को प्रकट करता है। भीष्म[3] का यह कथन कि स्त्रियों का वर्णन सौन्दर्य से होता है किन्तु पुरुषों का वर्णन पराक्रम से होता है भीम के अतुलित शौर्य का सूचक है।

दूतवाक्य मे दुर्योधन[4] का कञ्चुकी द्वारा केशव को पुरुषोत्तम कहने पर उसकी भर्त्सना करना तथा अन्य राजाओं से कृष्ण के आगमन पर उनके आदर हेतु खड़ा न होने की आज्ञा देना और उन्हें दण्डित करने का निश्चय करना उसकी मानसिक क्रूरता तथा द्वेष की भावना को व्यक्त करता है। वासुदेव का दुर्योधन के स्वभाव को समझकर उसे परुषाक्षरों से क्षुभित करना मनोवैज्ञानिक चित्रण का सजीव उदाहरण है क्योंकि यहाँ कवि ने कृष्ण के द्वारा 'सक्षोभयाम्येन वचोभिः परुषाक्षरैः' कहलाया है जिससे कृष्ण स्वयं स्थिति को अवगत कर रहे है।

दूतघटोत्कच में अभिमन्यु के वध का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र का शीघ्र गंगाजी को ओर जाना—भावी जयद्रथवध की भावना का प्रकाशक मात्र है।

मध्यमव्यायोग में द्वितीयपुत्र अपने माता-पिता की अपने विषय में अनिच्छा देखकर स्वयं अपने को अर्पित कर देता है।

कर्णभार में कर्ण[5] की मानसिक स्थिति असन्तुलित है वह बार-बार अपने रथ को अर्जुन के समीप ले जाने को कहता है तथा इन्द्र के कवच कुण्डल माँगने पर कृष्ण की कपट बुद्धि की कल्पना करता है—यही मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

---

१. कर्ण.—त्वमाज्ञमत्वे'' संग्रामकालेषु वयं सहायाः। पञ्च० १।४३

२. भगवान्—धार्तराष्ट्रा' स्थिता यत्र श्मशानं तद् भविष्यति। पञ्च० २।२०

३. भीष्म'—रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते। पर क्रमेण तु पुरुषा'। भा० ना० च० पृ० ४१२

४. दुर्योधनः—मा तावद् भो बादरायण! किं किं कंसभृत्यो दामोदरः। भा०ना०च०पृ० ४४३

५. कर्णः—यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः। भा० ना० च० पृ० ४७८

पञ्चम अध्याय

उपसंहार

(क) भास की नाट्यकला पर विहंगम दृष्टि ।

(ख) भास का सामान्य अध्ययन ।

(ग) भास पर पौराणिक महाकाव्यों का प्रभाव ।

(घ) भास का परवर्ती साहित्यकारों पर प्रभाव ।

(ङ) भास के प्रमुख प्रयोग ।

(च) भास की देन ।

पंचम अध्याय

उपसंहार

(क) भास की नाट्यकला पर विहंगम दृष्टि

रूपक की सर्वोत्कृष्टता सर्वविदित है। निखिल संस्कृत-साहित्य में काव्य की रसानुभूति हेतु जिस कवित्वमय वातावरण की आवश्यकता होती है वह रूपक द्वारा ही सम्भव है। कल्पना-प्रसूत काव्य रसास्वादन तो सहृदयो के हृदयावजन की वस्तु है ही किन्तु अभिनय में रसोपभोग की सकल सामग्री, वेश-भूषा विभिन्न प्रकार के रूपायित रूपयुक्त चित्रपटो की चमत्कृति आदि सविधानको द्वारा समुपस्थित की जाती है। रूपक के द्वारा जनसाधारण भी कल्पना के अभाव मे प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव होने से आकृष्ट होकर रसास्वादन करता है इसी कारण 'भरत' ने इसे सार्ववर्णिक वेद कहा है और यही सभी के लिए उपादेय है।

भरत ने नाटक को 'लोकवृत्तानुकरण' कहा है अतः अनुकरण मे अभिनेयता तथा सवाद का मुख्य स्थान होना आवश्यक है। काव्यत्व के साथ उपर्युक्त गुणो की उपलब्धि का सन्निवेश भास की रचनाओं मे सर्वाधिक रूप मे हम प्राप्त करते है।

सस्कृत नाट्य-साहित्य पर विहगम दृष्टिपात करने से इसका लक्ष्य विशेषकर चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व का अकन न होकर रसोद्रेक एव रसानुभूति ज्ञात होता है। इसी कारण सस्कृत नाटको में काव्यत्व का परिपाक प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होता है। इब्सन तथा गाल्सवर्दी नाटककारो से प्रभावित आधुनिक यथार्थवादी नाटककारो की परम्परा सर्वथा भिन्न है। अग्रेज़ी के महान् नाटककार शेक्सपियर में भी काव्यत्व की मात्रा अधिक है। काव्यत्व का उचित सन्निवेश तो नाटक का आभूषण है। यद्यपि संस्कृत मे भी ह्रासोन्मुख काल में नाटकत्व की अपेक्षा काव्यत्व-बहुल नाटको की रचना हुई जिनमें नाटकीयता तिरोहित हुई-सी प्रतीत हुई। वस्तुतः नाटक में काव्यत्व का समावेश उचित रूप से होना चाहिए जिससे नाटक का अपना गुण प्रत्यक्षतः प्राप्त होता रहे।

नाटक के मुख्य गुणो में घटनाचक्र की **गत्यात्मकता**, नाटकीय कुतूहल, दृश्यो का स्वाभाविक विनियोग तथा सामाजिक प्रभाव आदि नाट्य-साहित्य के प्रमुख तथ्यों का अनुशीलन जिस नाटककार की रचनाओ मे सुगमतया लभ्य हो वही उच्च-कोटि का नाटककार है। प्रबन्ध काव्य के रचयिता का प्रवाह नाटक की अपेक्षा भिन्न होता है। भास ने अपनी रचनाओं में नाटकीय तत्वो तथा काव्यत्व के सतुलन में जो रूप स्थापित किया उसी का वृहद् तथा प्राञ्जल रूप कालिदास के नाटकों मे मुखरित हुआ। कालिदास के शकुन्तला नाटक को 'काव्येषु नाटक रम्यम्....' कहा

गया है। जर्मन का महान् कवि गेटे इसी के पठनोपरान्त गद्‌गद हो गया था। नाटक की सफलता सामान्य प्रतिभा की वस्तु नही है इसी कारण 'नाटकान्तं कवित्वम्' की उक्ति चरितार्थ होती है।

भास की नाट्यकला—सस्कृत के अन्य नाटको की भाति भास के नाटको में भी हम अन्विनित्रयी का अभाव ही पाते है। यूनानी नाटको में (क) स्थानान्विति—समग्र घटनाएँ नाटक मे एक ही स्थान पर घटित होती हैं, (ख) कालान्विति—समस्त घटनाएं एक ही काल मे अर्थात् एक ही दिन मे घटित होती है, (ग) कार्यान्विति—नाटक की समग्र घटनाओ का उद्देश्य तथा प्रयोजन एक ही होता है। अरस्तु का यह सिद्धान्त 'थ्री यूनिटिज' कहलाता है। इस सिद्धान्त का पालन यूरोप के नाटको मे अशतः तथा फ्रेंच के नाटको मे पूर्णतयः प्राप्त होता है। भारतीय नाटको में इन अन्विनियो को लक्ष्य नही बनाया गया है यहाँ **आदर्शवादी** वातावरण उपस्थित करते हुए कार्यान्विति पर दृष्टि अवश्य रही है तथा लक्ष्य रसानुभूति पर। कार्यान्विति नाटक का मूलभूत तत्व है, इसके अभाव मे नाटक की सिद्धि होनी कठिन है। भास सस्कृत-साहित्य के आदि नाटककार हैं इनकी रचनाओ से यह स्पष्ट है कि भारतीय नाट्य-परम्परा समृद्ध हो चुकी थी। भास ने लोक-परम्परा का आदर्श अपनाकर नाटको को अभिनेयता प्रदान की है। यद्यपि कतिपय विद्वान् इन नाटकों में शेक्सपियर से पहले मोरेलिटो तथा मिरेकिल सदृश नाटको की भाँति कथावस्तु की प्रौढता के अभाव तथा मनोवैज्ञानिक चरित्रो के चित्रण के अभाव के कारण कलात्मक रमणीयता का अभाव कहते है किन्तु यह कथन मेरे विचार मे उचित प्रतीत नही होता क्योकि भास के नाटको मे कथावस्तु, चरित्र-निर्माण, नाटकीय सविधान तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण की पूर्णता तथा सवाद की सफलता के साथ अभिनेयता लभ्य होती है। भास की रचनाओ का विवेचन इन सभी दृष्टियो से किया गया है। ये कवि और थे महान् नाटककार थे। जीवन की **गत्यात्मकता** तथा सामयिक सामग्री की समुपस्थिति मे भास के नाटक पूर्णरूप से सफल है।

भास ने अपने नाटको मे महान् मनोवैज्ञानिक होने का परिचय दिया है। किसी पात्र के कहने से पूर्व ही अन्य पात्र 'वक्तुकाममिव त्वा पश्यामीति' कहता है। ऐसा विधान अन्य नाटको मे प्राप्त नही होता। सवाद तत्व मे भास के पात्र सजीव तथा चुस्त है जो कि 'निष्क्रम्य प्रविश्य' के प्रयोग से त्वरता के लिए प्रसिद्ध है। अवसरानुकूल शीघ्रता का सुगुम्फन नाटकीय कुतूहल की वृद्धि मे सहायक है। भास के नाटक दर्शको के हृदय पर आध्यात्मिक भावना, मृदुलता तथा रस की मंजुल अनुभूति कराने के लिए यत्र-तत्र गीतात्मक पद्यों से आभरित है जिनके द्वारा नागरिको के सुप्त भावो को सुगमतया उद्‌बुद्ध किया जा सकता हैं। इन्होने अपनी रचनाओं में कवित्व को नाटकत्व का पूरक सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है जिससे पाठकों

की अतृप्त वृत्तियो, आकाक्षाओ की पूर्ति हो सके। इनकी रचनाएं अन्य दृष्टियो से तो उत्कृष्ट है ही, किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से अप्रतिम है। नाटकीय कलाओ का जितना मनोहर सुगुम्फन हम इनकी रचनाओं में पाते है उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

(ख) भास की नाट्यकला के विवेचन की संक्षिप्त रूपरेखा

इनकी रचनाओं मे हमे वस्तु, नेता तथा रस का मनोरम सुगुम्फन प्राप्त होता है। अतः इन्ही तत्वो के आधार पर विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

(१) वस्तु—

१. **वस्तु-चयन**—इन्होने धर्मकथाओ तथा लोककथाओ दोनो का आश्रय लेकर अपने नाटको का प्रणयन किया है।

२. **वस्तु-कल्पना**—इस दृष्टि से इनकी रचनाओ मे हम चार प्रकार की कल्पनाओ का समावेश पाते है।

(क) नाटकीय सौष्ठव की दृष्टि से की गई कल्पनाएँ।

(ख) धार्मिक, सास्कृतिक और नैतिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित कल्पनाएँ।

(ग) ऊहात्मक या चमत्कार-प्रधान कल्पनाएँ।

(घ) परम्परागत कल्पनाओ का समावेश।

३. **वस्तु-विन्यास**—(क) इस दृष्टि से शास्त्रीय वस्तु-विन्यास क्रम इनकी रचनाओं मे पूर्णरूपेण लभ्य होता है।

(ख) लोक-कथा-पद्धति पर आधारित विन्यास क्रम।

इस क्रम मे इनकी रचनाओ मे लोककथा पद्धति को विशेष आश्रय मिला है तथा इन्होने लोकरञ्जन और लोक-रक्षण हेतु अनावश्यक तथा अशास्त्रीय विस्तार भी किया है।

४. **वस्तु सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएँ**—(क) बौद्धों के त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म, सघ) के सिद्धान्त के अनुरूप सत्य, शील तथा भक्ति के रूपत्रय की घटनाओं मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तथा कथाओ की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि।

(ख) मौलिक कथा के रूप में आमूलचूल परिवर्तन का दोष।

(२) नेता तथा पात्र-चयन में मौलिकता—

मूल स्रोत की कथा मे प्राप्त पात्रों के अतिरिक्त पात्रो की कल्पना तथा नेता के चरित्र मे मौलिक परिवर्तन के साथ अन्य पात्रों का नया रूप।

(३) रस—

१. **रस-चयन** - नाटककार रस-चयन में अपनी रचनाओ मे आरम्भ से ही सजग है तथा इनकी कोई रचना रस से रहित नही है।

२. **रस औचित्य**—रस के कथानुकूल निर्वहण मे इनको सफलता प्राप्त हुई है।

३. **रस-विन्यास**—इनके रस-सन्निवेश मे रस के अग-प्रत्यगों की प्राप्ति तथा स्पष्टता सुलभ है तथा नाटको मे सभी रसो की उपलब्धि पाठक को आकृष्ट करती है।

(४) अभिनेयता—

१. **संवाद**—पात्रों के संवाद सक्षिप्त तथा रुचिवर्द्धक है तथा इसके प्रयोग मे इनकी शैली अपना विशेष स्थान रखती है।

२. **अभिनेय**—प्राय: सभी नाटक अभिनेय है। पद्य-बाहुल्य का सक्षिप्तीकरण आवश्यक है। सस्कृत मे इस प्रकार के सक्षिप्त एकाकी नाटक अल्प है जो अभिनेयता मे भास के नाटको की समानता कर सके।

उपर्युक्त रूपरेखा का विस्तार से विवेचन इस प्रकार है।

वस्तु-चयन—भास ने धार्मिक कथा तथा लौकिक कथा दोनो की कथाओ से कथावस्तु का अपनी रचनाओ मे सगृहीत किया है। वाल्मीकीय रामायण से प्रतिमा तथा अभिषेक, महाभारत से पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, कर्णभार, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच तथा उरुभग और कृष्ण-कथा से बालचरित तथा स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक और चारुदत्त लोक-कथाओ से उद्धृत कथानक के आधार पर रचना करके उनमे अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

वस्तु कल्पना—(क) नाटकीय सौष्ठव की दृष्टि से लोक-परम्परावाही नाटको मे स्वप्नवासवदत्ता मे वासवदत्ता का अग्निदाह-प्रसग, उसका पद्मावती के पास धरोहर रूप मे रखना, उसकी धात्री द्वारा चित्रफलक लेकर उपस्थित होना वासवदत्ता के अपूव त्याग के कारण एक आदर्श स्त्री के रूप मे उसका अकन करना नाटकीय सौष्ठव के अन्तर्गत आ सकता है।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे महासेन के मन्त्री द्वारा लकड़ी के हाथी में सौ सैनिकों को छिपाना, विदूषक तथा यौगन्धरायण का वेष परिवर्तित कर विदेशी राजा के यहाँ गुप्तचरो सहित वास करना आदि।

अविमारक में विद्याधर द्वारा एक रहस्यमय मुद्रिका का प्रदान नाटकीय मनोरजन और कौतूहल की वृद्धि मे विधायक सिद्ध होता है।

(ख) धार्मिक, सास्कृतिक और नैतिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित पञ्चरात्र रचना का उद्देश्य पाञ्चरात्र मत का प्रभाव दर्शाने और जनता को इस नाम से परिचित करवाने हेतु नाटककार ने इसकी रचना की है। प्रतिमा नाटक में राम की श्राद्धविषयक जिज्ञासा तथा उनका स्वर्ग आदि विषयक विवेचन धार्मिक शीर्षक के अन्तर्गत आता है। अभिषेक में राम का रूप अवतार तथा उनके शौर्य का अप्रतिम वर्णन, बालचरित मे विष्णु के अवतार कृष्ण के अतुलनीय पराक्रम द्वारा विष्णु भक्ति का प्रसार तथा कर्णभार मे यज्ञ और दान की महत्ता का दर्शायी गई है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण मे प्रतिमा नाटक में पिता के वचनो का पालन राज्य जैसे सुख का त्याग तथा मानसिक सन्तुलन की पराकाष्ठा का निदर्शन कैकेयी को अपराधीन दर्शाकर विधि को प्रधान मानना, "स्त्रियो के पति ही सर्वस्व होते है", इस उदाहरण द्वारा सास्कृतिक उच्चादर्श को प्रस्तुत करना, पञ्चरात्र मे दुर्योधन का गुरुवचन पालन, अपने सत्य वचन की दृढ़ता, कर्णभार मे ब्राह्मणो को अवध्य दर्शाकर उनके वचन का पालन अपरिहार्य अंकित करना तथा बालचरित मे क्रूर कस का काल-कवलित दर्शाना, शाप का अवश्यम्भावी प्रभाव का अकन सास्कृतिक दृष्टि-कोण है।

नैतिक दृष्टिकोण मे स्वप्नवासवदत्ता मे उदयन के राज्य के ह्रासोन्मुख काल मे उसके बिना कहे ही यौगन्धरायण का राज्य-पुनरुद्धार हेतु प्रयास उल्लेख-नीय है।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे मन्त्री का स्वराजा-रक्षण-हेतु-बलिदान नैतिक आदर्श का चूडान्त उन्नयन दर्शाता है।

अभिषेक नाटक मे परस्पर उपकार हेतु कृतप्रतिज्ञ राम और सुग्रीव का व्यव-हार, मध्यम-व्यायोग मे पाण्डवो की शरणागत-वत्सलता, पञ्चरात्र मे राजा विराट् का पाण्डवों द्वारा युद्ध मे सहायता करने पर उत्तरा का अभिमन्यु के साथ विवाह का निश्चय, किये गये प्रत्युपकार का द्योतक है। कर्णभार में युद्ध की दोनो दृष्टियों से उपयोगिता राष्ट्र-रक्षा हेतु जनता के लिए सन्देश का प्रसारण नैतिक अभ्युत्थान का प्रस्तावक है। उरुभग नाटक मे दुर्योधन का अपनी भूल को स्वीकार कर पश्चात्ताप का प्रदर्शन प्राणिमात्र के लिए पथप्रदर्शन का कार्य करता है। दूतवाक्य एकांकी मे कृष्ण जैसे आदर्श तथा उच्चकोटि के महान् नेता का दो महान् शक्तियों के मध्य में दूत बनकर कार्य करना राष्ट्र के लोकरक्षण आदर्श की दृष्टि से अंकित किया गया है।

(ग) ऊहात्मक या चमत्कार-प्रधान विशेषताएँ

स्वप्नवासवदत्ता मे वासवदत्ता तथा यौगन्धरायण का परिवर्तित वेष मे तपो-वन मे वार्तालाप करते समय पद्मावती की उपस्थिति में ब्रह्मचारी पात्र द्वारा उदयन के गुणों का आख्यान, पद्मावती के विवाहोपरान्त वासवदत्ता की मृत्यु के प्रवादोपरान्त भी धात्री का चित्र लेकर उपस्थित होना। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे कृत्रिम हाथी के निर्माण की कल्पना, मन्त्री का उन्मत्तक के वेष में विदेशी राजा के नगर में निवास करना तथा विरोधियों द्वारा गृहीत हो जाने पर भरतरोहक को 'वधः' कहकर उत्तर देना। अविमारक में रात्रि में अविमारक का राज-प्रासाद पर आरोहण, हाथी की उपस्थिति तथा कुरंगी के यान की ओर उसका आक्रमण एवं अविमारक द्वारा उसकी रक्षा, अविमारक का ब्राह्मण होते हुए ऋषि-शापवश अन्त्यज के रूप मे वास तथा

नारद का रहस्योद्घाटन। पञ्चरात्र मे द्रोण का पाण्डवो को आधा राज्य दिलाने का प्रयत्न और पाण्डवों का पाँच रात्रि मे मिलने का वचन ऊहात्मक शीर्षक के अन्तर्गत रख सकते है।

(घ) परम्परागत कल्पनाओं का समावेश

वाल्मीकि रामायण के समान ही प्रतिमा तथा अभिषेक मे कथावस्तु की कल्पना की गई है। कतिपय स्थलो पर मौलिकता का सन्निवेश प्राप्त होता है। महाभारत पर आधारित नाटको मे महाभारत के कल्पना समुदाय को प्रधान आधार अवश्य माना है किन्तु कतिपय स्थलो पर आश्चर्यकारक भिन्नता प्राप्त होती है।

वस्तु-विन्यास—(क) इस क्रम मे भास के नाटको का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने का मेरा अपना मौलिक प्रयास तृतीय अध्याय मे वर्णित किया जा चुका है। इनके नाटक शास्त्रीय दृष्टि से मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श तथा निर्वहण सन्धियो एव सन्ध्यगो, रूपक-भेदो, रस तथा वृत्ति आदि की कसौटी पर पूर्णरूपेण उचित होने पर भी भरत की नाट्यशास्त्र परम्परा से भिन्नता रखते है।

(ख) लोक-कथा-पद्धति पर आधारित कथावस्तु के क्रम मे हमे इनकी रचना में लोकरञ्जन तथा लोकरक्षण दोनो रूपों का प्रदर्शन प्राप्त होता है। इन्होने लोक-कथा पर आधारित चार नाटक लिखे है जिनमे स्वप्नवासवदत्ता, अविमारक तथा चारुदत्त को हम लोकरञ्जनकारी कह सकते है तथा प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण और वासवदत्ता लोकरक्षण हेतु रचित किये गए कहे जा सकते है। इस प्रकार के दोनो रूप (लोकरञ्जन तथा लोकरक्षण) इनके धार्मिक कथा सम्बन्धी नाटकों मे भी प्राप्त होते है। इन्होने महाभारत कथा पर आधारित पञ्चरात्र नाटक की कथा-वस्तु को धार्मिक दृष्टिकोण से परिवर्तित कर अभिनव रूप देकर अनावश्यक और अशास्त्रीय परिबृंहण प्रदर्शित किया है तथा दूतघटोत्कच नामक नाटक की कल्पना लोकरञ्जन की दृष्टि से उपयुक्त भले ही हो किन्तु अशास्त्रीय अवश्य है। अशास्त्रीय कहने का अभिप्राय कि मूल स्रोत उद्गम शास्त्र की अत्यन्त उपेक्षा करना है।

वस्तु सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएँ—(क) कथाओं की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध मे भास की कथाओ के विवेचन से पूर्व कथा-परम्परा तथा उसके प्रभाव का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है। कथाओं के अनवरत पारम्पर्य के सामान्यतया दो आधार प्रतीत होते है। प्रेमाख्यानको पर आधारित तथा आध्यात्मिक आधार को लिए हुए, किन्तु केवल प्रेमाख्यानक भी कालान्तर में दन्तकथाओं और अश्रद्धास्पद रूप धारण करके विलीन हो जाते हैं तथा केवल आध्यात्मिक आधार जनमनरञ्जन से न्यग्भूत होने के कारण जनप्रिय नही हो पाते है। अतः दोनों का आश्रय आवश्यक है। भास की इन लोककथाओ में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अवश्य रही होगी। औपनिषद् कथाओं में भी 'द्वासपर्णा सखायौ, इत्यादि कथाएँ प्राप्त होती है। यह आध्यात्मिक पृष्ठिभूमि वैदिक है।

भास ने बौद्ध धर्म के प्रभाव को कम करने के लिए बुद्ध धर्म के त्रिरत्न (बुद्ध शरण, धम्म शरण; संघ शरण) के सिद्धान्त को अपने काव्य मे उपनिबद्ध करने का प्रयास किया है। इन्होंने प्रतिमा[1] नाटक मे इस त्रिरत्न को राम-सीता और लक्ष्मण तीनो मे सत्य, शील तथा भक्ति में विग्रहवत् मानकर नाटक की रचना की है। यह प्रभाव बौद्धो का स्पष्ट रूप से माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी बौद्ध साहित्य में शील के साथ-साथ अप्रमत्त होने का वर्णन प्रमुख रूप से प्राप्त होता है। भास ने भी अपने सभी नाटकों मे 'अप्रमत्ताः भवन्तु' मे सावधान और सचेष्ट होने की व्यञ्जना अधिक स्थलो पर प्रयुक्त की है। यही प्रतीक परम्परा के उद्भावक चिन्ह है जो कि बाद के साहित्य मे भी प्रचलित प्राप्त होते हैं।

भास की उदयन-कथा कृष्ण की ललित कथा पर आधारित है जो कि प्रतीक परम्परा की द्योतिका है। उदयन स्वय ललित नायक है उसके साथ वासवदत्ता तथा पद्मावती है यथा कृष्ण की राधा तथा मुरली है उसी प्रकार उदयन की पद्मावती व घोषवती। यही कथा प्रतीक रूप में हिन्दी साहित्य मे भी प्राप्त होती है। उग्रसेन की कथा मे विवाहिता नागमती, प्रेमिका पद्मावती के रूप मे जो पात्रत्रयी है उसे पश्चाद्वर्ती नाटककारो ने हिन्दी साहित्य मे भी अपनाया है। हरिश्चन्द्र के नाटको मे चन्द्रावली नाटिका मे यह रूप प्राप्त होता है। इसी के अन्तर्गत जयशकर प्रसाद के नाटक, जो अतीत की गौरव गाथा का गान करते है उनमें माया की सत्ता का रूप हम विजया पात्र को मानते है। यही परम्परा अन्यत्र भी प्राप्त होती है। विजया पात्र का प्रयोग भास ने भी अपने कई नाटकों मे किया है।

कथा की लोकप्रियता भी इसकी रागमयता तथा त्यागमयता का बोध कराती है क्योकि कथा लोकप्रिय वही होती है जो रागमय हो और जीवित वही रहती है जो त्यागमय हो। भास की रचनाओ मे राग और त्याग दोनो का मञ्जुल सामञ्जस्य होने के कारण इतने दीर्घकाल के उपरान्त भी इनका स्थायी निधि के रूप मे प्राप्त होना उनके महान् नाटककार होने में प्रबल प्रमाण है। इन्होंने अपनी प्रत्येक रचना मे कुछ न कुछ परिवर्तन किया है जिससे इनकी कथा में मूल स्रोत से वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। प्रतिमा तथा अभिषेक मे रामायण तथा महाभारत के कथाशो से प्रभावित नाटक पञ्चरात्र आदि मे निम्नाकित परिवर्तन इनकी मौलिक प्रतिभा के द्योतक हैं।

प्रतिमा नाटक मे वल्कल कथा, प्रतिमा मन्दिर को स्थापना द्वारा मूल कथा में परिबृंहण किया है तथा अभिषेक में सक्षिप्तीकरण, पञ्चरात्र में चमत्कारपूर्ण भिन्नता तथा दूतघटोत्कच मे घटोत्कच का दूत के रूप मे अंकन, उरुभंग की कथा मे रूपान्तर इत्यादि विशेषताओ को सत्ता मे इनकी कथावस्तु मे मूल कथा के परिबृंहण तथा संक्षिप्तीकरण दोनों के उदाहरण प्राप्त होते है।

१. सुमन्त्र.—अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशा।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिताः ॥ प्रतिमा० ४।४

(ख) पञ्चरात्र ही एक ऐसा नाटक है जिसमे महाभारत जैसे कथानक में आमूलचूल परिवर्तन करके द्रोण के आग्रह पर दुर्योधन पाण्डवो को पाँच रात्रि में मिल जाने पर आधा राज्य दे देता है। यहाँ की कथावस्तु वस्तुतः भास की कथा-विवेचन मे अपवाद अथवा दोष कहा जा सकता है। इन्होने उरुभग मे दुर्योधन को महाभारत जैसा पात्र न दर्शाकर उसकी कथावस्तु में ही परिवर्तन कर दिया है। अन्त मे दुर्योधन पूर्णतया परिवर्तित होकर अपने स्वभाव को दोष देता हुआ अपनी भूल स्वीकार करता है और कथावस्तु मे दैविक इच्छा पर यह सब भार रख दिया जाता है।

नेता तथा पात्र-चयन में मौलिकता—भास की रचनाओ मे परम्परागत प्रणाली से प्राप्त नेता के चरित्र-चित्रण में विभिन्नता प्राप्त होती है। इन्होने प्रतिमा नाटक मे राम को दशरथ तथा कैकेयी के प्रति अत्यन्त सहिष्णु, सीता को राज्याभिषेक के विरोध होने पर भी शांत, लक्ष्मण को क्रोधी, तथा भरत को करुण रस की प्रतिमा के रूप मे अंकित किया है। कर्णभार नाटक मे कर्ण तथा शकुनि के चरित्र मे पर्याप्त परिवर्तन है। कर्ण करुण रस का अनुगामी होकर धार्मिक प्रवृत्ति के कारण कवच-कुण्डल का दान करता है तथा ब्राह्मण-वचन के पालनमात्र हेतु विमला नामक शक्ति को ग्रहण करता है और युद्ध को आवश्यक तथा कल्याणकारी निर्दिष्ट करता है। शकुनि कर्ण को हतोत्साहित करता हुआ अकित किया गया है। पञ्चरात्र मे द्रोण तथा दुर्योधन दोनों को विचित्र रूप मे अकित किया गया है। इसमे दोनों पात्रो को पाण्डवों के हित मे प्रयत्नशील दर्शाया है। उरुभग मे दुर्योधन का अपनी भूल को स्वीकार करना तथा अश्वत्थामा का उसकी प्रतिज्ञा का विरोध करना और पाण्डवो को जीवित रहने का निवेदन करना इत्यादि नेता के चित्रण मे भास की प्रतिमा का मौलिक अकन दृष्टि मे आता है।

भास के नाटको के अध्ययन से हम उनके नाटको मे प्रयुक्त पात्रो को वैयक्तिकता से मण्डित न होकर समाज के प्रतिनिधि-रूप से प्रयुक्त किये हुए पाते हैं। वे अपने चतुर्दिक् वातावरण से सदैव सजग है तथा अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसरित होते है। इनके नाटको मे पात्रों का चरित्र नितान्त सभ्य तथा शिष्ट एव उदात्त रूप मे अंकित किया गया है जिसमे घृणा, अश्लीलता आदि के प्रदर्शन को अवकाश नही मिलता। इनकी रचना मे परम्परागत पात्रों के सन्निवेश के साथ-साथ अपने मौलिक पात्रो का योग भी प्राप्त होता है जिसके सुगुम्फन से नाटको मे सजीवता प्राप्त होती है। वासवदत्ता नाटक मे ब्रह्मचारी पात्र की कल्पना तथा उसका उचित अवसर पर प्रवेश प्रयुक्तकर नाटकीयता के निर्वाह मे अपूर्व योग किया गया है। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक मे विदूषक पात्र की अभिनव कल्पना अविमारक नाटक मे विद्याधर का सपत्नीक प्रवेश, प्रतिमा नाटक मे देवकुलिक का प्रतिमा-मन्दिर मे पुजारी के रूप मे अकन, अभिषेक मे तीन विद्याधरो, अग्नि तथा वरुण की कल्पना, उरुभंग मे तीन

भटों का प्रवेश नये पात्रों की कल्पना के विषय से आदरणीय है। किन्तु बालचरित में इन्होंने भगवान् विष्णु के आयुधवरो—चक्र, शार्ङ्ग, शख, नन्दक आदि को सजीव पात्र के रूप में कल्पना करना तथा शाप का सजीव पात्र के रूप मे कंस से वार्तालाप, कात्यायनी का सपरिवार प्रवेश विद्वानों के लिए शास्त्रीय विषय बन गये है। दूत-वाक्य में भी इन्होंने सुदर्शन चक्र आदि की उपस्थिति सजीव पात्र के रूप में अंकित की है। इन्होने विजया नाम के पात्र को स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, प्रतिमा तथा अभिषेक नाटक में इसी नाम से प्रयुक्त किया है। इनकी यह मौलिक कल्पना भी स्पृहणीय है। इस पात्र को इन्होने अपने प्रिय स्त्री-पात्र के रूप में अंकित किया है, जिसे प्रत्येक स्थल पर गुह्यतम गुत्थियों का परिज्ञान है। इस प्रकार भास ने पात्रचयन में अपना विशिष्ट रूप प्रदर्शित किया है।

रस—भास की रचनाओ में विद्वानों की दृष्टि आरम्भ से रस की ओर स्वय आकृष्ट हो जाती है। इनके पात्र नाटकारम्भ मे ही रससूचक वार्तालाप को प्रकट करते हैं। **रस-चयन** की दृष्टि से रसराज शृगार, वीर, करुण, रौद्र, बीभत्स, भयानक, हास्य तथा शान्त आदि सभी रसों का प्रयोग इनकी रचनाओं मे प्राप्त होता है। इन्होने लोककथाओ पर आधारित रचनाओं में लोकरञ्जन की दृष्टि से शृगार रस को विशेष स्थान दिया है किन्तु लोकरक्षण हेतु वीर रस का भी प्रयोग उनमे किया है।

रस-औचित्य की दृष्टि से इनके नाटकों मे कथा के अनुरूप ही रस का विकास प्राप्त होता है। स्वप्नवासवदत्ता नाटक मे शृगार का आश्रय कवि को अभीष्ट है अतः प्रथम अंक में ही वासवदत्ता के दग्ध होने का समाचार प्रसारित कर शृगार के अंग विप्रलम्भ भाग की अनुभूति आरम्भ हो जाती है और उसी के अनुकूल कथावस्तु अग्रसरित होती है। नाटक के मध्य मे पद्मावती विवाह के समय शृगार के द्वितीय भाग सयोग की परिणति दर्शाकर भी विप्रलम्भ को सजीव रखा गया है। राजा उदयन का वासवदत्ता को देहान्तर मे भी न भूलने का वर्णन विप्रलम्भ शृङ्गार को पुनः नया रूप दे देता है। इस वर्णन के उपरान्त समाप्ति मे पद्मावती, वासवदत्ता, यौगन्धरायण तथा उदयन के मिलन मे सयोग शृगार का सफल चित्रण हमें प्राप्त होता है और नाटक सुखान्त हो जाता है। कतिपय विद्वान् इस नाटक मे शान्त रस का प्राधान्य मनाते है।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक मे आरम्भ मे ही वीर रस के उद्रेक के लिए हंसक उदयन का समाचार लेकर यौगन्धरायण के समीप आ जाता है। कथा के अनुकूल ही रसावेश के लिए हंसक उदयन के आहत होने के वृत्तान्त को अपूर्व शैली मे वर्णित करता है। नाटक के मध्य में महासेन की कन्या-विवाह की चिन्ता तथा रानी का विवाहोपरान्त कन्या-वियोग के दुःख का वर्णन जिसमे करुण रस की

सामान्य झलक दर्शाकर पुनः महासेन का वत्सराज उदयन के प्रति दूत न भेजने के कारण 'कुञ्जरज्ञानदृप्त.' कहना वीर रस के पोषण मे सहायक है। इसी से प्रेरित होकर वह सामान्य कार्यों की अपेक्षा उदयन के गृहीत होने को अपने जीवन की सर्वोत्तम घटना कहता है। परिणाम में युद्ध के वर्णन में लक्ष्य-प्राप्ति से नाटक समाप्त हो जाता है अतः प्रत्येक स्थल पर कथावस्तु के अनुरूप रस का सन्निवेश प्राप्त होता है और लक्ष्य की सफलता के कारण यह सुखान्त नाटक है।

अविमारक नाटक मे शृगार रस का प्राधान्य है। कुरंगी की हाथी से रक्षा करने पर अविमारक की उसके प्रति आसक्ति नाटकारम्भ में ही प्राप्त हो जाती है। मध्य मे नायक और नायिका दोनो शृगार के विप्रलम्भ भाग से पीड़ित और सन्तप्त अकित किये गये हैं। परिणाम में दोनों का विवाह हो जाता है और नाटक सुखान्त होकर सयोग शृगार का रूप धारण कर लेता है।

चारुदत्त नाटक में परिव्राजक की हाथी से रक्षा करने वाले व्यक्तियों को प्रावारक देने के गुण से वसन्तसेना का हृदय चारुदत्त की ओर आकृष्ट हो जाता है जो कि नाटककार को शृगार रस के पोषण में नाटकारम्भ में अभीष्ट है। नाटक के मध्य में दरिद्रता का नग्न चित्रण करुण रस की अनुभूति कराकर नाटककार ने लोकरंजन तथा लोकरक्षण दोनों की सफलता प्राप्त की है। नाटक अपूर्ण है तथापि ब्राह्मण का गणिका से स्नेह दर्शाकर शृगार का पोषण किया है।

प्रतिमा नाटक मे करुण रस के मनोज्ञ चित्रण होने पर भी नाटक को वीर-रस-प्रधान ही माना गया है क्योंकि परिणति वीर रस द्वारा की गई है। नाटकारम्भ में करुण रस के पोषण मे राम के राज्याभिषेक के समय वल्कल-घटना का प्रसग दर्शाया गया है जिसमें हास्य तथा करुण रस का सामान्य परिचय प्राप्त होने पर भी नाटक के प्रधान रस वीररस को लक्ष्मण की उक्ति "कि क्षमा निर्मनस्विता' में व्यजित किया गया है। इसके अनन्तर भरत को करुण रस की प्रतिमा के रूप मे अकित करते हुए राम-रावण-युद्ध का वर्णन न दर्शा कर केवल तापस द्वारा वर्णन प्रसग उपस्थित कर सीता की सम्प्राप्ति तथा राम की राज्य-प्राप्ति वर्णित है।

अभिषेक नाटक वीर रस प्रधान है। नाटकारम्भ में ही परस्परोपकृतभावना को दर्शाकर सुग्रीव तथा राम का वर्णन जिसमे बाली का वध, हनूमान् के लंका में शौर्य के कार्यों का उल्लेख दर्शाते हुए मध्य मे सीता की करुणरसाप्लावित-कथा का वर्णन दिया है। नाटकान्त में राम-रावण युद्ध का वर्णन दर्शाकर राम की विजय तथा राज्याभिषेक दर्शाया है। इसमे परिणति तक वीर रस का प्राबल्य अकित है जो कि कथा के अनुकूल नाटककार को अभीष्ट है और रसौचित्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

पञ्चरात्र नाटक में आरम्भ में द्रोण तथा दुर्योधन का आलाप करुण रस

की छाया को प्रतिबिम्बित करता है जिसमें द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दिलाने के लिए शिष्य का दोष गुरु पर लेते हुए अंकित किये गये हैं किन्तु नाटक वीररस-प्रधान होने के कारण कौरवों का विराट पर आक्रमण करना तथा विराट की ओर से पाण्डवो का गुप्त रूप मे सहायता करना नाटककार की अभीष्ट कथा के अनुरूप रस का सन्निवेश है। परिणति में विराट् की विजय दर्शाकर नाटक सुखान्त हो जाता है।

ऊरुभंग नाटक वीररस-प्रधान है। इसमें आरम्भ से ही भीम-दुर्योधन का गदा-युद्ध वर्णित है। यह एकांकी नाटक है और अन्त तक वीररस का वर्णन इसमें प्राप्त होता है। दुर्योधन के ऊरुभंग होने से वीर रस में ही नाटक समाप्त होता है।

बालचरित नाटक वीर काव्य-परम्परा का द्योतक वीररस-प्रधान नाटक है, इसमें कृष्ण-चरित-कथा के अनुकूल ही रस का अभिनिवेश किया गया है।

रस-विन्यास में हम रस के अगों-प्रत्यगों के सन्निवेश के आधार पर भास की रचनाओं का विवेचन करने पर उनमे इसकी पूर्णता पाते हैं। स्वप्न में शृंगार-रस के उद्रेक के लिए वासवदत्ता के दहन का समाचार राजा का 'हा प्रिये' इत्यादि आलाप, तथा राजा के सौन्दर्य का वर्णन, स्नेहवश एक शय्या पर शयन आदि स्थलों पर विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारीभाव को प्राप्त करते हैं। प्रतिज्ञा मे वीररस की निष्पत्ति में हसक का उदयन-विषयक समाचार तथा उसके आहत होने का मार्मिक वर्णन यौगन्धरायण का प्रतिज्ञा करना तथा गृहीत हो जाने पर जन-साधारण को मत्री की विषम दशा को दर्शाने आदि के वर्णन स्थलों में विभाव, अनुभाव तथा सचारीभाव के सन्निवेश को हम पाते है। प्रतिमा मे भरत का पिता दशरथ की रुग्णता के समाचार द्वारा करुणरस का तथा राम का पिता की शपथ लेकर भरत को वापिस करना करुणरस का पोषक है और इन्ही स्थलों का अंकन भाव, विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारीभाव के अन्तर्गत आता है।

भास की रचनाओं में नव रसों का सन्निवेश

(१) स्वप्नवासवदत्ता — शृगार तथा करुण
(२) प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण—वीर, शृगार, हास्य तथा अद्भुत
(३) अविमारक —शृगार, करुण, हास्य, भयानक और अद्भुत
(४) चारुदत्त —शृंगार, करुण तथा हास्य
(५) प्रतिमा —करुण, वीर, शृगार, तथा हास्य
(६) अभिषेक —वीर, करुण, वात्सल्य, भयानक तथा अद्भुत
(७) पञ्चरात्र —वीर, वात्सल्य तथा हास्य
(८) मध्यम व्यायोग —वीर, करुण, शृगार, वात्सल्य, हास्य, रौद्र, भयानक तथा अद्भुत

(९) दूतवाक्य —वीर तथा अद्भुत
(१०) दूतघटोत्कच —वीर तथा करुण
(११) कर्णभार —करुण तथा वीर
(१२) ऊरुभंग —वीर, करुण, रौद्र और शान्त
(१३) बालचरित —वीर, करुण, वात्सल्य, अद्भुत, भयानक, हास्य तथा शान्त।

अभिनेयता—नाटक की सफलता के लिए प्रधान वस्तु अभिनेयता है। नाटक तो संस्कृत साहित्य में अनेक लिखे गए हैं किन्तु उनमें अभिनेय नाटकों की संख्या नगण्य है। भास के नाटकों की प्रसिद्धि अभिनेयता के बल पर ही आधारित है। इन्होंने रूपक के विभिन्न भेदों पर नाटकों की रचना की, और उनमें अभिनेयता-सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रमुख स्थान दिया है। अभिनेयता में सर्वप्रथम स्थान पात्रों का पारस्परिक संवाद है। भास के संवाद अत्यन्त संक्षिप्त तथा रुचिवर्धक होने के कारण जनमनोहारी हैं। हम यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

संवाद में स्वप्नवासवदत्ता[1] के प्रथमांक में वर्णित ब्रह्मचारी तथा यौगन्धरायण की तटस्थता युक्त वार्तालाप पद्मावती के भावों को उदयन के प्रति प्रच्छन्न रूप से आकृष्ट करने तथा वासवदत्ता के प्रति राजा के अगाध स्नेह का व्यञ्जक होने के कारण अतीव मनोरम है।

स्वप्नवासवदत्ता के इस उद्धरण में यौगन्धरायण स्वयं "ततस्ततः" कहता हुआ ब्रह्मचारी से सभी आवश्यक सामग्री को प्राप्त कर लेता है। संवाद के कथन के लिए कितनी संयत भाषा का प्रयोग किया गया है जिसमें एक शब्द भी अनावश्यक प्रतीत नहीं होता अपितु शब्दों की उपयुक्तता भी मार्मिक है।

१. यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या।
ब्रह्मचारी—न खलु तावत्।
यौग०—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम्।
ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम्।
यौग०—कथमिव।
ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।
यौग०—श्रूयते तत्रभवानुदयनः। किं सः।
ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।
यौग०—भवितव्यम्। ततस्ततः।
ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।
वासवदत्ता—अलीकमलीकं खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।
ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः हा प्रिये!
तापसी—स खलु गुणवान् नाम राजा।
पद्मावती—मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्। भा० ना० च० पृ० ८।१०

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[1] के अनुपम वर्णनों में से यौगन्धरायण बद्धबाहु है और महासेन के मन्त्री भरतरोहक से वार्तालाप करता है।

अविमारक नाटक[2] मे कुरंगी के वियोग से व्यथित अविमारक पर्वत पर गमन करता है, वहाँ प्राण त्यागने से पूर्व वह विद्याधर को देखता है तथा विद्याधर के पूछने पर अपने रहस्य को नहीं छिपा पाता है। इस स्थल का संवाद सुन्दर है।

प्रतिमा[3] नाटक में राम सीता से अलंकारों के पृथक् करने तथा वल्कल प्रयोग पर मनोरम हास्य करते है। पारिवारिक मनोविनोद का यह संवाद तथा राम का भरत को समझाकर अयोध्या भेजने का संवाद उद्धृत करने योग्य है।

अभिषेक[4] नाटक में रावण तथा हनूमान् का वार्तालाप संवाद की दृष्टि से पारस्परिक उत्तर-प्रत्युत्तर का सुन्दर व उत्कृष्ट उदाहरण है।

---

१. यौगन्धरायण — दिष्ट्या भवान् दृश्यत इति। पश्यतु भवान माम्,

एवं रुधिरदिग्धागं वैरं नियममास्थितम्।
गुरोरवजितं हत्वा शान्तं द्रौणिमिव स्थितम् ॥४।१५

भरतरोहक—अहो छलेनागनगजारम्भरयात्मसम्भावना।

यौगन्धरायणः—कि छलेनेति। तत् पुनरिदानी युक्तम्।

या सा मल्लिकसालवृक्षरचिता ''नैवापराधो मम ॥ ४।१६

भरतरोहक —भो यौगन्धरायणः! मदग्निसाक्षिक ''भोस्तस्कर प्रवृत्तिः।

यौगन्धरायणः—विवाहः खल्वेष स्वामिनः।

भारताना कुले जातो ''करिष्यति ॥ ४।१७

भरतरोहकः—अपरोक्षराज्यव्यवहारो भवानिति ''किमाह शास्त्रम्।

यौगन्धरायणः—वधः। भा० ना० च० पृ० १०४।१०५

२. विद्याधरः—अविमारक! अच्छलं मित्रत्वं नाम। न शक्नोषि मया विदितमर्थं प्रच्छादयितुम्।

अविमारकः—उच्यताम्।

विद्याधरः—सकला च भवतोऽस्माभिरवस्था विदिता।

अविमारकः—वयस्य! एवमेतत्। भा० ना० च० पृ० १५४

३. रामः—मैथिलि, किमर्थ विमुक्तालंकारासि।

सीता—न तावद्, आबध्नामि। भा० ना० च० पृ० २५७

रामः—वत्स! कैकेयीमातः। मा मैवम्।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः। आर्य! अलमिदानी व्रणे प्रहर्तुम्।

रामः—यत्सत्यं मिथ्याभिधायी पिता। ४।२३ भा० ना० च० पृ० २९०, ९१

४. रावणः—कि श्रुतेन। किमाह स मानुषः।

हनुमान्—भोः! श्रूयतां रामशासनम्।

वरशरणमुपेहि शंकरं वा प्रविश ''त्वाम्। ३।१६ भा० ना० च० पृ० ३४३

दूतवाक्य[1] में वासुदेव तथा दुर्योधन का वार्तालाप भास के सभी नाटकों में संवाद का उत्कृष्टस्थल है।

अभिनेयता के विवेचन में रंगमंच की उपयुक्तता की दृष्टि में भास के नाटको में पात्रों की सख्या अल्प तथा समीचीन है तथापि कतिपय नाटकों में सख्या में न्यूनता आवश्यक है। बालचरित आदि नाटकों में संवाद का प्रकरण लम्बा होने का दोष भी है। पद्यो की संख्या में भी कमी होनी आवश्यक है तथापि ये सभी नाटक अभिनेय हैं और अभिनेयता की दृष्टि में अतुलनीय हैं।

(ख) भास का सामान्य अध्ययन

भास की रचनाओं के अध्ययन से यहाँ हमने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण के साथ-साथ उनके लोकरञ्जन तथा लोकरक्षणकारी साहित्य का विवेचन किया; वहाँ उनकी आन्तरिक अनुभूतियों का निदर्शन भी आवश्यक है। कवि ने अपने जीवन की अनुभूतियों से प्रभावित होकर रचनाओं में अनेक स्थलो पर पात्रों के द्वारा स्वानुभत तथ्यो का मार्मिक तथा सफल चित्रण किया है। इस प्रसग मे उनके भावों के कतिपय उद्धरण राजभक्ति के पोषण हेतु प्रस्तुत करते हैं।

भास पूर्व में राजभक्त है पश्चात् में कवि भास ने राजभक्ति के प्रति अपनी जागरूकता ही नहीं, अपितु सावधानता तथा जनसाधारण में राष्ट्रीय भावना को अनुस्यूत करने के हेतु पात्रो के द्वारा सबल उक्ति कहलवाई है। स्वप्नवासवदत्ता[2] मे नाटकारम्भ मे ही कञ्चुकी भृत्यो से कहता है कि तपोवनवासियों को हटाने मे कठिनता का व्यवहार न किया जाये क्योंकि ये व्यक्ति मानधनी होते है और नगर के दूषित वातावरण को त्याग कर वन में रहते हैं। तपोवनवासियो मे कठोरता का व्यवहार राजा के लिए अपवाद की वस्तु होगी इस कारण कठोरता के प्रयोग का निषेध किया गया है। यौगन्धरायण कार्यसिद्धि पर कार्य का श्रेय स्वामी को ही देता है।

अविमारक[3] नाटक मे भूतिक राजा के प्रति कहता है कि राजा मन्त्रियो के

---

१. वासुदेव—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल तृणान्तराभिभाष्या. ।
दुर्योधनः—भो गोपालक ! तृणान्तराभिभाष्यो भवान्।
अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं···साधुभिः। १।३६
वासुदेवः—शठ ! बान्धवनिःस्नेह·· अचिरान्नाशमेष्यति। १।३७
भा० ना० च० पृ० ४५१

२. काञ्चुकीय.—न खलु न खलूत्सारणा कार्या। पश्य,
परिहरतु भवान् नृपापवादं···वसन्ति। स्वप्न० १।५
यौग०—स्वाम्यभिप्रायानामनुगन्तारो वयम्। भा० ना० च० पृ० ५५

३. भूतिक.—न भृत्य···स्वामिनो हि स्वाम्यमात्यानाम्। भा० ना० च० पृ० ११६

स्वामी का भी स्वामी है । प्रतिमा[1] मे राम भरत से राज्य को क्षण भर भी उपेक्षणीय नही होता है'.ऐसा कहते है । इसमे कवि राज्य की तनिक भी उपेक्षा न करने को कहता है ।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे यौगन्धरायण[2] उदयन के गृहीत होने के समाचार पर अपनी सेना को परिमित तथा राजा के प्रति सेना के अनुराग के अभाव को प्रकट करता हुआ उच्च स्वर मे कहता है । हंसक[3] के द्वारा केवल अपने को द्रष्टव्य सुनकर राजा की सेवा बिना किये ही अधिक सम्मान को आँकता है । तृतीयाक[4] मे विदूषक से बात करते हुए 'हमें ससार के कार्य से अभिप्राय नही, हमारी प्रिय वस्तु स्वामी का कार्य है' ऐसा कहता है । राजा के हित मे उत्सर्ग न करने वाले को नरक[5] की प्राप्ति का विधान करता है । यौगन्धरायण[6] मातृभूमि को शत्रु से अनाक्रान्त रहने की घोषणा करता है ।

बालचरित[7] में कस की मृत्यु के समय नेपथ्य मे राजभक्त पुरुषो के लिए राजभक्ति प्रदर्शन हेतु ध्वनि का उच्चारण नाटककार की राजभक्ति की आन्तरिक भावना को द्योतित करता है ।

महान् आशावादी—महाकवि भास ने जीवन की विविधता मे सघर्ष की भीषण झाँकी की झलक दर्शाते हुए भी पात्रो को आशारज्जु से सम्भालने का प्रयास किया है । वासवदत्ता[8] के पीड़ित निराश जीवन मे पुन: राज्ञी होने की आशा दिलाकर सौभाग्य के साथ राज्य-प्राप्ति की उपलब्धि व्यञ्जित की है । इसी आस्था की पुष्टि उनके कथन में प्राप्त होती है । ज्योतिर्विदो के वाक्य मे आस्था रखने वाले महान् कवि ने पुष्पक भद्र आदि सामयिक ज्योतिषियो द्वारा पद्मावती को भविष्य मे रानी होने के समाचार से स्वामी के हेतु उसकी पत्नी को अपूर्व त्याग के लिए तथा सपत्नी भाव को सहन करने मे सबल बना दिया है । पद्मावती के समीप वासवदत्ता को धरोहर[9] रूप में रखने से उसे भावी पत्नी होने के कारण विश्वास

---

१. रामः—राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् । भा० ना० च० पृ० २९२
२. यौग०—व्यक्तं बलं ''सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् । भा० न.० च० पृ० ५९
३. यौग०—तेन हि अनर्हप्रतिक्रियमनिर्विष्टभर्तृपिण्डमत्तु पक्तनराजसंस्कारं । पृ० ६६
४. यौग०—न नः कार्यं लोकेन, स्वामिप्रियार्थोऽयमारम्भः । भा० ना० च० पृ० ६३
५. गात्र सेवकः—नवं शरावं ''यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् । भा० ना० च० पृ० ६६
६. यौग०—परचक्रैरनाक्रान्ता'''परिरक्षति । प्रतिज्ञा० १।६
७. नेपथ्ये - अयं खलु भर्तृपिण्डनिष्क्रियस्य कालः । भा० ना० च० पृ० ५५४
८. यौग०—पूर्वं'''श्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः । स्वप्न० १।४
९. काञ्चुकीयः—एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माक महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम ।
यौग०—या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यति । भा०ना०च०पृ० ३
यौग०—भर्तृदाराभिलाषित्वादरया मे महती स्वता । स्वप्न० १।७
यौग०—इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । भा० ना० च० पृ० ७

दिलाने में सहायता मिलेगी इसी कारण पद्मावती के विषय में वह अपनापन अनुभव करता है और भविष्य में राजा की पत्नी होने की उक्ति मे उसकी आशा पूर्णरूपेण निहित है।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[1] नाटक में भी कवि को यह पूर्ण आशा है कि राजा विजय प्राप्त करेगा इसी कारण से वह यौगन्धरायण के द्वारा अपने कष्ट की स्थिति में भी राज्य प्राप्त करने पर उसे श्लाघ्य पद प्राप्त होगा, ऐसा कहता है।

अविमारक[2] नाटक में भूतिक के द्वारा अविमारक को अन्त्यज कहने में वश के छिपाने का प्रसंग दिया गया है उसके कथन में भविष्य मे इस रहस्य के उद्घाटन की आशा प्रच्छन्न रूप में व्यक्त होती है कि कारणवश ससार में प्राणी प्रच्छन्न रूप में रहते है और अवसर आने पर वे स्वय ही प्रकट हो जाते है।

भाग्य का प्रबल पोषक – भास की रचनाओ के अध्ययन से यह तो प्रमाणित होता ही है कि भास ने गीता की भाँति चारुदत्त ३।१० में 'कर्मसु कौशलम्' का प्रयोग किया है किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी इन्होने रचनाओ मे अनेक स्थलो पर दैव और भाग्य का वर्णन किया है तथा आपदाओ और पीड़ाओ के देने में दैव को ही आक्षिप्त किया है। इस प्रकार के स्थलों का संग्रह पर्याप्त मात्रा मे किया जा सकता है जिनमें कतिपय स्थलों को इस विचार की पुष्टि में रखा जाता है।

स्वप्नवासवदत्ता[3] में भाग्य के पोषण में नाटकारम्भ में ही कञ्चुकी द्वारा तपोवनवासियों को कष्ट पहुँचाने वाले व्यक्ति को चंचल भाग्य से विस्मित बतलाया गया है। ऐसे व्यक्ति को विनम्रता से रहित अंकित किया गया है इसी नाटक मे वासवदत्ता अपने भाग्य विहित कष्ट का अनुभव करती है। अन्य स्थलों पर भाग्य को कौन लाघ सकता है तथा पद्मावती की शय्या पर उदयन को सोते हुए देखकर दैव की कृपा से श्वास की गति अबाध है, ऐसा कहती है। राज्य[4] की पुनः प्राप्ति पर वह भाग्य को ही इसका श्रेय देती है। स्वप्न[5] में वासवदत्ता का स्मरण करते हुए राजा के विषय में कहती है कि भाग्य की कृपा से राजा सो रहा है। विवाह के अवसर पर वसन्तक और उदयन की वार्तालाप में अपना वर्णन सुनकर वह अपने भाग्य को ही सराहती है। पद्मावती के विवाह के उपरान्त नाटक की समाप्ति पर यौगन्धरायण[6] के आने के समय अपना स्मरण जानकर भाग्य को ही बलवान् ठहराती है।

---

१. यौग०—रिपुनृपनगरे वा·· पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतः श्लाघनीयम्। प्रतिज्ञा० १।१४
२. भूतिक.—छन्ना भवन्ति·· विवृता भवन्ति। अवि० १।६
३. यौग०—मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतः·· भाग्यैश्चलैर्विस्मितः। स्वप्न० १।३
४. काञ्चुकीयः—दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतम्। भा० ना० च० पृ० ४६
५. वासव०—दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः। भा० ना० च० पृ० ४२
६. आवन्तिका—दिष्ट्येदानीमपि स्मरति। भा० ना० च० पृ० ५३

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[1] में यौगन्धरायण मन्त्री के कार्य को करते हुए सफलता और असफलता में दैव को प्रमाण मानता है। उदयन के महासेन द्वारा गृहीत हो जाने पर यौगन्धरायण महासेन[2] के भाग्य की सराहना करता है। यौगन्धरायण[3] स्वामी के वृत्तान्त की समाप्ति पर अपने प्रयत्नों को भाग्य के द्वारा निष्फल होता हुआ कहता है। यौगन्धरायण[4] प्रतिहारी के वार्तालाप मे प्रतिहारी राजा के गृहीत होने के वृत्तान्त को कहती है कि विधान के विरोध मे कुछ नही होता।

चारुदत्त[5] में नायक अपनी दरिद्रता को देखकर कहता है, 'जहाँ मेरे भाग्य गए हुए हैं।' संवाहक[6] अपने भाग्य की दशा पर सन्तोष करता है।

प्रतिमा[7] नाटक मे राम राज्याभिषेक के विषय में दैव की प्रताड़ना को बतलाते है। कञ्चुकी[8] महाराज दशरथ को अत्यन्त कष्ट की स्थिति मे देखकर कहता है कि इस प्रकार के पुरुष भी आपदाओ को प्राप्त होते हैं इस कारण विधि का अतिक्रमण करना असम्भव है। अभिषेक[9] नाटक में तारा अपने को मन्दभागा कहती है। पञ्चरात्र[10] में यज्ञ की समाप्ति पर सभी भाग्य से वृद्धि का विधान करते हैं। दूतघटोत्कच[11] मे गांधारी अभिमन्यु की मृत्यु के वर्णन में कहती है कि 'हे पौत्र ! तुम हमारे भाग्य से कहाँ चले गये ?' ऊरुभग[12] नाटक मे गाधारी अपने को मन्दभागा कहती है। बालचरित[13] नाटक में देवकी अपने को मन्दभागिनी कहती है। वसुदेव[14] नन्दगोप से अपने पुत्र के विषय में कहता है कि यह मेरा सप्तम पुत्र है जो कि दीर्घायु है किन्तु मेरे भाग्य में पुत्र कहाँ है ? मै तुम्हारे भाग्य से इसे जीवित रखना चाहता हूँ।

---

१. यौग०—दैवप्रामाण्याद् भ्रश्यते वर्धते वा। प्रतिज्ञा० १।३
२. यौग०—कथं गृहीतः स्वामी ' प्रद्योतस्य भाग्यैर्निस्तीर्णः। भा० ना० च० पृ० ६०
३. यौग०—एतानि'''भाग्यक्षयान्निष्फलमुद्यतानि। प्रतिज्ञा० १।१२
४. प्रतीहारी—किं शक्यं कर्तुमन्तरेण विधानम्। भा० ना० च० पृ० ७०
५. नायकः—यत्र गतानि मे भागधेयानि पश्य। भा० ना० च० पृ० १६७
६. संवाहकः—प्रकृत्या वणिग्गहम्। ततो भागधेयपरिवृत्ततया। भा० ना० च० पृ० २१७
७. रामः—नारीणां'' मूले दैवेन ताडितम्। प्रतिमा० १।११
८. काञ्चुकीयः—ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ' विधिरनतिक्रमणीयः। भा०ना०च०पृ० २६८
९. तारा—एषा गच्छामि मन्दभागा। भा० ना० च० पृ० ३२४
१०. सर्वे—यज्ञसमाप्त्या दिष्ट्या भवान् वर्धते। भा० ना० च० पृ० ३७८
११. गांधारी—अस्माकं भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक। भा० ना० च० पृ० ४६१
१२. गांधारी—जीवितास्मि मन्दभागा। भा० ना० च० पृ० ४६६
१३. देवकी—सुष्ठु न प्रत्येमि मन्दभागिनी। भा० ना० च० पृ० ५१३
१४. वासुदेवः—तत् सप्तमोऽयं दीर्घायुः। नास्ति मम पुत्रेषु भाग्यम्। तव भाग्याज्जीवितुं गृह्यताम्। भा० ना० च० पृ० ५२०

पराभव से भयभीत—भास ने अन्य परिस्थितियों के अंकन में अपने मान और अपमान का पात्रों को सदैव ध्यान रखते हुए दर्शाया है कि इनके पात्र अत्यन्त सजीव हैं और उन्हें तनिक भी पराभव सह्य नहीं है। इस प्रकार के स्थलों का निर्देश निम्न रूप से किया जाता है। स्वप्नवासवदत्ता[१] नाटक में भट की उक्ति में पद्मावती के आगमन के कारण राजमार्ग से सभी व्यक्ति हटाये जा रहे हैं ऐसे समय में रानी वासवदत्ता अपने हटाये जाने के अपमान से भयभीत प्रतीत होती है और कहती है कि परिश्रम से इतना खेद उत्पन्न नहीं होता जितना कि पराभव से उत्पन्न होता है। तपस्वियों[२] का वन मे आकर वास यही प्रकट करता है कि वे नगर में रहने के कारण होने वाले परिभवों से बचने की कामना से ही आये हैं। प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[३] मे विदूषक प्रद्योत के अपमान विशेष की चिन्ता को व्यक्त करता है। चारुदत्त[४] में नायक अर्थ की क्षीणता को सहन करता है किन्तु अपमान को सहने का स्मरण नही करता। इसी नाटक में विट[५] चेटी के विषय में कुल पुत्र के अपमान करने वाली कहता है। पञ्चरात्र[६] नाटक मे विराट गोग्रहण से अपने को अपमानित अनुभव करता है। दूतवाक्य[७] ने दुर्योधन युधिष्ठिर के अपमान का वर्णन करता है। वासुदेव[८] सुयोधन के शिविर में परिभव का वर्णन करते है।

कृतज्ञता प्रकाशन—भास ने सामाजिक दशा के चित्रण में मनुष्यो के परस्पर व्यवहार मे एक दूसरे व्यक्ति के प्रति किए गए उपकार की कृतज्ञता का प्रकाशन अपनी रचनाओं में किया है। इन्होंने सामान्य मनुष्यो का ही नही अपितु मन्त्री द्वारा किये गये कार्य पर राजा की कृतार्थता की अभिव्यक्ति भी कृतज्ञता के रूप में अभिव्यक्त की गई है। स्वप्नवासवदत्ता[९] के अन्त में राजा कार्य-सिद्धि पर यौगन्धरायण को ही सम्पूर्ण श्रेय देता है और कहता है कि तुम्हारे प्रयत्न से ही हम डूबते हुए निकल आये।

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[१०] में यौगन्धरायण से हंसक यह कहता है कि सभी मंत्रिमडल को छोड़कर केवल यौगन्धरायण को ही देखना, इस पर यौगन्धरायण

---

१. वासव०—आर्ये! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायंपरिभवः। स्व० पृ० २
२. काञ्चुकीयः—नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते ' मनस्विनो वसन्ति। स्वप्न० १।५
३. विदूषकः—प्रद्योतस्यावमानविशेषश्चिन्त्यते। भा० ना० च० पृ० ६२
४. नायकः—विमानितं नैव पर स्मरामि। चारु० १।४
५. विटः—एषा हि'' कुलपुत्रावमानिनी। चारु० १।२२
६. राजा—भगवन्! गोग्रहणादवमानितोऽस्मि। भा० ना० च० पृ० ३६४
७. वासुदेवः—आवासाः'''स्वजनपरिभवादासन्नविलयम्। दूतवा० १।१५
८. दुर्योधनः—नीचोऽहमेव ''द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः। दूतवा० १।२१
९. राजा—मिथ्योन्मादैश्च'''भवद्भिस्तैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृता। स्व० ६।१८
१०. यौग०—तेन हि'''मन्यते स्वामी। भा० ना० च० पृ० ६९

अपने को अयोग्य पाते हुए भी वैशिष्ट्य दर्शाने के कारण कृतज्ञता प्रकट करता है। प्रतिमा[1] नाटक में कञ्चुकी विभीषण के द्वारा कही गई वार्ता मे कृतज्ञता प्रकाशन करता है और राम भी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन करते है। अविमारक[2] मे अविमारक स्वयं कृतज्ञता प्रकाशन करता है। अभिषेक[3] नाटक में आरम्भ मे राम तथा सुग्रीव परस्पर कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

उपर्युक्त प्रसगों मे भास की रचनाओ मे राजभक्ति, आशावादिता, भाग्य-वादिता तथा पराभव से भय एव कृतज्ञता प्रकाशन शीर्षको मे स्थलो का सकलन प्रस्तुत किया गया है। इन सभी प्रकार के प्रसगो मे भास की आन्तरिक अनुभूति का सजीव चित्रण पाठक के सामने मुखरित हो जाता है। पात्र की भाषा में मानो कवि स्वय अपने विचारों को बरबस जनता के सम्मुख उपस्थित करना चाहता है जो कि लोक-संरक्षण की भावना पर आधारित है।

(ग) भास पर पौराणिक महाकाव्यों का प्रभाव

वाल्मीकि और भास—भास वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है। कथावस्तु के आधार पर भी भास ने पर्याप्त सामग्री रामायण से उद्धृत की है। भावों के प्रभाव का दर्शाने का यहाँ प्रयास किया गया है। रचना मे श्लोक-बाहुल्य भी रामायण तथा महाभारत की छाया है। कतिपय प्रयोगो शब्दों तथा भावो को समान रूप से वर्णित पाकर यहाँ निदर्शन रूप मे उन्हें प्रस्तुत किया जाता है।

राम[4] की चन्द्रमा से उपमा रामायण में सर्वत्र उपलब्ध होती है। भास ने भी राजा की उपमा चन्द्रमा से ही दी है।

प्रतिज्ञा मे यौगन्धरायण को पन्नग सदृश वर्णित किया गया है। वाल्मीकि में इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त है।

वीर्यशुल्क[5] शब्द रामायण में भी वर्णित है और इसी का प्रभाव होने से भास ने अपनी रचना प्रतिमा नाटक में दशरथ के लिए स्त्रीशुल्क शब्द का प्रयोग किया है।

नक्षत्र तथा मुहूर्त के प्रति अटूट आस्था का प्रभाव भी वाल्मीकि रामायण

१. काञ्चु०—दिष्ट्या भवान् वर्धत इति।
   रामः—सहायाना प्रसादाद् वर्धत इति कथ्यताम्। भा० ना० च० पृ० ३१७
२. अवि०—कष्टोऽन्यः··· कृतघ्नभावः। अवि० ४।३
३. सूत्रधारः—परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः। भा० ना० च० पृ० ३२२
४. इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाक इव निर्मलः। वाल्मीकि, अयो० ४।६६
   तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतां वरम्। वाल्मीकि, अयो० पृ० २।११
   भरतः—नवशशिनमिवार्य पश्यतो मे न तृप्तिः। भा० ना० च० पृ० ३१६
५. पूर्व प्रतिज्ञा विदिता वीर्य शुल्का ममात्मजा। वा० अ० पृ० ६।३२३

कालीन ही प्रतीत होता है क्योंकि रामायण में पुष्य नक्षत्र का सुन्दर सुयोग के रूप मे वर्णन है। भास ने भी अपनी रचनाओ मे नक्षत्र का महत्व दर्शाया है।

ब्राह्मणो को दान देने तथा गो-प्रतिष्ठा का विधान भी वाल्मीकि रामायण में वर्णित है और उसी प्रकार का अनुशीलन भास मे प्राप्त होता है।

प्रतिमा नाटक मे राज्याभिषेक में सम्भारान् तथा समारम्भ शब्दो का प्रयोग दोनो स्थलो पर समान रूप से प्राप्त होता है। वल्कल[1] वाली घटना में रामायण का ही प्रभाव है।

अपराध-स्वीकृति की भावना रामायण में यत्र-तत्र प्राप्त होती है जिसकी भास ने अत्यधिक चर्चा की है।

स्त्री[2] पुरुषाधीन है और उसका सर्वस्व पति ही है ऐसा वर्णन भी वाल्मीकि में प्राप्त होता है तथा दोनों मे स्त्री को "अवध्य" कहा गया है।

नियोग का प्रचार तथा शाप का प्रभाव वाल्मीकि मे भी वर्णित है, जो कि भास ने अपनी रचनाओं मे प्रयुक्त किया है।

वाल्मीकि रामायण मे मन्दर[3] पर्वत से उपमा देने का वर्णन भी प्राप्त हुआ जो कि भास ने एक ही प्रकार की शैली में अपनी रचनाओ में कठिन कार्यो के अवसर पर प्रयुक्त किया है।

वाल्मीकि रामायण में चन्द्रमा[4] को राहु से ग्रसित होने का वर्णन किया है जिसे हम भास का विशेष प्रयोग कहकर अब तक मानते आये हैं।

१. चीरं बबन्ध सीताया: कौशेयस्योपरि स्वयम् वा० रामा० अयोध्या० सर्ग १७।१४
पण्डित पुस्तकालय, काशी १९५९

२. पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धु पतिर्गुरुः,
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः। वा० यु० उ० ५।३०१
दैवतं हि पतिः स्त्रिय। वा० यु० उ० ९।४६१
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ। वा० अया० ९।३२५
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः। प्रतिमा नाटक १।२५

३. मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि। वा०
बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ति। बाल० च० १।६
सीता—यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः। अभिषेक० ५।७ के समीप
व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य। प्रतिज्ञा० २।९

४. पाण्डराभ्रमिवाकाशं राहुयुक्तं निशाकरः। वा० अयो० सर्ग १०।१२
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रकलामिव। वा० अर० २१८
बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट्। वा० अर० ३४१
यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव। प्रतिज्ञा यौग० १।१६
किं द्रष्टव्यः शशांकोऽयं राहोर्वदनमण्डले। बाल० चरित० ३।११

भास ने अपनी रचनाओं में 'अप्रमत्त'[1] शब्द का प्रयोग किया है जो रामायण मे भी लभ्य होता है। भास इसके प्रयोग मे अपना वैशिष्ट्य रखते हैं तथा विशेष स्थलों पर इसको प्रयुक्त करते हैं।

भास ने उपमा मे कुररी[2] की ध्वनि की समानता दी है जो कि वाल्मीकि रामायण के प्रभाव को स्पष्ट दर्शाती है।

भास ने अपनी रचनाओं में केवल एक स्थान में दूतवाक्य एकाकी मे 'तृणान्तराभिभाष्यो भवान्'[3] का प्रयोग किया है जो वाल्मीकि रामायण के प्रभाव को दर्शाता है। इस प्रकार का प्रयोग महाभारत में दृष्टिगोचर नही होता, भास ने भी एक ही स्थल पर इसे प्रयुक्त किया है।

सीताहरण[4] के प्रसग में रावण की उक्ति सीता के लिए नष्ट वेद-श्रुति की भांति वर्णित की गई है। भास ने भी इसी प्रकार की उपमा दी है।

उपमा[5] की समानता का उदाहरण वाल्मीकि तथा भास में दर्शनीय है।

भास वाल्मीकि की शैली से स्पष्टतः प्रभावित प्रतीत होते है क्योकि निम्नांकित स्थलों में 'क्वचित्प्रकाशं'[6] से आरम्भ होने वाले श्लोकों में स्पष्ट छाया प्रतीत होती है। देहान्तर में आस्था प्रकट करने वाला भाव भी दोनों कवियो ने समान रूप से व्यक्त किया है। इस प्रकार भास वाल्मीकि से पूर्णतया प्रभावित हैं, इस प्रकार के समान स्थलों का संग्रह पर्याप्त मात्रा में किया गया है किन्तु यहाँ कलेवर-वृद्धि के कारण वाल्मीकि में प्रयुक्त शब्दों के कतिपय उद्धरण ही प्रस्तुत है।

---

१. अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः। अयो० पृ० ५३७

२. तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्ती कुररीमिव। वा० किष्कि० २४४
भरतरोहकः—श्येनपक्षाभिभृष्टानां कुररीणामिव ध्वनिः। प्रतिज्ञा० ४।२३

३. तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता। वा० सुन्दर० २०७
वासुदेवः—वयं किल तृणान्तराभिभाषकाः।
दुर्योधनः—भो गोपालक! तृणान्तराभिभाष्यो भवान्।
दूत० वा० १।३५ श्लोक के समीप।

४. हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतिमिव। वा० अयो० ८।३८६
अह तामानयिष्यामि नष्टां वेद श्रुतिमिव। वा० किष्कि० ८९
रावणः—स्वरपदहीनां हव्यधारामिवाहं···हर्तुकामः प्रयामि। प्रतिमा० ५।७
माययापहृते ··बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम्। प्रतिज्ञा० ५।१५

५. सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव। वा०
नायकः—संवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते। चारु० १।२७

६. क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित्क्वचित् पर्वतसन्निरुद्धं रूपं महाशान्तमिवार्णवस्य॥ वा० १
क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः।
क्वचित् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः॥ अभिषेक ४।१७

भास में प्राप्त शब्दावली की वाल्मीकीय रामायण से समानता

शब्द	स्थल-निर्देश
कृत्स्न	वा० बालकाण्ड प्रथम सर्ग श्लोक ८, ६, १४, ५।१४०
सभारा:	३ ,, ,, ५२
भार:	३ ,, ,, ६२
परीतस्य	५ ,, ,, १४०
घर्षयन्ति	५ ,, ,, १५४
वीर्यशुल्क	६ ,, ,, ३२२, ३२५ व ३३३
दिष्ट्या	८ ,, ,, ३३२, ३३४
नापराद्ध	८ ,, ,, २११
प्रोषित	६ ,, ,, २८०
धरमाणस्य	३ ,, ,, २२०
गच्छामहे	७ ,, ,, १६४

महाभारत का भास पर प्रभाव—भास ने महाभारत के अध्ययन के पश्चात् ही अपनी रचनाओं को लिखा है। भाव-साम्य शब्दों का प्रयोग और शैली की छाया इस विषय मे प्रमाण है। महाभारत के वनपर्व[1] में युधिष्ठिर तथा विदुर में वार्तालाप के समय विदुर दुर्योधन के अनीति पूर्ण कृत्यो का वर्णन करते हैं तिस पर धृतराष्ट्र कहते है कि 'हे विदुर ! मैं अपने पुत्र को कैसे छोड़ सकता हूँ यद्यपि तुमने मेरे साथ कुटिल आदि शब्दो से व्यवहार किया है। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए मान तो अधिक है अब तुम यथेच्छ यहाँ रहो अथवा जाओ।' भास ने भी पञ्चरात्र नाटक मे इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये है। विदुर ही अभिमन्यु से इसी प्रकार कहते है। इस पर्व में रणपलायनकर्ता आदि के लिए दो स्थलों पर 'किं वक्ष्यतीति'[2] कहा है। इसी प्रकार अपने अपराध की स्वीकृति पर भास ने अपनी रचनाओं में तीन स्थलो पर 'कि वक्ष्यतीति' का प्रयोग किया है।

---

१. कथ हि पुत्रं पाण्डवार्थे त्यजेयं मामा जिह्मं विदुरसर्वं ब्रवीषि।
मान च तेऽहमधिकं धारयामि यथेच्छकं गच्छ वा तिष्ठ वा त्वम्। वन प० ४।१४५
न ते क्षेपेण रुष्यामि रुष्यता भवता रमे।
राजा—किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठति यात्विति ॥ पाञ्चरात्र २।५८
भरत—निर्घृणश्च कृतघ्नश्च 'कथं तिष्ठतु यात्विति। प्रतिमा ४।५

२. अपयात हत पृष्ठे···कि मा वक्ष्यति माधवः।
अक्रूर ···कि मां वक्ष्यन्ति संहिताः ॥ वन प० ६।२७

उपमाओं[1] की समानता तथा श्लोकार्ध[2] भाग महाभारत तथा भास मे समान रूप से प्राप्त होने के कारण महाभारत की छाया स्पष्ट है।

महाकाव्यों के प्रभाव के उदाहरण भास की रचनाओं में और भी हैं जैसे सामाजिक कार्य मे अपराधी होना तथा उसके लिए क्षमा याचना करना व्यवहार मे आता है इसी प्रकार का वर्णन महाकाव्यो में भी मिलता है। भास ने इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। 'अप्रमत्त' शब्द का प्रयोग राजा के आगमन, युद्ध के भय तथा अनेक आवश्यक अवसरों पर वाल्मीकि रामायण, महाभारत के समान ही भास ने प्रयुक्त किया है।

अवभृथ स्नान ऋग्वेद में भी वर्णित है और महाकाव्यो मे भी यह प्राप्त होता है। भास ने इसका प्रयोग कतिपय स्थलो पर किया है।

भास का 'भर्तृनाथा हि नार्य.' वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत[3] दोनो मे समान रूप से प्राप्त होता है। ब्राह्मण की श्रेष्ठता का भाव भास को वर्णाश्रम धर्म की परम्परा के आधीन प्राप्त हुआ है किन्तु भीष्म, द्रोण की वार्ता की प्रतिच्छाया भास मे स्पष्ट झलकती है। भास ने ब्राह्मणो के प्रति महाभारत जैसी ही भक्ति प्रदर्शित की है। गौ की प्रतिष्ठा का पर्याप्त प्रभाव भास पर है। भीम दुःशासन का रक्तपान करते समय उससे 'गौरिति'[4] कहलाता है।

भास ने भर्तृपिण्ड शब्द[5] का प्रयोग महाभारत से लिया है। प्रयोग का ढग भी नवीन प्रकार से किया गया है। भास ने प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण मे दो स्थलो पर इस शब्द का प्रयोग किया है और राजभक्तिहित उत्सर्ग न करने वाले को नरक जाने का बोध कराया है यही भाव महाभारत में प्राप्त है। 'नव शराव" वाला श्लोक, जो कि कौटिल्य अर्थशास्त्र में मिलता है, निश्चय ही भास से उद्धृत किया गया है, क्योंकि इसका सन्दर्भ इस बात का प्रमाण है। महाभारत मे भी पापी व्यक्ति के लिए न यह लोक है न परलोक, ऐसा कहा गया है। इसकी प्रतिच्छाया ही भास में प्राप्त होती है।

---

१. द्यौरिवापेत-नक्षत्रहीनं खमिव। द्रोण० प० १।३
ब्रह्म०—प्रोषित-नक्षत्रमिव नभोऽरमणीयः सवृत्त.। भा० ना० च० पृ० ११

२. क्वन हि योऽभिजानाति सहस्रे सोऽस्ति नास्ति च। वन० प० ८।४००
विदूषकः—मम शरीरमस्ति वा नास्ति वा। भा० ना० च० पृ० १६०
क्षिप्रं ''मनो हि दूयति दह्यते च। वन० प० २२।११५८
अवि०—हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा। अवि० ३।१७

३. भर्ता नाम भार्याभूषणं भूषणैर्विना। महा० सभापर्व २

४. तान् वयं प्रति नृत्यामः पुन. गौरिति गौरिति। महा० कर्ण प० ७।३६६

५. अनवेक्ष्य '' भर्तृपिण्डापहारिणाम्। महा० उद्योग प० ८।५४६
नैवायं न परो ''परपिण्डोपजीवितम्। महा० उद्योग प० ४।५१४
परपिण्डमुदीक्षे। महा० उद्योग प० ८।४६८

भृंगार शब्द का प्रयोग महाभारत में युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञोपरान्त किया गया है वैसा ही भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन की इच्छापूर्ति पर उसे भृंगार देने का निर्देश कञ्चुकी द्वारा किया है।

महाभारत में कर्ण को नागकेतु शब्द से सम्बोधित किया है क्योंकि उसकी ध्वजा पर नाग का चिह्न था। इसीका प्रभाव भास पर कर्णभार में 'प्रस्थितो नागकेतुः' में दृष्टिगत होता है।

वनपर्व में 'युगमात्रोदिते सूर्ये'[1] कहा गया है, भास ने भी 'इषुमात्रोत्थिते सूर्ये' का वर्णन प्रतिज्ञायौगन्धरायण में किया है।

महाभारत[2] में वर्णित 'साप्तपद मैत्री' का प्रभाव भास के अविमारक नाटक में प्राप्त होना है कि जब अविमारक कुरंगी के समीप पहुँचता है तो कुरंगी उससे अपनी सप्तपद प्रमाण सम्बन्धी मैत्री का वर्णन करती है।

महाभारत-प्रणेता वेदव्यास ने भी 'भारतानाम्'[3] शब्द के प्रयोग को पूर्ण बल के साथ प्रयुक्त किया है जैसे कोई आदर्शवादी वरेण्य व्यक्तियों का समाज हो। भास ने भी इसी प्रकार की सबल उक्ति का प्रयोग किया है।

किसी भी कार्य हेतु निश्चित रूप से शिक्षित होने के स्थलों पर दीक्षित शब्द का बहुलता से महाभारत में प्रयोग किया गया है। भास ने पञ्चरात्र के आरम्भ में ही 'नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव' कहा है।

'सभार' शब्द का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में हम पूर्व में कह चुके हैं, महाभारत[4] में भी यह प्रयुक्त है। भास ने भी इसका प्रयोग किया है।

तिथि व नक्षत्रों के प्रयोग का महत्व महाभारत में प्राप्त वर्णन के अनुसार ही भास ने भी अपनी रचनाओं में किया है।

महाभारत के कर्णपर्व तथा शल्यपर्व में स्त्रियों के रोने की ध्वनि की तुलना कुररी[5] की ध्वनि के सदृश की है। भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में इसी प्रकार का वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण में भी इसका प्रयोग दर्शा चुके हैं।

---

१. युगमात्रोदिते सूर्ये। महा० वनपर्व २३।१५५०

२. यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्वार्थदर्शिनः। महा० वन प० १३।१२७५

३. धिगस्तु नष्ट. खलु भारतानां...वृत्तम्। महा० सभा प० २।३७२
ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः। महा० सभा प० २।४४८
दीक्षितोऽद्यैव गच्छ त्वं द्रष्टुं देवं पुरन्दरम्। महा० वन प० ११।४७१

१. संभारा सम्भ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ। महा० अश्वमेध ३।१०६

२. वितत्य पक्षौ सहसा पततं श्येन यथा। महा० कर्ण० ७।३६८
कुररीणामिवार्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह। कर्ण पर्व १।३०
भरतरोहकः—श्येनपक्षाभिमृष्टानां कुररीणामिव ध्वनिः। प्रतिज्ञा० ४।२३

महाभारत में कर्ण[1] के द्वारा अपने रथ को अर्जुन के समीप ले जाने की प्रेरणा का एक विशेष प्रयोग है, उन्हीं शब्दो का वही रूप भास ने कर्णभार मे कर्ण के द्वारा तीन स्थलों पर प्रयोग किया है।

महाभारत में युधिष्ठिर के रहने से पृथ्वी को 'शस्य-सम्पन्ना'[2] कहा गया है इसी प्रकार का भाव भास ने युधिष्ठिर के रहने पर ऊसर भूमि में भी अन्न की उत्पत्ति का वर्णन किया है।

महाभारत में कर्ण के लिए 'अर्धरथः'[3] शब्द का प्रयोग किया है। वही प्रयोग भास ने भी अपनी रचना कर्णभार में किया है।

स्वामी कार्तिकेय द्वारा क्रौञ्च वध तथा क्रौञ्च के क्रन्दन की समानता की उपमा भास ने कई स्थलों पर वर्णित की है। महाभारत में भी इस प्रकार की उपमा का वर्णन प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पौराणिक महाकाव्यो के समय इस प्रकार की उपमा का प्रचलन अत्यधिक था। इसी कारण भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में 'शरवणादिव कार्तिकेय.' का प्रयोग किया है।

भास ने अपनी रचनाओ में क्रौञ्च पर्वत सम्बन्धी उपमाओं का भी सन्निवेश किया है जो स्वाभाविक रूप में कार्तिकेय से सम्बन्धित है। स्वामी कार्तिकेय की उत्पत्ति तथा क्रौञ्च सम्बन्धी वर्णन वायुपुराण में ७२वे अध्याय में प्राप्त होता है।

इन उपर्युक्त प्रयोगो की समानरूपता के कारण ही भास पौराणिक महाकाव्य-काल के ठीक पश्चात् ही अवतीर्ण हुए और उन्होने साहित्य-सृजन मे महाकाव्य की परम्पराओं को उपमाओं, भावों तथा श्लोकार्ध भागों मे प्रयुक्त करके इस शैली का अनुकरण किया। इससे महाकाव्यों का प्रभाव भास पर प्रमाणित हो जाता है।

(घ) भास का परवर्त्ती साहित्यकारों पर प्रभाव

महान् कवि तथा महान् नाटककार भास ने संस्कृत साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि की भाँति दृश्यकाव्य का पथ प्रशस्त किया। आदिकवि ने काव्य के क्षेत्र को नई दिशा प्रदान की। इन्होने नाटकीय क्षेत्र में अपना मार्ग स्वयं निर्मित किया

१. चोद्याश्वान् यतो भीष्मो ''धनञ्जयः। महा० भीष्म पर्व ४।२१६
कर्णः—यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः। भा० ना० च० पृ० ४७८
२. संपन्नशस्या'''यत्र राजा युधिष्ठिरः। विराट पर्व० २८
शकुनिः—ऊषरेष्वपि शस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः। पञ्चरात्र १।४४
३. रणे रणे '' ''अर्धरथो मतः। महा० उद्योग १६८
धृतराष्ट्रः—शङ्कापनीतकवचोऽर्धरथः प्रमादी· घृणावान्। दूतघटो० १।२३

और नाट्यकला को उत्कृष्ट रूप प्रदान किया। यह स्पष्ट है कि भास के समय नाटकीय कला में पूर्ण विकास हो चुका था क्योंकि इनके नाटकों मे काव्यत्व के साथ रगमंचीय उपयुक्तता तथा अभिनेयता की परिपक्वता प्राप्त होती है। साहित्य के सर्वप्रथम नाटककार होने के कारण महाकवि कालिदास ने इनको उद्धृत किया है और इनकी रचनाओं की उत्कृष्टता को भी स्वीकार किया है।

कालिदास पर प्रभाव—कालिदास ने भास की रचनाओ की प्रशस्ति की घोषणा मालविकाग्निमित्र नाटक में सर्वप्रथम नाटककार के रूप मे की है। नाटकीय संविधान की दृष्टि से कालिदास ने भरत नाट्यशास्त्र की परम्परा को अपनाया है किन्तु काव्य के क्षेत्र में हम कालिदास को भास के भावो, शब्दों, उपमाओ का अनुकरण करता हुआ पाते हैं। भास ने प्रतिमा नाटक मे सीता के वल्कल की घटना का सुगुम्फन किया है वहाँ वल्कल[1] धारण करने वाली सीता की सौन्दर्यवृद्धि का वर्णन है। ये दोनों वर्णन शकुन्तला मे समान रूप मे दृष्टिगोचर होते है। तपोवन के वर्णन मे स्वप्नवासवदत्ता तथा शकुन्तला मे पर्याप्त समानता प्राप्त होती है। तपोवन के मृगो[2] के प्रति स्नेह का भाव समान रूप से दोनों स्थलों पर वर्णित किया हुआ मिलता है।

स्वप्नवासवदत्ता[3] में घोषवती वीणा की उपलब्धि से राजा उदयन व सवदत्ता के प्रति असीम शोक से विह्वल तथा आतुर हो उठना है। इसी प्रकार शाकुन्तलम्

१. अवदातिका—सर्वशोभनीय सुरूपं नाम। अलंकरोतु भट्टिनी।
नव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कल संवृत्तम्।
भा० ना० च० पृ० २५३

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ शाकुन्तलम् १।१९

२. रामः—आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च
विन्ध्य वनं तव सखीर्दयिता लताश्च॥
वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु॥ प्रतिमा ५।११
विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
निःसंदिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥ स्वप्न० १।१२
यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते। शाकुन्तलम् ४।१४

३. राजा—श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम्। स्वप्न० ६।१
तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं। शाकुन्तला ६।११
कथं नु तं बन्धुरकोमलांगुलिं। शाकुन्तला ६।१३

में राजा दुष्यन्त भी शकुन्तला को तिरस्कृत कर देने पर जब मछुए के द्वारा अंगूठी प्राप्त कर लेता है तो इसी प्रकार व्यथा का अनुभव करता है।

स्वप्नवासवदत्ता[1] में तपोवन के वर्णन में समानता के साथ पद्मावती के द्वारा अतिथि सत्कार की भावना को व्यक्त किया गया है। शकुन्तला में भी प्रथमांक में तपोवन वर्णन में इसी प्रकार की समानता के साथ शकुन्तला का राजा के प्रति सत्कार का प्रदर्शन किया गया है।

भास ने अविमारक में शाप को कुरंगी-अविमारक विवाह में बाधक सिद्ध किया है इसी प्रकार का वर्णन शकुन्तला में भी दुर्वासा ऋषि के शाप द्वारा प्राप्त होता है।

अभिषेक नाटक में वृक्ष, लताओं[2] के प्रति मन्दोदरी की भावना तथा स्वप्नवासवदत्ता मे वृक्षों को दया पर रक्षित होने का वर्णन स्वच्छन्द वातावरण को प्रस्तुत करता है और पात्रों का वृक्ष वन-लताओं के प्रति स्नेह दर्शाता है। इसी प्रकार का वर्णन शकुन्तला के चतुर्थाङ्क में शकुन्तला की वन-वृक्ष तथा लताओं के प्रति मृदुल भाव मजरी का बोध कराता है।

कालिदास की रचनाओं में भाव साम्य के उदाहरण और भी प्राप्त होते हैं किन्तु यहाँ श्लोकार्ध भाग मे भास की प्रतिच्छाया को स्पष्टतः प्राप्त करते हैं। यह श्लोकार्ध[3] भाग कालिदास की रचनाओ में भास के प्रभाव को स्पष्ट रूप से तथा आश्चर्यजनक रूप से दर्शाता है, जो रघुवंश में प्राप्त होता है।

---

१. काञ्चुकीय - प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः। भा० ना० च० पृ० ८
राजा—भवतीनां सुनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।
शकुन्तला प्रथमांक श्लोक २३ के पश्चात्

२. शंकुकर्णः—यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्यमन्दोदरी।
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात्॥ अभिषेक ३।१
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवं॥ शकुन्तला ४।९

३. कर्णः—अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटिमान् दानवसंघमर्दनः।
सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिर्मया
कृतार्थः खलु पाकशासनः॥ कर्णभार १।२३
हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः
सुरद्विपास्फालनकर्कशांगुलौ।
भुजे शचीपत्र विशेषकांकिते
स्वनामचिह्नं निचखान सायकम्॥ रघुवंश ३।५५

स्वप्नवासवदत्ता में भाग्य की दशा[1] को परिवर्तित होता हुआ अंकित किया गया है। उसी की समानता मेघदूत में प्राप्त होती है।

स्वप्नवासवदत्ता[2] में पद्मावती अपने सौभाग्य का चिन्तन करती है ऐसा ही चिन्तन शकुन्तला में प्रियम्वदा के संवाद में प्राप्त होता है।

स्वप्नवासवदत्ता में रूमण्वान् को राजा के समान कष्ट को वहन करते हुए बतलाया गया है उसी प्रकार का वर्णन शकुन्तला में भी दुष्यन्त की पीड़ा के अनुभव में प्रतीत होता है। कन्याभाव की रमणीयता स्वप्न तथा शकुन्तला में साम्य रखती है।

स्वप्नवासवदत्ता मे पद्मावती के विवाह के अवसर पर कौतुक माला[3] के गूंथने का वर्णन मिलता है। रघुवंश में भी मधूकमाला के गूँथने का वर्णन समान रूप से किया गया है।

वासवदत्ता में पुष्पों पर भ्रमरो[4] के उडने का वर्णन भी कुमार सम्भव में समान रूप से प्राप्त होता है।

स्वप्नवासवदत्ता में उदयन वासवदत्ता के स्मरण को निरन्तर बनाये रखने में जिस प्रकार के भाव व्यक्त करता है और कष्ट का अनुभव[5] करता है, कुमार सम्भव मे अपने हाथ से लगाये हुए विषवृक्ष के काटने मे भी उसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव होता है।

स्वप्नवासवदत्ता मे पद्मावती के सिर में पीड़ा के समाचार को जानकर उदयन

---

१. योग०—पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासीत्
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। स्वप्न० १।४
सुखस्यानन्तरं दुखं दुखस्यान्तरं सुखं
सुखदुखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते॥
कस्यात्यन्तं सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥ उत्तरमेघ ५२

२. वास०—अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि।
पद्मा—सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। भा० ना० च० पृ० १३ व १५
एपः तु तवागमने मनोरथः। शकुन्तला पृ० २३
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्। कुमार० १।३

३. चेटी—कौतुक मालिकां गुम्फत्वार्या। भा० ना० च० पृ० १७
एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्रंसिदूर्वांकमधूकमाला। रघुवंश ६।२५

४. राजा—मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः। स्वप्न० ४।३
मधु द्विरेफ ''प्रियां स्वामनुवर्तमानः। कुमार० ३।३६

५. राजा—दुःखंत्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः। स्वप्न० ४।६
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयंछेत्तमसाम्प्रतम्। कुमार० २।५५

पद्मावती को भी पाले से पीड़ित कमलिनी[1] के समान आँकता है इसी प्रकार रघुवंश में भी वर्णन किया गया है।

उदयन वासवदत्ता के पिता के समाचार को पाकर उन्हें राजवंशों के उन्नति और अवनति[2] करने में समर्थ व्यक्ति के रूप मे वर्णन करता है वैसा ही वर्णन रघुवंश में प्राप्त होता है।

स्वप्नवासवदत्ता में भास ने लक्ष्मी का उपभोग केवल उत्साही व्यक्तिओं के द्वारा ही किया जाना बतलाया है। कालिदास ने भी श्रेष्ठ कार्यों की प्राप्ति में कष्ट की अनुभूति और उत्साह[3] का होना आवश्यक निर्दिष्ट किया है।

स्वप्नवासवदत्ता मे उदयन वासवदत्ता के वियोग में "हा प्रिये, प्रिय शिष्ये"[4] का सम्बोधन वासवदत्ता के लिए करता है इसी प्रकार के सम्बोधन को रघुवंश में पाते हैं।

स्वप्नवासवदत्ता मे उदयन के विवाह का अग्नि[5] के समक्ष होना वर्णित किया गया है इसी प्रकार की अग्नि की उपस्थिति रघुवंश में आवश्यक बतलाई गई है।

मृच्छकटिक पर प्रभाव - यह निश्चित प्रायः ही है कि चारुदत्त पूर्व की रचना है और शूद्रक ने मृच्छकटिक मे उसी का परिवृहण राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हुए किया है। श्री वेलवेल्कर[6], सुकथन्कर[7] तथा डॉ० कीथ तथा अन्य यूरोपीय विद्वान् इसका समर्थन करते हैं किन्तु पी० वी० काणे, रेड्डी और भट्टनाथ इसमें सन्दिहान है। इस विषय का विवेचन एक पृथक् अध्याय के योग्य है अतः यहाँ इतना ही निदर्शन करके हम प्रभाव प्रदर्शन हेतु कतिपय उद्धरण प्रस्तुत करते हैं।

---

१. राजा—तां पद्मिनी हिमहतामिव चिन्तयामि। स्वप्न० ५।१
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता। रघुवंश ८।४५

२. राजा—राजवंश्यानामुदयास्तमय प्रभुः। स्वप्न० ६।६
उदयमस्तमयं च वसुधाधिपा। रघुवंश० ९।९

३. काञ्चुकीयः—प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते। स्वप्न० ६।७
अनिर्वेद प्राप्याणि श्रेयांसि। विक्रम० पृ० १०६

४. राजा—महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया। स्वप्न० ६।११
गृहिणी सचिवः सखीमिथः प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ। रघुवंश ८।६७

५. धात्री—अनग्निमाग्निकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। भा० ना० च० पृ० ५०
तत्रार्चितो विवाह साक्ष्ये वधुवरौ संगमयांचकार। रघुवंश ७।२०

६. मृच्छ० तथा चारु० का सम्बन्ध, प्रथम ओरियण्टल सभा पूना।

७. जे० ऐ० ओ० एस० ४२, स्टडीज इन भास ३।

मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त के समान ही कथावस्तु तथा भावों का अंकन किया गया है। भास का प्रभाव ही नहीं अपितु पूर्णतया अनुकरण करने का शूद्रक ने प्रयास किया है। दूतघटोत्कच[1] के वर्णन में मृच्छकटिक में समानता प्राप्त होती है।

. भास ने भुजाओं की उपमा हाथी की भुजाओं के सदृश दी है। मृच्छकटिक में भी 'करिकरसमबाहु' कहा है। भास ने नरेन्द्रश्री को उत्साहयुक्त व्यक्तियों द्वारा उपभोग करने का वर्णन दिया है। इसी प्रकार का वर्णन 'साहस में लक्ष्मी का वास है' मृच्छकटिक में भी कहा गया है।

मुद्राराक्षस पर प्रभाव भास की नाट्य परम्परा एक पृथक् परम्परा रही है इसका पोषण उसके समान नाट्य परम्परा मे रचित नाटकों में मुद्राराक्षस का प्रमुख स्थान है। यह नाटक भास की नाट्यकला का अनुसरण करता है इसमें नाटक का प्रारम्भ 'नान्द्यन्ते' से होता है। भावों, विचारो और शब्दों के प्रयोग भी इसमें समान रूप से मिलते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी 'सखे किमसिवक्तुकाम:' का प्रयोग भास के इसी प्रकार के अनेक स्थलों के प्रयोग की ओर संकेत करता है। इस नाटक में 'अप्रमत्त, काशपुष्प, निवापाञ्जलि सबाष्पम्, कुटुम्बिनी, आदि शब्दो का भास के समान ही प्रयोग हुआ है। भास ने जैसे अपराध की स्वीकृति में वर्णन किया है उसी प्रकार इस नाटक में भी अपराध की स्वीकृति को व्यञ्जित किया गया है। भास ने 'सकाम'[2] शब्द का प्रयोग विशेष महत्त्व प्रदर्शन हेतु किया है। ऐसा ही प्रयोग मुद्राराक्षस में भी मिलता है। विजया[3] नाम की स्त्री पात्र का प्रयोग भी हुआ है।

उत्तररामचरित पर प्रभाव—करुण रस प्रधान नाटकों में उत्तररामचरित का स्थान सर्वोत्तम है। यह नाटक वस्तुत: संस्कृत साहित्य में अपना अपूर्व स्थान रखता है। यह स्पष्ट ही है कि नाटककार ने भास की रचनाओ को अवश्य देखा होगा, क्योंकि भास ने पूर्व में अपनी रचनाओं में रामचरित के पूर्वांश का वर्णन किया है और राज्याभिषेक के अनन्तर की घटना को अपनी कथाओं में स्थान नही दिया है, इसी कारण भवभूति ने उत्तररामचरित की रचना की। कतिपय स्थलों पर हम भास के भावों की समानता पाते हैं। पञ्चरात्र में द्रोण द्वारा 'सभाजयति'[4] का प्रयोग प्रीतिपूर्वक सेवन अर्थ में प्राप्त होता है इसी प्रकार का प्रयोग उत्तररामचरित में भी मिलता है। भास ने स्वप्नवासवदत्ता में मनुष्यों के हृदयों को आगमप्रधान

---

१. प्रथम:—गृहयुगलनिभाव...लीयमानेन्दुलेख:। मध्यम० १।५
अस्तौहिदत्वा तिमिरावकाशमस्तं · तीक्ष्णं विषाणागमवावशिष्टम्। मृच्छकटिक ३।६

२. वासव०—सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु। भा० ना० च० पृ० ६
राजा—स्वगतम्। एवमस्यासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकाम: सकामो भवत्वार्य:।
मुद्रा० २।३३ से पूर्व

३. मलयकेतु:—विजये, क्व भागुरायण:। मुद्रा०.५।५ के पश्चात्

४. स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि। उत्तरराम० १।७

तथा सुलभप्रदर्शित किया है, इसी प्रकार महापुरुषों के हृदयों को वज्र से भी कठोर तथा कुसुम से भी कोमल वर्णन उत्तररामचरित[1] में मिलता है।

मालतीमाधव नाटक पर प्रभाव—स्वप्नवासवदत्ता में वासवदत्ता के अग्नि दहन के उपरान्त भी उसके जीवित रहने का ही गुणगान किया गया है क्योंकि जो स्त्री दग्ध हो चुकी इसके उपरान्त भी उसका पति अपूर्व स्नेह दर्शाता है, वह जीवित ही है। इसी प्रकार का वर्णन मालतीमाधव[2] में दो स्थलों पर प्राप्त होता है। स्वप्नवासवदत्ता में 'प्रियगुशिलापट्ट' का वर्णन दिया गया है; मालतीमाधव में भी तृतीयांक में इसी प्रकार का वर्णन है।

कादम्बरी[3] में भी गुणों के स्मरण का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

मालविकाग्निमित्र[4] में 'चतुःशाला' शब्द का प्रयोग भास के समान ही है।

माघ[5] में 'ध्रियते' का प्रयोग प्राप्त होता है जो कि भास ने कतिपय स्थलों पर प्रयुक्त किया है।

किरातार्जुनीयम्[6] में भी धरित्री को विक्रम द्वारा प्राप्त करने का निर्देश भास के 'नरेन्द्रश्री सोत्साहैरैव भुज्यते का स्पष्ट प्रभाव प्रदर्शित करता है।

वेणीसहार नाटक के रचयिता भट्टनारायण ने वीर रस प्रधान नाटक की रचना की है। यह भी महाभारत से उद्धृत आख्यान पर आधारित है। भट्टनारायण ने भास के वीर रस प्रधान एकाकी—ऊरुभंग तथा दूतवाक्य का अध्ययन अवश्य किया है क्योंकि सम्पूर्ण आख्यान को उसी प्रकार से प्रभावशाली वाक्य-विन्यास में उपस्थित करने का प्रयास किया है। इनके नाटक में वीर रस का उन्मीलन तो अवश्य हुआ है किन्तु समासगर्भित शैली के कारण वह सारल्य तथा हृदयावर्जन नहीं हो पाता है जो भास द्वारा रचित नाटकों में सुलभ है।

रत्नावली नाटिका में भास के सांध्यकालीन वर्णन[7] की साम्यता दर्शनीय है। भास ने सूर्य की किरणों के संक्षिप्त होने का और उसके अस्ताचल की ओर जाने का

---

१. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि·· चेतांसि। उत्तर राम० २।७

२. न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति। मालतीमाधव पृ० ३
उपरताप्यनुपरता। मालतीमाधव पृ० ५९

३. उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति। कादम्बरी पृ० २६५

४. मञ्जूषां गृहीत्वा चतुःशालतः कुब्जा निष्क्रामति। मालविका० पृ० ९९

५. ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावद् कुतः सुखम्। माघ० २।३५

६. लभ्या धरित्री तव विक्रमेण। किरातार्जुनीय ३।१७

७. परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो।
रथंव्यावर्त्याऽसौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥ स्वप्न० १।१६
सन्ध्यामृष्टविशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपं क्त,
व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैषदिकचक्रमर्कः। रत्नावली ३।५

मनोरम अंकन किया है वैसा ही प्रभावपूर्ण वर्णन **रत्नावली** नाटिका मे लभ्य है। भास ने स्वप्नवासवदत्ता में उदयन के लिए 'शरचापहीनकामदेव' तथा अविमारक नाटक में भगवान् कामदेव के सदृश वर्णन किया है। **रत्नावली** में भी 'कुसुमायुध'[1] कहकर इस प्रसग का सादृश्य अभिव्यञ्जित किया है।

इन उपर्युक्त नाटको तथा काव्यों मे भास की रचनाओ का प्रभाव स्पष्टतया आभासित होता है। भास ने साहित्य मे अपूर्व नाटकों को रचा है।

(ङ) भास के प्रमुख प्रयोग

प्रस्तुत प्रबन्ध में महान् नाटककार भास के विषय में विभिन्न प्रकार का विवेचन करने के उपरान्त भी इनके कतिपय प्रमुख प्रयोगों से आकृष्ट होने पर उनके विषय में यथाशक्ति जानने का प्रयास करने के लिए मुझे जिज्ञासा हुई और मैंने भास के इन दो प्रयोगो को विभिन्न वर्णनो द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

उत्तर कुरु— भास ने अपनी रचना मे कई स्थलों पर उत्तर कुरु का प्रयोग किया है। केवल प्रयोगमात्र से तो इस शब्द का कोई महत्व न होता, किन्तु इनके प्रयोग अत्यन्त सबल हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर कुरु के प्रति कवि के हृदय में अगाध स्नेह तथा आकर्षण विद्यमान है जिसके कारण वह बाधित होकर इसके सुख सौरभ से सुरभित स्थल के आनन्द का स्मरण निरन्तर करता है। विदूषक के द्वारा हास्य में भी 'उत्तर कुरु वासः मयानुभूयते' का कहलाना इस स्थल के प्रति रुचि तथा सानिध्य का द्योतक है कि कवि ने इस स्थल को अवश्य देखा है सौर इसके आनन्द-पूर्वक आवास का अनुभव भी किया है।

भौगोलिक स्थिति— भारत की उत्तरीय सीमा सदैव से भारत के लिए गौरव की वस्तु रही है। वैदिक काल में उत्तराखण्ड का भाल 'इलावृत्त' कहलाता था। ब्राह्मण ग्रन्थो के रचना काल में यह 'उत्तर कुरु' नाम से विख्यात हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण में यहाँ के स्वर्णशासन का वर्णन है। कौशीतकी ब्राह्मण मे पथ्यास्वस्ति देवी के उत्तरी भूभाग को जानने का वर्णन मिलता है। पथ्यास्वस्ति वाणी की देवी कही गई है। इस स्थल पर उत्तम वाणी का बोला जाना प्रसिद्ध था। अन्य व्यक्ति यहाँ वाणी परिज्ञान के लिए आते थे। सरस्वती का वास होने से इस स्थल पर भागीरथी का नाम भी सरस्वती नदी से आख्यात है। जो माणाघाटी के शिखर से निकल कर आदि मनु की जन्मभूमि 'माणाग्राम' बद्रीनाथ पुरी से कुछ ऊपर विष्णु गंगा से मिलती है। इस स्थान की संस्थाओं में भारत की सभ्यता का निर्माण हुआ। इसी स्थान पर वेदव्यास ने व्यास गुफा में वेदों का संकलन तथा महाभारत एवं पुराणों की रचना की थी। व्यासगुफा के ऊपरी भाग की विशाल प्रस्तर फलक पर अंकित रेखाये इस सम्बन्ध मे प्रमाण रूप में मानी जा सकती हैं। वेदों में भी बद्रीधाम जैसे

---

१. प्रत्यक्ष एवापूर्वः कुसुमायुधः ॥ रत्नावली १।४४

स्थलों में विद्या वृद्धि का सम्बन्ध प्राप्त किया जा सकता है। चरक ने भी भारद्वाज को इन्द्र द्वारा ज्ञान प्राप्त होने का निर्देश इसी स्थान पर करना बतलाया है। भाषा के विस्तार में भी इस स्थल का विशेष महत्व रहा है। तिब्बती वर्णमाला पर भारतीय आर्य भाषा का प्रभाव इसी निकटता के कारण प्राप्त होता है।

ऐसा भी वर्णन मिलता है कि बद्रीनाथ धाम मे आकर कृष्ण ने निवास किया था। त्रेता युग में गुरु वशिष्ठ ने इसी भूभाग पर आकर हिमदाव नामक पर्वत पर वशिष्ठ गुफा में अपनी स्त्री अरुन्धती के साथ निवास किया था। इसी स्थल के समीप देवधूरा नामक स्थान मे पर्वतों की शिलाये पाण्डवों द्वारा क्रीडा मे फेकी गई हैं ऐसा प्रसग अब भी वहाँ दन्त-कथाओं के रूप में प्राप्त होता है। इसी स्थान पर देवी के मन्दिर के पास दो बड़ी प्रस्तर शिलाये है इनमे ऊपरी शिला को रणशिला कहते है जिसके ऊपर पचीसी नामक खेल के खेलने का कुछ चिन्ह-सा प्राप्त होता है। दूसरी शिला पर भीमसेन की पाँचो अँगुलियों के आकार के चिन्ह दिखलाई पड़ते है, ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि केदारेश्वर के पाँच मन्दिरो की स्थापना पाण्डवो ने की थी। केदारनाथ के मन्दिर के समीप ही जगद्गुरु आदि शकराचार्य की समाधि एक चबूतरे के रूप में आज भी विद्यमान है। यहाँ से भारताबूट नामक पर्वत के दर्शन आप स्पष्टतया कर सकते हैं। इस पवत के विषय में वहाँ ऐसी कथा प्रचलित है कि यहाँ से पाण्डवों ने अपना स्वर्गारोहण आरम्भ किया था। अपने जन्मस्थान पाण्डुकेश्वर में पाण्डवों ने तपस्या की थी। बद्रीनाथ धाम मे कृष्ण भी आकर पाण्डवों के साथ कुछ काल रहे थे। इस प्रसग में इस समय भी वहाँ नर और नारायण नाम के दो पर्वत प्रसिद्ध है जो कि अर्जुन तथा कृष्ण के स्मृति चिन्ह के रूप में जन-वासियों द्वारा उद्धृत किये जाते हैं। उस स्थान पर पहुँचकर व्यक्ति विश्वासपूर्वक इन स्थलों की महत्ता को स्वीकार करता है और अपना मस्तक झुका लेता है।

शान्तिपर्व के अनुसार मेरु अथवा सुमेरु गढ़वाल का रुद्र हिमालय कहा गया है जिस स्थल पर गंगा का स्रोत है। यह स्थान बद्रीकाश्रम के निकट है। मत्स्यपुराण के अनुसार सुमेरु के उत्तर में उत्तर कुरु है, दक्षिण मे भारतवर्ष, पश्चिम मे केतुमाला और पूर्व मे भारतवर्ष। पद्मपुराण के अनुसार भी गंगा सुमेरु पर्वत से निकलकर भारतवर्ष से होती हुई समुद्र मे गिरती है। महाभारत के वनपर्व[1] १८वे अध्याय मे उत्तरकुरु के पश्चात् **कैलासपर्वत** का वर्णन है तथा उसी स्थल पर नर-नारायण आश्रम का भी वर्णन प्राप्त होता है। भास ने स्वप्नवासवदत्ता में विदूषक के द्वारा 'उत्तरकुरु वासः मयानुभूयते' तथा अविमारक नाटक में विद्याधर के द्वारा उत्तरकुरु

१. तेऽवतीर्य बहून् देशानुत्तरांश्च कुरुनपि।
दद्दशुर्विविधाश्चर्यं कैलासं पर्वतोत्तमम्॥
तस्याभ्याशे तु दद्दशुर्नरनारायणाश्रयम्।
दद्दशुस्ता च बदरी वृत्तस्कंधा मनोरमाम्॥ वनपर्व १८।१५४ व ५५

की स्थिति के विषय मे विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। विद्याधर[1] उत्तरकुरु प्रदेश के समीप गगा में स्नान का वर्णन करता है।

मन्दराचल—पौराणिक कथाओ के आधार पर नन्दलाल डे ने भागलपुर जिले की वाका तहसील की एक पहाडी को मन्दर कहा है परन्तु कालिदास के वर्णन के अनुसार यह उपयुक्त नही ठहरता। कालिदास ने इसे हिमालयपर्वत की शृंखला माना है। डे महोदय ने भी स्वयं लिखा है कि 'कुछ पुराणो मे नर-नारायण के मन्दिर से सयुक्त **बद्रीकाश्रम** की स्थिति मन्दर पर्वत पर बतायी है किन्तु महाभारत वनपर्व अध्याय १६२, १६४ के अनुसार मन्दर **बद्रीकाश्रम** के उत्तर और गंन्धमादन के पूर्व में पड़ता है।'

कालिदास के अनुसार मन्दर की स्थिति महाभारत वर्णन के अनुकूल कैलास और गन्धमादन के समीप मानी गई है। कुमारसम्भव[2] के वर्णन के अनुसार शिव विवाह के अनन्तर पहले मेरु पर रमण करते हैं, तत्पश्चात् मन्दर पर। मन्दर के पश्चात् ये अपनी क्रीड़ास्थली कैलास तथा गन्धमादन को बनाते है। कैल का क्रीड़ा और आस का अर्थ स्थल है। इस प्रकार मन्दर की स्थिति हिमालय से पृथक् दक्षिण मे कदापि उचित नही प्रतीत होती। वाल्मीकि रामायण मे भी मन्दर पर्वत का उपमाओ में प्रयोग मिलता है। स्थिति के विषय मे तो प्रकाश की दिशा प्राप्त नही होती। महाभारत[3] वनपर्व १८वे अध्याय में मन्दर पर्वत को कैलास पर्वत के सदृश श्वेत वर्णित किया गया है और उसको पार करके ही मन्दर पर्वत पर प्रवेश का वर्णन तथा उसके पश्चात् गन्धमादन पर्वत का वर्णन है।

भास की रचनाओ मे मन्दर पर्वत का प्रयोग उपमा के वर्णन में कतिपय स्थलो पर प्रयुक्त किया गया है। यथा—बालचरित[4] नाटक में कृष्ण को गोद मे लिए हुए देवकी का वर्णन हाथों में मन्दर पर्वत लिए हुए के समान वर्णित किया गया है। इसी नाटक मे कालिय[5] ने भी अपने पराक्रम के वर्णन में मन्दर पर्वत क

१. प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातः पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान्॥ अविमारक ४।१०

२. कुमारसम्भव, कालिदास, श्लोक सं० ८, २३, २४, २९, ५९।

३. श्वेतं गिरिं प्रवेक्ष्यामो मन्दरं चैवपर्वतम्।
तत्र मणिवरो यक्षः कुबेरश्चैव यक्षराट्॥
दुर्गमाः पर्वताः पार्थ समाधिं परमं कुरु।
एतद्विकीर्ण सुश्रीमत् कैलासशिखरोपमम्॥ महा० वन० प० १८।९१२

४. लोकानामभयंकरं......बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ति॥ बाल० १।६

५. लोकालोक महीधरेण भुवनाभोगं यथा मन्दरं। बाल० ४।७

समानता दर्शायी है । कालिय[1] ने ही पुनः भगवान् कृष्ण को प्रसन्न करते हुए मन्दर पर्वत के सार के सदृश बतलाकर अपनी असमर्थता प्रदर्शित की है ।

बालचरित[2] नाटक मे ही कृष्ण के शौर्य तथा गुरुता के वर्णन में समानता प्रदर्शित करने के लिए उन्हें विन्ध्य तथा मन्दराचल पर्वत का सार वर्णित किया है। ऊरुभंग[3] नाटक मे द्वितीय भट की उक्ति में भीम-दुर्योधन युद्ध के प्रसंग में मन्दर पर्वत का वर्णन प्राप्त होता है ।

इन उपर्युक्त वर्णन प्रसंगो से मन्दर पर्वत से नाटककार का घनिष्ठ परिचय तथा काव्यों मे इसकी उपमा की प्रथा का परिचलन ज्ञात होता है । मन्दराचल तथा उत्तरकुरु दोनो की स्थिति के विषय में अविमारक में वर्णित प्रसग 'प्राक्सन्ध्या' से ही प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इन दोनो के प्रयोग से कवि उत्तरीय प्रदेश का निवासी था और दक्षिण में जाकर उसने अपनी रचनाओ की यदि किसी कारणवश रचना की भी हो तो भी वह अपने आवास स्थल के प्रति अगाध आस्था तथा स्नेह को निरन्तर प्रदर्शित करता रहा है । ऐतिहासिक राज्यो मे भी कुरु राज्य की स्थिति से भी उत्तरकुरु भूमि का यही भाग आनुमानित किया जा सकता है ।

(च) भास की देन

प्रसन्नराघवकार जयदेव की 'भासो हास.' की उक्ति की चरितार्थता के साथ भास ने अपने नाटकों की अभिनेयता के वरिष्ठ गुण होने के कारण अमरता प्राप्त की। कविता-कामिनी के उदात्त तथा उद्धत हास्य के दर्शन हमें इनकी रचनाओं मे प्राप्त होते हैं । स्वप्नवासवदत्ता मे विदूषक अधिक आहार करने पर 'अक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्त. सजातः' तथा 'ब्रह्मदत्तम् नाम नगरम् काम्पिल्यं नाम राजा' आदि हास्य का मनोरम प्रसंग प्राप्त होता है । प्रतिज्ञायौगन्धरायण[4] में विदूषक रुमण्वान से कहता है कि सम्भवतः तुम्हारे प्रयत्न निष्फल हों ।

चारुदत्त नाटक मे नट और नटी का वार्तालाप घरेलु वस्तुओं के विषय मे पूछने पर उत्तर यही मिलता है कि ये सभी वस्तुएँ आपण में प्राप्त हैं । नटी तथा सूत्रधार की यह उक्ति हास्यास्पद है। नटी उपवास का प्रसंग दर्शाती है और भी

---

१. गोवर्धनोद्धरणमप्रतिमप्रभावं ।
   बाहुसुरेश ! तवमन्दरतुल्यसारम् । बाल० ४।११

२. विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बाल: पद्मदलेक्षणः । बाल० १।१२

३. शब्द मन्दरकन्दरोदरदरी: संहत्य वा सागरम् । उरु० १।१५

४. विदू०—एवं चिन्तयामि महान् खलु भवतः प्रयत्नो विपत्स्यत इति ।
   भा० ना० च० पृ० ६

मनोरञ्जन प्रदान करती है। विदूषक का यह कथन कि आम[1] यदि माठा है उसकी गुठली नही खाई जाती, स्वाभाविक तथा समाज मे प्रचलित हास्य का वा उपस्थित करता है। वह पुनः आकण्ठमात्रमशित्वा कहकर चौराहे पर घूमने व वृषभ की भाँति चर्वण करता हुआ हास्य करता है। इतना ही नही, वह यह कहता है कि आप मेरे उदर की अवस्था विशेष को जानते है।

शकार[2] का हास्य इस स्थल पर और भी मनोरञ्जनपूर्ण हो जाता है जब वह अन्धकार से भरे हुए नासिका के स्वरों से नही देख पाता है तथा आँखो से न सूँघ पाता है, ऐसा कहता हुआ परस्पर मे हास्य का प्रदर्शन करता है।

प्रतिमा नाटक में पारिवारिक मनोविनोद का हास्य अत्यन्त शिष्टतापू जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। इसमें राम, सीता के वल्कल धारण करने प अमंगल की आशका में 'शरीरार्धेन' कहकर सुन्दर निर्वहण कर देते है। इसी नाट के चतुर्थांक में जल लाने के आदेश पर भरत[3] और लक्ष्मण का परस्पर वार्तालि सेवायुक्त हास्य का रमणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है कि भरत लक्ष्मण से कहते कि यह न्याय नही है और अब मुझे भी सेवा का अवसर मिलना चाहिए। इस प्रका शिष्ट हास्य का दर्शन हमे प्राप्त होता है। बालचरित नाटक[4] मे नारद द्वारा हास का अनुपम ढग दिखलाई पड़ता है। नारद देवताओं और असुरो के युद्ध के समाप हो जाने पर और प्रतिदिन वहाँ शान्ति रहने से अपने मन न लगने के कारण कल करने की कामना करते हैं। नारद के स्वभाव में भी वीणा-विनोद-रसिक तथा कलह प्रिय होना वर्णित किया गया है। अविमारक[5] नाटक के चतुर्थांक में विद्याधर द्वा दी गई मुद्रिका के पहनने मे क्रम भंग हो जाने से हास्य की परिस्थिति प्राप्त होत है क्योंकि दाँये और बाँये हाथ मे अगूठी पहनने पर ही उसके फल का प्रभाव दिख लाई पड़ता है। अविमारक नाटक में अविमारक स्वयं गोष्ठी में हास्य संग्राम

---

१. विदूषकः—अधिकमधुरस्य आम्रस्य अयोग्यतया अस्थि न भक्ष्यत इति।
भा० ना० च० पृ० १९

२. शकारः—आम भाव ! शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम्।
अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि। भा० ना० च० पृ० २०५

३. रामः—वास ! लक्ष्मण ! आपस्तावत्।
लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः।
भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् ! क्रमेण शुश्रूषयिष्ये। भा० ना० च० पृ० २८

४. नारदः—क्षीणेषु देवासुरविग्रहेषु नित्यप्रशान्ते न रमेऽन्तरिक्षे।
अहं हि वेदाध्ययनान्तरेषु तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि॥ बाल० १।४

५. अवि०—गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैः
द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम्॥ अवि० ४।२१

वीरता इत्यादि वर्णन मे अपने हृदय में सुख और दुःख की स्थिति में शरीर को दो भागो में विभक्त दर्शाता है। स्वप्नवासवदत्ता मे भी विदूषक वासवदत्ता तथा पद्मावती दोनो में कौन सुन्दर है, इस वर्णन प्रसग मे केवल भोजन सम्बन्धी हास्य का आश्रय लेता है और यह कहता है कि यद्यपि वासवदत्ता मुझे रुचिकर है तथापि पद्मावती मधुर एव स्निग्ध भोजन देने के कारण विशेष रुचिकर है तथा वह यह भी कहता है कि इस समय महलों मे रहा जाता है और उत्तरकुरु के सवास सुख का अनुभव किया जाता है।

इनके नाटकों मे व्यग्योक्तियों का सुगुम्फन भी हृदयहारी ढग से वर्णित किया गया है। दूतवाक्य सम्वाद-प्रधान एकाकी है जिसमे दुर्योधन और कृष्ण का रोषपूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर दर्शनीय है। घटोत्कच का वार्तालाप दूतघटोत्कच मे प्रशसनीय है। प्रतिज्ञा में यौगन्धरायण तथा भरत रोहक का वार्तालाप, अभिषेक मे हनूमान् और रावण का उत्तर-प्रत्युत्तरयुक्त वार्तालाप सुन्दर व्यग्य के अन्तगत आता है।

इन्होने रूपक की रचना के क्षेत्र मे उसके विविध भेदो पर रचनाएँ लिखी है जिनमें प्रसादान्त तथा विषादान्त दोनो प्रकार की कल्पनाएँ की गई है। नाट्य शास्त्र के प्रणेता के समान नाट्य सविधान की रचना मे अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। रूपको की आदर्श रूप में रचना की जिनमे काव्यत्व की अपेक्षा अभिनेयता को प्रमुखता दी गई है।

इनके काव्यत्व में नाटकीयत्व के पूरक होने तथा उसमे लौकिक परम्पराओं की रागमयता के सन्निवेश के कारण इन्हे लोकप्रियता प्राप्त हुई है जो सरलता सुरभि से सुरभित होने से साधारण जन के लिए सुलभ वस्तु बन गई है जिसमे इन्होने अपने दृष्टिकोण का सफल अकन जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है।

रूपको की रचना मे इनका दृष्टिकोण धार्मिक भावना के क्षेत्र में वैष्णव-परम्परा का प्रसार और प्रचार रहा है। राम तथा कृष्ण के लोकरक्षण रूप के द्वारा दुष्ट-वृत्ति का विनाश इनको अभिप्रेत है। राजनैतिक दृष्टिकोण मे अटूट राज-भक्ति प्रदर्शित की गई है। इन्होंने सामाजिक दृष्टिकोण में अपूर्व त्याग, शौर्य तथा विभिन्न प्रकार की विदूषितवृत्तियों द्वारा उत्पन्न दोषो के पतन का नग्न चित्र उपस्थिति करते हुए अभ्युत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है।

नाटकों मे लोककथाओं में त्यागमयता के अकित होने से लोकप्रियता के साथ स्थायित्व की प्राप्ति की है। रागमयता तथा त्यागमयता दोनो रूपों से इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करती है। रूपको मे विदूषक तथा अन्य पात्रो के माधुर्य तथा सारल्य से आभरित संवाद पाठको, दर्शकों के लिए आकर्षक सिद्ध हुए हैं। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर हर्षित सीता के विषय में चेटी का कथन उद्धृत करने

के लिए मुझे बाध्य होना पड़ा है जो स्थल भावों की मञ्जुलता में अपूर्वता का द्योतक है। प्रतिमा में चेटी की सीता के प्रति उक्ति—

'नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहृपतानि तनुरुहाणि मन्त्रयन्ते'।

भास का कवित्व नाटकत्व का पूरक है इन्होंने बलपूर्वक पद्यों का ग्रथन नहीं किया है। पद्यों के भावों के प्रकट करने अथवा मूर्त्त की कल्पना की विशदता के लिए अलकारों की जितनी आवश्यकता है उसकी ही कवि ने पूर्ति की है। रस के निर्वहण का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। इनकी वाणी में प्राण है, वह स्वयं बोलती, हृदय में स्पंदन, रसपेशलता एवं आनन्दातिरेक का सृजन करती हुई गतिमती होती है।

इस प्रकार हम इनके नाटकों मे नाटकीय वातावरण को पूर्णरूपेण तेजस्विता, प्रणय-बन्धन तथा सामयिकता से ओतप्रोत पाते हैं। इनके नाटकों में गत्यात्मकता को विशेष स्थान दिया गया है। 'निष्क्रम्य प्रविश्य' एक सामान्य क्रम है। व्यापार की गति अबाध रूप से प्रचलित रहती है उसमें शैथिल्य तथा अरुचि को अवकाश नहीं। सुघटित कथावस्तु की योजना में वैयक्तिकता से मण्डित पात्रों के चित्रण में, ओजस्वी वायुमण्डल की अवतारणा मे तथा वीर रस की अभिव्यञ्जना में बाल-चरित, दूतवाक्य तथा प्रतिज्ञा नाटक अपना अपूर्व स्थान रखते हैं। उरुभग के समान योद्धाओं को समरांगण में प्राण न्योछावर कराने वाले वर्णन तथा प्रतिज्ञा के राज-नैतिक बुद्धि-कौशल के वर्णन मानवता के लिए आदर्श स्थापित करते है।

अतः हम भाषा, भाव, शैली तथा कवित्व एवं वस्तुचयन, पात्र-चित्रण आदि के समीक्षण के बल पर कह सकते हैं कि भास के रूपक सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्व के हैं। हमें इनमें कालिदास की प्राञ्जल शैली का प्रारम्भिक रूप प्राप्त होता है।

प्रबन्ध की समाप्ति में मैं महाकवि तथा वरेण्य विद्वान् एवं गुरुवृन्द के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी असीम अनुकम्पा से इन वाक्यों का सुगुम्फन कर सका हूँ। साम्बशिव तथा वीणावादिनी वरदा शारदा माता की प्रसाद पुष्पाञ्जलि विद्वानों की सेवा में सादर समर्पित है।

—: ओ३म् शान्ति :—

सुभाषितानि

अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।	स्वप्नवासवदत्ता[1] पृ०	९०
अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् ।	,,	७०
कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले ।	,,	१०२
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः	,,	३८
न हि सिद्धवाक्यानुत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि	,,	४८
प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।	,,	४२
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।	,,	१२०
सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।	,,	६४
स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।	,,	९२
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः ।	,,	९०
गुणानां वा विशालानाम् ।	,,	९४
एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यप्यवधूयन्ते ।	,,	३८
आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति	,,	६६
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ।	,,	१२६
सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ।	भा० ना० च०[2] पृ०	५९
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ।	,,	७२
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ।	,,	७६
नीते रत्ने भाजने को निरोधः ।	,,	१०२
समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाच्छेत्तु कुतः श्रमः ।	,,	१०५
कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ।	,,	११०
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी, कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ।	,,	१११
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ।	,,	११४
कन्यापितृत्वं बहुवन्दीयम् ।	,,	११५
स्त्रीभावत. प्रवदति प्रतिकूलमेव ।	,,	१३९
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।	,	१४१
दैव विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ।	,,	१४१
प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे, समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ।	,,	१६८
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी ।	,,	२२३
रोषः कुपुरुषस्येव स्वागेष्वेवावसीदति ।	,	२११
शकनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता ।	,	२३२

---

१. स्वप्नवासवदत्ता, एम० आर० काले ।

२. भासनाटकचक्रम्, सी० आर० देवधर ।

प्रबन्ध में प्रयुक्त पुस्तकों की सूची

1. Bhasa a Study —A.D. Pushalkar, 1945
2. Sukthankar Memorial Vol. II. Articles on Bhasa, 1923.
3. Plays Ascribed to Bhasa —C.R. Devadhar. 1923.
4. Bhasa His Age & Magadhi —Banerjee Shastri, 1923.
5. Plays of Bhasa —Thomas, J.R.A.S., 1922.
6. (Problem Indian Historical Quarterly Journal. 1925). 'Article on Bhasa'.
7. Linguistic Aberrations in Kalidas —Tarapada Chaudhry. (Reprinted from the Journal Bihar Research Society. Patna, 1951).
8. Pre Kalidas Bhas —T. Ganpati Shastri.
9. Natya Shastra (Translated) —M.M. Ghosh.
10. Kalidas & Bhas —C.K. Venkataraman.
11. Sanskrit Drama —Kieth.
12. Drama in Sanskrit Literature —R.V. Jagirdar.
13. Drama and Dramatic Dances of Non-European Races —Rigwe.
14 Sanskrit Drama & Dramatist —K P. Kulkarni.
15. The Analogies of Kalidas Drama —J A O S. XX, P. 341.
16. Types of Sanskrit Drama —D.R. Mankad.
17. Indian Theatre —Wilson.
18. Classical History —S.N. Chatterjee.
19. History of Sanskrit Literature —Winterniz.
20. History of Sanskrit Literature —Kieth.
21. History of Sanskrit Literature —S.N. Das Gupta.
22. Vaishnavishm & Shavism —R.G. Bhandarkar.
23 Philological Lectures —Wilson.
24. An Introduction to Comparative Philology —P.D. Gune.
25. Buddhist Hybrid Sanskrit —Franklin Edgerton.
26. Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary —Franklin Edgerton.
27. Relationship of Shudrak Mrichhakatic to the Charu of Bhas —Belwelkar
28. Svapnavasavadatta Edited —M.R. Kale

29. Svapnavasavadatta Edited —C.R. Devadhar
30. ,, ,, —T. Ganpati Shastri
31. Pratijnayaugandharayanam ,, — ,,
32. ,, ,, —C.R. Devadhar
33. Madhyamavyayoga ,, — ,,
34. ,, ,, —T. Ganpati Shastri
35. Dutaghatotkacam ,, — ,,
36. ,, ,, —C.R. Devadar
37. Karnabharam ,, — ,,
38. ,, ,, —T. Ganpati Shastri
39. Urubhangam ,, — ,,
40. ,, ,, —C R Devadhar
41. Dutavakyam ,, — ,,
42. ,, ,, —T. Ganpati Shastri
43. Bhasa Natak Chakram ,, — ,,
44. ,, ,, —C.R. Devadhar
४५. भरत नाट्य शास्त्र —पूना सस्करण
४६. नाट्यशास्त्र (हिन्दी टीका) १-३ —भोलानाथ शर्मा
४७. दशरूपक (हिन्दी अनुवाद) —डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत
४८. दशरूपक (हिन्दी अनुवाद) —डॉ० भोलाशंकर व्यास
४९. बृहत्कथा मञ्जरी —क्षेमेन्द्र (पांडुरंग पब्लिकेशन, सन् १९३१)
५०. महाभारत (संक्षिप्त संस्करण) —पूना 'संस्करण'
५१ वाल्मीकि रामायण —पूना संस्करण
५२. नाट्यदर्पण — रामचन्द्र गुणचन्द्र
५३. सस्कृत साहित्य का इतिहास —बलदेव उपाध्याय
५४. संस्कृत साहित्य का इतिहास (वरदाचार्य)—अनु० डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
५५. सस्कृत और उसका साहित्य —डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास
५६ संस्कृत कवि दर्शन —डॉ० भोलाशंकर व्यास
५७ संस्कृत आलोचना —डॉ० बलदेव उपाध्याय
५८. साहित्यदर्पण (पी० वी० काने) — विश्वनाथ
५९. कालिदास ग्रन्थावली —सीताराम चतुर्वेदी
६०. भारतवर्ष का इतिहास —राय तथा चौधरी
६१. भारतवर्ष का इतिहास —आर० सी० मजुमदार
६२. संस्कृत के प्रमुख नाटककार (लेख) —डॉ० सूर्यकान्त (सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ १९५५)

६३. प्राकृत प्रकाश —वररुचि
६४. प्राकृत विमर्श —डॉ० सरयू प्रसाद
६५. अशोक —आर० जी० भाण्डारकर
६६. बुद्धचरित—टीकाकार दत्तात्रेय शास्त्री —अश्वघोष
६७. वायु पुराण
६८. समीक्षा शास्त्र —डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत
६९ पाणिनि कालीन भारत —डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
७०. यूरोपियन नाट्यशास्त्र का विकास (लेख) —रामअवध द्विवेदी
(सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ)
७१ रूपक रहस्य —डॉ० श्यामसुन्दर दास
७२ शाकुन्तलम् —कालिदास
७३ विक्रमोर्वशीय — ,,
७४. मालविकाग्निमित्र — ,,
७५ रघुवश — ,,
७६ मेघदूत — ,,
७७ मुद्राराक्षस —विशाखदत्त
७८. मृच्छकटिक शूद्रक —शूद्रक
७९. काव्य प्रकाश —मम्मट
८०. ध्वन्यालोक —अभिनवगुप्त
८१. रसगंगाधर —पडिण्तराज जगन्नाथ
८२ हर्षचरित —बाण
८३. कादम्बरी —बाण
८४. रत्नावली —हर्ष
८५. शिशुपाल वध —माघ
८६. वेणी सहार —भट्टनारायण दीक्षित
८७. उत्तर रामचरित —भवभूति
८८. भास —एस० पी० अय्यर
८९ बालचरित —आर० सहगल
९०. स्वप्नवासवदत्तम् —अनू० पी० पी० शर्मा